सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

५४

(६ मार्च से २२ अप्रैल, १९३३)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमे जिस डेढ महीने (५ मार्चसे २२ अप्रैल, १९३३)की अवधिकी सामग्री दी गई है वह यद्यपि बाह्यत घटनाशून्य थी, किन्तु गाधीजी के लिए यह स्पष्ट ही बढते हुए मानसिक तनावका समय था। सितम्बर १९३२ के उपवासके बाद लोगोमे उत्साहकी जो लहर दौड गई थी वह अब शान्त हो रही थी, लेकिन उधर एक ओर तो हरिजन सुधारोंकी धीमी गतिसे अधीर हो रहे थे और दूसरी ओर सनातनियोने हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशके खिलाफ अपने विरोधकी तैयारी शुरू कर दी थी। गाधीजी को इन दिनो जो पत्र मिल रहे थे उन सबको पढना और हरिजनो, सनातनियो तथा सुधारकोसे बातचीत करना "धधकती आगमें से होकर गुजरना" जान पडता था (पृष्ठ ५२)। आश्रमकी समस्याओको लेकर भी गाधीजी काफी चिन्तित रहे — विशेषकर उस अमेरिकी युवतीके नैतिक कल्याणकी समस्याको लेकर जिसके लिए उन्हे वैसी ही फिक्र रहती थी "जैसी माँको अपनी बच्चीके लिए होती है" (पृष्ठ ३९०)। उन्होने नारणदास गाधीको लिखा. "एकके-बाद-एक कोई-न-कोई धर्मसकट मेरे सामने खडा ही रहता है" (पृष्ठ १५४)। परिणामतः गाधीजी के इस कथनके बावजूद कि "मेरे अपने मनमे पूर्ण शान्ति है" (पृष्ठ ११०), ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अन्दर मानसिक सकटकी स्थिति उत्पन्न होती जा रही थी, जिससे उन्हे छुटकारा मिला ३० अप्रैलकी रातको, जब उन्होने आत्म-शुद्धिके लिए तीन सप्ताहका उपवास करनेका निश्चय किया।

गाधीजी को यह देखकर बडा दु ख हुआ कि उनके सितम्बर १९३२ के उपवासका प्रभाव अस्थायी सिद्ध हुआ, यद्यपि पहले उन्होने इसी उपवासके परिणामोसे परम सन्तुष्ट होकर इसे आधुनिक युगका चमत्कार माना था (देखिए खण्ड ५१)। गाधीजी के ही शब्दोमे, "उस समय हिन्दू लोग जोशमे थे और उस अवस्थामे उन्होने बहुत-से ऐसे काम किये जिन्हे बादमे जोश ठडा पडनेपर मिटा दिया।" बंगालमे तो उस उपवासके परिणामस्वरूप सम्पन्न यरवडा समझौतेमे परिवर्तन कराने के लिए एक आन्दोलन ही खडा हो गया (पृष्ठ ४४२)। सनातनियोके साथ अपनी वार्त्ताके विफल होनेसे गाधीजी के मनको गहरा क्लेश पहुँचा, क्योकि हिन्दू धर्मके मूलभूत मूल्योके प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी और इसलिए वे नही चाहते थे कि हिन्दू धर्म मिट जाये, जबकि उनका विश्वास था कि यदि अस्पृश्यता कायम रही तो हिन्दू धर्म अवश्य मिट जायेगा।

हिन्दू धर्मके मूल्योमे उनकी श्रद्धाका यह एक बड़ा प्रमाण था कि उग्रवादी सुधारोके प्रहारो और उनके कार्यसे सहानुभूति रखनेवाले ईसाइयोकी आलोचनाओको झेलकर ही वे वर्णाश्रम धर्म तथा मन्दिरोमे पूजाकी परम्पराकी हिमायत पूर्ववत् करते रहे। उनका कहना था कि "वर्ण-व्यवस्था भौतिक लाभको मर्यादित करती है, जिससे

आत्मविकासके लिए अधिक अवकाश मिल सके" (पृष्ठ ३७५)। उनकी मान्यता थी कि जीवनका लक्ष्य केवल "समाजमे ऊपर उठना" नही, बल्कि अपने मानव-बन्धुओंकी सेवा करना है, और इसलिए वर्ण-धर्मको बुद्धिपूर्वक स्वीकार करने से "मनुष्य सन्तुष्ट रहता है और उसकी बहुत-सारी शक्ति नैतिक उत्थानके लिए प्रयुक्त होनेको बच जाती है। इसकी अवमानना करने का मतलब होता है हानिकर असन्तोष, लालच, बन्धु-विनाशी स्पर्धा और नैतिक गतिरोध, और इस सबका परिणाम अन्तमें आध्यात्मिक आत्महत्या ही होता है" (पृष्ठ ५०-५१)। किन्तु उन्होने देखा कि आजके युगमे वर्ण-धर्मको पुनरुज्जीवित करनेके लिए "सबको स्वेच्छासे शूद्रोका धर्म स्वीकार करने की जरूरत है" (पृष्ठ १४८) और "अपने परिश्रमसे और शारीरिक श्रम करके अपनी रोटी" कमानेकी आवश्यकता है (पृष्ठ २२२)। इसमें गाधीजी का मशा यह था कि "सभी अपने श्रमके बलपर जियें और इसलिए किसीको भी अपने निर्वाह-भरके लिए आवश्यक साधनोसे अधिक पानेका अधिकार नही है" (पृष्ठ २६)। उनके विचारसे आजीविका शरीर-श्रमसे पैदा करनी चाहिए और दिमागको सेवाके काममें लगाना चाहिए (पृष्ठ ४९)।

जहाँतक मन्दिरोमें पूजा करने का सम्बन्ध था, उसके प्रति उनकी वैसी ही दृढ श्रद्धा थी जैसी कि अधिकाश हिन्दुओके मनमे युगोसे रही है। यद्यपि वे स्वयं अद्वैत दर्शनको मानते थे, किन्तु उनका कहना था कि "उस दर्शनमे ऐसा तो कुछ नही जो मन्दिरोमे हमारे विश्वासको गलत बतलाये" (पृष्ठ १८२)। उनके विचारसे यदि कोई द्वैतका अनुभव करता है तो उसमे चिन्ताकी कोई बात नही है, क्योकि इस सम्बन्धमे उसकी स्थिति, वह सत्यको जिस रूपमें देखता है, उसके अनुसार ही होगी (पृष्ठ ४४८)। इसी प्रकार कर्म और भक्तिमे भी उन्हे कोई अन्तर्विरोध दिखाई नही देता था, क्योकि "दर्शनका प्रयोजन तो कर्मकी प्रेरणा ग्रहण करना, आत्माकी स्थिरता और शुद्धि प्राप्त करना है। इस प्रकार दर्शन कोई सदाचरण का विकल्प नही है। वह उसमे प्रवृत्त होनेकी एक प्रेरणा-मात्र है" (पृष्ठ १२४)। एक अमेरिकीने गाधीजी की आलोचना करते हुए कहा था कि "मन्दिरोपासक हिन्दू धर्मका पक्ष" लेकर (पृष्ठ ५४) अपनी बातोका सार्वभौमिकताका तत्त्व खो दिया है (पृष्ठ ५४)। उत्तरमे गाधीजी ने लिखा कि "मुझे ऐसे किसी भी धर्म या सम्प्रदायकी जानकारी नही है जिसका काम अपने देवालयके विना चला हो या चल रहा हो" (पृष्ठ ५५)। अपनी माताके नियमित रूपसे मन्दिर जानेका दृष्टान्त देते हुए उन्होने कहा, "उनकी श्रद्धा शायद मेरी श्रद्धासे बहुत अधिक गहरी थी, यद्यपि मै मन्दिर नही जाता" (पृष्ठ ५६)। एक अन्य लेखमे अपनी बात स्पष्ट करते हुए उन्होने लिखा कि मन्दिर, मसजिदें और गिरजे "वैसे ही तो है जैसा हमारी श्रद्धाने उन्हे बनाया है। ये किसी प्रकार अदृश्यतक पहुँच पानेकी मनुष्यकी पिपासाके परिणाम है।" उन्होने कहा कि मन्दिरमे उपासना करना "श्रद्धाका एक सुन्दर क्रियागत रूप . . है" और यद्यपि उनमे सुधारका अवकाश है, तथापि वे "कायम तो मानवके अस्तित्व-पर्यन्त" रहेगे। उन्होने अपने व्यक्तिगत अनुभवका प्रमाण देते हुए लिखा: "हो सकता है,

इसका कारण मेरा बचपनका संस्कार हो, सम्भव है, इसकी वजह तुलसीदास द्वारा मेरे मनमे रामके प्रति उत्पन्न किया गया तीव्राकर्षण ही हो। लेकिन जो प्रबल तथ्य है वह तो है ही। और ये पक्तियाँ लिखते हुए भी मेरे मनमे बचपनकी वह स्मृति ताजा हो आई है जब मै अपने पैतृक घरके निकट स्थित राम-मन्दिरमे जाया करता था। तब मेरा राम वही निवास करता था। उसने मुझे अनेक तरहके भय और पापोसे बचाया। . . . जो बात मुझपर लागू होती थी और होती है वही करोडो हिन्दुओपर भी लागू होती है" (पृष्ठ ११२)।

शब्दोके प्रयोगके सम्बन्धमे गाधीजी यदा-कदा जो स्वतन्त्रता लेते थे उसका औचित्य सिद्ध करते हुए उन्होने कहा . "सत्यकी खोजमे विचार करना पड़ता है। सकुचित अर्थसे सन्तोष नही होता। ध्यान करने से उसी शब्दके उसी अर्थमे ही सन्तोष का बीज देखनेमे आता है। . . गोसाई तुलसीदास कहते है, "राम ही ओम् है, राम ही वेद है। सब वही है, और कुछ नही।" पौराणिक कथाओ और परम्परागत प्रतीकोकी अनिवार्य अनेकार्थतापर जोर देते हुए उन्होने तुलसीदासकी ही इस उक्तिका प्रमाण दिया: "मेरा राम दशरथनन्दन है सही, लेकिन वह उससे भी बहुत अधिक है। वही सच्चिदानन्द पूर्ण परब्रह्म है।" गाधीजी मानते थे कि "इस कथनमे कोई विरोध नही, विचार-विस्तार, अर्थ-विस्तार है" (पृष्ठ ३७८)। इस प्रकार गाधीजी ने सनातन धर्मके निगूढ रहस्यवादी का, पूर्णमे पूर्णसे पूर्णकी ओर, सत्मे सत्यसे सत्यकी ओर चेतनाके विकासका, रूपको और अन्योक्तियोंकी अविस्मृत भाषामे सुरक्षित पीढियोको जोडनेवाली स्वाभाविक धार्मिकताका स्वागत किया और उन्हे एक पवित्र थातीकी तरह सँजोकर रखी जानेवाली वस्तु माना।

सामान्य हिन्दुओकी तरह गाधीजी भी उपवासको प्रायश्चित्तका एक रूप और स्वजनोके दोषोको दूर करने के लिए प्रयोग किया जानेवाला एक प्रभावकारी साधन मानते थे। गाधीजी के ही शब्दोमे, "हिन्दू धर्म-ग्रन्थ उपवासके दृष्टान्तोसे भरे पडे है, और आज भी हजारो हिन्दू छोटे-छोटे कारण उपस्थित होनेपर भी उपवास करते है। यह ऐसी चीज है जो कमसे-कम नुकसान पहुँचाती है। . . . अच्छाईके नामपर कभी-कभी बुराई भी की जाती है, इसीलिए अच्छा काम करना छोड़ा तो नही जा सकता" (पृष्ठ ४४३)।

इस तरह हिन्दू धर्मके मूलभूत मूल्यो और दृष्टिकोणोको, नामो और रूपोकी उपासनामे उसकी काल-सापेक्ष्य श्रद्धाको तथा नैतिक वृत्तिके विकासमे पौराणिक उपाख्यानो और मानवीय स्नेहकी प्रभावकारिताको स्वीकार करते हुए, गाधीजी ने यह दावा किया कि वे सनातनियोसे भिन्न नही है (पृष्ठ ४५६), और इसलिए "ईसाई धर्म, या . . . खुद अपने धर्मके अतिरिक्त किसी भी धर्मके बारेमे कोई फतवा देना" (पृष्ठ २५९) उन्होने अनधिकार चेष्टा मानी, लेकिन अपने सहधर्मियोकी रीति-परम्पराओ और आचरणके दोषोकी आलोचना करने मे उन्होने तनिक भी झिझक नही दिखाई। इस प्रकार, जहाँ उन्होने ब्राह्मणत्वके आदर्शकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की वहाँ नि.सकोच यह भी कहा कि "सब ब्राह्मणोमे . . . सच्चा ब्राह्मणत्व नही रहा"

(पृष्ठ २०४)। उनके विचारसे "ब्राह्मणत्वके यानी हिन्दू धर्मके फिरसे जीवित होनेकी अचूक कसौटी अस्पृश्यताकी बुराईका जड-मूलसे मिटना" था (पृष्ठ २०५), क्योकि अस्पृश्यता एक भारी झूठ था, घोर अन्याय था। ऐसा भी तो सम्भव था कि गाधीजी के समस्त प्रयत्नोके बाद भी अस्पृश्यता न मिटे। उनका कहना था कि यदि अस्पृश्यताको न मिटना है और इसलिए "हिन्दू धर्मका नाश होना ही है तो कौन क्या कर सकेगा? . . जैसी भवितव्यता होगी वैसी ही मति-गति सवर्ण हिन्दुओको सूझेगी। होनहार होकर रहेगी" (पृष्ठ ५२३)। गाधीजी हिन्दू धर्मके भविष्यके विषयमें ऐसे आशकामय उद्‌गार व्यक्त करे, यह स्वाभाविक न होते हुए भी उनकी आत्माकी आकुलताका द्योतक था। विशेष रूपसे गुजरातियोको सम्बोधित करके लिखे एक लेखमे उन्होने कहा "अस्पृश्यता बनी रहे और मुझे जीना पडे, यह तो जहरके प्यालेके समान है।" उसी लेखमे आगे एक और उपवासकी सम्भावनाका सकेत देते हुए उन्होने लिखा "या तो मुझे निरुपाय होकर मृत्यु-शय्यापर लेट जाना चाहिए या फिर मुझमे जितनी शक्ति हो उतनी शक्ति अस्पृश्यता-रूपी रावणका वध करने मे लगानी चाहिए" (पृष्ठ ७२)। हिन्दू धर्मके शुद्धीकरणके इस अत्यन्त कठिन और आवश्यक कार्यमे उन्होने विश्वसे सहानुभूति देनेका निवेदन किया, क्योकि वह एक प्रकारसे "सारे मानव-परिवारकी शुद्धि" था (पृष्ठ ४४२)।

गाधीजी ने एक अधीर कार्यकर्त्ताकी इस बातसे तो सहमति प्रकट की कि "अस्पृश्यताको मिटाने के लिए कडे कदम उठाने की आवश्यकता है," लेकिन साथ ही यह भी कहा कि "ये कदम तो हमे अपने ही विरुद्ध उठाने है" और सनातनियोका हृदय-परिवर्तन कार्यकर्त्ताओकी प्रार्थना, उपवास, कष्ट-सहन तथा आत्म-शुद्धिसे ही सम्पादित किया जा सकता है (पृष्ठ ४४६)। हरिजन-सेवामे लगे कार्यकर्त्ताओंको जिन कठिनाइयोका सामना करना पड़ रहा था उनकी गुरुताको स्वीकार करते हुए गाधीजी ने उनसे स्वय अपनेमे और अपने कार्यकी महत्तामें श्रद्धा रखनेको कहा। उनके विचारसे इस कार्यके लिए आदर्श कार्यकर्त्ता वह था जो "हरिजनो और सनातनियो दोनोको सन्तुष्ट" रखे और जिसमे "अत्यन्त ऊँचा चरित्र, अपार विनयशीलता और असीम उदारता" हो, और साथ ही जिसमे ऐसी श्रद्धा हो कि "सत्य ही जीवन है और ज्यो ही यह किसी मानवमे अपना घर कर लेता है त्यो ही अपना विस्तार स्वय कर लेता है" (पृष्ठ ५३)। उनका कहना था कि ऐसी श्रद्धासे कार्यकर्त्तामे जो "प्रचण्ड शक्ति पैदा" होगी वह उसे हर परिस्थितिमे हताश होनेसे बचायेगी (पृष्ठ ४५४)।

अस्पृश्यताकी बुराईके विरुद्ध जनमतको सचेत करने के लिए चार मासतक व्यापक और गहन प्रचार-कार्य करने के बाद गाधीजी ने सब कार्यकर्त्ताओसे हरिजनोकी आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक प्रगतिके निमित्त रचनात्मक कार्यक्रमपर अधिक ध्यान देनेको कहा। उन्होने समझाया कि सबसे अधिक प्रभावकारी प्रचार रचनात्मक कार्यमे निहित है, क्योकि "सवर्ण हिन्दू स्वयसेवको द्वारा किये गये मूक, प्रभावकारी और गरिमामय कार्य" तथा इसके फलस्वरूप समाजमे हरिजनोके दरजेमे आया सुधार सनातनियोके "हृदयोको प्रभावित किये विना नही रहेगे" (पृष्ठ २८७)। ऐसे

रचनात्मक कार्यके संयोजन और संगठनके लिए घनश्यामदास बिडलाकी अध्यक्षतामें हरिजन सेवक सघ नामकी एक संस्था स्थापित की गई थी, जिसकी शाखाएँ सभी प्रान्तोमे थी। गांधीजी संघके कर्मठ और समर्पित मन्त्री अमृत विट्ठल ठक्करसे बराबर पत्र-व्यवहार करते रहे और उन्हें यह सुझाव देते रहे कि संघका काम शक्ति और साधनके किसी प्रकारके अपव्ययके बिना सुचारु रूपसे कैसे चलाया जा सकता है। उन्होने संघकी नियमावली तैयार करनेमे भी बडी रुचि ली और महादेव देसाई द्वारा तैयार किये गये उसके मसविदेमे काफी परिवर्तन किये (पृष्ठ १७-२२ और ९७-९८)। रचनात्मक प्रवृत्तियोमे गांधीजी समर्पित शिक्षको द्वारा हरिजनोके बीच शैक्षणिक कार्यको विशेष महत्त्व देते थे और उन्होने 'हरिजन' मे एक लेख लिखकर यह भी समझाया कि इन शिक्षकोसे उनकी क्या अपेक्षाएँ थी। उन्होने यह स्वीकार किया कि उनकी कसौटी यों तो बहुत कडी थी, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि "स्वेच्छा-पूर्वक काम करनेवाले के लिए यह . . . उतनी कठिन नही है।" उसी लेखमें उन्होने चम्पारनमे (देखिए खण्ड १३) "पूरी सफलताके साथ" इस क्षेत्रमे किये गये अपने प्रयोगोंका भी किंचित् विस्तारसे वर्णन किया (पृष्ठ २०६)।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवधिमे साबरमती-स्थित सत्याग्रह आश्रमकी समस्याओको लेकर भी गांधीजी काफी चिन्तित रहे। गांधीजी के अनुसार वह आश्रम "विभिन्न मनोवृत्तियोवाले स्त्री-पुरुषों और प्रच्छन्न प्रलोभनोंके बीच सत्यकी साधनाका एक अभिनव प्रयोग था" (पृष्ठ ३३६) और उसकी दिनचर्या "श्रम ही प्रार्थना है" के सिद्धान्तपर आधारित थी। गांधीजी जानते थे कि बहुत-से आश्रमवासी उस दिनचर्याका पालन "यंत्रवत् . . . अन्धानुकरण" के भावसे कर रहे थे, किन्तु इसपर उन्हे "कोई शिकायत नही" थी, क्योकि उन्हें आशा थी कि "जो लोग उसका यंत्र-वत् पालन कर रहे है, वे भी इस भावनाको और इसकी खूबसूरतीको किसी दिन पहचानेगे" (पृष्ठ ९)। किन्तु सत्यके पालनमे किसी प्रकारकी चूकसे उन्हे गहरी चोट पहुँचती थी। एक युवक और युवतीसे हुई ऐसी ही चूकको लेकर, जिसका कारण गाधीजी ने "सत्यको छिपाना" माना, वे इतने परेशान हो उठे कि उन्हे अपनी ही "आध्यात्मिक गरीबी" की अनुभूति होने लगी। नारणदास गाधीको लिखे एक पत्रमे उन्होने स्वीकार किया कि "मेरे अनजानेमे अवश्य ही मेरे भीतर कही असत्य, हिंसा और विकार छिपे हुए है", क्योकि "जो व्यक्ति सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यका पालन करता है उसके निकट असत्य छिपा नही रह सकता" (पृष्ठ १७७)। यद्यपि अस्पृश्यता-निवारण-कार्यमे लीन रहकर गाधीजी अपने अन्य सारे दु:ख भूल जाते थे, किन्तु वे इस घटनापर जब भी सोचते तो उनका "घाव ताजा हो जाता" था और उन्हे याद आ जाता था कि "अभी वह मिटा नही है" (पृष्ठ २१८)। मीराबहनको उन्होने लिखा: "अनासक्तिकी भाषा मै जानता हूँ, लेकिन . . . उसपर अमल नही कर रहा हूँ।" किन्तु उन्हे विश्वास था कि उनके हृदयमे जो तूफान मचा हुआ था वह शीघ्र ही शान्त हो जायेगा, क्योकि उनका जीवन सत्यको समर्पित था और उनकी यह श्रद्धा अडिग थी कि "आश्रम धूलमे मिल जाये और मेरी सभी उपास्य मूर्तियाँ खण्ड-खण्ड हो जाये तो भी सत्य तो कायम रहेगा ही" (पृष्ठ १९३)।

आश्रमके कार्यकर्त्ताओके स्वभावगत मतभेदोंको लेकर उठनेवाले विवादोको सुलझाना गाधीजी के लिए अपेक्षाकृत आसान रहा। ऐसे कार्यकर्त्ताओको लिखे उनके अनेक पत्रोसे प्रकट होता है कि व्यक्तियोके रूपमे उन लोगोके प्रति वे अपने क्या-क्या दायित्व मानते थे। प्रसगानुसार जहाँ उन्होने इन लोगोकी रचनात्मक आलोचना की वही उनके प्रति स्नेह-सम्मानका भी प्रदर्शन किया, किन्तु किसी भी स्थितिमे अपनी सत्यनिष्ठाको आँच नही आने दी। उन्होने एक पत्रमे प्रेमाबहन कटकको आश्वस्त किया: "मै तुझे सख्त उलाहना इसलिए देता हूँ कि मै तुझे अपनी पुत्री मानता हूँ और तुझे पूर्ण देखना चाहता हूँ" (पृष्ठ ४१३)। नरहरि परीखसे उन्होने यह अनुरोध किया कि आश्रमके लिए "तुम पराये बनकर नही रह सकते।" दूसरी ओर उन्होने नारणदास गाधीको लिखा कि "तुम्हारा धर्म तुम्हारे लिए [नरहरि द्वारा] प्रयुक्त भाषाकी ओर न देखना है। लिखनेवाले का हेतु दुष्ट न हो और उसके सुझाव विचार करने योग्य हो तो हमे उनपर विचार करना चाहिए। यह . . हंसकी रीति है। 'जड-चेतन गुन-दोषमय बिस्व कीन्ह करतार, सत-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि-बिकार" (पृष्ठ ३८१)। गाधीजी को विभिन्न स्वभाव और योग्यतावाले कार्यकर्त्ताओकी जो पूर्ण निष्ठा प्राप्त थी उसका रहस्य उनके प्रति गाधीजी का यही नीर-क्षीर-विवेकी दृष्टिकोण था और अपने इसी गुणके कारण वे प्रत्येक कार्यकर्त्तासे उसकी सामर्थ्यके अनुसार श्रेष्ठसे-श्रेष्ठ कार्य करवा पाते थे।

आश्रमके दोषोके लिए अपना दायित्व उन्होने बराबर स्वीकार किया, क्योकि "मुझमे, उनका मार्ग-दर्शन करनेवाले मे, कितने अधिक दोष, कितना असत्य भरा था।" किन्तु वे निराश कभी नही हुए। इसका कारण क्या था? गाधीजी के ही शब्दोमे, "हम उस बुनियादी सत्यको जानते है जिसे हमे पाना है . . .। हम तो जाने-अनजाने उस परम परिणामकी ओर अग्रसर होते हुए असख्य तुच्छ साधनोमे से ही हैं। हममें से प्रत्येकको सापेक्ष सत्यका जैसा बोध है उसके अनुसार यदि हम सब ईमानदारी और दृढताके साथ उसका आचरण करें तो किसी दिन हम सम्पूर्ण सत्यको भी प्राप्त कर लेगे" (पृष्ठ ३९८)। क्या निजी और क्या सार्वजनिक जीवन, क्या धर्म और क्या राजनीति, गाधीजी प्रत्येक क्षेत्रमे सत्ययुगवादीके बजाय सत्ययुगकारी थे। सिद्धान्तोमे जो-कुछ श्रेष्ठतम है उसे भविष्यमे अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न होनेपर प्रयोगमे लानेकी सम्भावनाके भरोसे बैठकर उपस्थित वर्तमानको यथासम्भव सँवारनेसे आँख चुराना गाधीजी को कतई मंजूर नही था।

अनुवादमे सत्यको उतारने तथा सम्पादकीय टिप्पणियोको युग-सापेक्ष बनानेके सम्बन्धमे उन्होने वियोगी हरिको जो परामर्श दिया वह सभी पत्रकारोके लिए अत्यन्त मूल्यवान मार्गदर्शन हो सकता है: "हमारा अनुवाद शुद्ध, सरल और मर्यादित होनेसे नया-सा ही लगेगा। . . सब लेख प्रस्तुत और साप्रत मुसीबतोको हल करने की दृष्टिसे लिखे हुए होने चाहिए" (पृष्ठ ४)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित सस्थाओ, व्यक्तियो, पुस्तकोके प्रकाशको तथा पत्र-पत्रिकाओके आभारी है:

सस्थाएँ: सावरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और सग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रथालय, अहमदाबाद; गाधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली, स्वराज्य आश्रम, बारडोली, महाराष्ट्र सरकारका गृह-विभाग, बम्बई, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली; नगरपालिका सग्रहालय, इलाहाबाद और वुडब्रुक कॉलेज, बर्मिंघम।

व्यक्ति. श्री आनन्द टी० हिंगोरानी, इलाहावाद, श्री आर० के० प्रभु, बम्वई, कु० एफ० मेरी वार, श्री क० मा० मुशी, बम्वई, श्रीमती गंगाबहन वैद्य, बोचासण; श्री घ० दा० बिड़ला, कलकत्ता; श्रीमती चन्द्रकान्त फू० शाह, नई दिल्ली; श्री छगनलाल जोशी, अहमदाबाद; श्रीमती जेसी हॉयलैंड; श्री दत्तात्रेय वा० कालेलकर, नई दिल्ली, श्री नारणदास गाधी, राजकोट, श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्री परशुराम मेहरोत्रा, दिल्ली, श्री पी० एन० शंकरनारायण अय्यर, मद्रास, श्री पुरुषोत्तम डी० सरैया, वम्वई; श्रीमती प्रेमलीला ठाकरसी, पूना, श्रीमती प्रेमाबहन कंटक, सासवड, श्री भगवानजी पु० पण्ड्या, सेवाग्राम, वर्धा, श्री भाऊ पानसे, वर्धा, श्रीमती मंगलाबहन वी० देसाई, अहमदावाद, श्री महेश पी० पट्टणी, भावनगर, श्रीमती मीराबहन, गॉडेन, आस्ट्रिया, श्री रवीन्द्र आर० पटेल, अहमदाबाद, श्री रामनारायण एन० पाठक, भावनगर; श्रीमती लक्ष्मीबहन ना० खरे, अहमदाबाद; सुश्री वसुमती पण्डित, सूरत; श्री वालजी गो० देसाई, पूना, श्री शामल आर० रावल, अहमदावाद, श्रीमती शारदावहन गो० चोखावाला, अहमदाबाद, श्रीपाद दा० सातवलेकर, पारडी, श्री हमीद गु० कुरैशी, अहमदाबाद और श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर।

पुस्तके: 'इन द शैडो ऑफ द महात्मा', 'पाँचवे पुत्रको वापूके आशीर्वाद'; 'बापुना पत्रो-४. मणिबहेन पटेलने', 'बापुना पत्रो-६ ग० स्व० गंगाबहेनने', 'बापुना पत्रो-९: श्री नारणदास गाधीने', 'बापूकी छायामे मेरे जीवनके सोलह वर्ष'; 'बापू—मैंने क्या देखा, क्या समझा'; 'महादेवभाईनी डायरी' तथा 'हरिजन सेवक सघका सविधान'।

पत्र-पत्रिकाएँ 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हरिजनसेवक', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओके लिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इडियन कौसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना एव प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र है। प्रलेखोकी फोटो-नकल तैयार करने मे मदद देनेके लिए हम सूचना एव प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके भी आभारी है।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमे गाधीजी के स्वाक्षरोमे मिली है उसे अविकल रूपमे दिया गया है। किन्तु दूसरोके द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमे हिज्जोकी स्पष्ट भूले सुधार दी गई है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय भाषाको यथासम्भव मूलके निकट रखने का प्रयत्न किया गया है। जो अनुवाद हमे प्राप्त हो सके है, हमने उनका उपयोग मूलसे मिलाने और संशोधन करने के बाद किया है। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखने की नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोके उच्चारणके बारेमे सशय था, उनको वैसे ही लिखा गया है जैसा कि गाधीजी ने अपने गुजराती लेखोमे लिखा है।

मूल सामग्रीके वीच चौकोर कोष्ठकोमे दिये गये अंश सम्पादकीय है। गाधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमे छापा गया है, लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोडकर साधारण टाइपमे छापा गया है। भापणोकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गाधीजी के कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोडे गहरी स्याहीमे छापे गये है। भाषणो और भेटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमे जो गांधीजी के नही है, कही-कहीं कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दाये कोनेमे ऊपर दी गई है। जहाँ वह उपलब्ध नही है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोमे दी गई है और आवश्यकता होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हे आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमे रखा गया है। शीर्षकके अन्तमे साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी निश्चित आधार पर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये है।

साधन-सूत्रोमे 'एस० एन०' सकेत साबरमती सग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गाधी स्मारक निधि और सग्रहालय, नई दिल्लीमे उपलब्ध कागज-पत्रोका, 'एम० एम० यू०' गाधी स्मारक संग्रहालयकी मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोका, 'एस० जी०' गाधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमे उपलब्ध सेवाग्राम-सग्रहकी फोटो-नकलोका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गाधी वाड्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाधी) द्वारा सगृहीत पत्रोका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमि देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये है। अन्तमे साधन-सूत्रोकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई है।

विषय-सूची

१. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

६ मार्च, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा पत्र मिला। कापीके पन्ने फाड़कर उन्हे काममे लानेमे हिंसा है। क्या तुम इस बातको समझते हो? फिर ऐसा मत करना।

मन्त्री आदि अयोग्य सिद्ध हो या सदस्य उन्हे परेशान करे, ये दोनो बातें हमारी उन्नतिमे बाधक हैं। तुम आज जो करते हो वही कल करोगे। तुम यह तो समझते हो न कि जिसे तुम आज नही सीख लेते उसे भविष्यमे नही सीख सकोगे। जिस प्रकार बबूलके पेड़मे आम नही फलते उसी प्रकार यदि तुम फिलहाल संगठित या अनुशासनमे नही रह सकते तो ऐसा नही हो सकता कि तुम दस वर्ष बाद एकाएक बदल जाओगे। अतः तुम्हे अपने संघको भली-भाँति चलाना सीख लेना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

यरवडा मन्दिर[1]
६ मार्च, १९३३

चि० प्रेमा,

यह पत्र मैंने ठीक पाँच बजे (मौनवार) हाथमे लिया है। आश्रमके पत्रोमे तेरा पत्र मै अन्तमे पढ़ता हूँ।

तेरी पूनियोसे मै ७५ अकसे आगे नही जा सका। ७५ अंकका सूत बहुत कच्चा माना जायेगा। पूनियोका जो वजन तूने दिया है उसीके आधार पर सूतका अक निकाला है। सूक्ष्म वजन यहाँके काँटेपर नही निकलता। मेरा हाथ यदि अच्छी तरह काम दे तो मै मानता हूँ कि मै १०० अंकतक जरूर पहुँच सकता हूँ।

सुशीलाके बारेमें तू जो लिख रही है वह मेरे लिए स्वप्नवत् है। उसके प्रति जरा भी उपेक्षा दिखानेका मुझे भानतक नही है। उसीने मुझपर यह छाप डाली है

१. आशय यरवडा सदर जेलसे है, जहाँ गांधीजी ४ जनवरी, १९३२ से ८ मई, १९३३ तक कैद रहे थे। अतः अगले शीर्षकोंमें इस स्थानका नाम नहीं दिया गया है।

कि उसे न तो कुछ पूछना बाकी है और न कहना ही। इसलिए मैंने उससे अधिक पूछताछ नही की। यह तू उसे बता देना। मैं क्या जानूँ कि वह तेरी ही तरह लाड या खुशामद चाहनेवाली है। तेरी सहेली तेरे जैसी ही होनी चाहिए यह मुझे जानना चाहिए था। यही तू कहना चाहती है न? परन्तु सुशीला कदाचित् यह बात स्वीकार न करे। क्या मेरे लिए एक ही प्रेमा काफी नही है? और भी प्रेमा है तो सही, परन्तु उनमें थोडा-थोडा अन्तर है। खैर, ऐसी गलती फिर न हो इसका ध्यान रखूँगा।

विजयाकी उम्र कितनी है? उसका बरताव कैसा है?

लक्ष्मीको अच्छी तरह तैयार करना।

दुर्गाके फोडे अभीतक अच्छे नही हुए, इससे मुझे सन्देह होता है। वह मुझे हमेशा पत्र लिखती थी, लेकिन अब बिलकुल नही लिखती। इससे भी मैं मानता हूँ कि वह कुछ-न-कुछ छिपा रही है। देखना, उसे कोई दूसरा रोग तो नही है?

कच्चे शाक और खजूरसे वजन घटना ही चाहिए। उसके साथ रोज २॥ तोला ताजा कच्चा दूध लेना चाहिए। कच्चे शाकमे टमाटर, मूली, गाजर या लेटिस-जैसी चीज ली जा सकती है। नमक न लिया जाये। दो-तीन नीबू पानी या खजूरके साथ लेकर देखना चाहिए। पानीके साथ नीबू अलग पीना शायद ज्यादा अच्छा होगा। इससे दाँत खट्टे हो जाये तो नीबू न लिया जाये। उसमे सोडा डालकर पिया जा सकता है।

राजाजी वगैराके प्रश्नकी चर्चा मैं नही कर सकता। उसमे सत्यका भग होगा। वह तो कभी अवसर आयेगा तब। मेरे लेखोमे तो प्रत्येक शकाका जवाब है।

आश्रमकी त्रुटियाँ तो तू जितनी बतायेगी उतनी मैं स्वीकार कर लूँगा। परन्तु उसीके साथ तू उपाय भी ढूँढ दे तो वह अधिक उपयोगी होगा। न ढूँढ सके तो भी तेरी आलोचना तो मुझे मिलनी ही चाहिए। मेरी बुद्धि जितनी चलती है उतनी दौडाता हूँ। मैं इतना जानता हूँ कि आश्रमका दोष आश्रमका नही, मेरा दोष है। कुम्हार बेडौल घडा बनाये, इसमे दोष घडेका है या कुम्हारका? यह बात मैं सौ फीसदी मानता हूँ और उससे मेरी मूढताका अन्दाज लग सकता है। परन्तु दोष होनेपर भी मुझे आश्रम पसन्द है। क्योकि यह कहनेको मैं तैयार नही कि मैं स्वय अपने-आपको पसन्द नही करता। जितने अशमे मुझमें 'अहं' नही, उतने अशमे मैं खुदको पसन्द करता हूँ, और जितना 'अह मेरे भीतर है उसे मैं मिटानेका सतत प्रयत्न करता हूँ।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२९) से। सी० डब्ल्यू० ६७६८ से भी, सौजन्य: प्रेमाबहन कटक

३. पत्र : छोटूभाई पटेलको

६ मार्च, १९३३

भाई छोटूभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। सयमित सभोग कम हानिकारक है, पर ब्रह्मचर्य श्रेयस्कर है। आत्मा शरीर नही है। आत्मा शरीरके बिना टिक सकती है जैसे, ईश्वर। अशरीरीके लिए सभोगकी आवश्यकता नही होती, इसलिए अमूर्च्छितके लिए भी संभोगकी कोई आवश्यकता नही हो सकती। यदि मूर्च्छा-रहित होना धर्म है तो मानना होगा कि सभोग अधर्म है और इसलिए हानिकर है।

पृथ्वी अवश्य सजीव है किन्तु मनुष्यकी सरचना पृथ्वीसे भिन्न है। उसका नाश तो है ही।

इस समय समाजकी उन्नति हो रही है या अवनति, यह मै नही कह सकता। यह प्रश्न निरर्थक मालूम होता है।

ईश्वरके आधारके बिना हम अशक्त है, यह सत्य ही है इसलिए स्वीकार करने योग्य है।

जो मनुष्य सचमुच नम्र है वह अभिमानीकी तुलनामे बहुत ऊँचा है। नम्रतामें सत्य है, अभिमानमे असत्य है।

भोजनके बाद दातुन करनेकी जरूरत नही है किन्तु दाँतोंको अंगुलीसे रगड़कर साफ अवश्य करना चाहिए। कुल्ला भी अच्छी तरह करना चाहिए।

अपने विवाहके बाद तुम आश्रमके साथ कैसा सम्बन्ध रखोगे, यह तो भविष्य ही बतायेगा। उसका विचार इस समय करना अप्रासगिक है।

तुम्हारे पत्रसे मै तुम्हे पहचान गया, ऐसा दावा मै नही करूँगा। मै यह किसीके भी विषयमे नही कह सकता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४७६) से।

४. पत्र : विद्या आर० पटेलको

६ मार्च, १९३३

चि० विद्या,

आश्रममें तेरा वजन बढ़ रहा है इससे पता चलता है कि आश्रम तेरी शारीरिक प्रकृतिके अनुकूल है। जिस प्रकार तेरा शरीर पनप रहा है उसी प्रकार अपना हार्दिक और मानसिक बल भी बढ़ाना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६३८) से। सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

५. पत्र : वियोगी हरिको

६ मार्च, १९३३

भाई वियोगी हरि.

आपका पत्र मिला। इस वखतका अंक[1] कुछ ठीक है, अब भी सुधारणाके लिये अवकाश है। इंग्रेजीमें से सब-कुछ लेनेकी कोई आवश्यकता नहि है, न जो लिया जावे उसका पूरा तर्जुमा करनेकी कोई लेखका पूरा अनुवाद आवश्यक लगेगा, किसीका सार, किसीका त्याग, मतलब यह है कि हिंदी पढ़नेवालों को सब-कुछ देने योग्य मिल जाना चाहिये। जो चीज दूसरे अखबारोंमे आवेगी उसका देखना अवश्य होगा। लेकि[न] कई दफा यह अनुवाद दोषयुक्त होगा। हमारा अनुवाद शुद्ध, सरल और मर्यादित होनेसे नया-सा ही लगेगा। वहां अखबारोंका अनुवाद दोषरहित होगा यहां हिंदी 'हरिजन' में लेनेकी आवश्यकता नहि रहेगी। इंग्रेजी लेख आगेसे भेजनेकी योजना बना रहा हूं। सतीश बाबू भी मांगते हैं, और गणेशन। सोचता हूं क्या शक्य है। हिंदी लेखकोंके लेख क्यो न रहे? लेकिन वह निबंध रूपमे नहि या तो कोई सनातनीकी सम्मति हो, अथवा सनातनीकी कोई दलीलका उत्तर अथवा सेवकोंकी कठिनाईका इलाज अथवा हरिजनोकी आपत्तिका वर्णन। अर्थात् सब लेख प्रस्तूत और सांप्रत मुसीबतोको हल करनेकी दृष्टिसे लिखे हुए चाहिये। प्रान्तीय प्रवृत्तिका सारांश तो बहुत ही आवश्यक समजा जाय।

अबसे सब कुछ 'हि० टाइम्स' के ठिकाने ही भेजुगा।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७५) से।

१. हरिजनके हिन्दी संस्करण हरिजन सेवकका।

६. पत्र : के० आर० छापखानेको

७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पिछले महीनेकी २६ तारीखके पत्रके लिए और अब तो इस महीनेकी ३ तारीखके पत्रके लिए भी धन्यवाद। 'हरिजन' के सिलसिलेमे कामका बोझ ज्यादा होनेके कारण आपके पहले पत्रका उत्तर अब तक नही दे पाया था।

लगता है तथ्य तो आपको बहुत अच्छी तरह याद है। मेरे पास ऐसी कोई चीज नही है जिसके आधारपर मैं उनका खण्डन कर सकूं। क्या आपको उस कोषमे चन्दा देनेवालो के नाम याद है?[1] यदि याद हों और आप उनके बयान भेज सके तो मैं जो साक्ष्य एकत्र कर रहा हूँ उसकी शृंखला पूरी हो जायेगी। मैं तो अभी सिर्फ यही चाहता हूँ कि हरिजन सेवा-कार्यके लिए मैं उचित रूपसे जितना पैसा इकट्ठा कर सकूँ, करूँ और इसलिए जब श्रीयुत जोशीने मुझे बताया कि इस पैसेपर भी मेरा नियन्त्रण है तो स्वभावत. मुझे बडी प्रसन्नता हुई। लेकिन, आप इतना तो निश्चित मानिए कि अगर कही मैं आपको इसपर राजी भी कर सकूं कि जिस थैलीके बारेमे ऐसा माना जाता है कि वह मुझे भेट की गई थी, उसके उपयोगके सम्बन्धमे कुछ मेरी बात भी चले, तो वह श्रीयुत जोशीको तो नही दी जायेगी। यदि इस कोषके सम्बन्धमे जाँच-पडताल करनेके पीछे तनिक भी राजनीतिक मन्शा होता तो मैं आपको यह पत्र भी नही लिखता।

आपको यह याद दिलानेके लिए भी धन्यवाद देता हूँ कि जब मैं साँगली गया था[2], उस समय मुझे आपका मेहमान बननेका सम्मान प्राप्त हुआ था और जिसे भेट कहा जा रहा है, वह तो एक औपचारिकता-मात्र थी और वह भेट आपके ही घरमे दी गई थी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० आर० छापखाने
वकील, साँगली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८६) से।

१. तात्पर्य छापखाने तथा आठवले नामक एक अन्य व्यक्तिके खिलाफ लगाये इस आरोपसे है कि जब गांधीजी १९२० में साँगली गये थे, उस समय जो चन्दा उगाहा गया था उसका इन दोनोंने गबन किया था। छापखानेका कहना था कि यह चन्दा देशी राज्योंकी प्रजाके उत्थानके लिए आन्दोलन चलानेके निमित्त कुछ खास-खास लोगोंसे इकट्ठा किया गया था, उस समय गांधीजी से इस विषयपर चर्चा हुई थी और उन्होंने छापखानेसे यह आन्दोलन शुरू करने और सारी रकम अपनी जिम्मेदारी पर अपने पास रखनेको कहा था। देखिए "पत्र: विट्ठल के० जोशीको", ९-३-१९३३ भी।

२. नवम्बर १९२० में।

७. पत्र : बुधीराम ध्यानको

७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पोस्टकार्ड मिला। खद्दरको मैं इसलिए पसन्द करता हूँ कि इसपर मैं जो भी खर्च करता हूँ, वह सब सीधे गरीबोंके हाथोंमें जाता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बुधीराम ध्यान
कक्षा १२–ए
डी० ए० वी० कॉलेज
देहरादून

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८७) से।

८. पत्र : केशवको

७ मार्च, १९३३

प्रिय 'ब्रदर' केशव,

आपका पत्र और आपकी अपीलकी नकल मिली। अभी जब आपके पत्रका उत्तर दे रहा हूँ, काकासाहब[1] मेरे पास बैठे हुए हैं और इसलिए मैंने उनसे कहा है कि वे आपसे मिलकर योजनाको समझें, जिस 'ब्रदर' ने आश्रममें प्रशिक्षण प्राप्त किया है उससे भी मिलें, और तब मुझे सलाह दें। उसके बाद ही मैं अपना मत निश्चित करके आपको बताऊँगा। आप जानते ही हैं कि काकासाहब इसके संस्थापक सदस्योंमें से हैं और इसलिए उन्हें कताई तथा बुनाईके विकासकी शुरूसे ही जानकारी है।

हृदयसे आपका,

'ब्रदर' केशव
क्रिस्टी सेवा संघम्
औंध (पूनाके निकट)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८४) से।

१. द० बा० कालेलकर।

९. पत्र : रामचन्द्रको[1]

७ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

इसी ४ तारीखके आपके विस्तृत पत्रके लिए धन्यवाद। मै तो बिलकुल भूल ही गया था कि आप आश्रममे भी रहे थे। आपका पत्र काफी कामका है। . . नी०[2] शनिवार, अर्थात् इसी ४ तारीखको पूनासे रवाना हुई। आपकी उपस्थिति अब बिलकुल अनावश्यक है। अब तक उसके बारेमें मै आपसे शायद ज्यादा ही जान गया हूँ। आपने जितना बताया है वह तो उससे भी कही बुरी जिन्दगी जीती रही है। वर्षोंतक उसने नितान्त अनैतिक और अमर्यादित जीवन बिताया है और सत्यसे उसका कोई वास्ता ही नही रहा है। यह बात उसने मेरे सामने स्वीकार की है और मुझे यह निश्चित वचन भी दिया है कि ये सब बाते वह दुनियाके सामने खुले आम स्वीकार करेगी। उसने मुझसे यह वादा भी किया है कि अब वह अपने जीवनमे एक नया अध्याय आरम्भ करेगी और हरिजन बस्तियोमें अज्ञातवास करती हुई, लोगोके दान-दाक्षिण्य पर भिखारीका जीवन व्यतीत करेगी और अधिकसे-अधिक गरीबीमे जियेगी। उसमे यह वचन पूरा करनेकी शक्ति है या नही, मै नही जानता। आशा तो यही रखें कि उसमें ऐसी शक्ति होगी। वह मानती तो यही है। अगर उसमे ऐसा जीवन जीनेकी सच्ची इच्छा हो तो आपसे उसकी जो सहायता करते बने, कीजिएगा। आप उसे यह पत्र दिखा सकते है और समय-समयपर मुझे उसके बारेमे बताते भी रहें। मुझसे उसकी जो बातचीत हुई, उससे मुझे लगा कि आपके लिए उसके मनमे बहुत इज्जत है, लेकिन इसका कोई महत्त्व नही है, क्योकि उसके मनमे आपके बारेमें ऐसा खयाल तो तब था जब वह सर्वथा झूठी जिन्दगी जी रही थी। वह यहाँ आई थी तो उस समय भी उसके मनमे सत्यका उदय नही हुआ था, लेकिन अब यदि ऐसा हो गया है तो यह धीरे-धीरे और इस ढगसे हुआ है जिसका किसीको भान नही हुआ। कहनेकी जरूरत नही कि यह और भी अच्छी बात है। ऐसा लगता है कि उसके इर्द-गिर्द रहनेवाले कमसे-कम कुछ नौजवानोने तो ठीक व्यवहार नही किया है। लेकिन जरूरी होने पर इसके बारेमे ज्यादा फिर कभी लिखूंगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८१) से।

१. सर्वेंट्स ऑफ अनटचेबल्स सोसाइटीकी मैसूर शाखाके संयुक्त मंत्री।

२. पूरा नाम नहीं दिया जा रहा है।

१०. पत्र : वी० एन० सोमसुन्दरम्को[1]

७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, तदर्थ धन्यवाद। मैं आपको केवल यही सलाह दे सकता हूँ कि एक ओर तो आपको मन्दिरके न्यासियोंको समझा-बुझाकर अपनी बातपर राजी करना चाहिए और दूसरी ओर आज जो लोग मन्दिरमें जाते हैं उनका मत अपने पक्षमें तैयार करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एन० सोमसुन्दरम्
४३, सालगडो स्ट्रीट
मुतवाल
कोलम्बो

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८५) से।

११. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

७ मार्च, १९३३

भाई परीक्षितलाल[2],

तुम्हारा पत्र मिला। सूरतमें संघकी शाखा खोलनेका विचार फिलहाल छोड़ देना। जो काम हमारे हाथमें है यदि हम उसे भली-भाँति सँभाल सकें तो सूरतके बारेमें बादमें सोचेंगे।

सरूपबहनके[3] बारेमें मैं समझता हूँ।

गुजराती 'हरिजन' यहाँसे निकालनेकी बात चल रही है।[4] पत्रक निकालनेका विचार बुरा नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९९४) से।

१. मुतवाल युवा हिन्दू सभाके अवैतनिक मन्त्री।
२. सर्वेंट्स ऑफ अनटचेबल्स सोसाइटीकी गुजरात शाखाके मन्त्री।
३. विजय लक्ष्मी पण्डित, देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ३४०।
४. हरिजनबन्धुका प्रथम अंक १२ मार्च, १९३३ को प्रकाशित हुआ था।

१२. पत्र : एफ० मेरी बार और डंकन ग्रीनलीजको

८ मार्च, १९३३

चि० मेरी और डंकन,

तुम्हारा पत्र मुझे सचमुच बहुत अच्छा लगता है। कुछ अन्यथा कहनेसे पहले तुम्हें यह बता दूँ कि मैंने नारणदाससे कहा है, और मेरा खयाल है तुम दोनोके सामने भी बिलकुल स्पष्ट कर दिया है, कि तुम्हारे साथ आश्रममें आनेवाले अन्य शिक्षार्थियोंके समान व्यवहार नही किया जाना चाहिए, तुम्हें आश्रममे ऐसे ही कार्य चुनने चाहिए जो तुम्हे पसन्द हों तथा जिन्हें तुम ठीकसे ग्रहण कर सकते हो और तुम्हे अपने समयका उपयोग उसी तरह करना चाहिए जिस तरहसे उसका उपयोग करना तुम्हारी दृष्टिमे सबसे अधिक लाभदायक जान पड़े।

अब मैं अपना विचार बताता हूँ। आश्रम ऐसी जगह है जहाँ हमारा विचार 'श्रम ही प्रार्थना है'के सिद्धान्तको अक्षरशः लागू करना है। थोरो और टॉल्स्टॉयने इस श्रमका अर्थ शारीरिक श्रम करना बताया और टॉल्स्टॉयने बोण्डेरफके इस सूत्रको अपनाया कि शारीरिक श्रमसे अपनी रोटी कमाना समस्त मानव-समाजके लिए ईश्वरीय नियम है। 'गीता'के तीसरे अध्यायमे मैंने इसी भावको देखा। इस व्याख्याकी सचाईको मैंने खुद अपने जीवन और अनेक साथियोके जीवनमें परखकर देखा है और मैंने यह पाया है कि जिस हदतक हम इस व्याख्याको व्यवहारमें नहीं उतार पाये हैं, उसी हदतक हमारा जीवन अपूर्ण और असन्तोषजनक रहा है। इसलिए मेरा कहना यह है कि जबतक आश्रमकी दिनचर्या इसके अन्धानुकरणके समान लगती है, तबतक यही समझा जायेगा कि लोगोने आश्रम-भावनाको हृदयगम नही किया है। मै यह बात बेहिचक स्वीकार करता हूँ कि इस भावनाको बहुत कम लोगोने हृदयंगम किया है। बहुत-से लोग इसका पालन यन्त्रवत् करते है और इसीलिए यह अन्धानुकरण है। इस प्रकार इसके यन्त्रवत् पालन किये जानेपर मुझे कोई शिकायत नही है, क्योकि लोग अपना समय व्यर्थ गँवाये, इससे तो यही अच्छा है और मुझे कुछ ऐसी आशा है कि जो लोग उसका यन्त्रवत् पालन कर रहे हैं, वे भी इस भावनाको और इसकी खूबसूरतीको किसी दिन पहचानेंगे। बहुत-से अंग्रेज स्त्री-पुरुष और विशेषकर मिशनरी लोग, मेरे विचारसे, यह गलती करते है कि वे दूसरोंकी प्रवृत्तियोमे स्वयं कोई प्रत्यक्ष हिस्सा लिये बिना उनका दिशा-दर्शन करते हैं। इसलिए उन प्रवृत्तियोका उनपर कोई असर नहीं होता और वे अकसर अन्धे दिशा-दर्शक बनकर रह जाते हैं। जीवनमें देखे गये ऐसे बहुत सारे उदाहरण इस पत्रको लिखाते हुए मेरे मनमे ताजा हो आये हैं। इसलिए मै यह कहूँगा कि अगर तुम मेरी बातोकी

भावनाको समझते और ठीक मानते हो और उनकी सचाईका अनुभव करते हो तो इस दिनचर्याका पालन तबतक धैर्य, समझदारी और पूरे हृदयसे करते रहो जबतक कि यह तुम्हारे स्वभावमे शामिल न हो जाये, तुम्हारे मनको रुचने न लगे और तुम्हें अपना सन्देश आप ही सुन पडता हुआ-सा प्रतीत न होने लगे। तब और केवल तभी तुम जन-सेवाके लिए कोई गम्भीर चीज लिखनेमें समर्थ होगे। जबतक किसी अच्छे विचारको अनुभवकी कसौटीपर बार-बार कसकर देख न लिया जाये, तब तक वह भी दुनियाको दिये जाने योग्य नही होता। सच्चे श्रमका प्रभाव होता है और वह प्रभाव फैलता भी जाता है। पता नही, मैं अपना आशय तुम्हें समझा पाया हूँ या नही। अगर नही समझा पाया होऊँ तो मेरी सारी दलील बेहिचक अस्वीकार कर दो और जैसा तुम्हे ठीक लगे, वैसा ही करो; क्योकि इसी तरह तुम आश्रमके अपने अनुभवसे अधिकसे-अधिक लाभ उठा सकोगे।

बापूके स्नेहमय आशीर्वाद

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९६) से। सी० डब्ल्यू० ३३२१ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

१३. पत्र: एफ० मेरी बारको

८ मार्च, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम्हारे दो पत्र मिले थे। तुम्हें अपने शरीरपर अनुचित भार नही डालना है। बेशक, आश्रम-जीवन जीनेकी भरसक कोशिश करो, लेकिन अपने स्वास्थ्यको खतरेमे डालकर नही। और आश्रमकी खामियोके बारेमे मुझे सब-कुछ निस्संकोच बताओ। मेरा लम्बा पत्र[1] नारणदासको दिखा दो तो अच्छा हो।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९७) से। सी० डब्ल्यू० ३३२२ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

१. देखिए पिछला शीर्षक।

१४. पत्र : वाई० आर० दातेको

८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

गायकवाड़ जन्म-दिवस स्मारक[1]-ग्रन्थके लिए मेरा सन्देश निम्न प्रकार है:

"इसमे कोई सन्देह नही कि बडौदाके महाविभव महाराजा साहब गायकवाड हरिजनोके प्रति सद्व्यवहार करने और अस्पृश्यताको राज्यकी ओरसे दी गई सारी मान्यताको समाप्त कर देनेके लिए हम सबकी हार्दिक बधाईके पात्र है।"

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत वाई० आर० दाते
मार्फत—श्रीयुत हरिभाऊ फाटक

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४९७) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८०० (४०) (३) भाग-४, पृष्ठ १२७ से भी।

१५. पत्र : पी० आर० लेलेको

८ मार्च, १९३३

प्रिय लेले,[2]

"वे जैसा हमे देखते है"[3] के उत्तरस्वरूप लिखा आपका पत्र मिला। अगर मेरी यह मान्यता सही हो कि ऊपरी खर्च काटकर जो बचा, सब हरिजनोकी ही जेबमे गया, तो आपका यह उत्तर बहुत अच्छा है। आपका पत्र इस सप्ताह प्रकाशित किया जा रहा है, लेकिन अच्छा हो कि अदायगियाँ किस तरह की गईं, इसका तफसीलवार ब्योरा मुझे भेज दे।

१. फोटो-नकलवाले साधन-सूत्रमें यह शब्द नहीं है।
२. हरिजन सेवक संघ, बम्बई बोर्डके कार्यवाहक मन्त्री।
३. हरिजनके ४-३-१९३३ के अंकमें प्रकाशित; देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०१-२।

जहाँतक कैदियोको 'हरिजन' देनेके सम्बन्धमें आपको प्राप्त सरकारी उत्तरका सवाल है, इसपर मुझे 'हरिजन' में नही लिखना चाहिए। आप भी इस मामलेको रफा-दफा हुआ मान सकते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
३१, मुर्जवान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४९६) से।

१६. पत्र : पी० राममूर्तिको[1]

८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। आपने मुझे लिखा, इससे मुझे खुशी हुई। मै चाहता हूँ, आप 'हरिजन'के सारे अक पढ़नेकी कोशिश करे। अगर ऐसा किया, तो मेरा खयाल है कि आपकी अधिकाश शकाओका समाधान हो जायेगा। उसमे आप देखेंगे कि मैंने बेझिझक यह कहा है कि वर्णाश्रम और जाति-प्रथामें जो-कुछ भी बुरा है, वह दूर किया जाना चाहिए। मन्दिर-प्रवेशका अधिकार तो निश्चय ही आपकी आशासे भी पूर्व ही मिलने जा रहा है। यह इस सुधारका केन्द्रबिन्दु है, क्योकि यह करोड़ो लोगोके लिए इस बातका एक स्पष्ट प्रत्यक्ष संकेत होगा कि अस्पृश्यता मिट चुकी है। इसलिए सवर्ण हिन्दुओकी बहुसख्या रास्तेपर आये या न आये, इस सुधारको तो हमें सम्पन्न करना ही है।

मेरे विचारसे, अस्पृश्यता-विरोधी सघ सन्तोषजनक ढगसे काम कर रहे है। अस्पृश्योकी शैक्षणिक प्रगतिके लिए वे बहुत-कुछ कर रहे है और इस दिशामे कितनी प्रगति हुई है, इसका जायजा लेनेके लिए आपको 'हरिजन'के स्तम्भ पढने चाहिए। यह कहकर कि आन्ध्र देशमे मचोंसे भाषण देनेके अलावा और कुछ नही किया जा रहा है, मेरे खयालसे, आप श्रीयुत नागेश्वररावके साथ न्याय नही कर रहे है। लेकिन, मै ज्यादा विस्तृत विवरण मँगानेके लिए लिख रहा हूँ।

यदि आप अस्पृश्यता-विरोधी सघ बनाये और उनको पैसे बिडला समिति[2] दे, तो इसे आप आत्मनिर्भरता तो नही कहेगे न? वास्तवमे आपको जरूरत पैसेकी नही, बल्कि ऐसे लोगोकी है जो शिक्षित हो और अपेक्षाकृत गिरी हुई अवस्थामे

१. एक हरिजन अध्यापक और आन्ध्र विश्वविद्यालय सीनेटके सदस्य तथा पूर्व गोदावरी जिलेके अस्पृश्यता-विरोधी संघके उपाध्यक्ष।

२. अधिकृत नाम 'हरिजन सेवक संघ'।

रहनेवाले हरिजनोको शिक्षित करनेको तैयार हो। इसलिए, हरिजन नौजवानोको मेरी सलाह है कि वे अधिकसे-अधिक गरीब हरिजनोके बीच सुधारका काम पूरे जोरसे करें।

मद्रास सेवा आयोगके परिणामकी मुझे कोई जानकारी नही है। आप शायद इस विषयमे मुझे ठीक जानकारी दे सके, लेकिन हरिजन स्नातको तथा अन्य सुशिक्षित हरिजनोके लिए अपने हरिजन-बन्धुओंकी सेवा करनेकी पूरी गुंजाइश है।

अगर खास तौरसे हरिजनोसे सम्बन्धित कोई तेलुगु अखबार नही है, तो इसका कारण मैं यह मानता हूँ कि, बहुत कम हरिजन पढे-लिखे हैं। इसलिए आप कोई अखबार निकालनेकी बात सोचे, इससे पहले जरूरी है कि सभी शिक्षित हरिजन अशिक्षित हरिजनोंके बीच फैल जाये और उन्हे शिक्षित बनायें। इसलिए, प्रत्येक शिक्षित हरिजनको एक चलता-फिरता अखबार बन जाना चाहिए और माँग होनेपर आप समय-समयपर पर्चे निकालकर इसमें उनकी सहायता कर सकते हैं।

मुझसे सम्पर्क बनाये रखे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० राममूर्ति, बी० ए०
पी० आर० कॉलेजिएट स्कूल
कोकानाडा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४९५) से।

१७. पत्र : नारणदास गांधीको

८ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारे द्वारा भेजी हुई भारी-भरकम डाक मिली।

ऐसा कहा जा सकता है कि अंग्रेजी शिक्षा-सम्बन्धी मेरे विचारोमे थोडा-बहुत परिवर्तन हुआ है। मुझे ऐसा लगता है कि आश्रममे रहनेवाली बडी उम्रकी बहनोको वे जो चाहे वह सीखने देना चाहिए। उन्हे हर कदम पर अपनी कमी अखरती है और उसमे भी हमारी परिस्थितिमे अंग्रेजीकी कमी ज्यादा अखरती है। वे गणितके बिना काम चला सकती है, गुजरातीका अधकचरा ज्ञान उन्हे नही अखरता किन्तु अंग्रेजी न जाननेके कारण वे बेचैन रहती है। अंग्रेजोसे हमारा सम्बन्ध बना ही रहेगा, बना रहना चाहिए, और इस प्रकार अंग्रेजीसे भी सम्बन्ध बना रहेगा। इसलिए उन्हे लगता है कि यदि वे थोड़ी-बहुत अंग्रेजी जानती होगी तो उसका उपयोग तत्काल कर सकेगी। यह तर्क सर्वथा सही हो ऐसा नही है किन्तु उसमे इतनी सचाई अवश्य है जिसकी वजहसे वह आकर्षक जान पड़ने लगता है। अंग्रेजी सीखना कोई पाप तो है नही। मुझे लगता है कि यदि और कुछ सीखनेमे उनका मन नही लगता तो हम क्यो न बहनोको अंग्रेजी सीखनेका अभ्यस्त बना दे। यह वाछनीय है कि बड़ी उम्रकी बहने

किसी भी प्रकार विद्यार्थी-जीवन वितानेमें रुचि लेने लगें और यह भी वांछनीय है कि उनकी ज्ञान-वृद्धि हो। अतः मैं यह जानता हूँ कि जो बड़ी उम्रकी बहनें चाहें उनके अंग्रेजी सीखनेकी हमें यथासाध्य व्यवस्था कर देनी चाहिए। इसमें यदि तुम्हें कोई कमी नजर आये तो उसे मेरे ध्यानमें लाना। मैं पुनः समझानेका प्रयत्न करूँगा।

कीकाभाईके पत्रसे जान पड़ता है कि लक्ष्मीके विवाहपर तुम्हारे पास हरिजनोंका एक बड़ा दल आनेवाला है। मुझे तो यही उचित लगता है कि लक्ष्मीका कन्यादान तो तुम और जमना ही करो। जमनाके मनमें छुआछूतकी भावना तो नहीं है न? जो हरिजन आयें उन्हें अन्य लोगोंने अलग मत बैठाना। उपस्थित लोगोंमें उनकी संख्या काफी ज्यादा होगी इसलिए मेरे सुझावके अनुसार उनके स्वागतके लिए फलादि बाँटनेकी व्यवस्था करना। मैं गोला-किशमिशका सुझाव देता हूँ। यदि सम्भव हुआ तो आगन्तुक मण्डलीके सामने पढ़नेके लिए कुछ शब्द मैं इस पत्रके साथ लिख भेजूँगा।[1] आश्रमकी ओरसे लक्ष्मीको कुछ कपड़े उपहार स्वरूप देने होंगे। इन बारेमें तुम सोच लेना। यदि बा से मिलना सम्भव हो तो मिलकर उसकी सलाह लेना। वह अपनी कोई नयी या नयी-जैसी साड़ी दे तो अच्छा होगा। यदि बा के पास अब भी कोई गहना पड़ा हो तो वह भी दे दे। सुपरिन्टेंडेंटसे कह देना कि तुम विशेषरूपसे इसी कारण बा से मिलना चाहते हो। यदि वे अनुमति दें तो ठीक है, न दें तो उनकी इच्छा। लक्ष्मीको भेंट देनेके बारेमें अन्य बहनोंसे भी सलाह-मशविरा करना। ऐसी व्यवस्था करना जिससे किसी मामलेमें हमारी तरफसे कोई कमी न रह जाये। इस सम्बन्धमें यदि और कुछ लिखने लायक होगा तो तुम्हें लिखूँगा। यदि तुम्हें मेरा कोई सुझाव अनुचित जान पड़े तो उसे छोड़ देना।

मैंने परचुरे शास्त्रीको पत्र लिख दिया है। तुम्हारे तारपर ही सब-कुछ निर्भर करेगा।

केलॉगकी पुस्तक मिल गई है। गंगाबहन और शारदा यहाँ पहुँच गई हैं। मुझसे मिली नहीं हैं। गंगाबहन नहीं मिल सकतीं। शारदा शनिवारको यहाँ होगी तो मुझसे मिलेगी।

लक्ष्मीकी छोटी बहनको अनसूयाबहनके साथ रखकर तुमने अच्छा किया। देखता हूँ कि दूदाभाई[2] रह गये। दानीबहन[3] अवश्य आये। तुमने खर्च देनेकी बात स्वीकार करके सर्वथा उचित ही किया है।

आनन्दी फिलहाल तो खतरेसे सर्वथा मुक्त है। मैं उसे प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा काम देता रहूँगा। वह दूध और फलोंपर रह रही है। अभी तो उसे यहीं रहना चाहिए। तुम लक्ष्मीदाससे उसके उपचारके बारेमें जानकारी ले लेना। वह अन्य लोगोंके लिए भी उपयोगी है। किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह सभीको अवश्य अनुकूल आयेगा। हाँ, यह ठीक है कि इससे किसीको नुकसान नहीं पहुँचेगा।

१. देखिए अगला शीर्षक।

२ और ३. लक्ष्मीके माता-पिता। यह परिवार १९१५में आश्रममें आया था; देखिए खण्ड १३, पृष्ठ १२९।

जबतक तुम्हारी खुराकमे दूध या दही शामिल है तबतक मै निर्भय हूँ। यह मै अवश्य चाहता हूँ कि तुम उसमे से भुने हुए बिना छिलकेके चने निकाल दो। तुम जो मानसिक भार उठाए हुए हो उसमे चनोसे विघ्न पड़ता है। मानसिक उत्तरदायित्व उठानेवाले के लिए दूध और फल ही उत्तम खाद्य है। यदि तुम कच्ची पातगोभी खाते हो तो वह कोमल होनी चाहिए। किन्तु यदि उबली हुई खाते हो तो मुझे कुछ नही कहना। यदि तुम कच्चा दूध पिओ तो अच्छा होगा।

जमनाको सूर्यस्नान लेना चाहिए, तेलसे मालिश करानी चाहिए, विधिवत् प्राणायाम करना चाहिए और खुराकमे दूध, पपीता, किशमिश और चाहे तो कुछ सागसब्जी लेनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि यदि वह ये सब चीजे लेगी तो अच्छी हो जायेगी।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३२८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१८. सन्देश : लक्ष्मी और मारुतिके विवाहपर

८ मार्च, १९३३

चि० मारुति[1] और चि० लक्ष्मीके विवाहके अवसरपर न तो मै आश्रममें हूँ और न बा है, इस वातका मुझे थोडा दु:ख तो है किन्तु मै यह मानता हूँ कि यह मोह है। धर्म जहाँ रखे वही रहनेमे सुख मानना चाहिए। उस हालतमे अन्य किसी स्थितिकी कामना करनेकी गुजाइश नही रह जाती अतः दु:खका प्रसंग ही नही उठता।

इसके अतिरिक्त जहाँ बहुत-से बुजुर्ग और मित्रगण, भाई और बहने आशीर्वाद देनेके लिए एकत्र हो रहे है वहाँ मेरी या बा की उपस्थितिकी आवश्यकता ही नही होनी चाहिए।

लक्ष्मीकी उत्कट इच्छा थी कि मेरी और बा की उपस्थितिमे ही उसका विवाह होना चाहिए। और चि० मारुति भी यही चाहता था। उनकी इच्छा तो मै समझ सकता था। किन्तु हम सबको ऐसा लगनेके कारण कि लक्ष्मीका विवाह तुरन्त होना चाहिए, मैने वर-कन्याको तुरन्त यह विवाह कर लेनेका सुझाव दिया और उन्होने उसे मान लिया। लक्ष्मीका पालन-पोषण बचपनसे ही आश्रममे हुआ है। किन्तु हम उसे इतना ज्ञान नही दे सके जितना कि मैं और आश्रमके लोग देना चाहते थे। इसलिए हममे से किसीको भी यह उचित नही लगा कि एक सयानी लड़कीको सगाईके बाद बहुत दिनों तक कुँआरा रखा जाये। चि० लक्ष्मीका विवाह हो रहा है किन्तु इसका यह मतलब नही कि उसका शिक्षा-क्रम बन्द हो जायेगा। चि० मारुतिको

१. मारुति दक्षिण भारतीय अनाथ बालक था और उसका पालन-पोषण वेलाबहन तथा लक्ष्मीदास आसरने किया था।

मैं बहुत योग्य नवयुवक मानता हूँ। वह संयमी है। उसका पालन-पोषण भाई लक्ष्मीदास और वेलाबहनकी देख-रेखमे हुआ है। उसे अपने उत्तरदायित्वका भान है। इतना ही नही कि वह लक्ष्मीका पति होगा; वह उसका मित्र और शिक्षक भी होगा। इसमें कोई सन्देह नही कि यदि इस सम्बन्धका शुभ परिणाम निकलेगा तो उससे हरिजनो और हिन्दू धर्मको बहुत लाभ पहुँचेगा। इस दृष्टिसे देखनेपर इस सम्बन्धको बहुत महत्त्वपूर्ण माना जायेगा और इस कारण उनका उत्तरदायित्व भी उसी अनुपातमे बढ़ जाता है।

चि० मारुति और चि० लक्ष्मीकी सगाई हुए कई वर्ष हो चुके है। आश्रमवासियोके सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि लक्ष्मीका हाथ किसे सौंपा जाये। हमें लगा कि जिस ढंगसे लक्ष्मीको पाला-पोसा गया है उसे ध्यानमे रखते हुए यदि उसे आश्रम-जैसी शिक्षा पाया हुआ पति मिले तो वह सुखी हो सकेगी। आश्रम वर्णाश्रम धर्मको मानता है और उसके पालनका यथाशक्ति प्रयत्न करता है। मेरे लिए सभी आश्रमवासियोंकी ओरसे कहना कठिन है किन्तु मैं अपने बारेमे तो कह ही चुका हूँ कि वर्तमान स्थितिमे हम सब हिन्दू एक ही वर्णके हो सकते है और है। यदि हम वर्णाश्रम धर्मका उद्धार करना चाहें तो हमे नये सिरेसे श्रीगणेश करना होगा। मेरा दृष्टिकोण ऐसा होनेके कारण मुझे लक्ष्मीके योग्य पति खोजना था। इस कार्यमें वेला-बहनने मदद की और चि० मारुतिका नाम सुझाया। लक्ष्मीदासको भी यह विचार पसन्द आया। मैंने उक्त नाम लक्ष्मीके सामने रखा और उसने भी इसे स्वीकार कर लिया। इस सम्बन्धमे उसके पिताकी भी सम्मति मिल गई और सगाई हो गई। मेरी दृष्टिमे ये सब धार्मिक कदम थे। मैं विवाहको भी संयम-धर्मकी एक बाड़के रूपमे मानता हूँ और हम सबको यह कामना करनी चाहिए कि वर-वधू भी इसको इसी अर्थमे ले।

इस विवाहका वर्तमान आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नही है। इस तरहके मिश्रित माने जानेवाले विवाह किसी तरह भी अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका अग नही है। इस विवाहमे आश्रमके अनेक आदर्शोंमें विश्वास रखनेवालोकी पद्धतिको स्वीकृति दी गई है। मुझे आशा है कि यह विवाह अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके समय और उसमें मुख्य रूपसे भाग लेनेवाले की प्रेरणासे हो रहा है। इस बातका कोई गलत अर्थ नही निकालेगा। मैं ऐसे विवाह-सम्बन्धको किसीके लिए अनुकरणीय नही मानता। विवाहको मैं माता-पिता और उनकी सन्तानकी खुशीकी बात मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि इसके लिए हिन्दू धर्ममें पर्याप्त प्रमाण है। किन्तु इस मामलेका अस्पृश्यता-निवारणसे कोई सम्बन्ध नही है। यह हिन्दू धर्ममें किये जाने योग्य सुधारोका एक अलग क्षेत्र है।

मोहनदास [के वन्देमातरम्]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३२९ से भी;
सौजन्य: नारणदास गाधी

१९. हरिजन सेवक संघके संविधानका मसविदा

[९ मार्च, १९३३][1]

२५ सितम्बर, १९३२ को बम्बईमें सवर्ण हिन्दू कहे जानेवाले लोगोंके भारत-भरसे आये प्रतिनिधियोंकी एक सभा हुई,[2] जिसकी अध्यक्षता पण्डित मदनमोहन मालवीयने की। सभामें उन लोगोंकी ओरसे निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया गया :

> **यह सम्मेलन संकल्प करता है कि आजसे हिन्दुओंके बीच कोई भी अपने जन्मके कारण अस्पृश्य नहीं माना जायेगा और जो लोग आजतक अस्पृश्य माने जाते रहे हैं उन्हें सार्वजनिक कुओं, सार्वजनिक सड़कों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओंके उपयोगके सम्बन्धमें वही अधिकार होंगे जो अन्य हिन्दुओंको प्राप्त हैं। अवसर मिलते ही इस अधिकारको तुरन्त संवैधानिक मान्यता दे दी जायेगी और अगर स्वराज्यसे पूर्व इसको संवैधानिक मान्यता न मिल पाई तो इसे ऐसी मान्यता देना स्वराज्य संसद्के सबसे पहले कार्योंमें से एक होगा।**
>
> **सम्मेलन इस बातपर भी अपनी सहमति प्रकट करता है कि सभी हिन्दू नेताओंका यह कर्तव्य है कि वे प्रत्येक वैध और शान्तिपूर्ण उपायसे तथाकथित अस्पृश्य वर्गोपर लगी रीतिगत निर्योग्यताओंको, जिनमें मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी शामिल है, जल्द दूर करानेकी कोशिश करे।**

इसके बाद ३० सितम्बरको पण्डित मदनमोहन मालवीयकी अध्यक्षतामें बम्बईमें देशके सभी हिस्सोंके हिन्दू नेताओंकी एक सार्वजनिक सभा हुई। उसमें अन्य प्रस्तावोंके साथ-साथ यह प्रस्ताव भी पास किया गया :

> **हिन्दुओंकी यह सार्वजनिक सभा संकल्प करती है कि अस्पृश्यताके विरुद्ध प्रचारकार्य करनेके लिए एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता-विरोधी संघकी स्थापना की जाये, जिसका प्रधान कार्यालय दिल्लीमें हो और जिसकी शाखाएँ विभिन्न प्रान्तीय केन्द्रोंमें हों। इस कामके लिए निम्नलिखित कार्रवाई तुरन्त की जानी चाहिए :**

१. यह शायद वही मसविदा है जिसका उल्लेख "पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको", १४-३-१९३३ में हुआ है। १४ मार्चसे पहलेका रविवार ९ मार्चको पड़ा था। यह संविधान कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनोंके बाद २ जनवरी, १९३५ को स्वीकार कर लिया गया था। उक्त पत्रमें गांधीजी कहते हैं कि यह मसविदा महादेव देसाईने तैयार किया था। गांधीजी द्वारा संशोधन किये जानेके बाद मूल मसविदेके जो अंश बच रहे उन्हें रेखांकित करके दिया जा रहा है।

२. देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ १४८-४९।

(क) सभी सार्वजनिक कुओं, धर्मशालाओं, सड़कों, स्कूलों, श्मशानों, श्मशान-घाटों आदिको दलित वर्गोंके लिए खुला घोषित किया जाये।

(ख) दलित वर्गोंके लोगोंको सभी सार्वजनिक मन्दिरोंमें जानेकी छूट हो। लेकिन शर्त यह है कि (क) और (ख)की पूर्तिके लिए किसी प्रकारकी जबरदस्ती या बल-प्रयोग नहीं किया जायेगा, केवल शान्तिपूर्वक समझाने-बुझानेके तरीकोंसे ही काम लिया जायेगा।

हिन्दुओंकी यह सभा हिन्दू समुदायसे अपील करती है कि अस्पृश्यताको मिटाने तथा इससे सम्बन्धित अन्य उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए वह यथासम्भव अधिकसे-अधिक राशि एकत्र करे और इस उद्देश्यके लिए वह अध्यक्ष तथा मन्त्रीको आवश्यक कार्रवाई करनेके सभी अधिकार देती है।

उपर्युक्त प्रस्तावोंके अनुसार अखिल भारतीय अस्पृश्यता-विरोधी संघ (ऑल इंडिया एंटी-अनटचेबिलिटी लीग) नामकी एक संस्थाका विधिवत् गठन किया गया, जिसका नाम बादमें बदलकर हरिजन सेवक संघ कर दिया गया। उसने २६ [अक्तूबर, १९३२ को दिल्लीमें] अपने लिये एक संविधान स्वीकार किया।

आगे चलकर एक पूर्णतर संविधान बनाना उचित समझा गया और अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघके केन्द्रीय बोर्डकी . . . दिल्लीमें हुई बैठकमें पहलेवाले संविधानको रद्द करके उसके स्थानपर निम्नलिखित संविधान अन्तिम रूपसे स्वीकृत किया गया।

हरिजन सेवक संघका संविधान

मौजूदा नियमोंके सन्दर्भमें :

१. संस्थाका नाम 'हरिजन सेवक संघ' होगा।

२. संघका उद्देश्य होगा सत्यमय और अहिंसात्मक उपायोंसे हिन्दू समाजमें से अस्पृश्यताको और तथाकथित अस्पृश्य लोग, जिन्हें आजसे हरिजन कहा जायेगा, जीवनके सभी क्षेत्रोंमें अस्पृश्यतासे उत्पन्न जिन बुराइयों और निर्योग्यताओंके शिकार हैं, उन तमाम बुराइयों और निर्योग्यताओंको दूर करना और उन लोगोंको शेष हिन्दू समाजके साथ पूर्ण समानताका दर्जा दिलाना।

३. अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हरिजन सेवक संघ भारत-भरके सवर्ण हिन्दुओंके साथ सम्पर्क करने और उन्हें यह समझानेकी कोशिश करेगा कि हिन्दू समाजमें अस्पृश्यताका जो रूप है, वह शास्त्रों तथा उच्चतम मानवीय भावनाके विरुद्ध है। वह हरिजनोंकी ऐसी सेवा करनेकी भी कोशिश करेगा जिससे उनका, नैतिक सामाजिक एवं भौतिक कल्याण हो।

४. संघके काम-काजकी व्यवस्थाके लिए एक केन्द्रीय बोर्ड होगा, जिसका गठन आगे बताये गये अनुसार किया जायेगा।

५. केन्द्रीय बोर्डमें निम्नलिखित सदस्य और (२) संघके प्रान्तीय बोर्डोंके अध्यक्ष शामिल होंगे और अध्यक्षको अधिकसे-अधिक पाँच अतिरिक्त सदस्य शामिल करनेका अधिकार होगा।

संघटक सदस्य ये हैं :

१. श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला, अध्यक्ष
२. सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, बम्बई
३. सर लालूभाई शामलदास, बम्बई
४. डॉ० बी० आर० अम्बेडकर, बम्बई
५. सेठ अम्बालाल साराभाई, अहमदाबाद
६. डॉ० विधानचन्द्र राय, कलकत्ता
७. लाला लछमनदास, दिल्ली
८. राव बहादुर एम० सी० राजा, मद्रास
९. राव बहादुर श्रीनिवासन्, मद्रास
१०. डॉ० टी० एस० एस० राजन्, त्रिचिनापल्ली
११. श्रीयुत अ० वि० ठक्कर, महामन्त्री
१२. श्री बालू पी० पालवणकर, बम्बई
१३. श्री जे० पी० मंडेलिया, कोषाध्यक्ष, दिल्ली
१४. श्री डी० पी० खेतान, कलकत्ता
१५. श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, लाहौर

६. केन्द्रीय बोर्ड समय-समयपर जीवन-भरके लिये अथवा किसी निश्चित अवधिके लिए अतिरिक्त सदस्य नियुक्त कर सकता है। संघटक तथा अतिरिक्त सदस्योंकी मिली-जुली संख्या पदेन सदस्योंकी संख्यासे कदापि अधिक नहीं होगी।

७ अध्यक्ष, यदि वह पुनः निर्वाचित न हो जाये, तो हर तीन साल बाद अवकाश ग्रहण करेगा और उसका चुनाव मौजूदा बोर्ड करेगा।

८. अध्यक्षको मन्त्री या मन्त्रियों और कोषाध्यक्षको हटाने तथा उनके स्थान पर दूसरोंको नियुक्त करनेका अधिकार होगा, लेकिन शर्त यह रहेगी कि कभी भी तीनसे अधिक मन्त्री या दोसे अधिक कोषाध्यक्ष नहीं रहेंगे।

९. केन्द्रीय बोर्डका अध्यक्ष प्रान्तीय केन्द्रोंमें संघकी जितनी शाखाएँ रखना ठीक समझेगा, उसकी उतनी शाखाएँ वहाँ रहेंगी।

१०. प्रत्येक प्रान्तीय बोर्डके अध्यक्षका चुनाव केन्द्रीय बोर्डका अध्यक्ष करेगा और फिर प्रान्तीय बोर्डके अध्यक्ष अपने बोर्डमें जितने सदस्य रखना ठीक समझेंगे उतने सदस्य चुन लेंगे, लेकिन इन सदस्योंकी संख्या दससे अधिक नहीं होगी।

११. प्रान्तीय बोर्डका अध्यक्ष अपने बोर्डके लिए बोर्डके सदस्योमे से एक कार्यकारी मन्त्री चुनेगा, लेकिन इस चुनाव पर केन्द्रीय बोर्डके अध्यक्षकी सहमति आवश्यक होगी।

१२. प्रत्येक प्रान्तीय बोर्डको हरिजन कार्यके हकमे जितनी समितियाँ या एजेंसियाँ बनाना जरूरी लगे, उतनी समितियाँ या एजेंसियाँ वह बना सकता है।

१३. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय बोर्डो और उनकी समितियोके अध्यक्ष अवैतनिक होगे।

१४ केन्द्रीय बोर्ड, प्रान्तीय बोर्डों और समितियोके पदाधिकारी और एजेंट (१) साथमे दिये जा रहे प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करेगे, (२) छ रुपयेका वार्षिक चन्दा अग्रिम देंगे, जो इच्छानुसार छ-छ महीनेकी दो किस्तोमें भी दिया जा सकता है, बशर्ते किसी अध्यक्षने अपने अधिकार-क्षेत्रके अन्दर उन्हे विशेष छूट न दे दी हो, (३) अपना चुना और बोर्डके आधे सदस्यो द्वारा अनुमोदित हरिजन सेवाका कोई ठोस कार्य करेगे; और (४) उपर्युक्त अधिकारीको प्रति मास अपनी-अपनी डायरी भेजेगे जिसमे उनके द्वारा की गई हरिजन सेवाका उल्लेख होगा।

१५ सघको अचल सम्पत्ति प्राप्त करने और अपने स्वामित्वमे रखनेका अधिकार होगा। ऐसी सम्पत्ति केन्द्रीय बोर्डके अध्यक्ष द्वारा नियुक्त स्थायी न्यासी या न्यासियोके अधिकारमे होगी। न्यासी या न्यासियोको केन्द्रीय बोर्डके प्रस्तावोके अनुसार ही उस सम्पत्तिकी व्यवस्था करनेका अधिकार होगा।

१६. सघके केन्द्रीय बोर्डका कोष सघके नामसे बैंक या बैंकोमे जमा किया जायेगा और खाता अध्यक्ष या उसके द्वारा नामाकित एक या एकाधिक व्यक्ति चलायेंगे।

१७. इसी प्रकार प्रान्तीय बोर्डों और उनकी समितियोके कोष यथासम्भव बैंकोमे ही रखे जायें और खाते सम्बन्धित अध्यक्ष या उनके नामाकित व्यक्ति चलायेंगे।

१८. सालमे कमसे-कम एक बार भारतके किसी भी सुविधाजनक स्थानमें केन्द्रीय बोर्डकी बैठक होगी। इसकी बैठकके लिए कोरम (गणपूर्ति) दस सदस्योका होगा।

१९ केन्द्रीय बोर्डको केन्द्रीय और प्रान्तीय बजट तैयार करने और पास करनेके लिए, सघके कोषके अभिरक्षण, विनियोग और लेखा-परीक्षाके लिए और सघके कार्यका अन्यथा नियमन करनेके लिए उप-नियम बनानेका अधिकार होगा।

२०. केन्द्रीय बोर्ड भारतके उन देशी राज्योमें भी काम कर सकता है जहाँ उसकी प्रवृत्तियोपर प्रतिबन्ध नही है।

२१. केन्द्रीय बोर्ड या प्रान्तीय बोर्डो या समितियोका कोई भी सदस्य या एजेंट, सदस्य या एजेंट रहते हुए किसी भी प्रकारसे सविनय अवज्ञा आन्दोलनमे भाग नही लेगा।

२२. यदि किसी बोर्डका कोई सदस्य या एजेंट बिना किसी उचित कारणके सम्बन्धित बोर्डकी लगातार तीन बैठकोमे गैरहाजिर रहे तो ऐसा माना जायेगा कि उसने अपना पद छोड़ दिया है।

२३. यदि किसी बोर्डका कोई भी सदस्य उपयुक्त अधिकारी द्वारा दिये गये निर्देशोंका पालन न करे, तो उसे केन्द्रीय बोर्ड अथवा प्रान्तीय बोर्डकी मर्जीके मुताबिक उसके पदसे हटाया जा सकता है।

२४. ऐसा कोई भी आदमी, जो सघके उद्देश्यका समर्थन करता है और जो संघको चन्दा देकर तथा दूसरोसे चन्दे उगाहकर संघकी सहायता करेगा तथा अन्य प्रकारसे भी उसके कामको आगे बढायेगा, संघका सहायक सदस्य हो सकता है, और उसे समय-समयपर सघकी कार्यवाहियोंकी सूचना दी जाती रहेगी और उसे केन्द्रीय बोर्ड अथवा अपने प्रान्तके बोर्डकी बैठकोमे शामिल होनेका अधिकार रहेगा तथा वह इनमे आमन्त्रित किया जायेगा, हालाँकि उसे मताधिकार नही रहेगा।

२५. केन्द्रीय बोर्ड, प्रान्तीय बोर्ड तथा समितियाँ देश-भरके हरिजन-सगठनोके साथ सम्पर्क स्थापित करेंगी और उन्हें सलाहकारोकी सूचियाँ देनेको आमन्त्रित करेगी। सलाहकारोंको सघकी प्रवृत्तियोसे अवगत रखा जायेगा और बोर्डो या समितियोकी बैठकोमे शामिल होने और उनकी कार्यवाहियोंमे भाग लेनेको निमन्त्रित किया जायेगा, लेकिन ये सलाहकार बैठकोंमे मताधिकारका प्रयोग नही कर सकेगे।

२६ प्रत्येक बोर्ड या समितिमे अधिकतम सीमाका ध्यान रखते हुए अधिकसे-अधिक जितने सदस्य बनाये जा सकते है उतने होगे, लेकिन उन्हे साथमे दिये जा रहे प्रारूप 'ख' मे दी गई प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करने पडेगे और वे इसकी धारा १४ की उपधाराएँ २, ३ और ४ मे रखी गई शर्तोसे मुक्त होगे।

२७. सघके मामलोके बेहतर प्रबन्धके लिए अध्यक्ष केन्द्रीय बोर्डके सदस्योमे से सात सदस्योकी एक कार्यकारिणी समिति चुनेगा और इन सात सदस्योंमे बहैसियत सभापतिके स्वय अध्यक्ष तथा दो मन्त्री भी शामिल होगे।

२८ कार्यकारिणी समितिकी बैठक हर तीन महीने बाद और जरूरत पडने पर जल्दी भी होगी और उसे वे सारे अधिकार होगे जिनका प्रयोग केन्द्रीय बोर्ड करता है, लेकिन जहाँतक सम्भव होगा केन्द्रीय बोर्ड उसके कार्योकी निगरानी करेगा। सभापति और मन्त्रियोके अतिरिक्त शेष चार सदस्य यदि दोबारा न चुने जाये तो हर साल निवृत्त होते जायेंगे।

२९. लेखरोधित (सुपरसीटेड) सविधानके अधीन आज तक की गई सारी कार्रवाई और हाथमे लिये गये सभी कार्य-व्यापारोकी सम्पुष्टि की जाती है।

३०. उपर्युक्त व्यवस्थाओके अनुरूप, पुराना सविधान रद्द किया जाता है; और केन्द्रीय बोर्डको समय-समय पर इस सविधानमे ऐसा सशोधन करनेका अधिकार होगा जो सघके उद्देश्यसे असगत न हो।

३१ सक्रमणकी अवस्थामे मौजूदा संगठन तबतक काम करते रहेगे जबतक कि इस संविधानके अनुरूप सारे परिवर्तन सम्पन्न नही हो जाते।

३२ यह सविधान . . . . . . से प्रभावी होगा।

परिशिष्ट (क)

मैं (नाम . . . . उम्र . . . . . . धन्धा . . . ., निवासी . . . .) हिन्दू समाजमें आज-जैसी अस्पृश्यता बरती जाती है उसके पूर्ण निवारणमें विश्वास रखता हूँ और 'हरिजन सेवक सघ'के सविधानसे सहमति प्रकट करता हूँ। मैं किसी भी मनुष्यको अपनेसे नीचा नही मानता और १ जनवरी, १९३५ से हर छ: महीनेमें . . . . .की राशि अग्रिम दे दिया करूँगा।

मैं निम्नलिखित ढगसे हरिजनोकी व्यक्तिगत सेवा करनेका भी वचन देता हूँ:

(बताइए कि क्या सेवा करेंगे)

मैं हरिजनोकी जो भी सेवा करूँगा उसका विवरण प्रति मास नियमित रूपसे भेजा करूँगा।

तिथि

स्थान

हस्ताक्षर

परिशिष्ट (ख)

मैं (पूरा नाम, उम्र, पेशा, निवासस्थान) हरिजन सेवक संघके उद्देश्यमे विश्वास रखता हूँ और उसके सविधानसे सहमति व्यक्त करता हूँ।

मैं केन्द्रीय बोर्ड या उसकी शाखाओ द्वारा समय-समय पर दिये गये सभी निर्देशोका पालन करूँगा।

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७३३) से, तथा **कांस्टीट्यूशन ऑफ द हरिजन सेवक संघ** से भी

२०. पत्र : अभ्यंकरको

९ मार्च, १९३३

प्रिय अभ्यंकर,

श्रीयुत छापखानेके साथ हुए मेरे आगेके पत्रव्यवहारकी नकल साथमें है।[1] मेरा सुझाव है कि आप उनसे मिलकर जो तय करना सम्भव हो, तय कर ले। मेरी साँगली-यात्राके दौरान जो सब हुआ, उसके बारेमें वे इतने निश्चित है कि बिना किसी अकाट्य प्रमाणके उनकी बातोका खण्डन करना या यह मानना कि वे झूठी बात कहनेके दोषी है, बहुत कठिन है।

श्रीयुत जोशी मेरा पत्र[2] शायद आपको दिखायेगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५१२) से।

२१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

९ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास,

अंग्रेजी 'हरिजन' अब अपना खर्च खुद निकालने लगा है। बाजारमें बेचने और वार्षिक ग्राहकोके चन्देसे जो रकम आज तक इकट्ठी हुई उसमे से भी कुछ बच रहा है, और केन्द्रीय बोर्ड[3] द्वारा दी गई १,०४४ रुपयेकी रकम वैसी ही मौजूद है। इसलिए इसे अब वापस किया जा सकता है। बताओ, यह रुपया आपके पास कैसे भेजा जाये? आपको महाराष्ट्र बोर्डको भी तो कुछ देना है। रुपया वापस करनेके ढंगके बारेमे इसलिए पूछ रहा हूँ कि मनीआर्डर, हुंडी या चैक द्वारा रुपया भेजनेसे कमीशन लगेगा, और मै वह बचाना चाहता हूँ।

गुजराती 'हरिजन' निकालनेका भी प्रबन्ध हो गया है। पूनासे निकल रहा है। यदि घाटा हुआ तो पहले तीन मासके घाटेका भार बम्बई बोर्डने वहन करनेकी गारटी दे दी है। पर मुझे तो ऐसी आशंका नही है।

हृदयसे आपका,
बापू

१. देखिए "पत्र: के० आर० छापखानेको", ७-३-१९३३।
२. देखिए "पत्र: विठ्ठल के० जोशीको", ९-३-१९३३।
३. हरिजन सेवक संघ।

[पुनश्च :]

काशीसे लिखा हुआ खत मिल गया है। ऑपरेशन मुल्तवी रहता जाता है, यह मुझे अच्छा नही लगता।[1]

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ७९३०) से; सौजन्य घनश्यामदास बिड़ला। इन द शेडो ऑफ द महात्मासे भी, पृष्ठ १०६-७

२२. पत्र : ब्रिटिश भारतीय संघको

९ मार्च, १९३३

संयुक्त अवैतनिक मन्त्रिगण
ब्रिटिश भारतीय संघ
१८, ब्रिटिश इंडियन स्ट्रीट, कलकत्ता

प्रिय मित्रो,

गत महीनेकी २३ तारीखके आपके उस पत्रके लिए धन्यवाद जिसके साथ ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे पूना समझौतेके बारेमें दिया गया ज्ञापन[2] नत्थी है। बंगालका मत जाननेके लिए मैं इस सम्बन्धमें मित्रोंके साथ खानगी पत्र-व्यवहार करता रहा हूँ। मेरा अपना मत तो बिलकुल स्पष्ट है। अस्पृश्यो या दलित वर्गोंके लिए आरक्षित किये जानेवाले स्थानोकी संख्यामें मेरी कोई दिलचस्पी नही थी। एक बार जब आरक्षणका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया, तब मेरी दृष्टि यह हो गई कि उन्हे जितने भी अधिक स्थान दिये जाये, स्वयं उनके लिए और हिन्दू धर्मके लिए, और इसलिए सारे भारतके लिए, हर तरहसे उतना ही अच्छा रहेगा। अगर अस्पृश्य लोग हमारे अपने ही है, तो उनके लिए स्थानोंको आरक्षित करनेमें तनिक भी संकोच न रखनेसे अच्छा और क्या हो सकता है? मेरे विचारसे भेदभावको मिटानेका

१. पुनश्चवाला अंश इन द शेडो ऑफ द महात्मामें ही है और वहाँ उसमें यह भी कहा गया है कि यह अंश हिन्दीमें था। यहाँ उद्धृत अंश उक्त पुस्तकके हिन्दी संस्करण गांधीजी की छत्रछाया में से लिया गया है और सम्भवतः गांधीजी की ही हिन्दीमें है।

२. यह ज्ञापन सर विपिनविहारी घोषकी अध्यक्षतामें नियुक्त एक उप-समितिने तैयार किया था। यह उप-समिति ११ जनवरी, १९३३ को ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन) के कक्षमें हुए सर्वदलीय बंगाली हिन्दू सम्मेलन द्वारा नियुक्त की गई थी। ज्ञापनमें अन्य बातोंके अलावा यह कहा गया था: "इस प्रकार यह स्पष्ट हो जायेगा कि बंगालके सवर्ण हिन्दुओंमें पहलेसे ही यह भावना विद्यमान है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है; और प्रधान मन्त्री द्वारा पूना समझौतेको स्वीकार कर लिया जाना उनकी शिकायतोंको काफी बढ़ा देता है। ऊपर बताये गये तथ्योंके आधारपर, यह निवेदन है कि पूना समझौतेसे प्रधान मन्त्रीके निर्णयमें बताये स्थानापन्न समझौतेकी शर्तें पूरी नहीं हुईं। इसलिए इस बातका पूरा औचित्य मौजूद है कि प्रधान मन्त्री अपनी स्वीकृतिपर दोबारा विचार करें।" (एस० एन० २०३४१)।

सबसे अच्छा तरीका यही होगा। मैं इस विचारसे तनिक भी सहमत नही हूँ कि यरवडा समझौतेमे[1] अलगावके सिद्धान्तको बिलकुल अक्षुण्ण रखा गया है। इसके विपरीत, जहाँतक राजनीतिक पहलूका सम्बन्ध है, सयुक्त निर्वाचनका सिद्धान्त यरवडा समझौतेकी मुख्य विशेषता रही है। अगर स्वय अपनेमे और हरिजनोके प्रति अपने स्नेह-सम्मान भावमे हमारा विश्वास है, तो इसमे कोई बुराई नही। संयुक्त निर्वाचनके लिए उम्मीदवारोका प्रारम्भिक चुनाव हरिजन लोग करे; अगर चारोके-चारो स्थानोके लिए ऐसे ही उम्मीदवार चुने जाएँ जो हिन्दू-विरोधी प्रतिक्रियावादी हो, तो यह मेरे लिए इस बातका निश्चित प्रमाण होगा कि इस कामको करनेके लिए हमे जितना समय मिला उसमे हम उनका स्नेह या सम्मान प्राप्त नही कर पाये है और अगर हमे प्रतिक्रियावादी उम्मीदवारोमें से ही सदस्य चुनने पड़े, तो हमे अपने भाग्यको ही दोष देना चाहिए। मैं आपके इस भयको किसी भी तरह सही नही मानता कि दलित वर्गोके सदस्य हिन्दुओ या राष्ट्रके हितके साथ न्याय नही करेंगे। साथ ही, मुझे ऐसा कोई डर भी नही है कि वे जनताके प्रतिनिधियोकी हैसियतसे अपने उचित कर्तव्योका निर्वाह नही कर पायेंगे। अगर अन्यथा कुछ हुआ, तो उसका मतलब होगा कि हम स्वराज्यके लायक नही है।

इसलिए सब-कुछ विचार करनेपर मुझे ऐसी आशंका है कि इस समझौतेपर पुर्नविचार किये जानेकी बातमे मैं शरीक नही हो सकता, और फिर यह बात तो है ही कि इसमे मैं तो केवल एक सम्बन्धित पक्ष हूँ, और अगर शेष सभी पक्ष ब्रिटिश भारतीय सघ द्वारा सुझाई गई दिशामे इस समझौतेमें परिवर्तन करनेपर सहमत हो या वे ऐसा करना चाहते हों तो फिर एक मेरे मतका तो कोई महत्त्व नही होगा।

मैं आपकी स्थिति किसी भी तरहसे अटपटी नही बनाना चाहता, इसलिए मैंने उसपर कोई सार्वजनिक चर्चा नही चलाई है और न तबतक चलाऊँगा जबतक कि आप ही न चाहे कि मैं चर्चा चलाऊँ। मैंने जिस व्यक्तिको पहले-पहल पत्र लिखा वह, मेरे खयालसे, डॉ० विधान राय ही थे, और उन्होंने मुझे बताया कि वे सभी सम्बन्धित पक्षोसे मिल रहे है और वे मुझे फिर पत्र लिखेंगे। लेकिन तबसे उनका कोई पत्र मुझे नही मिला है। अब मैं आपकी मर्जीपर हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५११) से। सी० डब्ल्यू० ७९३१ से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. समझौतेके पूरे पाठके लिए देखिए खण्ड ५१, परिशिष्ट २।

२३. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

९ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

बगला 'हरिजन' के दो अकोका विषय-परिचय देते हुए आपने जो पत्र भेजा, वह मुझे मिल गया। 'हरिजन' के अगले अकमे प्रकाशित होनेवाली टिप्पणी[1] देखिएगा।

चेचकके बारेमें आपकी बातपर मैंने गौर किया है। लेकिन मैं यह नही कह सकता कि विभिन्न जातियोमे चेचकसे कितने लोग बीमार होते हैं, इससे सम्बन्धित आँकड़े जमा करनेसे कोई लाभ होगा या नही।

आप सनातनियोसे सम्पर्क बनाये हुए हैं, यह जानकर खुशी हुई। यह तो सुविदित है कि जबतक हम मन्दिर-प्रवेशके सवालको छोड नही देते तबतक वे और कोई बात नही सुनेंगे। उनके सामने मेरा यह सुझाव पेश है कि उन्हे खुद अपने सगठन शुरू करके दूसरे काम हाथमें लेने चाहिए। अगर वे यह नही करते, तो उससे यही प्रकट होता है कि सब-कुछ पाखण्ड है।

जहाँतक वर्णाश्रमका सम्बन्ध है, वास्तवमे मेरा यही मतलब है कि अगर वर्णके अनुसार सारे हिन्दू समाजका वर्गीकरण करना ही हो तो केवल एक ही वर्ण सम्भव है, वह है शूद्र। सभीका चौथे वर्णको स्वीकार कर लेना न केवल हिन्दू समाजकी सच्ची अवस्थाका परिचायक होगा, बल्कि वह ऊँच-नीचके भेदोको एकदम मिटा देगा। उसका मतलब यह नही है कि कोई भी ब्रह्म-ज्ञान या कोई अन्य ज्ञान प्राप्त न करे। हाँ, उसका मतलब यह अवश्य है कि सभी अपने श्रमके बलपर जिये और इसलिए किसीको भी अपने निर्वाह-भरके लिए आवश्यक साधनोसे अधिक पानेका अधिकार नहीं है। मेरे विचारसे संक्षेपमें यही वर्ण धर्म है। यह तो सच है कि हिन्दू समाज कभी भी पूर्ण रूपसे इस आदर्श तक नही पहुँच पाया है, लेकिन मेरे विचारसे यह भी उतना ही सच है कि हिन्दू समाज जिस कालमे अपने विशुद्धतम रूपमे था उस कालमे उसने इसे प्राप्त करनेका सचेतन प्रयास किया है और उसे सफलता भी मिली है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०७) से।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ११-३-१९३३।

२४. पत्र : विट्ठल के० जोशीको

९ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, श्रीयुत छापखानेका भी मिला था[1]। उन्होने बिलकुल स्पष्ट उत्तर दिया है, जिसमे श्रीयुत आठवलेके उत्तरकी पुष्टि की है। उनका भी यह सुझाव है कि मामलेकी सफाईके लिए आपको श्रीयुत छापखानेके पास जाना चाहिए था। मेरा सुझाव है कि आप ऐसा ही करे। बाकी पत्र-व्यवहारकी नकले श्रीयुत अभ्यकरको भेजी जा रही है। कहनेकी जरूरत नही कि मामलेको अदालतमे ले जानेका कोई सवाल नही है। मै तो जिनके पास यह राशि पड़ी है, उनसे अनुनय-विनय ही कर सकता हूँ, लेकिन मेरे लिए यह मान लेना कठिन है कि श्रीयुत छापखाने-जैसे व्यक्ति, मेरी साँगली-यात्राके दौरान जो सब हुआ, उसका गलत विवरण देनेके दोषी हो सकते है। श्रीयुत गगाधररावकी स्मरणशक्तिके आधारपर कोई बात नही कही जा सकती। वे विश्वासपूर्वक कोई बात नही कह रहे है और इतने साल पहले घटी घटनाओको याद करना किसीके लिए सम्भव नही है। इसलिए जबतक इसके विरुद्ध कोई अकाट्य प्रमाण नही मिल जाता, श्रीयुत छापखानेकी बातको अवश्य मानना चाहिए और उस हालतमे मै तो उनसे केवल अनुनय-विनय ही कर सकता हूँ कि इसमे से कमसे-कम कुछ पैसेका उपयोग तो वे हरिजन-कार्यके लिए करे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विट्ठल के० जोशी
न्यू पेठ
साँगली

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५१४) से।

१. गांधीजी द्वारा दिये गये उनके इस पत्रके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: के० आर० छापखानेको", ७-३-१९३३।

२५. पत्र : नी० को

९ मार्च, १९३३

प्रिय नी०[1],

आज तुम्हारा पत्र मिलनेकी आशा थी। तुम्हे जो तार मिला था उसकी पीठ पर लिखा तुम्हारा सन्देश मिला था। २५ रुपये लेनेसे तुम्हारा इनकार करना ठीक था। तुम्हारे सन्देशके नीचे लिखी बात मुझे पसन्द नही आई। "तुम्हारा पुत्र" अस्वाभाविक और नाटकीय लगता है। अगर तुम्हे सचमुच सत्यका बोध हो गया है तो तुमको यह महसूस करना चाहिए कि अतीतमें तुमने कितनी भारी गलती की है और तुम्हे सारा आवेश और अस्वाभाविकता छोड देनी चाहिए। तुम मेरी पुत्री तभी हो सकती हो जब तुमने मुझसे जैसी नेक बननेका वादा किया है, वैसी नेक बन जाओ।

मुझे एस०[2] और सर एम० के[3] पत्र मिले थे। इसलिए मै सर एम० को[4] पत्र लिख रहा हूँ। उसमें मै तुम्हारी स्वीकारोक्तियोका सार और तुम्हारा वादा बताये दे रहा हूँ। तुम्हारे दिये नाम तो स्वभावतः उसमे नही दे रहा हूँ और एस०को भी एक ऐसा ही पत्र लिख रहा हूँ। यह ठीक है न? एस०ने अपने पत्रमें यह भी लिखा है कि अगर तुम मेरे मार्ग-दर्शनमें आ जाओ और मै तुम्हारी सेवाओका उपयोग कर सकूँ तो उसे खुशी होगी।

ईश्वर तुमपर कृपा करे और तुम्हे अपना वादा पूरा करनेकी शक्ति दे।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०४) से।

१. एक अमरीकी महिला जो बादमें कुछ समयके लिए साबरमती आश्रममें रही थी; इस पत्र और अगले अन्य सम्बन्धित शीर्षकोंमें उसका नाम नहीं दिया जा रहा है।

२ और ३. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

४. देखिए अगला शीर्षक।

२६. पत्र : एम० को[1]

९ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

नी० के बारेमे आपके पत्रके लिए धन्यवाद। वह कुछ दिन मेरे साथ रही थी और मुझे दु खके साथ कहना पड़ रहा है कि उसका जीवन, जैसा आपने बताया है, वैसा नही रहा। थोडा-थोड़ा करके उसने अपने ही मुँह अपने सारे दोष बताये और उस सबको मिलाकर उसके जीवनकी जो कहानी बनी वह मनको कँपा देनेवाली थी। लगता है, छोटी अवस्थासे ही उसने बहुत ही असयमित और अनैतिक जीवन व्यतीत किया है। वह तो अपनी ओर बढनेवाले लगभग हर आदमीके पजेमे फँसनेको तैयार रहती थी, और हिन्दू धर्म अगीकार करनेके बाद भी उसमे कोई सुधार नही आया। उसपर यूरोप और भारतमे कुल मिलाकर लगभग १०,००० रुपयेका कर्ज है। उसने छद्मनामसे यात्रा की है। उसके पक्षमे मै केवल इतना ही कह सकता हूँ कि अपने स्वैराचारकी कहानी बतानेमे मुझसे कोई दुराव नही किया, यद्यपि जैसा कि मैंने कहा है, वे बाते मुझे उससे जिरह करते हुए थोड़ा-थोड़ा करके ही मालूम हुईं। उसने कहा है कि वह प्रायश्चित्त करेगी और मुझे अपने अतीतसे बिलकुल नाता तोड लेनेका निश्चित वचन दिया है। मैंने उससे कहा है कि मै उसको यो ही केवल विश्वासके आधार पर स्वीकार नही कर सकता, लेकिन अगर उसने अपना वचन पूरा किया तो उसका बचाव और मार्ग-दर्शन करनेमे मै नही हिचकूँगा। मै नही जानता कि अपने ऊपर नियन्त्रण रखने और अपना वचन पूरा करनेकी कितनी क्षमता अब भी उसमे शेष रह गई है।

उसकी स्वदोष-स्वीकृतिका यह विवरण देकर मै कोई विश्वास-भंग नही कर रहा हूँ। क्योकि बहुत-कुछ इसी तरहकी एक स्वीकारोक्ति वह बगलोर पहुँचते ही प्रकाशित करानेवाली थी। वह आवास भी छोड़ देनेवाली थी और अपने लड़केके साथ केवल क्षमाशील ससारके दान-दाक्षिण्यपर निर्भर रहते हुए भिखारिनका जीवन व्यतीत करनेवाली थी और हरिजन-बस्तियोके किसी कोनेमे यथासम्भव सादीसे-सादी जिन्दगी बितानेवाली थी तथा शिक्षिकाको छुट्टी देकर अपने नन्हेसे लड़केको भी अपने प्रायश्चित्तमय जीवनमे सहभागी बननेका सौभाग्य देनेवाली थी।

उसके जीवनसे सम्बन्धित कुछ और भी बाते है, कुछ विवरण है, लेकिन उनके बारेमे मुझे किसीको बताना नही चाहिए और जहाँतक मै समझता हूँ, वह खुद भी उनकी जानकारी किसीको नही देगी।

१. नाम नहीं दिया जा रहा है।

उसकी स्वीकारोक्ति सुनकर मैं उदास हो गया हूँ। मेरे सामने अन्य बहुत-से लड़के-लड़कियोंने भी स्वीकारोक्तियाँ की है, किन्तु नी० के जैसे मामलेसे सावका पड़नेकी बदकिस्मती मुझे कभी नही मिली। लेकिन, उसके बारेमे कोई फतवा देनेका मुझे हक नही है। फतवा देना तो ईश्वरके हाथमें है। मुझे तो खुद ही दुनियाकी दयाकी जरूरत है, इसलिए उसपर भी मुझे दया ही आती है और मैं अपनी क्षमता-भर उसकी मदद करना चाहता हूँ। जब उसने मुझे अपना यह निर्णय बताते हुए पत्र लिखा कि अगर वर्षके आरम्भमें उपवास शुरू करूँगा तो मेरे साथ वह भी उपवास करेगी, उसी समय मैंने उसके प्रति आकर्षण अनुभव किया था। मैंने उसे इसके खिलाफ चेतावनी दी थी; और उसके बाद हमारा पत्र-व्यवहार लम्बा खिंच चला। मैंने यह आशा की थी कि वह हरिजन-सेवकोंकी सेनाकी एक शानदार सदस्या होगी और उसके पत्रोंसे यही आशा बँधती थी।

मेरे प्रति आपकी व्यक्तिगत शुभेच्छाओं और कृपापूर्ण विचारोंके लिए आपको धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५०२) से।

२७. पत्र : रामचन्द्रको

९ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

साथमें एक पत्र भेज रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप इसे पढ़कर नी०को दे दें।

यह अनुरोध भी है कि इंजिनियरिंग कालेजवाले रामस्वामीका पूरा नाम और पता भेज दें। मुझे मालूम हुआ है कि भंगीका काम करनेमें वह उसका प्रमुख साथी रहा है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०३) से।

२८. पत्र : आर० राममूर्तिको

९ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके १० फरवरीके उस पत्रके लिए धन्यवाद जिसमे आपने मुझे 'शान्ति-पर्व'के उद्धरणोका स्मरण दिलाया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० राममूर्ति
मार्फत—श्रीयुत रामचन्द्रराव
१, रावण अय्यर स्ट्रीट
पी० टी०, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०८) से।

२९. पत्र : पंचानन तर्करत्नको

९ मार्च, १९३३

प्रिय पण्डितजी,

आपका विना तिथिका पत्र पाकर मुझे आश्चर्य हुआ।

जहाँतक आपके सुपुत्रके आनेकी वात है, वे मेरे पास कोई शास्त्रार्थ करनेवाले शास्त्रीकी हैसियतसे नही, वल्कि ऐसे व्यक्तिकी तरह आनेवाले थे जो चाहता है कि वह मेरे प्रश्नोके उत्तर देकर मेरी शकाएँ मिटाये और इसलिए वह १० दिनोतक या जरूरत हो तो इससे भी लम्वी अवधि तक रोज-रोज मुझसे मिले, और जिस प्रकार आप'मुझ पर विना कोई शर्त थोपे आये थे', आपके प्रतिनिधिकी हैसियतसे वे भी उसी प्रकार आनेवाले थे।

अव आप लिखते है कि वे आपका वादा पूरा करने मेरे पास एक शास्त्रार्थी की हैसियतसे आ रहे हैं; इस पर मुझे आश्चर्य है।

१. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१९ और खण्ड ५३, पृष्ठ ३३६-७।

दूसरे इस चर्चाके प्रारम्भसे ही, आज जैसी अस्पृश्यता वरती जाती है, वही इस चर्चाका विषय थी[1], और जिस दिन चर्चा शुरू हुई उसी दिनका पण्डितो द्वारा लिखा एक पत्र मेरे पास है, जिसमे कहा गया है कि यही मुझे और उन लोगो, दोनोको ग्राह्य सामान्य आधार है। आप, आपके पुत्र या कोई और भी मेरे पास पडा मूल कागज देख सकता है। लेकिन पण्डितोने मुझपर एक अन्य शर्त लगाई थी और उनका खयाल था कि उसे मै कभी भी स्वीकार नही करूँगा, लेकिन जब वे जेलके दरवाजेतक आ गये तव चर्चाका अवसर न खोनेके खयालसे ही मैंने वह आपत्ति छोड़ दी और "इस समय बरती जानेवाली" शब्दोको बरकरार रखकर उनकी शर्त मान ली। फिर भी, वे नही आये। इसको मै अनुचित, अशिष्टतापूर्ण और पण्डितोके लिए अशोभनीय आचरण कहे बिना नही रह सकता। शास्त्रियोके साथ अपने सम्पर्कके दौरान मुझे जितने भी पीडाजनक अनुभवोका दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है उनमे यही सबसे अधिक पीड़ाजनक था।

आपके पत्रके दूसरे हिस्सोके बारेमे मै इससे ज्यादा कुछ नही कहना चाहता कि शास्त्रोकी आपकी व्याख्यासे मै सहमत नही हो सकता। क्योकि सामान्य बुद्धि और सार्वभौमिक नैतिक नियमोसे उसका मेल नही बैठता, और यह बहुत-से उन पण्डितो की शास्त्रोकी व्याख्याके विरुद्ध है जो विद्वत्ता और प्रामाणिकतामे विरोधी विचार-धाराके पण्डितोसे किसी कदर कम नही हैं। तो, शास्त्रोकी व्याख्याके सम्बन्धमें ऐसे विवादके रहते हुए, अगर मै उस व्याख्याको स्वीकार करूँ जो मेरी नैतिक भावनासे मेल खाती है तो आप मुझे दोष न देंगे।

जहाँतक आपके प्रस्तावित उपवासका सम्बन्ध है, अगर आप उसे शुरू करेगे तो मुझे दु.ख होगा, लेकिन हिन्दू धर्मको माननेवालो मे तो ऐसे उपवास आये दिन होते ही रहते हैं और अगर शुद्ध हृदयसे तथा बिना क्रोध या दुर्भावनाके ऐसे उपवास किये जाये तो उसपर खुशी ही होनी चाहिए।

अगर आपने विधानमण्डलमे विचाराधीन दोनो विधेयकोके[2] मजमून और उनके प्रयोग तथा प्रसगका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होता, तो आप उनके बारेमे वैसी बातें नही लिखते जैसी आपने लिखी है। मेरे विचारसे वे किसीके धर्म या अन्तरात्मा के आदेशके आड़े नही आते। एक विधेयक तो दीवानी कानूनके क्षेत्राधिकारसे अस्पृश्यताको हटाता है और यह ऐसी चीज है जिसे करनेकी इच्छा मुझे, आपको और हरएक व्यक्तिको होनी चाहिए, दूसरेमे सबको अपनी-अपनी अन्तरात्माके आदेशके अनुसार चलनेकी सुरक्षा प्रदान की गई है, जबकि आज स्थिति यह है कि बहुत-से

१. १२ जनवरीको सनातनी शास्त्रियोंके साथ; देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ४०।

२. इन दो गैर-सरकारी विधेयकोंका सम्बन्ध अस्पृश्यता-निवारणसे था। एकका प्रवर्तन केन्द्रीय विधान सभामें रग अय्यर और दूसरेका मद्रास विधान परिषद्में डॉ० सुब्बरायण करनेवाले थे। रंग अय्यरका विधेयक पहले २७ फरवरीको और फिर २४ मार्चको पेश किया जानेवाला था। परन्तु दोनों अवसरोंपर, "अस्पृश्यता-विरोधी" आन्दोलनके कट्टर विरोधी सदस्यो या उसके प्रति उदासीन रहनेवाले सदस्यो द्वारा दूसरे गैर-सरकारी विधेयकोपर बेमतलब लम्बी चर्चा चलाये जानेके कारण, यह विधेयक पेश नहीं किया जा सका"। इंडिया इन १९३२-३३।

लोगोको — और इन लोगोकी संख्या बराबर बढ़ती ही जा रही है — अपनी अन्तरात्माको दबाकर रखना पड़ता है।

हृदयसे आपका,

पण्डित पचानन तर्करत्न
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०९-ए) से।

३०. पत्र : मोतीलाल रायको

९ मार्च, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

आपने मुझसे अपना उत्तर सीधे पण्डित पचानन तर्करत्नको भेजनेको कहा है। मगर दुर्भाग्यवश आपने मुझे उनका पता नही दिया और उन्होंने भी अपने पत्रमे अपना पता नही भेजा है। इसलिए मै अपना उत्तर[1] आपको ही भेज रहा हूँ। आप चाहें तो इसे एक लिफाफेमे डालकर वहींसे उनको भेज सकते है। डाकमे डालनेसे पहले, आपको वह पत्र पढ़ लेना चाहिए। अपने पोस्टकार्डमे आपने जो पत्र लिखनेका वादा किया था, उसकी मै धीरजसे प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०९) से।

३१. पत्र : देवप्रसाद सर्वाधिकारीको

९ मार्च, १९३३

प्रिय सर देवप्रसाद,

आपके ३ मार्चके पत्रके लिए धन्यवाद। पत्रसे मालूम हुआ कि त्रिपुरावाले अब्दुल अलीम संस्थामे[2] दाखिल कर लिये गये है और आप डॉक्टरसे उनकी जाँच करवा रहे है तथा ऐसी व्यवस्था कर रहे है जिससे उनपर विशेष ध्यान दिया जा सके। इस सबके लिए आभारी हूँ।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. इस संस्थाका नाम "द रिफ्यूज" था और यह "गृहविहीन, असहाय तथा निरुपाय" लोगोंके घरके रूपमें काम आता था। देवप्रसाद सर्वाधिकारी इसके अध्यक्ष थे।

आशा करनी चाहिए कि उनके प्रति जितनी सहानुभूति दिखाई जा रही है वे उसके योग्य साबित होंगे।

हृदयसे आपका,

सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी
१२५ बहू बाजार स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०६) से।

३२. पत्र : नारणदास गांधीको

९ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ मेरी और डंकन द्वारा पूछे गये प्रश्नोके उत्तर[1] भेज रहा हूँ। उन्हे पढ़कर उनपर विचार करना और उन्हें दे देना। लक्ष्मीके बारेमें मैंने तुम्हे कल पत्र[2] लिखा था और उसके साथ अपना सन्देश भी भेजा था। बहुत करके तो देवदास रविवारको वहाँ पहुँच जायेगा।

मेरा यह विचार दृढ़ होता जा रहा है कि दमेका मूल भी पेट ही है। और यदि चिमनलाल तथा जमना दृढतापूर्वक दूधके प्रयोग पर डटे रहे तो उनका दमा अवश्य चला जायेगा। यह माननेका कोई कारण नही है कि दूध एक पूर्व-निर्धारित मात्रामे तो लेना ही चाहिए। मै समझता हूँ कि चिमनलाल और जमना बहुत ही कम दूध पचा सकेंगे। प्रोटीन, घी और विटामिनोके लिए ही दूध पिया जाता है। यदि प्रोटीन ताकत देता है तो उसकी मात्रा तनिक भी ज्यादा होनेसे वह शक्ति हर भी लेता है। अत. कमजोर व्यक्ति बहुत कम दूध लेकर अपनी शक्ति बढा सकते हैं। कमजोरोकी मुख्य खुराक हरी साग-सब्जी और रसीले फल ही हो सकते हैं। इसलिए अन्य उपचारोको आजमाये बिना यदि वे दोनो रसीले फलो और साग-सब्जीसे अपना पेट भरें और ताकतके लिए स्वल्प परिमाणमें दूध ले तो अवश्य अच्छे हो जायेंगे। यदि वे इस उपचारसे अच्छे न हो पायें और यह मानकर चुप बैठ रहें कि अन्य किसी उपचारसे वे ठीक नही हो सकते तो भी मुझे कोई दु.ख नही होगा। उन्हे कच्चा दूध लेना चाहिए और उसमें फल या हरी सब्जी मिला लेनी चाहिए। ऐसा करनेसे दूध पीनेकी बजाय खाना पड़ेगा। और यदि दूध खाया जायेगा तो वह पचनेमे हलका होगा। उन्हे खाली पेट धीरे-धीरे और उचित अनुपातमें प्राणायाम करनेका अभ्यास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूर्यस्नान लें। इस ऋतुमे कटिस्नान भी अवश्य लाभ पहुँचायेगा।

१. देखिए "पत्र: एफ० मेरी बार और डंकन ग्रीनलीजको", ८-३-१९३३।
२. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", ८-३-१९३३।

मैंने राधाका हिसाब जाँच लिया है। उसे मैं लौटा रहा हूँ। मुझे लगता है कि वर्तमान स्थितिमें और कोई चारा नहीं है। उसका खानेका खर्च ही ३० रुपये है। ५५ रुपये तो किराया, गाड़ी और यात्राका खर्च है। २५ रुपये डॉक्टर, महरी, डाक, घड़ीकी मरम्मत आदि और [खेलनेके लिए] ताशोंका है। इन २५ रुपयोंके बारेमें किसी हदतक आलोचनाकी गुंजाइश हो सकती है किन्तु खुराकके ३० रुपयेके बारेमें आलोचना नहीं की जा सकती; बशर्ते कि यह एक महीनेकी खुराकका खर्च हो। आश्रमके खर्चका पूरा सवाल अर्थात् हमारे रहन-सहनका सवाल अटपटा है। हम ज्यों-ज्यों निरन्तर सतर्कतापूर्वक आश्रममें सादगीको बढ़ावा देंगे, ज्यों-ज्यों अपने आधिभौतिक और आधिदैविक संकटोंमें अधिकाधिक ईश्वरकी सहायता पर ही निर्भर करेंगे त्यों-त्यों हमारा काम चमकेगा। हमें आत्मसंतोष प्राप्त होगा और हम सुरक्षित रहेंगे। और जिन्हें अधिक खर्च करनेकी आदत पड़ गई होगी उनकी आलोचना किये बिना ही उनपर अंकुश लग जायेगा। यहाँ 'हम' से मेरा तात्पर्य उन अधिकांश शोधकों और साधकोंसे है जो आश्रममें रहते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि हमारे लिए एक ऐसा समय आनेवाला है जब कि हमें आश्रमसे सन्यास लेना पड़ेगा। अर्थात् व्याधि-मात्रके लिए जो उपाय सहज ही आश्रममें किये जा सकें उनसे संतुष्ट रहना। अल्मोड़ा-जैसे स्थानकी कल्पना इसके पूरकके रूपमें की थी और अब भी की जाती है। किन्तु लगता है कि शायद उक्त कल्पनाको छोड़ देना हमारे लिए उचित होगा। किन्तु आश्रममें अनुकूल वातावरण तैयार करके ही हम यह सब कर सकते हैं और उक्त वातावरण तैयार करते और उसका प्रसार करते हुए कोई किसीसे होड़ न करे। जिसे ऐसा लगे वह [आश्रमसे] सन्यास लेकर बैठ जाये। अर्थात् वह अपनी व्याधिके उपचार अथवा निजी कार्यसे भी आश्रमके बाहर न जाये। फिल-हाल तो इसकी अभिलाषा ही की जा सकती है। मुझे यह एक अवसर मिल गया इसलिए मैं यह सुझाव तुम्हारे सामने रख रहा हूँ ताकि तुम इसपर फुरसतसे विचार कर सको और इस बारेमें पुरानी मण्डलीसे भी चर्चा कर सको।

सीतलासहायने मुझपर भी प्रहार किया है। किन्तु मैंने इसकी पूरी जवाब-दारी तुमपर डाल दी है। उनकी भी शिकायत है कि मैं अपनी जवाबदारीसे बचना चाहता हूँ। किन्तु उनके इस आरोपको मैं सह लूँगा। पुरुषोत्तम मुझे विस्तारसे लिखे। कनुके बारेमें मुझे डॉक्टरका कथन उचित जान पड़ता है। यदि उसने भलीभाँति यह जान लिया होगा कि मालिश कैसे की जाती है, [शरीरके] उस भागसे वह कोई काम न ले और धीरे-धीरे मालिश होती रहे तो वह अवश्य अच्छा हो जायेगा। किन्तु इसमें समय तो लगेगा ही।

तुम्हारी सहनशीलता आदिकी परीक्षा लेनेके लिए तुम्हें परशुराम अच्छा मिल गया है। किन्तु तुम सक्षम हो इसलिए चिन्ताकी कोई बात नहीं है। जब तुमसे सहन न हो तो उसे तलाक दे देना। मैंने स्वयंको हिन्दू विवाहमें इतना सुधार करने को तैयार कर लिया है। करोड़ों गरीब हिन्दू तो तलाककी प्रथाका पालन करते हैं। इसके बिना उनका जीवन चल ही नहीं सकता। अपनी मर्जीसे ही जो द्विज बन बैठे हैं ऐसे कितने ही लोग स्त्रियोंसे बलपूर्वक द्विजोंके आदर्शका पालन करवाते

है, इसमें मुझे धर्म दिखाई नहीं देता। आध्यात्मिक सम्बन्ध अविच्छेद होने चाहिए। किन्तु जब कानूनके जरिये जबरदस्ती किसी आदर्शका पालन कराया जाता है तो उसमें धर्म नहीं रहता। मैं आश्रमके साथ [आश्रमवासियोंके] विवाहकी चर्चा कर रहा था; लिखते-लिखते स्त्री-पुरुषोंके सामान्य विवाहकी चर्चा कर डाली। जो आश्रम में आता है वह आश्रमसे विवाह करता है, यही कहा जाता है। आश्रम पत्नी है और आगन्तुक पति। किन्तु यदि ऐसी स्थिति आ जाये कि पत्नी बेचारी सहन ही न कर सके तो वह अवश्य तलाक दे सकती है। इस अधिकारका उपयोग जब तुम करना चाहो तब करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८३३३से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

३३. पत्र: के० एस० रामभद्र अय्यरको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पिछले महीनेकी २२ तारीखका पत्र मिला। आपकी पहलको मैं बढ़ावा नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि आपके पत्रोंका मेरे मनपर ठीक असर नहीं पड़ा है। वे मुझे असंतुलित लगते हैं, और जब आपकी लिखी बातोंकी ही मेरे मनपर बुरी छाप पड़ी है तो आपके यहाँ आनेसे कोई बात बननेवाली नहीं है। इसलिए आप यहाँ तककी यात्रापर अपना पैसा बर्बाद करें और फिर यहाँ अपना और मेरा भी समय नष्ट करें, यह बात मुझे पसन्द नहीं। आपको भरोसा दिलाता हूँ कि मेरे पास एक मिनटकी भी फुरसत नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एस० रामभद्र अय्यर
वकील, उच्च न्यायालय
लुज मइलापुर, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३२)से।

३४. पत्र : सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्यको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, तदर्थ धन्यवाद।

आपकी बात से तो मुझे पुराने जमानेके गुलामोके उन मालिकोका स्मरण हो आता है जो अपने ढोरोकी तरह उन्हे भी भोजन और सिरपर साया देनेको उनके प्रति की गई अपनी सेवाओके रूपमें गिनाया करते थे। तब ढोरो और गुलामोमें अन्तर था तो इतना ही कि गुलामोके साथ कई बातोमे अपेक्षतः और बुरा व्यवहार किया जाता था, और उनकी बनिस्बत अच्छा व्यवहार तो किसी भी बातमे नही किया जाता था। और यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि आपने यह जाननेकी भी तकलीफ नही उठाई कि शिक्षित और धर्म-परायण हिन्दुओने हरिजनोके लिए, जिन्हें वे किसी भी तरहसे अपनेसे नीचा नही मानते बल्कि अपना ही बन्धु-बान्धव मानते है, क्या किया है और वे क्या कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य
वेदान्तशास्त्री
ग्राम — आलगी
डाकघर मघाबोली
जिला ढाका

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२१) से।

३५. पत्र : एल० एन० हरदासको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे इस बातका खेद है कि व्यस्त रहनेके कारण मैं अबतक आपके १० फरवरीके पत्रपर ध्यान नही दे पाया। अगर पहले ध्यान दिया भी होता तो आपको कुछ भेज नही पाता, लेकिन अगर आप 'हरिजन'मे प्रकाशित मेरे लेखोमे से कुछ उद्धृत करना चाहे तो खुशीसे कर सकते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० एन० हरदास
मार्फत – 'मराठा'
कामठी (म० प्रा०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३६) से।

३६. पत्र : एम० ए० गोपालस्वामी अय्यंगारको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके २३ फरवरीके पत्रका उत्तर मैं अबतक नही दे पाया। इसके लिए मुझे क्षमा करे।

मेरा खयाल है, आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि अगर अस्पृश्यता-निवारण विधेयक पास हो जाता है तो मन्दिर-प्रवेश विधेयक अनावश्यक ही होगा। इसलिए अगर आप मैसूर विधान-सभामें निवारण विधेयक पास करवा सकते हैं तो, जहाँतक मैसूरका सम्बन्ध है, मन्दिर-प्रवेश विधेयकके पास किये जानेपर जोर देना अनावश्यक होगा। लेकिन, आप इस बातका खयाल रखिएगा कि निवारण विधेयककी व्याख्या सनातनी लोग स्वीकार कर ले। अगर इतना हो जाता है, तो बाकीको जनमतके परिपक्व होनेके भरोसे छोड़ा जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० ए० गोपालस्वामी अय्यगार, वकील
बगलोर सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३५) से।

३७. पत्र : ई० लिंडसेको

१० मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

आपका पत्र पाकर और उस सामाजिक कार्यकर्ताके बारेमे बढ़िया-सा चुटकुला पढ़कर बड़ी खुशी हुई। आपने जो पंक्तियाँ लिख भेजी है, उनपर मैंने अभी-अभी नजर डाली है। क्या आपको मैंने कभी बताया नही कि कविताके बारेमे कोई मत देनेके मामलेमे मै बड़ा मूढ़ हूँ? इसलिए आपकी कविताके सौन्दर्य और सन्देशको ग्रहण करनेके लिए मुझे उसको आधे दर्जन बार पढ़ना पड़ेगा। महादेव कवि है और अगर उसे कोई सुन्दर कविता देखनेको मिलती है तो उसके बारेमे मत स्थिर करनेमे उसे कोई कठिनाई नही होती। इसलिए मै उसकी सहायता लेनेकी कोशिश करूँगा। वह मुझसे चन्द फुटोकी दूरीपर ही अपना काम कर रहा है। लेकिन हम लोग अपने-अपने काममे इस तरह डूबे हुए है कि उसके अलावा बहुत-सी साधारण बातो और सामान्य रुचिकी वस्तुओके सम्बन्धमे बातचीत करनेका हमे समय ही नही मिलता।

हृदयसे आपका,

मदाम ई० लिंडसे
बैलियल कॉलेज
ऑक्सफोर्ड

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५२९) से।

३८. पत्र : माइकेल लिंडसेको

१० मार्च, १९३३

प्रिय माइकेल,

माताजी के पत्रके साथ आपने जो छोटा-सा पुर्जा भेजा, उससे मुझे कितनी खुशी हुई, बता नही सकता। हमे आपका खयाल अक्सर आता रहा है।

आपने 'कन्फ्यूशियस' की जो दो उक्तियाँ भेजी है, वे बहुत सुन्दर और मेरे लिए बड़ी मौकेकी है[1]।

१. कन्फ्यूशियससे जब एक शासकने पूछा कि उसे क्या बनना चाहिए तो उसने उत्तर दिया "लोगोंके पथ-प्रदर्शक बनो और उनकी उन्नतिके लिए कार्य करो।" जब अन्य सलाह देनेके लिए कहा गया तो उसने कहा, "इस कामसे कभी ऊबो मत।"

पिताजी को मेरी याद दिलाइएगा और आप मेरा और महादेवका स्नेह-वन्दन स्वीकार कीजिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत माइकेल लिंडसे

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३१) से।

३९. पत्र : 'मिलाप' के प्रबन्धकको

१० मार्च, १९३३

प्रबन्धक
'मिलाप'
लाहौर

प्रिय मित्र,

आपके तारके उत्तरमें कोई सन्देश भेजना सम्भव न हो सका। इसलिए मुझे जो बीजक (वाऊचर) मिला था, उसे वापस भेज रहा हूँ, ताकि आप पैसा ले सकें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२७) से।

४०. पत्र : उषाकान्त मुखोपाध्यायको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके रोचक पत्रके लिए धन्यवाद। मैं उसे ध्यानपूर्वक पढ़ गया हूँ। आपके पत्रको समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हो रही है। आपने जो नुस्खा बताया है, उस पर तो सारे देशमें अमल हो रहा है। संस्कृत साहित्यका देशी भाषाओंमें अनुवाद हुआ है और अब तो उसतक अशिक्षित जनसाधारणकी भी पहुँच है।

जहाँतक कानूनका सम्बन्ध है, किसी आदमीको, किसी अन्यको अस्पृश्य मानने पर बाध्य करनेका तो कोई सवाल ही नहीं है। इस विधेयकका उद्देश्य एक ऐसी प्रथाको कानूनी सहारेसे वंचित कर देना है जो नैतिकताके किसी भी साधारण नियम के अनुसार उचित नहीं ठहराई जा सकती। इस कानूनका हेतु केवल इतना है

कि सुधारकोंके लिए ऐसी गुंजाइश कर दी जाये जिससे जो लोग उनके सन्देशको सुनना चाहें उनतक वे अपना सन्देश पहुँचा सकें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत उषाकान्त मुखोपाध्याय
१२, मुखर्जीपाड़ा लेन
कालिघाट, कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२६) से।

४१. पत्र : युवा बौद्ध संघके अध्यक्षको

१० मार्च, १९३३

अध्यक्ष
युवा बौद्धसंघ
महाबोधि आश्रम
पेराम्बूर, मद्रास

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। काश, आपकी मदद करना मेरे बसमें होता।[1] मेरे लिए जो-कुछ करना सम्भव था, कुछ वर्ष पूर्व मैंने कर दिया[2]।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३७) से।

१. युवा बौद्ध संघ (यंग मैंस बुद्धिस्ट एसोसिएशन) के अध्यक्षने संघ द्वारा पारित एक प्रस्ताव गांधीजी को अपने पत्रके साथ भेजा था। उसमें बोध गयाको गैरबौद्ध महन्तसे वापस दिलानेमें सहायताकी याचना की गई थी।

२. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५७९-८०।

४२. पत्र : सामनेर संघरत्नको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। तदर्थ धन्यवाद। बोध गया मन्दिरके बारेमें अपने तरीकेसे मैं वह सब करनेकी कोशिश कर चुका हूँ जो करना मेरे लिए सम्भव था[1]। इस समय तो उससे ज्यादा करना सम्भव नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सामनेर सघरत्न
मूलगध कुटी विहार
सारनाथ
बनारस

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२३) से।

४३. पत्र : सतकौड़ीपति रायको

१० मार्च, १९३३

प्रिय सतकौड़ी बाबू,

आपका पत्र और गत जनवरीका कार्यविवरण पाकर खुशी हुई। अगले अकमें छपनेकी दृष्टिसे तो आपका विवरण बहुत देरसे पहुँचा। आप हर चीज इस हिसाबसे भेजे जिससे वह अधिकसे-अधिक बुधवारको पहुँच जाया करे। आप 'हरिजन' के लिए जो-कुछ लिखना चाहते हों, अवश्य भेजे। ताजा और उपयुक्त विचार प्राप्त करके मुझे प्रसन्नता होगी।

अपने विवरणमें आपने कहा है कि कालि मन्दिरके द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिये गये। मैंने तो इससे भिन्न खबर सुनी है — यह कि कालि मन्दिर हरिजनोंके लिए एक तरहसे सब दिन खुला हुआ था और आज भी वह उसी तरह खुला हुआ है। इसलिए इसका पता लगाकर मुझे सूचित करनेकी कृपा करे। मुझे अन्य स्थानोंसे

१. देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ २५१-५२।

भी हरिजनोके लिए मन्दिरोंके द्वार खोले जानेकी खबरें मिली है, लेकिन बादमे उन खबरोकी सचाईमे शंका की गई है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३४) से।

४४. पत्र : लिओनार्ड एन० शीफको

१० मार्च, १९३३

प्रिय लिओनार्ड,

आपका एक और मनोहारी पत्र मिला। आपके पत्र बराबर बहुत ही नपे-तुले होते है। वेरियर अब मलेरियासे बिलकुल मुक्त है और उसका काम निश्चित गतिसे आगे बढ़ता जान पड़ता है। मेरा खयाल है, आप इस सम्बन्धमे सब-कुछ जानते होगे कि उसका इरादा मेरी जिलेटसे विवाह करनेका था और बादमे दोनोने यह तय किया कि वे एक-दूसरेसे विवाह करनेके बजाय उस सेवाका ही वरण करें जिसके लिए उन्होने अपने जीवन उत्सर्ग कर दिये है। यह उनके लिए निश्चय ही एक कड़वा घूंट रहा होगा, लेकिन वे उसे साहसपूर्वक पी गये। शान्तिवाद-सम्बन्धी गोष्ठी के सम्बन्धमे ऑक्सफोर्ड संघके प्रस्तावके फलस्वरूप हालमें जो बाते सामने आई है, उनपर मैं ठीकसे ध्यान नही दे पाया हूँ।[1]

आशा है, आपको 'हरिजन'की अपनी प्रति नियमित रूपसे मिल रही होगी।

हम सबका स्नेहाभिवादन।

हृदयसे आपका,

श्री लिओनार्ड एन० शीफ
९, ग्रेट विलसन स्ट्रीट
लीड्स-११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५२२)से।

१. संघकी एक गोष्ठीमें विश्वविद्यालयने यह निश्चय किया था कि यह सदन फिर कभी देश और राजाके पक्षमें संघर्ष नहीं करेगा।" (एस० एन० २०२३८)।

४५. पत्र : एस० वी० सोनवनेको

१० मार्च, १९३३

प्रिय सोनवने,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी सलाह है कि तुम वर्धामें सेठ जमनालालजी के घर जाजूजी से मिलो और उन्हींसे अपने मामलेकी जाँच करवाकर मेरे पास विवरण भिजवाओ। यह पत्र उन्हे दिखा देना। तुम अपने बारेमें सारा विवरण — अपनी उम्र, अपने परिवारके सदस्योंकी जानकारी और अगर वे कोई और जानकारी माँगें तो वह सब उन्हें दे देना।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत एस० वी० सोनवने
पुलफैल
वर्धा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२०) से।

४६. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मार्गरेट,[2]

तुम्हारे पत्र मुझे नियमित रूपसे मिलते रहते हैं और अब तुम्हारी शिष्याओंकी कापियोंमें से ली गई तुम्हारी टिप्पणियाँ भी मिल गई है। वे पढनेमें बहुत रोचक हैं। लेकिन यह सोचकर मनको परेशानी होती है कि इस सबका अनुवाद और नकल करनेमें तुमने अपना कितना समय लगाया होगा। क्या यह अपनी शिष्याओंके समयमें से चोरी नहीं है? आशा है, मैं तुम्हें जो पत्र भेजता रहा हूँ, वे तुम्हें मिल गये

१. एक हरिजन विद्यार्थी। वह इंटरमीडियट परीक्षामें असफल हो गया था और गरीबीके कारण पढाई आगे जारी रखनेमें असमर्थ था। उसने गांधीजी से खुद सहायता देने या किसीसे दिलवानेका अनुरोध किया था। (एस० एन० २०३४३)।

२. गांधीजी की एक जर्मन अनुयायी, जिसका नाम उन्होंने बादमें अमला रखा था।

होगे। पत्र मैंने ठीक हर हफ्ते तो नही भेजे है, लेकिन काफी हदतक नियमित रूपसे भेजे है। आशा है, अब तुम्हें यह भरोसा हो गया होगा कि तुम जो काम वहाँ कर रही हो वह भी मेरा ही काम है; क्योकि तुम आश्रमके नियमोका पालन कर रही हो और अपना काम शुद्ध सेवा-भावसे कर रही हो, और मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि जबतक तुम्हारी माँ जीवित है, उनके पास रहना तुम्हारा कर्तव्य है।

महादेवको तुम्हारे सारे पत्र मिल गये है। तुम उससे उन सबके उत्तर देनेकी अपेक्षा तो नही करती न? वह महीनेमें केवल एक ही बार लिख सकता है। लेकिन दो महीनेमे जेलसे छूटते ही वह तुम्हारे पत्रोंको निबटा देगा।[1]

हृदयसे तुम्हारा,

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय व पुस्तकालय

४७. पत्र : सोफिया वाडियाको

१० मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

आपके पत्र और कावसजी जहाँगीर हॉलमें इसी २ तारीखको दिये गये आपके भाषणकी टाइपशुदा प्रतिके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

हाँ, मै आपके आनेकी उम्मीद लगाये हुए था और जब भी समय मिले, आप दोनो अवश्य आयें। आपसे मिलकर और अभी आपके रोचक भाषणसे अस्पृश्यता तथा जाति-प्रथाके बारेमें आपके विचार जितना जान पाया हूँ, उससे अधिक परिपूर्ण जानकारी प्राप्त करके मुझे बड़ी खुशी होगी।

हृदयसे आपका,

मदाम सोफिया वाडिया
हिल क्रेस्ट
पेडर रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२४) से।

१. यह अनुच्छेद महादेव देसाईकी लिखावटमें है।

४८. पत्र : नृसिंहप्रसाद के० भट्टको

१० मार्च, १९३३

यदि भावनगरकी हिन्दू जनता भारी बहुमतसे यह प्रस्ताव पारित करे कि यदि शूद्र अथवा अस्पृश्य जैसी कोई जाति हिन्दू धर्ममें नही है तो समझौतेमे उल्लिखित धारा उनके विरुद्ध होनेके बावजूद अन्त्यज माने जानेवालो को दाखिल करनेमें मै कोई धार्मिक आपत्ति नही मानूंगा क्योंकि तब अन्त्यज मानी जानेवाली किसी जातिका अस्तित्व ही नही रह जाता।

प्राय: देखा जाता है कि एक ही संस्थाके विभिन्न विभागोमें अलग-अलग नियम चलते है। प्रतिबन्ध केवल गृह-विभागपर लागू होनेके कारण अध्ययन-अध्यापन मन्दिरमें अन्त्यजोको लेनेमें मुझे कोई धार्मिक आपत्ति दिखाई नही देती जबकि उन्हे प्रवेश न देनेमे धार्मिक शिथिलता नजर आती है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३३) से।

४९. पत्र : नरहरि परीखको

१० मार्च, १९३३

चि० नरहरि,

तुम्हारा ४ तारीखका पत्र आज ही पढ़ पाया हूँ। तुम्हारा प्रश्न अच्छा है। जिसके मनमे ऐसी श्रद्धा जम जाये कि उसका उपाय केवल ब्रह्मचर्य है, और दूसरा कोई नही, वह तो इसी बातकी खोज करेगा कि ब्रह्मचर्यको किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है। ऐसा समझकर कि यह सही चीज है उसे इस विश्वासके साथ अपनी खोज जारी रखनी चाहिए कि किसी दिन लोग उसका बडे पैमानेपर अवश्य उपयोग करेंगे। साथ-साथ उसके मनमे यह निश्चय भी दृढ हो ही जाना चाहिए कि कृत्रिम उपायोमे कदम-कदमपर खतरा है और उनसे अनीति बढती है। किन्तु हमे यह मान लेना चाहिए कि आवश्यक प्रमाणमे ब्रह्मचर्यके व्यापक प्रसारके पहले लोगोको कष्ट उठाने पडेंगे। इसमे मुझे कोई अनिष्ट नही दिखाई पडता। जैसे एक वैसे ही अनेक जैसा करेंगे वैसा पायेंगे। मगर ईश्वर दयालु है। जिसे हम उसके द्वारा दी गई सजा मानते हैं, उसमे भी उसकी दया भरी रहती है। जहाँ सन्तानकी उत्पत्ति

ज्यादा होगी, वहाँ मृत्युका अनुपात भी उसके अनुसार ही होगा। इस प्रकार कुल मिलाकर मनुष्यकी दुनिया दीर्घकालतक चलती रहेगी। यह सच है कि ऐसे जीवन मे बहुत रस नहीं हो सकता और उसमे रस न हो यही अच्छा है। यह ज्ञान भी लोगोंको ब्रह्मचर्यकी तरफ ले जायेगा। क्योकि थोड़े ही अनुभवसे यह देखा जा सकता है कि ब्रह्मचर्यके स्वाभाविक हो जानेमे जितना आनन्द है उतना भोगमे है ही नहीं। जगत्का कारोबार सुव्यवस्थित रूपसे चलता रहे इसके लिए ईश्वरके अन्य विधानों को भी मानना ही पड़ता है न? वह विधान यह है कि किसी भी मनुष्यको उदर-पोषणसे अधिक कुछ भी लेनेका अधिकार नही है। यदि सब लोग इस नियमका पालन करे तो ब्रह्मचर्यका पूरा पालन न होनेपर भी लोगोका भूखो मरना सम्भव नहीं। शारीरिक श्रमका अन्त केवल किसानकी तरह मजदूरी करनेमे ही नही हो जाता। हर किसानको अपने हाथ-पैरो और खासकर हाथोका पूरा उपयोग करना ही चाहिए। जिस देशमें खेतीके साथ ही अन्य गृह-उद्योग नही चलते, वहाँ किसान लगभग पशु बन जाते है। पशुकी सोहबत जितनी जरूरी है उतनी ही जरूरी औजारोकी भी है। और मनुष्यके दस्तकारी सीख लेनेपर यदि मर्यादित रूपसे उसकी सन्तति बढ़ती रहे तो भी सबको पेट-भर रोटी, तन ढँकनेको कपड़े और मकानके रूपमे गरमी-सरदीसे बचने लायक रक्षण मिल जायेगा। आजकल मैं वर्णधर्मके जिस अर्थका विकास कर रहा हूँ, उसे ध्यानमे रखना।

मुझे लगता है कि इतनेमे तुम्हारी सभी शंकाओका उत्तर आ जाता है किन्तु न आया हो तो मुझे फिर लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०५६) से।

५०. पत्र : नारणदास गांधीको

१० मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

मैं इसके साथ नरहरि, मूलचन्द और चम्पाके पत्र भेज रहा हूँ। परचुरे शास्त्रीके बारेमे तुम्हारा तार अभी-अभी मिला है। तुम्हारे तारके लिए ही मैंने परचुरे शास्त्री को रोक रखा था। मैंने उन्हे पत्र लिखा था और उसके उत्तरमें उन्होने जो पत्र लिखा है वह सुन्दर है। उक्त पत्र भी मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। इसे वहाँ सँभाल कर रख लेना। किन्तु मैंने उन्हे कहला भेजा है कि यदि तुम्हारी स्वीकृति आ गई तो उन्हे आश्रम अवश्य जाना चाहिए किन्तु वे अपनी पत्नीसे मिलें और यदि उनकी स्त्री और पुत्र स्वय आश्रममे आने योग्य हों तथा आनेको तैयार हों तो वे सब आश्रममे आ जाये। अब क्या होता है इसकी सूचना मिलनेपर मैं तुम्हे बताऊँगा।

परचुरे शास्त्री भी तुम्हे लिखेंगे। अब जो-कुछ भी निर्णय होगा वह सर्वथा धर्मपर आधारित होगा। अत: हम सब निश्चिन्त रह सकते हैं। आशा है इसके पूर्व लक्ष्मीके बारेमें लिखे पत्र तुम्हे मिल गये होगे। मैंने कल और परसो पत्र लिखे थे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३१ से भी, सौजन्य: नारणदास गांधी

५१. पत्र: छोटूभाई के० मेहताको

१० मार्च, १९३३

चि० नेपोलियन,

बहुत दिन बाद तेरा पत्र मिला। मैं जो लिखूं उसे सरदारका लिखा हुआ ही समझना चाहिए। तू अपनी लिखावट नही सुधारता। अक्षर मोतीके दानोंकी तरह होने चाहिए। वीसापुर हो आया यह अच्छा किया। मुझे समय-समयपर लिखता रहना। वहाँ हरिजन-सेवाका भी कुछ काम करना।

बापूके आशीर्वाद

चि० नेपोलियन,
मार्फत – डॉ० नाथाभाई पटेल

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६९७) से।

५२. पत्र: मूलचन्द अग्रवालको

१० मार्च, १९३३

भाई मूलचन्द,

तुमारे प्रश्नका उत्तर हजमें[1] तो दिया है।

जबान और कलमका काम शारीरिक न माना जाय। यहा हाथ-पावकी मेहनत अभिप्रेत है।

लोग काश्तकारी न करे और भूखो मरे तब दीमाग क्या करेगा? उस वखत तो जो थोड़ी-सी भी खेती करेगा वही अन्नदाता बनेगा। जब घर जलता है तब व्याख्यान क्या करेगा? पानी सीचकर अंगार बुझाना होगा इ०। इसका मतलब यह नहिं है

१. सम्भवतः गांधीजी का मतलब हरिजन सेवकसे रहा होगा, किन्तु हरिजनमें ऐसा कोई उत्तर नहीं है।

कि दीमागी कामका उपयोग ही नहि है। मतलब यह है कि दीमागी काम भी उसीका सिद्ध होगा जो शारीरिक यज्ञकी महीमा जानता है और करता है। दोनो साथ-साथ चलने चाहिये। और महा सिद्धान्त यह है कि आजीविका शरीर श्रमसे पैदा करो और दीमाग केवल सेवाके लिये खर्चा जाय। तब प्रमाण बिलकुल अच्छा हो जायगा। इस हेतुसे आश्रमकी उत्पत्ति समजो। आश्रममे रहनेका लाभ उठाना है तो इस बातको समझो।

बापु

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७०) से।

५३. टिप्पणियाँ

उनसे क्या शिक्षा मिलती है?

सम्पादकने कुछ आँकड़े एकत्र करके इसी अकमे अन्यत्र प्रकाशित किये है। पाठकोको इनका अध्ययन करना चाहिए। ये आँकड़े 'दलित वर्गों' के बारेमें है, जिन्हे मद्रास प्रान्तमे 'पचम' भी कहा जाता है। इनसे उनकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट होकर सामने आती है। उन लोगोके छियासी उप-विभाग है। और सनातनियोका दावा होगा कि वे सब जन्मत. अस्पृश्य है!!! जनगणनामे जब उनका ऐसा वर्गीकरण किया गया, उससे पहले वे क्या थे? यह भी एक दिलचस्प बात है कि अस्पृश्यताकी कसौटी सभी प्रान्तोमे एक-सी नही रही है, और न एक प्रान्तके अलग-अलग हिस्सोंमें ही वह एक रही है; और इसी तरह यह भी कोई जरूरी नही कि जो मद्रासमें अस्पृश्य है वह बम्बई या बगालमे भी अस्पृश्य हो ही। इन आँकड़ोका हम जितना अध्ययन करते है, यह विश्वास उतना ही अधिक दृढ़ होता जाता है कि यह अस्पृश्यता विशुद्ध रूपसे मनुष्यकी ही गढी हुई है। जनगणना अधीक्षक ही इस विषयमें एकमात्र निर्णायक रहे है। पाठक यह भी देखेंगे कि वर्गीकरणके सम्बन्धमे विभिन्न सरकारोंके दृष्टिकोणोमे अन्तर है। अगर अस्पृश्योको ईश्वरने ही अस्पृश्य बनाया है, तो फिर यह सब अन्तर क्यो? वह समय आ रहा है जब सवर्ण हिन्दू अपनेको 'अस्पृश्यो' की श्रेणीमे रखवाना चाहेगे। इसके लक्षण तो क्षितिजपर पहलेसे ही प्रकट होने लगे है। अगर अस्पृश्योको ईश्वरने ही अस्पृश्य बनाया है, तो जिस प्रकार हम बिना किसी प्रयत्नके विभिन्न प्रकारके जीवोका भेद समझ लेते है उसी प्रकार अस्पृश्यो तथा शेष लोगोके बीचके अन्तरको समझनेमे भी हमसे कोई भूल नही होनी चाहिए।

इन उप-विभागोके लिए अगर सवर्ण हिन्दू नही तो और कौन जिम्मेदार है? अगर वे अस्पृश्यताका परित्याग कर दे, तो पूरी सम्भावना है कि अस्पृश्य लोग भी अपने बीचसे उप-अस्पृश्यताको विदा कर देगे।

एक स्नातककी शंका

एक स्नातक पत्र-लेखक यह जानना चाहते है कि मै ऐसा क्यो कहता हूँ कि अस्पृश्यताकी प्रथा समस्त मानव समाज और धर्मोंमे विद्यमान है और यह एक आवश्यक प्रथा है।

जब हम पाखाना-पेशाब वगैरह करते है या हमे गन्दी बीमारियाँ होती है, उस समय हम गन्दे हो जाते है। उस हालतमे जबतक हम फिर साफ-स्वच्छ नही हो जाते तवतक अस्पृश्य ही रहते है। विभिन्न राष्ट्रोमे अलग-अलग सीमातक अस्पृश्यता बरती जाती है और उनके स्वच्छ बननेके तरीके भी अलग-अलग है, लेकिन अस्पृश्यताकी प्रथा, वह चाहे जितनी कम बरती जाती हो, सभी जगह प्रचलित है— यहाँ तक कि तथाकथित असभ्य जातियोके बीच भी। समझदारीके साथ अस्पृश्यता बरती जाये तो वह स्वास्थ्य-सम्बन्धी एक उत्तम नियम है। लेकिन किसीको जन्मत. अस्पृश्य करार देने और पाप-जन्मा कहनेका श्रेय लेना तो जैसे आधुनिक हिन्दू धर्मके लिए ही सुरक्षित रख छोड़ा गया था। जिस धर्ममे दर्पके साथ यह कहा जाता हो कि अहिंसा जीवनमे सबसे बड़ी चीज है उसी धर्ममें प्रतिशोधकी भावनाका विस्तार परलोक तक किया जाये, यह सचमुच बहुत ही दारुण दृश्य है। इसी पागलपन-भरी अस्पृश्यताके खिलाफ अनवरत सघर्ष करनेके लिए मैंने उन सभी हिन्दुओको आमन्त्रित किया है जिन्हे अपने धर्मपर गर्व है और जिन्हे उसकी पवित्रताकी रक्षा करनेकी चिन्ता है।

उन्ही पत्र-लेखक भाईने आगे पूछा है. "क्या आपका वर्ण-धर्म लोगोको समाजमे ऊपर उठनेके अवसरोसे वचित नही करता? क्या हर आदमीको चाहे जो धन्धा करनेकी छूट नही होनी चाहिए?"

वर्ण-धर्मकी मेरी कल्पनामे तो जीवनमें किसी प्रकारकी असमानताके लिए गुजाइश ही नही है। यदि कोई ज्यादा बुद्धिमान है और कोई कम अथवा किसीके पास अधिक भौतिक सम्पत्ति है और किसीके पास कम, तो इसका मतलब सामाजिक दर्जेमें असमानता नही होना चाहिए। मै निश्चय ही आग्रहपूर्वक ऐसा मानता हूँ कि मनुष्य 'समाजमें ऊपर उठनेके उद्देश्यसे' किसी धन्धेको चुननेके लिए नही बना है। वह अपने मानव-बन्धुओकी सेवा करने और पसीना बहाकर अपनी रोटी कमानेके लिए बना है। और चूंकि सबकी बुनियादी आवश्यकताएँ एक ही है, इसलिए सभी प्रकारके श्रमका महत्त्व समान होना चाहिए।

हिन्दू धर्मने इस नियमको ढूँढ निकाला और उसे वर्णका नाम दिया तथा बड़ी ही सफलतापूर्वक न्यूनाधिक सर्वांगपूर्ण ढगसे उसपर आचरण किया। आज तो हम जो-कुछ देख रहे हैं वह हिन्दू धर्मका विकृत रूप ही है।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यह विनाशकी ओर बढती दुनिया केवल उस नियमके पालनसे ही बच सकती है। इसे बुद्धिपूर्वक स्वीकार करनेसे मनुष्य सन्तुष्ट रहता है और उसकी बहुत-सारी शक्ति नैतिक उत्थानके लिए प्रयुक्त होनेको बच जाती है। इसकी अवमानना करनेका मतलब होता है हानिकर असन्तोष, लालच,

बन्धु-विनाशी स्पर्धा तथा नैतिक गतिरोध; और इस सबका परिणाम अन्तमे आध्यात्मिक आत्महत्या ही होता है। इस नियमको जैसा मै समझता हूँ उसके अनुसार यह केवल रोटी-बेटी व्यवहारसे सम्बन्धित प्रतिबन्धोका नियमन करनेवाला एक औपचारिक नियम नही है, और न कभी रहा है।

आध्यात्मिक उन्नति क्या है?

"जब आप आत्माके विषयमे, हरिजनोकी आध्यात्मिक उन्नतिके बारेमे लिखते है तो उससे आपका क्या मतलब होता है? और हरिजनोकी आध्यात्मिक उन्नति रुकनेसे सारे संसारकी आध्यात्मिक उन्नतिमे बाधा क्यो पडती है? और अगर हरिजनोको मन्दिरोमे प्रवेश नही करने दिया जाता, तो उससे उनकी आध्यात्मिक उन्नति क्यो रुकती है?"—ये है वे प्रश्न जो बार-बार लिखनेवाले एक पत्र-लेखकने मुझसे पूछे है। वैसे तो उन्होने और भी बहुत-से प्रश्न पूछे है, लेकिन अभी उनकी चर्चा करनेकी जरूरत नही है।

आत्मा हमारी सत्ताका वह अविनाशी तत्त्व है जो मानव-शरीरको अनुप्राणित करता है और सत-असतका विवेक देता है। आध्यात्मिक उन्नति उसी अविनश्वर तत्त्वके साक्षात्कारमे सहायता देती है। जो चीज मेरे पडोसीकी उन्नतिमे बाधक होगी, वह मेरी उन्नतिमे भी बाधक होगी ही। भारत दुनियाके दूसरे हिस्सोका एक बडा पडोसी है। अगर चार करोड हरिजनोकी आध्यात्मिक उन्नति अवरुद्ध होती है और इसीलिए तेईस करोड हिन्दुओकी आध्यात्मिक उन्नति रुकती है, तो भारतकी भी रुकेगी ही।

जहाँतक मन्दिरोका सम्बन्ध है, अन्यत्र मैने इस सवालपर विचार किया है[1] कि मनुष्यके जीवनमे उनकी कितनी बडी भूमिका है। आत्माका बौद्धिक विश्लेषण एक सीमातक ही सम्भव है। वह बुद्धिसे परे है और इसलिए विश्वासकी दुनियाकी चीज है। इसी प्रकार पूजा-स्थल भी अन्तत विश्वासकी ही चीज है।

बंगला 'हरिजन'

बगला 'हरिजन' के दो अक प्रकाशित हो चुके है। यह एक पत्रिकाके रूपमे प्रकाशित होता है। इसका आवरण बडा आकर्षक है, जिसपर सिरपर कूडेकी टोकरी लिये एक स्त्रीका चित्र है। यह खादी प्रतिष्ठान, कालेज स्क्वेयर, कलकत्तासे प्रकाशित होता है और डाक खर्च सहित इसका वार्षिक चन्दा ४ रुपये है और बिना डाक खर्चके ३ रुपये। प्रथम और द्वितीय अकोमे अग्रेजी खण्डमे प्रकाशित तमाम लेखोके या तो पूरे अनुवाद या सार दिये गये है। इनमे हिन्दू धर्मपर मेरे पहलेके लिखे कुछ लेखोके भी अनुवाद है और सतीश बाबू द्वारा लिखे सम्पादकीय या सम्पादकीय टिप्पणियाँ, जैसे "उपेक्षाका परिणाम", "अस्पृश्यताकी कुछ समस्याओका समाधान", "सनातनी प्रार्थना", "नगरपालिकाकी जिम्मेदारी", "दलित वर्ग और अस्पृश्यता" आदि भी है।

१. देखिए "क्या मन्दिर जरूरी है?", ११-३-१९३३।

पहले हफ्ते इसकी २,००० प्रतियाँ छपी और ये सबकी-सब बिक गईं। दूसरे सप्ताह ३,००० प्रतियाँ छपी। आशा है बंगाली लोग इसको सहायता देनेमे उदारतासे काम लेगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-३-१९३३

५४. एक सच्चा सेवक

रोज-रोज जो नये-नये अनुभव हो रहे है, उनसे सिद्ध होता है कि हरिजनोकी सेवा शायद सब सेवाओसे कठिन है। मेरी जानकारीमें बहुत-सी लड़कियाँ और स्त्रियाँ हैं जो नित्य उन लोगोकी सेवा किया करती है। उनमे से एकने भंगियोकी बस्तीमें जो अनुभव हुआ उसकी शाब्दिक तस्वीर खीची है। जब वह पहले-पहल इस बस्तीमें गई तो बड़ी कठिनाईसे उलटी रोक सकी। मुझे इस बातकी खुशी है कि स्त्रियाँ इस आन्दोलनमे अपना पूरा योगदान दे रही हैं।

भयानक गन्दगीमें रहनेवाले हरिजनोकी सेवा कैसे की जाये? वह चाहते भी नही कि उनकी सेवा की जाये। जो उनके घरोमे जाते है उन्हें वे गालियाँ देते है। कोई-कोई तो अपनी गलियोसे ढेले मारकर काम करनेवालो को भगा देते हैं। परन्तु यदि हमे सेवा करनी है, तो यह सब सहकर भी उनकी सेवा करनी पड़ेगी। यदि हम अपनेको ऊँचा उठाना चाहते है तो हमे उनकी इस वर्तमान अवस्थासे उनका उद्धार भी करना होगा। हम लोगोने दबा-दबाकर उन्हे नीचे गिराया है और इस क्रियामें हम स्वय नीचे गिर गये है। यह ऊँचे दरजेकी सेवा सबके बसकी बात नही है। मेरी समझमे जिन गुणोके बिना एक हरिजन-सेवकका काम नही चल सकता उनको मैं संक्षेपमे बतलाता हूँ :

हरिजनोसे उसे सच्चा स्नेह होना चाहिए, मानो वे उसके अपने कुटुम्बी हों।

उसमे बड़ा धीरज और साहस होना चाहिए — इतना धीरज और साहस कि मौका आनेपर वह शारीरिक चोट और अपमान भी सह सके।

उसका चरित्र सर्वथा शकातीत और अनिन्द्य होना चाहिए।

उसे अपने शरीर-धारणके लिए आवश्यक स्वल्पतम भोजनपर रह जानेको तैयार रहना चाहिए।

मेरे पास जितनी चिट्ठियाँ आती है सबको पढ़ डालना, हरिजनोसे, सनातनियो से और काम करनेवालो से मिलकर बातचीत करना धधकती आगमे से होकर गुजरना है। जो हरिजन अब बोलने लग गये है वे स्वभावत· शंकाशील है और अकसर अपनी अपेक्षाओमें सख्त होते जा रहे है। उनमें धीरज नही है। सनातनी समझते है कि जिसे वे हिन्दू धर्म मानते है वह खतरेमे है। उनके पास पैसा है और वे उसे खुले हाथो खर्च करते हैं। नये-नये पत्र निकल रहे है। वे सुधारकोकी नीयतपर शक करते

है, उनके बारेमे ऊलजलूल बाते कहते है और आन्दोलनका विकृत चित्र खीचते है। हमारे कार्यकर्ता भी, सबके-सब आदर्श तो नही कहे जा सकते। मैंने देखा है कि कोई एक कार्यकर्ता भी, यदि वह सर्वथा विश्वसनीय और तन-मनसे पवित्र न हो तो अकेला भी अपने चारो ओरका वायुमण्डल जहरीला कर सकता है।

काम करनेवाला यदि हरिजनो और सनातनियों दोनोको सन्तुष्ट रखना चाहता है, तो अत्यन्त ऊँचा चरित्र, अपार विनयशीलता और असीम उदारता दिखाकर ही वह ऐसा कर सकता है। या दूसरे शब्दोमे, उसे परम धार्मिक होना पडेगा। यह आन्दोलन धर्मकी शुद्धिके लिए है। बमकनेवालो, बडबोलो या जिनमे चारित्रिक कमजोरियाँ है, ऐसे लोगोके किये कोई धर्म कभी शुद्ध नही हुआ है।

काम करनेवालो को बहुत ही सावधान रहना होगा। कहते है कि सनातनी गुडागर्दीसे काम ले रहे है और सभाओको भग करनेके लिए बल-प्रयोगसे भी नहीं हिचकते। इसमे क्या अचरज है। बुराईके अपने स्वार्थ और स्वत्वाधिकार होते है। वे तो निश्चय ही खतरेमे है। अपने जीवनकी रक्षाके लिए बुराई लडेगी ही। इसलिए जहाँ कही गड़बड़ होनेका डर हो, वहाँ कार्यकर्ताओको उससे बचना चाहिए, चाहे उन्हें सार्वजनिक सभाओका आयोजन या इसी तरहका कोई और काम छोडना ही क्यो न पडे। ऐसी दशामें उन्हे मुक्तिका सदेश घर-घर पहुँचाना चाहिए। उन्हे बेकारकी बहस और शास्त्रार्थमे न फँसना चाहिए। उन्हें इस बातका भरोसा रखना चाहिए कि सत्यके पास अपनी रक्षाके लिए अमोघ शक्ति है। सत्य ही जीवन है और ज्यो ही यह किसी मानवमे अपना घरकर लेता है त्यो ही वह अपना विस्तार स्वयं करने लगता है। बहुधा मूक आचरण सबसे अधिक प्रभावशाली वक्तृताका काम करता है। कार्यकर्ताओंको इसीलिए अपनेमे और अपने उद्देश्यमे जीती-जागती श्रद्धा रखनी चाहिए। परन्तु वे जानते है कि अकेले वे कुछ भी नही है। इसीलिए अपनेमें विश्वासका अर्थ है ईश्वरमे विश्वास। जो अपने भीतरसे सारा गर्व और सारा अहंकार निकाल फेकते है वे ईश्वरसे सर्वाधिक सहायता पाते है।

हिन्दू धर्म अस्पृश्यताकी बुराईसे तभी शुद्ध होगा जबकि ऐसे हरिजन-सेवक हजारोकी सख्यामे राजी-खुशीसे अपना बलिदान कर देगे।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ११-३-१९३३

५५. क्या मन्दिर जरूरी हैं ?

एक अमरीकी[1] पत्र-लेखक लिखता है[2] :

. . . धर्म-प्रवर्तकोंने जिन महान् धार्मिक सत्योंका साक्षात्कार किया और जिनकी उन्होंने घोषणा की उन्हे जब भी उनके शिष्योंने पुजारियो और पुरोहितों और मन्दिरोंकी सीमाओंमें बाँधनेकी कोशिश की है तब-तब इन सत्योंका नाश ही हो गया है। सत्य इतना सार्वभौमिक है कि उसे सीमित और साम्प्रदायिक बनाया ही नहीं जा सकता। इसीलिए मन्दिरों, मसजिदों और गिरजाघरोंको मैं धर्मका दुरुपयोग समझता हूँ। . . . जब धर्मको पुजारी वर्ग अपना इजारा बना लेता है और मन्दिरोंपर किसीका ऐसा अधिकार हो जाता है जिसका उपयोग वह अपने स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए करने लगे तब मानव-जातिका बहु-जन-समाज सत्यसे बिलकुल अलग रह जाता है। . . .

इसलिए हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशकी अनुमति मिल जानेमें मैं कोई लाभ नहीं देखता। मैं जानता हूँ कि इन्साफका तकाजा यह है कि उन्हें बुराई करनेकी भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। परन्तु जब उन्हें वह स्वाभिमान सीखना है, जिससे वे हमारी सभ्यताके भविष्यके विकासमें सवर्णोंके साथ समान भावसे हिस्सा ले सकें तो मैं समझता हूँ कि उन्हें मन्दिरों और पुजारियों और पुरोहितों आदिके सम्पूर्ण वर्गसे स्वतन्त्र रहना भी सीखना चाहिए। . . . आपने जब यूरोपमें यह कहा था कि "मैं पहले समझता था कि ईश्वर सत्यरूप है, किन्तु अब मैंने अनुभव किया है कि सत्य ही ईश्वर है", उस समय हम सबके हृदयोंसे ठीक यही बात प्रतिध्वनित हुई, वैसे हमारी परम्परा चाहे कुछ भी रही हो। परन्तु जबसे आपने मन्दिरोपासक हिन्दू धर्मका पक्ष ले लिया है — फिर चाहे वह कुछ विशुद्ध कोटिका ही क्यों न हो — हमें ऐसा लगता है कि आपकी बातमें जो सार्वभौमिकताका तत्त्व था, तबसे आपने उसे खो दिया है। मेरी समझमें आपकी बातमें इस सार्वभौमिक आकर्षणका कारण यह था कि आप अपनी बात एक सामान्य हिन्दूकी हैसियतसे नहीं बल्कि आध्यात्मिक जिज्ञासा रखनेवाले उन बहुसंख्यक हिन्दुओंके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे कहते हैं जो अपनी जीवन-यात्राके आध्यात्मिक पाथेयके लिए मन्दिरोंका भरोसा नहीं करते। मैं ऐसा नहीं मानता कि ऐसे लोग हिन्दू-मतकी उत्कृष्टतम परम्परासे बाहर हैं,

१. शायद बॉयड टकर; देखिए "पत्र: बॉयड टकरको", २३-३-१९३३।

२. यहाँ पत्रके कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

बल्कि वे तो उस धार्मिक भावनाको पैदा करनेवालों में से हैं जिसकी बदौलत भारतकी आध्यात्मिकता मानव-समाजके लिए भारतकी सबसे बड़ी देन समझी जाती है।

और न मैं यही मानता हूँ कि यह उच्च कोटिका हिन्दू धर्म हरिजनोंके लिए अत्युच्च होगा। हमारी नये ढंगकी शिक्षासे उनकी आध्यात्मिक वृत्तियाँ मन्द तो हुई नहीं हैं। बुद्ध, चैतन्य और कबीर आदिके उपदेशोंका प्रभाव सबसे ज्यादा इसी वर्गके लोगोंपर पड़ा है। इसी तरह ईसाकी शिक्षा धनिकों और सत्ताधारियोंको नहीं उन मछुओं और भठियारोंको सबसे ज्यादा भायी थी जो इज्जतदारोंके समाजसे बाहर माने जाते थे। . . .

यह एक सोच-विचारकर तय की हुई राय है और सारी दुनियामे बहुत सारे लोग ऐसी ही राय रखते है इसलिए यह आदरसे विचारने योग्य है। परन्तु यह बात मै पहली बार नही सुन रहा हूँ। जिस ढगसे यह विषय मेरे सामने यहाँ रखा गया है, अनेक मित्रोके साथ इसी ढंगपर इसी विषयपर विचार करनेका अवसर और लाभ मुझे पहले मिल चुका है। पत्र-लेखकने अपनी बातके समर्थनमे जो-कुछ कहा है, उसका अधिकांश मै मानता हूँ परन्तु इसमे कई महत्त्वपूर्ण तथ्य छूट गये है। इसलिए मै सविनय यह कहना चाहता हूँ कि वह उस निर्णय पर पहुँचनेके लिए काफी नही है जिसपर वे पहुँचे हैं। कुछ पुजारी बुरे हैं। मन्दिरो, मसजिदो और गिरजाघरोमे अकसर विकृति दिखाई देती है। अवगति तो उससे भी ज्यादा दिखती है। तथापि यह सिद्ध करना असम्भव होगा कि सभी पुजारी बुरे हैं या रहे हैं, और यह कि सभी मन्दिर, मसजिद और गिरजे भ्रष्टाचार और अन्धविश्वासके धाम है। इस तर्क-सरणिमे इस मूल बातपर भी कोई ध्यान नही दिया गया है कि किसी धर्मका काम विना 'आवास'के आजतक नही चला है और मैं तो इससे आगे बढकर कहूँगा कि स्वभावसे मनुष्य जैसा बना है वैसा ही बना रहा तो बिना आवासके चल ही नही सकता। मनुष्य शरीर ही परमात्माका घर कहा गया है और यह सही भी है, यद्यपि ऐसे अनेक मन्दिर इस तथ्यको झुठलाते है और भ्रष्टाचारके ऐसे अड्डे बने हुए है जिनका उपयोग दुराचार और लम्पटताके लिए किया जाता है। और मेरा खयाल है कि अगर यह सिद्ध किया जा सके — और वास्तवमे किया जा सकता है — कि कुछ ऐसे शरीर भी हैं जो ईश्वरके सच्चे आवास है तो यह ऐसी किसी अतिव्याप्ति-पूर्ण उक्तिका कि चूँकि बहुत-से शरीर भ्रष्टाचारके अड्डे हैं, इसलिए सबको नष्ट कर देना चाहिए, अन्तिम उत्तर होगा। बहुत-से शरीरोकी भ्रष्टताका कारण कही अन्यत्र ढूंढना पड़ेगा। पत्थर और गारेके मन्दिर इन मानव-मन्दिरोके स्वाभाविक विस्तार के अतिरिक्त और कुछ नही है, और यद्यपि जब इनकी कल्पना की गई थी तब निश्चय ही ये मानव-मन्दिरोकी ही तरह ईश्वरके आवास थे और फिर उनपर भी अपकर्षका वही नियम लागू रहा है जो मानव-मन्दिरोपर लागू रहा है।

मुझे ऐसे किसी भी धर्म या सम्प्रदायकी जानकारी नही है जिसका काम अपने देवालयके बिना चला हो या चल रहा हो — चाहे वह मन्दिर हो या मसजिद, गिरजा

हो या हैकल अथवा अगियारी। इसी तरह यह बात भी असन्दिग्ध नही है कि ईसा-मसीह सहित किसी भी महान् सुधारकने मन्दिरोको बिलकुल नष्ट कर दिया हो या त्याग दिया हो। उन सबने मन्दिरो और समाज, दोनोसे भ्रष्टाचारको दूर करनेकी कोशिश की। ऐसा लगता है कि उनमें से सबने नही तो कुछने तो अपनी शिक्षा भी मन्दिरोसे ही दी। मै वर्षोंसे मन्दिर नही जाता, किन्तु इस कारण मैं अपनेको पहलेसे बेहतर नही मानता। मेरी माँ जब जाने लायक थी तब मन्दिरमें जानेसे कभी नही चूकी। व्यक्तिके रूपमे उनकी श्रद्धा शायद मेरी श्रद्धासे बहुत अधिक गहरी थी, यद्यपि मैं मन्दिर नही जाता। करोडो लोगोकी श्रद्धाके स्रोत ये मन्दिर, गिरजे और मसजिदें ही हैं। उनमें से सबके-सब अन्धविश्वासके ही शिकार नही और न धर्मान्ध ही हैं। अन्धविश्वास और धर्मान्धतापर ऐसे लोगोकी कोई इजारेदारी नही है। इन बुराइयोंकी जड़े हमारे दिलो और दिमागोमें है।

मैं जो हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशका पक्ष-पोषण कर रहा हूँ उसे मैं यूरोपमें बार-बार की गई अपनी इस घोषणासे कि सत्य ही ईश्वर है, सर्वथा सगत मानता हूँ। यह वही विश्वास है जिसके बलपर मेरे लिए मित्रता टूटने, लोकप्रियता और प्रतिष्ठा खोनेकी आशकाके बावजूद हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशका पक्ष-पोषण करना सम्भव हो सका है। मै जिस सत्यको जानता या अनुभव करता हूँ वह सत्य मुझसे उसके पक्ष-पोषणकी अपेक्षा रखता है। अगर हिन्दू धर्म अपने मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए बन्द कर देता है तो उसे सारी दुनियाको रुचनेवाला धर्म बननेका अधिकार नही रह जाता।

यह तो स्वीकार किया ही जाना चाहिए कि मन्दिरो और मन्दिरोमें उपासनाकी पद्धतिमें आमूल सुधारकी आवश्यकता है। लेकिन, मन्दिर-प्रवेशके बिना सुधारके सारे प्रयत्न रोगके साथ खिलवाड करने-जैसा है, मैं जानता हूँ कि इन अमरीकी मित्रकी आपत्ति मन्दिरोके भ्रष्टाचार या अपवित्रतापर आधारित नही है। उसका आधार इससे कही अधिक गहरा है। वे मन्दिरोमे बिलकुल विश्वास ही नही करते। मैंने यह दिखानेकी कोशिश की है कि जिन तथ्योकी पुष्टि दिन-प्रतिदिनके अनुभवसे की जा सकती है उन्हे ध्यानमे रखकर सोचनेसे उनकी स्थिति सही नही प्रतीत होती, मन्दिरोकी आवश्यकताको अस्वीकार करनेका मतलब स्वय ईश्वर, धर्म और भौतिक अस्तित्वकी आवश्यकताको अस्वीकार करना है।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ११-३-१९३३

५६. सीधा-सादा 'हिन्दू' ही क्यों नहीं ?

एक पत्रमे एक सवर्ण हिन्दूने लिखा है :

> **अगर इन दलित वर्गोंको अन्ततः हिन्दुओंमें मिल जाना है तो क्या यह अच्छा नहीं होता कि उन्हें 'हरिजन' के बजाय 'हिन्दू' ही कहा जाता, क्योंकि यह नाम सवर्ण हिन्दुओं और दलित वर्गों दोनोंपर ही लागू होता? अब भी समय है कि 'हरिजन' छोड़कर 'हिन्दू' नाम अपनाया जाये, ताकि सवर्ण हिन्दुओं और दलित वर्गके हिन्दुओं दोनोंको आम बोलचालमें और सरकारी कागजोंमें भी केवल हिन्दू ही कहा जा सके।**

पत्र-लेखकने सुझाव देनेमे देर कर दी। अगर अस्पृश्योके लिए एक अलग पंजिका स्थायी न हो गई होती — कमसे-कम कुछ समयके लिए ही — तो सामान्य नामसे काम चल सकता था। लेकिन इस पंजिकाके कारण यह बिलकुल आवश्यक हो गया है कि लोग अस्पृश्य वर्गोंको किसी खास नामसे जाने, और अगर बात ऐसी है तो उन्हे ऐसा नाम क्यों न दिया जाये जो उनपर सचमुच ठीक बैठता है और जिससे किसी खटकनेवाली बातका भी बोध नही होता? मैं 'हरिजन'को उपयुक्त नाम मानता हूँ, क्योकि सवर्ण हिन्दुओको हरिके जन मानना उचित नही हो सकता, लेकिन अस्पृश्योंको वैसा मानना उचित हो सकता है।

मैंने सवर्ण हिन्दुओं और हरिजनोंके बीचका भेद मिटानेका सच्चा उपाय सुझाया है। वह यह है कि सवर्ण हिन्दू अपनेको अस्पृश्यतासे मुक्त करने और स्वयं हरिजन बननेके लिए आत्मशुद्धिका यज्ञ करें। और अगर हर आदमीको यह छूट है कि वह अस्पृश्योकी पंजिकामे अपना वर्गीकरण उन्हीकी श्रेणीमे कराये, तो मै सवर्ण हिन्दुओको बेखटके यह सलाह दूंगा कि वे अपनेको अस्पृश्य करार दे और अस्पृश्योकी ही तरह रहे। यह इन दोनोको मिलाकर एक करनेका ठोस और सजीव तरीका होगा।

ऐसा ही सुझाव एक हरिजन मित्रने दिया था, हालाँकि उसमे उनका दृष्टिकोण अलग था। यह उस सुझावका उल्लेख करनेका उचित प्रसग है। उनका कहना है कि अस्पृश्यतासे छुटकारा पानेका सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि हरिजनोको सलाह दी जाये कि वे ऐसे नाम अपनाये जिनसे कभी भी अस्पृश्यका बोध न हो और साथ ही वे अपनेको सिर्फ हिन्दू या ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य घोषित कर दे। यह सुझाव तो मुझे १९१५ मे ही, जब मैंने अस्पृश्यताके खिलाफ संघर्ष आरम्भ किया था, दिया गया था। इन हरिजन भाईके अपने कुछ निजी अनुभव थे और उन्होंने मुझे बताया कि वे भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तककी यात्रा कर चुके है, उनको बिना किसी

विघ्न-बाधाके सभी प्रमुख तीर्थस्थलोमे खुला प्रवेश मिल गया था और वे अपने साथ कुछ और लोगोंको भी ले गये थे।

जब मुझसे उनका परिचय कराया गया तो मुझे उनके हरिजन होनेका कोई चिह्न उनमे नजर नही आया। उनकी पोशाक ब्राह्मणों-जैसी थी, ललाटपर तिलक, गलेमें तुलसी या रुद्राक्षकी — ठीक-ठीक याद नही पडता — माला थी और वे एक आम गुजरातीकी तरह बोलते थे। वे और उनके साथी धर्मशालाओमे टिकते थे और चूंकि अपनेको निस्सकोच सवर्ण बताते थे, इसलिए उन्हे कभी कोई कठिनाई नही हुई।

उन्होने मुझे बताया कि अस्पृश्यो द्वारा अपनी पहचान छिपानेका यह चलन उनके बीच आम है और वह बढता ही जा रहा है। मगर खेदकी बात यह रही कि मैंने उन्हे कोई प्रोत्साहन नही दिया। मैंने उनसे कहा कि हो सकता है आपका ऐसा करना आपके लिए और उन कुछ लोगोके लिए सुविधाजनक हो जिनके पास इस बातके साधन हैं और जो इस दृष्टिसे काफी प्रशिक्षित है कि वे अस्पृश्योको शेष लोगोंसे अलग दिखानेवाली कुछ आदतें छोड़ सके; लेकिन, ऐसा करनेमें जो बेईमानी है और इसलिए मनुष्यत्वके पतनका खतरा है उसको न लेखें तो भी, कुछ लोगोके ऐसे व्यवहारका उन लाखो अस्पृश्योंपर कोई असर नही होगा जो अपने गाँवोसे भी बाहर नही निकल सकते।

जो उत्तर मैंने तब दिया था वह आजकी परिस्थिति पर भी उतना ही लागू होता है। इसलिए सबसे सीधा और जल्दीका तरीका यही है कि आन्दोलन खुले तौरपर चलाया जाये, अस्पृश्योको लोग अस्पृश्योंके रूपमे जानकर भी सवर्ण हिन्दू उनके साथ बिलकुल बराबरीके दर्जेपर व्यवहार करे। और चूंकि यह आन्दोलन बहुत बडे पैमानेपर आरम्भ हुआ और गत सितम्बर महीनेमे सवर्ण हिन्दुओने घोषणा कर दी थी कि अस्पृश्यता समाप्त हो गई है, इसलिए, दोनो वर्गोंके मिलकर आपसमें एक हो जानेकी प्रक्रियाके चलते, अस्पृश्योको एक किसी ऐसे नामसे जानना आवश्यक हो गया है जिसमे खटकनेवाली कोई बात न हो। मेरे विचारसे 'हरिजन' ही उनका सबसे अच्छा नाम था।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-३-१९३३

५७. अकारण भय

एक सनातनी पत्र-लेखक लिखता है

मान लीजिए कि एक सनातनीने कोई नया मन्दिर बनवाया और उसके प्रबन्धके लिए ट्रस्टी नियुक्त किये। यह भी मान लीजिए कि उसने अछूतोंको छोड़ बाकी चारों वर्णोंके हिन्दुओंके लिए मन्दिर खोल दिया। अस्पृश्यता-निवारक विधेयकके अनुसार अछूतोंकी अयोग्यता उनके मन्दिर-प्रवेशके मार्गमें बाधक न होगी। और, मन्दिर-प्रवेश विधेयकके अनुसार, अगर सुधारकोंका बहुमत हुआ तो वे उसके बलपर मन्दिरमें अछूतोंका प्रवेश करा सकेंगे। अर्थात्, यद्यपि मन्दिरकी स्थापना करनेवालेकी रायमें अछूतोंके प्रवेशसे मन्दिर अपवित्र हो जायेगा, यद्यपि वे मानते हैं कि वह और उसी जैसे विचार रखनेवाले, अछूतोंके मन्दिरमें चले जानेपर, विधिपूर्वक पूजा नहीं कर सकते — फिर भी अछूत मन्दिरमें जा सकेंगे और उसकी प्रकट की हुई इच्छाका भंग होगा।

पर अगर कोई सनातनी ऐसा मन्दिर तिब्बत, चीन या अफगानिस्तानमें जाकर बनाये तो निस्सन्देह उसकी इच्छा पूरी हो जायेगी, क्योंकि इनमें से कहीं कोई ऐसा अस्पृश्यता-निवारक या मन्दिर-प्रवेश-विधेयक कानून नहीं है। गरज यह, कि अगर किसी सनातनीकी इच्छा है कि ऊँची जातियोंके उसके सनातनी भाई उसके बनाये हुए मन्दिरमें जा सकें तो वह अपने ही मन्दिरमें अपनी इच्छाके अनुसार पूजा नहीं कर सकता। पर उसी मन्दिरको अगर वह भारतके बाहर किसी देशमें बनाता है, तो उसे यह अधिकार प्राप्त हो सकेगा।

क्या आप समझते हैं कि यह परिस्थिति सन्तोषजनक है?

अगर अस्पृश्यतामे मेरा विश्वास होता, तो इन विधेयकोसे मुझे वैसा कोई भय न लगता जैसा इस पत्र-लेखकको लगता है। वह समझता है कि तिब्बत, चीन और अफगानिस्तानमे इस विषयमे अधिक स्वतन्त्रता है, पर वह इस बातको भूल जाता है कि इन तीन देशोमे, जहाँतक मै जानता हूँ, अस्पृश्यता-जैसी कोई चीज ही नही है और इस देशकी तरह वहाँ उसे अस्पृश्यताके आधारपर एक भी व्यक्तिका प्रवेश रोकनेका अधिकार प्राप्त न हो सकेगा। किन्तु जब कानूनमे अस्पृश्यताको कोई मान्यता नही रह जायेगी तब भी केवल इतनेसे ही किसी अस्पृश्य कहे जानेवाले को यह हक हासिल नही हो जायेगा कि वह चाहे जिस मन्दिरमे चला जाये। जो सनातनी कुछ खास लोगोके लिए ही मन्दिर बनाता है, वह तो गोया निजी मन्दिर बनाता है, इसलिए उसे इस बातका पूरा अधिकार होगा कि वह जिसका चाहे उस

व्यक्तिका प्रवेश रोक दे — फिर चाहे वह स्पृश्य हो या अस्पृश्य। सिर्फ इतना ही है कि अस्पृश्यताके आधारपर किसी आदमीका आना रोकने और अपने इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कानूनकी सहायता प्राप्त करनेका हक उसे नही होगा। और अगर बहुमत अस्पृश्योके प्रवेशके विरुद्ध है तो निजी मन्दिरकी तो बात ही क्या, सार्वजनिक मन्दिरोमें भी उनका प्रवेश न हो सकेगा। पहले विधेयकका उद्देश्य तो केवल इतना है कि अस्पृश्यता कानूनन जायज न मानी जा सकेगी। पर जबतक सवर्ण हिन्दुओका मतपरिवर्तन नही होता, तबतक हिन्दू मन्दिर हरिजनोंके लिए बन्द ही रहेगे। दूसरे विधेयकके अनुसार निजी मन्दिरोमे तो किसी प्रकारका हस्तक्षेप न होगा, और सार्वजनिक मन्दिरोका खुलना या बन्द रहना प्रचलित सामाजिक रिवाजपर निर्भर करेगा — और रिवाजमें तो समय-समयपर बराबर परिवर्तन होता ही रहता है। अगर कोई सनातनी चारो वर्णोंके लिए ही सार्वजनिक मन्दिर बनाता है तो हरिजनोका प्रवेश सिर्फ इसलिए वर्जित रहता है कि वे इस समय वर्णोंके अन्तर्गत नही माने जाते है, पर अगर वे चारो वर्णोंमे मिल जाये, तो उक्त सनातनीकी इच्छाके विपरीत कुछ भी नही होता, क्योकि न तो वह भावी पीढियोके धार्मिक विश्वासकी वृद्धि रोक सकता है, न उसके ऊपर और किसी तरहका असर डाल सकता है।

मेरे पत्र-लेखककी केवल एक आपत्ति विचारणीय है। वह दूसरे विधेयकम अल्पमतके अधिकारसे सम्बन्ध रखती है। मैंने इस विषयमें समझौतेकी तजवीज जनताके सामने रखी है, जिसमे अल्पमतका अधिकार — चाहे वह एक ही व्यक्तिका क्यो न हो — भली-भाँति सुरक्षित रहता है। कारण, मेरी अपनी राय तो यह है कि एक भी व्यक्तिके धार्मिक अधिकारमे किसी प्रकारका हस्तक्षेप न हो।

पत्र-लेखक महोदय यह तो चाहते है कि उनके और उनके साथी सनातनियोंके अधिकारको सुधारक मान ले, पर वे खुद उन सुधारकोका अधिकार स्वीकार नही करते।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-३-१९३३

५८. तार : बच्छराजको

११ मार्च, १९३३

बच्छराज
वर्धा

जाजूजी पूनमचन्दसे[1] मिलकर मेरी ओरसे समझायें कि वह उपवास बन्द करे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० २०-१०।

५९. पत्र : मीराबहनको

११ मार्च, १९३३

चि० मीरा,

आज शनिवार, ११ तारीख है और इस समय सुबहके ३। बजे है। तुम्हारे साप्ताहिक पत्रके पहुँचनेमे अनिश्चितता रहनेके कारण तुम्हें लिखनेका मेरा दिन भी गड़बड़मे पड़ गया है। इस सप्ताह तुम्हारे दो पत्र मिले। पिछले सप्ताहका पत्र मगलको ही मिला और इस सप्ताहका बुधको। लेकिन कल सुबह मैंने सोचा कि तुम्हारा पत्र आना बाकी है, अत: सुबहका वक्त दूसरे महत्त्वपूर्ण पत्र लिखनेमे लगा दिया। और बादमे जब मुझे सूझा कि तुम्हारा तो कोई पत्र आना बाकी नही है, तब मैंने जिसे तुम दफ्तरका समय कह सकती हो उसमे तुम्हे लिखा नहीं। यह पत्र और ऐसे ही दूसरे पत्र मुझे तड़के ही लिखना अच्छा लगता है।

मैं देखता हूँ कि तुम फिर पशु-पक्षियोंके साथका आनन्द लूट रही हो। पता नही क्यो मुझे मेढक बहुत ही असहाय जीव प्रतीत होते है। वे न दौड़ सकते है, न उड़ सकते है और इसलिए आसानीसे चालाक बिल्लीके शिकार बन जाते है। और अपनी असहाय अवस्थामे वे हमारी ओर कितनी कातर दृष्टिसे देखते है। उधर, बन्दर पर मुझे कभी दया नही आती। वह बड़ा सूझ-बूझवाला और शैतान प्राणी है

१. पूनमचन्द राँका जेलोंमें राजनीतिक कैदियोंके वर्गीकरणके विरुद्ध तथा उन्हें भोजन, वस्त्र, पुस्तकें आदिकी अधिक सुविधाएँ दिलवाने और मुलाकातियोंसे बातचीत करते समय बीचमें जो जंगलेका व्यवधान रखा जाता था उसे हटवानेके लिए ४ मार्चसे उपवास कर रहे थे।

और उसे हमें छकानेमें मजा आता है। उसमे कृतज्ञता-जैसी चीज ही नही है। और फिर भी, मुझे लगता है हमारा यह सब सोचना या तो कल्पना है या अज्ञान। अगर हमे ज्ञानसे बहुत-कुछ मिलता है तो ऐसा भी प्रतीत होता है कि अज्ञान और कल्पनासे भी हम कुछ कम नही पाते। जहाँ अज्ञानमे ही आनन्द हो, वहाँ ज्ञानवान होना मूर्खता है। हमारा सबसे छोटा और प्राचीन उपनिषद् कहता है,[1] "वह अज्ञानसे मृत्यु पर विजय पाता है और ज्ञानसे अमरत्वको प्राप्त होता है।" मूल शब्द अविद्या और विद्या है, जिनका अर्थ क्रमश कर्म और अकर्म, शरीर और आत्मा, आसक्ति और अनासक्ति है। मूल वचनके साथ ज्यादती किये बिना उनके और भी कई अर्थ किये जा सकते हैं। यह बहुत सादा और ऊँचा उपनिषद् है और गहन भी है। 'गीता' की तरह उसमे भी समस्त ज्ञानका सार है। शायद 'गीता' उसकी टीका है। 'गीता' के एक प्राचीन टीकाकार या यो कहो कि भक्तने उपनिषदोको गायोकी, 'गीता' को दूधकी और कृष्णको उन्हे दुहनेवाले ग्वालेकी उपमा दी है।[2] मगर अभी इस बारेमे और अधिक नही।

आशा है, तुम्हारी प्रगति जारी होगी और उसमे गरमीके मौसमसे, जो हमारे यहाँ शुरू हो गया है, बाधा नही पड़ेगी। माथेपर मिट्टीकी पट्टी या केवल गीला कपडा रखो। इसका आश्चर्यजनक ठण्डा असर होता है। जिस चीजसे सिर ठण्डा होता है, उससे सारा शरीर शीतल हो जाता है। कल ग्रेगकी भेजी हुई आँखो-सम्बन्धी एक अमरीकी पुस्तकमे मुझे एक जोरदार वाक्य मिला। उसमे कहा गया है कि झूठसे शरीर गरम हो जाता है और आँखोको नुकसान होता है। अगर 'झूठ' शब्दके अर्थका विस्तार कर ले, तो यह बात सही है। जाने या अनजानेमें कुदरतके कानूनोको भग करना झूठ है। जान-बूझकर ज्ञात नियमोको तोडना ऐसा झूठ है, जिससे हमारे नैतिक बलकी हानि होती है। अनजाने कानून भग करनेसे यह हानि या उतनी हानि नही होती है, परन्तु शरीरकी हानि तो हर हालतमे होती ही है। प्राणायाम पर लिखने-वालो का दावा है कि श्वासोच्छ्वासको नियमित और नियन्त्रित करनेकी शक्ति हो, तो जलवायुके परिवर्तनका असर नही होता। 'गीता' से इस मान्यताका समर्थन होता प्रतीत होता है। यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें आधुनिक ज्ञानके प्रकाशमे फिरसे खोज होनेकी जरूरत है। लोनावालाके कुवलयानन्द यह काम कर रहे हैं। सीटी बजाते समय होठोको जैसा करते हैं, वैसे करके बाहरकी हवा धीरे-धीरे अन्दर ले जाओ तो तुम्हे तुरन्त ठण्डक मालूम होगी। चित लेटते समय याद रखो कि पीठकी मास पेशियाँ फैलनी न चाहिए। इसलिए तुम्हारा साँस लेना बहुत ही धीमे-धीमे होना चाहिए। इसका उद्देश्य शरीरपर ठण्डक पहुँचानेवाला असर पैदा करना, उसे ढीला छोडना और आराम देना है। मन और शरीरके खिचावको राहत पहुँचानेके लिए नीदसे बढकर कोई चीज नही है। इसलिए प्राणायाम पालथी लगाकर शरीरको सीधे तख्तेकी तरह

१. ईशोपनिषद्, ११।
२. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्ध गीतामृत महत्॥

तानकर करना चाहिए। यह सब अभ्यास धीरे-धीरे, विचारपूर्वक और नियमित होना चाहिए और हमेशा खाली पेट होना चाहिए।

यहाँ प्रार्थनाके लिए लिखना रुक गया था और अब २५ मिनटके बाद ४-३५ पर फिर लिख रहा हूँ।

सब बातोंको देखते हुए मुझे अर्नाल्डका अनुवाद और सबोंसे अधिक उपयोगी मालूम होता है। 'एब्स्टीमियस' शब्द उपयुक्त नही है। 'स्पेअर डाइट' कहना अच्छा है। 'अल्प'का अर्थ है काफीसे कम। काफी क्या है, यह अनुमानका विषय है और इसलिए हमारे अपने ही मनकी कल्पना है। सत्यभक्त मनुष्यने यह जानते हुए कि मनुष्य सदा शरीरके प्रति मेहरबान होता है इस कमजोरीका इलाज करनेकी दृष्टिसे कहा कि उसके विचारसे जितना भोजन काफी हो उससे उसे थोड़ा कम लेना चाहिए। तब कही यह सम्भव होगा कि वह जितना सचमुच काफी है उतना ही भोजन लेगा। इस प्रकार जिसे अकसर हम अल्प समझते है, सम्भव है वह भी काफीसे ज्यादा हो। कम खानेके कारण जितने लोग कमजोर रहते है, उनसे अधिक लोग ज्यादा या गलत भोजनके कारण रहते हैं। अगर हम उचित भोजन चुन ले, तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि कितनी थोड़ी-सी मात्रा काफी हो जाती है।

मुझे खुशी है कि बा तुम्हारे साथ मजेमे है और हिन्दी सीख रही है और तुमसे भजन गवाती है। मृदुला गाती है क्या? न गाती हो तो गाना चाहिए। उसे सकोच छोड़ देना चाहिए — यदि अब भी करती हो तो। अपना दिन वह अन्यथा किस तरह बिताती है? अब तो उसे बा का सचिव या पत्र-लेखक बन जाना चाहिए।

मेरा वजन अब १०४ पर पहुँच गया है। खुराक वही फल और दूध (कच्चा) है। मै अभी तो एक पौडसे कम दूध लेता हूँ। फलोसे ही मेरा वजन कायम है। कोहनियोका वही हाल है। चिन्ताका कोई कारण नही। कताई घटाकर कमसे-कम कर दी है। कोई निश्चित मात्रा नही है। अक अभी तो ५५ और ६० के बीच है। यह केशूकी छोटी-सी ईजादपर पीजे हुए देव कपासका सूत है।

हम सबका प्रेम लो।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६६) से; सौजन्य. मीराबहन। जी० एन० ९७३२ से भी

६०. पत्र : अब्दुल अलीमको

११ मार्च, १९३३

प्रिय अब्दुल अलीम,

आपके पोस्टकार्डसे यह जानकर खुशी हुई कि आप सही-सलामत कलकत्ता पहुँच गये और 'रिफ्यूज' में रह रहे हैं[1]।

मुझे सर देवप्रसाद सर्वाधिकारीका भी एक पत्र मिला था।

आपको घरकी याद कर-करके परेशान नहीं होना चाहिए। आप एक समझदार नौजवान हैं। इसलिए आपको वहाँ रहनेवाले सभी असहाय भाइयोंके साथ भ्रातृत्वकी भावना विकसित करनी चाहिए और अपने आदर्श आचरण द्वारा वहाँके अधिकारियो का स्नेह-भाजन बन जाना चाहिए। और अगर आप यही विश्वास रखेंगे कि साथी, रक्षक और संरक्षकके रूपमें ईश्वर बराबर आपके साथ है, तो आप बेसहारापन या अकेलापन कभी महसूस नहीं करेंगे।

आशा है, आपके पास पढ़नेको कुछ सामग्री होगी।

मैं कुछ मित्रोंको यदा-कदा आपसे मिलनेके लिए लिख रहा हूँ[2]।

आप मुझे बराबर खबर देते रहें कि वहाँ आपका कैसा-क्या चल रहा है।

हृदयसे आपका,

श्री अब्दुल अलीम
'रिफ्यूज'
१२५, बहू बाजार
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४८)से।

१. देखिए "पत्र: देवप्रसाद सर्वाधिकारीको", ९-३-१९३३ भी।
२. देखिए अगला शीर्षक।

६१. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

११ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

आपको याद होगा कि आपसे मैंने अब्दुल अलीमके बारेमें बात की थी। अब वह बिलकुल सही-सलामत, 'रिफ्यूज' में, जिसके सम्बन्धमें आपसे चर्चा की थी, रह रहा है। यह १२५, बहू बाजार स्ट्रीटमें स्थित है। इसके अध्यक्ष सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी है। आप कुछ नौजवानोंसे कहिए कि वे जाकर अब्दुल अलीमसे मिलें, ताकि वह ऐसा महसूस करे कि वह बिलकुल ही उपेक्षित नहीं है। साथमें उसका कार्ड भेज रहा हूँ, जिससे उसकी मन स्थितिका पता चल जायेगा। अगर उसे जरूरत हो तो कुछ पुस्तकें दे दी जायें। आप शायद किसी मुसलमानको भी उससे मिलनेको प्रेरित कर सकें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४५) से।

६२. पत्र : बालमुकुन्दको

११ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आशा है, आपकी परिषद् स्वास्थ्यके नियमोंके पालन, पंजाबके हरिजनोंमें यदि मरे ढोरोंका मांस खानेका चलन हो तो उसके त्याग, पूर्ण मद्यत्याग आदि आन्तरिक सुधारोंकी ओर ध्यान देगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बालमुकुन्द
महामन्त्री
वाल्मीक अछूत मण्डल
लाहौर सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४७) से।

६३. पत्र : वेरियर एलविनको

११ मार्च, १९३३

प्रिय वेरियर,

इस बार भी कुछ अनिवार्य कारणोसे तुम्हारे दो पत्रोका उत्तर देनेमे देर हो गई। जैसे यह सब ईश्वरकी ही इच्छा थी। कल अल्ला आई और उसने मेरे इस पत्रका मन्सूबा ही बदल दिया। मै तो इसे बस धन्यवाद-पत्रकी तरह लिखना चाहता था। लेकिन अल्लासे जो बातचीत हुई, उसके कारण यह सम्भव नही हो सका। उसने कहा कि उसके पास मेरे नाम लिखे तुम्हारे एक पत्रकी नकल थी, लेकिन उससे वह सन्तुष्ट नही थी। वह इस बात पर जोर दे रही थी कि तुमने एक वचन दिया था। वह शादी करना नही चाहती, लेकिन झूठी भी नही बनना चाहती। वह तुम्हे ही झूठा बनाना चाहती है। मैंने मुलायमियतसे उससे कहा कि किसीको भी झूठा बननेकी जरूरत नही, जीवनमे प्रेमाचारके दौरान गलतियाँ होना आम बात है और मैंने यह भी कहा कि हो सकता है कि तुम्हारा मन्शा शादीका न होते हुए भी, उसने, स्वय शादीकी इच्छुक होनेके कारण, तुम्हारे हरएक शब्द और हाव-भावका मतलब तुम्हारी शादीकी इच्छा ही लगा लिया हो। वह ऐसा माननेको तैयार नही हुई, लेकिन साथ ही तुमपर मिथ्याचारका आरोप लगानेको भी उसका जी नही कर रहा था। मैंने उससे कहा कि तुम झूठ तो बोल ही नही सकते और अगर ऐसा तनिक भी सन्देह हो कि तुम्हारा मतलब शादीसे था, तो तुम इस बातको स्वीकार जरूर कर लोगे। तुम अपनी स्मृतिपर जोर डालकर देखो। अगर अल्लाकी कही बातोकी दृष्टिसे कही कोई भूल-सुधार करने-जैसी चीज दिखे, तो तुम उसका प्रतिकार कर देना। मेरा खयाल है, अभी कुछ दिन और उसको तुम्हारे पास नही जाना चाहिए। वैसे तो तुमने और मेरीने बहुत ही पवित्र और महत्त्वपूर्ण सकल्प लिया है,[1] लेकिन उसमें तुम दोनोको बहुत अधिक मनोव्यथा झेलनी पडी होगी। लगता है मेरी तो उस आघातके असरसे निकल भी नही पाई है। यद्यपि मुझे जो पहला पत्र लिखा, वह तुम दोनोकी ओरसे था, लेकिन लगता है, इस प्रस्तावित सम्बन्धके भग होनेके सत्यको मेरी पचा नही पाई है। मुझे उससे पूरी सहानुभूति है। मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही कि ऐसी बाते पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियोके लिए अधिक महत्त्व रखती है। लेकिन मेरीको इस बातकी प्रतीति होनी चाहिए कि ईश्वरके सामने स्त्री-पुरुषका कोई भेद

१. "एक-दूसरेसे विवाह न करनेका लेकिन अपने-आपको उस सेवा-कार्यके लिये अर्पित कर देनेका जिसके लिए वे अपने जीवन समर्पित कर चुके हैं।" देखिए "पत्र : लिमोनार्ड एन० शीफको", १०-३-१९३३।

नही होता, या हम सब उसके सामने स्त्रियाँ है, उसके साथ एक अटूट बन्धनमें बँधी उसकी परिणीताएँ है। अगर उसने इस अमर विवाहकी खूबीको समझ लिया हो, तो उसे ऐसा समझकर खुशीसे नाच उठना चाहिए कि वह मानवीय विवाहके बन्धनसे मुक्त है। अगर मनुष्य मनसे दुर्बल हो तो ऐसा विवाह अच्छा और आवश्यक है, लेकिन अगर उसका मन सबल हो तो निश्चय ही मानव-समाजके सेवकके लिए ऐसा विवाह विघ्न-रूप है, और मेरी ऐसी ही सेविका तो बन गई है। उसे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि त्याग वही सच्चा होता है जो मनुष्यको आन्तरिक शान्ति और आनन्द देता है। इसलिए जो होना था और जो वास्तवमे इस शरीरके साथ की गई एक रियायत थी, उसके बारेमे सोच-सोचकर उसे खिन्न नही होना चाहिए। उसे तो ईश्वरका स्तुति-गान करना चाहिए कि उसने तुम दोनोको वासनापर विजय पानेमे समर्थ बनाया। और चूँकि उसने मेरी पुत्री बननेका इरादा किया है, इसलिए उसे बिना किसी दुराव-छिपावके मुझे लिखना चाहिए और अपने पत्रोमे अपना हृदय उँडेल देना चाहिए।

लेकिन, जबतक तुम दोनोका मन स्थिर न हो जाये और तुम दोनो अपनेको ठोक-बजाकर देख न लो, तबतक अल्लाको वहाँ नही जाना चाहिए और न उसे वहाँ जानेके लिए बढावा ही देना चाहिए। वह खुद ही तबतक वहाँ नही जाना चाहती जबतक वादेकी उस बातकी पूरी सफाई नही हो जाती।

और अब मै यह जानता हूँ कि मेरी सम्पूर्ण सहानुभूति तुम्हारे साथ है। मेरी आत्मा तुम्हे बराबर देख रही है और ईश्वरसे प्रार्थना कर रही है कि वह तुम्हे अपेक्षित शक्ति प्रदान करे। ये महीने तो तुम्हारे लिए अवश्य ही बहुत कठिन गुजरे होगे। वास्तवमे मेरी यही प्रार्थना है कि तुम्हारे जीवनमे सत्य — जो स्वय ईश्वर ही है — उद्भासित हो।

तुम्हे और मेरीको मेरा सम्पूर्ण प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४१) से।

६४. पत्र : मेरी जिलेटको

[११ मार्च, १९३३][1]

प्रिय मेरी,

अभी-अभी वेरियरके नाम पत्र पूरा किया है और प्रार्थना प्रारम्भ होनेमें अब कुछ ही क्षण रह गए हैं। वेरियर तुम्हे मेरा पत्र, या उसका जितना हिस्सा उसकी समझमे तुम्हारे पढने लायक होगा उतना हिस्सा, पढवा देगा। वह जो अश तुम्हे नही पढवायेगा वे तुम्हारी ही भलाईके लिए नही पढ़वायेगा।

चूँकि तुम हमारे इस सतत बढते हुए परिवारकी एक नई सदस्या हो, इसलिए मैं समझ नही पा रहा हूँ कि तुम्हारे लिए ठीक-ठीक किस शब्दका प्रयोग करूँ। लेकिन इतना जरूर जानता हूँ और तुम इस बातके लिए आश्वस्त रह सकती हो, कि मेरी सम्पूर्ण सहानुभूति तुम्हारे साथ है। मेरी आत्मा तुम्हारे साथ ही रहती है — उसी तरह जिस तरह एक माताकी आत्मा अपनी सन्तानके साथ रहती है। और इसके पीछे निरे स्वार्थकी भावना है। ईश्वरको सत्य-रूपमे और केवल इसी रूपमें, जानने और देखनेके अपने सतत प्रयत्नमे मैं अकेलापन महसूस नही करना चाहता। उसी अटूट बन्धनके कारण वेरियर मेरा पुत्र और तुम मेरी पुत्री हो। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, वेरियरको लिखा मेरा पत्र जितना उसके लिए है उतना ही तुम्हारे लिए भी है। लेकिन मैं चूँकि तुम्हे उसीके जरिये जानता हूँ, इसलिए यह तो उसीको तय करना चाहिए कि उसका कितना अश पढ़ना तुम्हारे लिए हितकारी होगा। ऐसा मै कोई इसलिए नही कर रहा हूँ कि तुमपर मेरा विश्वास नही है, बल्कि इसलिए कि निदान और उपचारकी अपनी क्षमतापर मेरा आत्मविश्वास पर्याप्त नही है। और पिताको अपने बच्चेकी आवश्यकताओको जानने और क्या करना चाहिए, यह बतानेका अधिकार तो है ही। पर मैं तो एक अन्धा पिता हूँ। हम सबका वह परम पिता, जिससे कभी कोई चूक नही होती, निश्चय ही तुम्हारा मार्गदर्शन करेगा और तुम्हे बिना किसी प्रकारकी कोर-कसरके पूर्ण समर्पणके अपने महान् सकल्पको पूरा करनेके लिए अपेक्षित शक्ति प्रदान करेगा।

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७७४) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

६५. पत्र : टी० के० मेननको

११ मार्च, १९३३

प्रिय मेनन,

आपने 'मातृभूमि'[1] के जो प्रासंगिक उद्धरण मेरे लिए अनुवाद करके भेजे थे वे मुझे मिल गये थे।

वैसे एक-दो अनुच्छेदोंपर तो कुछ आपत्ति उठाना उचित भी हो सकता है, लेकिन आपने जिस प्रकार इन लेखोंकी हर बातकी भर्त्सना की है, उसका औचित्य मुझे दिखाई नहीं देता। पत्रकार तो अपनी दलीलोंको सजाते हुए कुछ चटपटी बातें लिखेंगे ही, उनका किसीको बुरा नहीं मानना चाहिए बशर्ते कि उनमें शिष्टताकी सारी मर्यादाओंका अतिक्रमण ही न कर दिया गया हो। फिर भी, अगर आपको कभी भी कोई ऐसी चीज दिखे जो बहुत ही आपत्तिजनक हो तो आप उसकी कतरनें भेज दें; फिर मैं सम्पादकको लिखूँगा। उन्होंने भाषाके प्रयोगके सम्बन्धमें बहुत सावधानीसे काम लेनेका वादा किया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० के० मेनन
मार्फत — श्रीयुत चम्पकलाल देवीदास
२६, दलाल स्ट्रीट फोर्ट
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४३) से।

६६. कस्तूरबा गांधीको लिखे पत्रका अंश

११ मार्च, १९३३

हरिलालकी क्यों चिन्ता करती है? वह पत्र नहीं लिखेगा। यदि उसकी शराबकी लत ईश्वरको पुसाती है तो हम क्या कर सकेंगे? ईश्वरको उसे जब सुधारना होगा तब सुधारेगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १८५

१. एक मलयाली दैनिक।

६७. पत्र : मूलचन्द पारेखको

११ मार्च, १९३३

हाथ और पैरका श्रम ही सच्चा श्रम है, और हाथ-पैरोसे मजदूरी करके ही आजीविका प्राप्त करनी चाहिए। मानसिक और बौद्धिक शक्तिका उपयोग समाज-सेवाके लिए ही करना चाहिए। हम हाथ-पैर न हिलाये तो क्या बुद्धिसे खेती करेगे? आग लगी हो तो क्या काव्य-रचना करके आग बुझायेगे?

'योग कर्मसु कौशलम्'[१] यह सच्ची बात है। शरीर और मनके कामका सुन्दर योग साधना चाहिए। मुसोलिनी लुहारका लडका था जिसने घरपर घोर परिश्रम किया था और 'युवावस्थामे एक कारखानेमे ईंटे लेकर १२० बार दूसरी मजिलपर चढानेकी मजदूरी की थी और ११ बार जेल गया था। मगर यही उसके लिए बडी तालीम हो गई। उस मजदूरीके दौरान उसका मन सो नही रहा था। अगर मन सो रहा होता तो इस तरह तो करोडो मजदूर ईंटे ढोते है और लाखो किसान खेती करते है, मगर उससे वे दुनियामें किसी तरहकी छाप थोडे ही छोड जाते है?

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १८४

६८. गुजरातियोंसे

'हरिजनबन्धु' अग्रेजी 'हरिजन' का गुजराती सस्करण है। गुजराती 'हरिजन' अग्रेजी सस्करणके साथ ही प्रकाशित नही हो सका यह आपके और मेरे, दोनोके लिए शर्मकी बात है। आपके लिए शर्मकी बात इसलिए है कि हरिजन सेवा सघकी बम्बई शाखाको भरोसा नही था कि 'हरिजनबन्धु' को इतने ग्राहक भी मिल सकेगे जिससे वह स्वावलम्बी बन सके। घाटा होनेपर, एक गुजराती सज्जनने उसे पूरा करना स्वीकार कर लिया था। किन्तु इस प्रकार घाटा उठाकर गुजराती 'हरिजन' कदापि नही निकाला जा सकता। मेरा आग्रह था कि यदि आरम्भमे कुछ घाटा हो तो भी बम्बई या गुजरात शाखाको उसकी पूर्ति करनी चाहिए। आखिर बम्बई शाखाने तीन महीनेतक प्रयोग करनेकी जिम्मेवारी लेकर 'हरिजनबन्धु'[२] का प्रकाशन

१. भगवद्गीता, २-५०। पत्र-लेखकने पूछा था : "क्या शारीरिक श्रम करनेवाले को ही श्रमजीवी कहा जायेगा? और जो बौद्धिक कार्य करता है उसे श्रमजीवी नहीं कहा जा सकता?

२. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ९-३-१९३३।

आरम्भ कराया है। मुझे आशा है कि गुजराती पहले ही सप्ताहमे बम्बई शाखाको इस तरफसे भयमुक्त कर देगे।

किन्तु 'हरिजनबन्धु' प्रकाशित करनेका उद्देश्य आपसे प्रति अकका एक आना या वार्षिक चार रुपये लेकर दो-चार अथवा अधिक लोगोके लिए आजीविका प्राप्त करना नही है। आपका चन्दा छुआछूतको मिटानेकी आपकी इच्छाका प्रतीक होगा या यदि आप सनातनी हैं तो इस मामलेमे सुधारक क्या कहते है यह जाननेकी आपकी इच्छाका प्रतीक होगा। मैं तो यह मानता हूँ कि 'हरिजनबन्धु' के ग्राहक अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके सम्बन्धमे जानकारी प्राप्त करनेका शुल्क देते हैं। यदि आप हिन्दू धर्ममे से अस्पृश्यतारूपी कलकको मिटाना चाहते है तो यह आन्दोलन क्या है, इसको चलानेवाले कौन हैं, आन्दोलन किस प्रकार चल रहा है, इस बारेमे शास्त्र क्या कहते है, दुनिया क्या कहती है, उसमे आप किस तरह भाग ले सकते है, यह सब आपको जानना चाहिए। और यह सब जानकारी आपको 'हरिजनबन्धु' देगा।

मुझे आशा है कि आपका एक आना व्यर्थ नही जायेगा। मुझे खुश करनेकी खातिर आप 'हरिजनबन्धु' नही खरीदेगें। मुझे भय है कि कुछ लोग तो मेरे प्रति अपने अन्ध प्रेमके कारण 'हरिजनबन्धु' की आवश्यकता न होनेपर उसे खरीदेगें। किन्तु मै ऐसा नही चाहता।

'हरिजनबन्धु' को प्रकाशनकी खातिर प्रकाशित करनेके लिए मै जरा भी उत्सुक नही हूँ। मेरे पास उतना समय नही हैं। उसमे मुख्यत अंग्रेजीसे अनुवाद रहेगे, इस कारण आप भडक न उठना। इस अनुवादमे आपको नवीनता नजर आयेगी। गुजरातियोको ही सम्बोधित करते हुए मुझे कुछ तो लिखना ही पडेगा। उसका थोडा-बहुत बोझ मुझे उठाना ही पडेगा। मेरे लिए 'हरिजनबन्धु' एक विशेष प्रायश्चित्त है। मै जी-जानसे इस आन्दोलनमे लगा हुआ हूँ। अस्पृश्यता-निवारण मेरे लिए आज-कलकी प्रवृत्ति नही है बल्कि जब मैने राजनीतिमें प्रवेश किया उसके पहलेकी है, बचपनकी है।

किन्तु यरवडा समझौतेके कारण यह प्रवृत्ति प्रतिज्ञाकी वस्तु बन गई है। मेरा उपवास मेरे लिए मृत्यु-शय्या थी। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलने उस समझौतेको स्वीकार किया यह तो उस प्रतिज्ञाका मात्र शाब्दिक पालन हुआ। किन्तु हिन्दू धर्मावलम्बियोकी ओरसे हिन्दू-प्रतिनिधियो द्वारा की गई प्रतिज्ञाका पालन उक्त समझौतेकी आत्मा थी और है, यह मैने उन नेताओको उसी समय समझा दिया था। मैने इस भरोसे उप-वास तोड़ा था कि इस प्रतिज्ञाका पालन प्रति क्षण होता रहेगा। उक्त प्रतिज्ञाके पालनमे मेरा शरीर बन्धकके रूपमे था और आज भी है। जिस क्षण मुझे ऐसा लगेगा कि प्रतिज्ञा करनेवाले शिथिल पड गये है उसी क्षण मुझे पुन. मृत्यु-शय्यापर लेट ही जाना चाहिए।

किन्तु मै मरनेके लिए उत्सुक नही हूँ। मै तो जीवित रहते हुए अस्पृश्यताका अग्नि-सस्कार करनेको उत्सुक हूँ। इस शुभ क्षणको देखनेके लिए यदि मुझे मरना

पड़े तो मैं मरनेको तैयार हूँ। इस तैयारीमे ही मेरे जीवन-रक्षणका मन्त्र है। अस्पृश्यता बनी रहे और मुझे जीना पड़े, यह तो जहरके प्यालेके समान है।

अब शायद आप और अच्छी तरह समझ गये होंगे कि 'हरिजन' अंग्रेजीमे और राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय भाषाओमे निकालनेमें किस प्रकार मेरा प्रायश्चित्त निहित है। या तो मुझे निरुपाय होकर मृत्यु-शय्यापर लेट जाना चाहिए या फिर मुझमें जितनी शक्ति हो उतनी शक्ति अस्पृश्यता रूपी रावणका वध करनेमें लगानी चाहिए। मृत्युशय्याके मौकेको टालनेके लिए 'हरिजन' आदि प्रवृत्तियाँ है। इसके द्वारा मेरा उद्देश्य हिन्दू जनताको सावधान करना है। प्रतिज्ञा-पालनका उत्तरदायित्व मुझपर भले अधिक हो किन्तु न्यूनाधिक मात्रामे इसका उत्तरदायित्व ऐसे प्रत्येक हिन्दूपर भी है जो अस्पृश्यताको पाप-रूप मानता है। 'हरिजनबन्धु' किसी हद तक यह बतायेगा कि उस उत्तरदायित्वको किस प्रकार उठाया जा सकता है।

यदि कोशिश की जाये तो सनातनियोको भी इसमे बहुत-कुछ मिल जायेगा। आज जो दुश्मन बन बैठे है, वे कल मित्र थे। धैर्यवान् सनातनियोके सामने 'हरिजनबन्धु' यह सिद्ध करेगा कि ऐसा करनेका कोई कारण ही नही है। इसमें किसीकी कटु आलोचनाको स्थान नही होगा। इसमे पूरी चर्चा केवल धार्मिक दृष्टिसे की जायेगी। मेरे विचारमे अस्पृश्यता-निवारण केवल धार्मिक प्रवृत्ति है। भले ही इसके अन्य बहुत-से परिणाम हो, भले उसमें से कुछ राजनीतिक भी हो। यदि इन सबका धार्मिक आधार न हो तो वे मेरे लिए मिथ्या है। मिथ्या वस्तुके लिए कारागारकी शान्तिका उपभोग करनेकी बजाय बाहर प्रचण्ड आन्दोलन चलानेका भार मैं कदापि नही उठाऊँगा। मर्यादाकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य ईश्वरने मुझे दी है। अत. मैं किसी भी स्थितिमे क्यो न होऊँ, मैं उससे रस ग्रहण कर सकता हूँ। कैदी होनेमें नुकसान हो सकता है किन्तु उसमे समझदार व्यक्तिके लिए आत्म-दर्शनसे मिलनेवाली शान्ति अवश्य निहित है। किन्तु फिलहाल मैं देखता हूँ कि कैदी होनेके बावजूद और कैदमें रहकर इस प्रचण्ड आन्दोलनको चलाते हुए मैं आत्म-दर्शन कर सकता हूँ। इसीलिए मैंने अपनी नीद बेचकर जागरूकताका सौदा किया है। हिन्दू धर्मकी शुद्धिके इस यज्ञमे आहुति देनेके लिए 'हरिजनबन्धु' प्रति सप्ताह हर गुजराती हिन्दूको आमन्त्रित करेगा।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १२-३-१९३३

६९. मरे ढोरोंका निबटारा[1]

हरिजनोमे ऐसे कई वर्ग है, जैसे दक्षिण भारतमे चक्किलियन और मडिगा तथा गुजरातमे चमार, जो मरे ढोरोको उठा ले जाते है, उन्हे ठिकाने लगाते हैं और उनका मास खाते है। मरे ढोरोको ठिकाने लगाना एक पवित्र कर्तव्य और पवित्र धन्धा है। लेकिन मुर्दार मास खाना एक अत्यन्त गदी आदत है, जिसे हिन्दू धर्म-ग्रथोमे एक महापाप माना गया है। यह निहायत जरूरी है कि आत्मशुद्धिके इस अवसर पर अपने हरिजन भाइयोको इस आदतसे छुटकारा पानेमे मदद की जाये। लेकिन कई कारणोसे वे ऐसा करनेमे अपनी असमर्थता प्रकट करते है। वे कहते है, "यह तो हमारी युगो-पुरानी आदत है। और अब तो वह हमारे लिए एक सुस्वादु व्यजन हो गया है जिसे हम उसी तरह नही छोड सकते, जिस तरह आप लोग अपने उत्तम मिष्टान्नोको नही छोड सकते। आपको यह भी जानना चाहिए कि मरे ढोरोको हटा कर ठिकाने लगाना एक ऐसा कर्तव्य है, जो हमे सौपा गया है और हम महाजनोके गुस्सेका खतरा उठाये बिना उसे छोड़ नही सकते। शायद आप जानते है कि मुर्दार मास मरे ढोरोको हटानेके मेहनतानेका एक हिस्सा होता है। इस तरह हम तीन कारणोसे मुर्दार मास खानेके रिवाजसे बधे हुए है।"

यह दलील विचार करने लायक है। लिखित और मौखिक अपीलोसे कोई लाभ नही होगा; हमे उन्हे इससे बाहर निकलनेका रास्ता बताना होगा। पहले हमे देशके विभिन्न भागोमे मरे ढोरोको हटानेकी मौजूदा हालतोसे स्वय परिचित होना चाहिए और परिस्थितियोका विचार करके उन्हे बदलवाना चाहिए। हमे मरे ढोरोका चमडा निकालने और उसके साथकी दूसरी क्रियाएँ अपनी निगरानीमे करवानी चाहिए और बचे हुए भागोकी ठीक व्यवस्थाका ध्यान रखना चाहिए। ढोर तभी हटवाना चाहिए जब उठानेवाले यह वचन दे कि वे मुर्दार मास नही खायेगे, और किसीको मरे ढोर उठानेके लिए मजबूर नही करना चाहिए।

इस कामके लिए काफी सख्यामे स्वयसेवक चाहिए। उन्हे सफाईके साथ मरे ढोरोका चमडा निकालनेकी कला सीखनी चाहिए और हरिजनोको, जो कि यह काम आज पुराने तरीकेसे करते हैं, सिखानी भी चाहिए। आजकी तरह मरे ढोरोको घसीटकर नही ले जाना चाहिए, क्योकि उससे उनके चमडेको नुकसान पहुँचता है। और उसकी कीमत घटती है। उन्हे उठाना चाहिए और ठीक ढगसे जल्दी ले जाना चाहिए। चमडा निकालने और साफ करनेवाले खुशीसे यह नया तरीका अपना लेगे, लेकिन तभी जब तथाकथित ऊँची जातियोके लोग उसमे निष्णात बन जायेगे।

१. इस लेखका अंग्रेजी अनुवाद किंचित् परिवर्धनके साथ १८-३-१९३३ के हरिजनमें भी प्रकाशित हुआ था और प्रस्तुत अनुवादको उससे भी मिला लिया गया है।

आज जिस ढगसे मरे ढोरोका निपटारा किया जाता है, वह आर्थिक दृष्टिसे वहुत ज्यादा हानिकारक है और उससे देशको हर साल करोडो रुपयेका नुकसान होता है। मरे ढोरके हर छोटेसे-छोटे भागका भी सही उपयोग होना चाहिए। आज उसका वहुत-सा भाग वरवाद हो जाता है। उसका चमडा, हड्डियाँ, आँते और मास सब-कुछ उपयोगी होता है, जिसका ठीक उपयोग किया जाना चाहिए। चमडेका तो कुछ हदतक उपयोग हो जाता है। लेकिन हड्डियाँ ज्यादातर वरवाद हो जाती है। उन्हे सावधानीसे इकट्ठा करना चाहिए और वैज्ञानिक रीतिसे उनका खाद बनाना चाहिए। आँते ताँतके तार आदि वनानेके काममे ली जाती है, लेकिन इसमे काफी सुधारकी गुजाइश है। आज मासका जो गदा उपयोग किया जाता है, उसे रोकना चाहिए और उससे चर्वी पैदा करनी चाहिए, जो कारखानोके लिए ग्रीज वनानेके लिए कीमती सावित होगी। वाकी बचे हुए हिस्सोका अन्तिम रूपसे खाद वना लिया जाना चाहिए। या जमीनमे गहरा गड्ढा खोदकर उन्हे गाड देना चाहिए। अगर स्वयसेवक इन सारी प्रक्रियाओके समय उपस्थित रहनेका निश्चय कर ले, तो यह काम करनेवाले लोग आसानीसे नया तरीका अपना लेगे और मुर्दार मास खाना छोड देगे।

लेकिन इसमे कही भी जोर-जबरदस्तीकी गुजाइश नही है। जहाँ चमडा उतारनेवाले लोग इस परिवर्तनके लिए तैयार न हो, वहाँ उन्हे अपनी मर्जीसे काम करने दिया जाये, उसमे कोई दस्तदाजी न की जाये। जिस तरह सवर्ण जाति-सस्थाओपर यह बधन नही है कि वे मरे ढोरोको उन्हीसे हटवाये, उसी तरह वे भी उन्हे हटानेके लिए बधे हुए नही हैं। यह बात आपसी समझौतेसे ही निबटानी चाहिए।

लेकिन स्वयसेवकोको इस दिशामे सारी प्रक्रियाओका निरीक्षण करनेसे आरम्भ करना चाहिए। बेशक, ऐसा निरीक्षण वही किया जाये जहाँ उसका विरोध न हो। जबतक स्वयसेवक खुद इन प्रक्रियाओपर पहले अधिकार न प्राप्त कर ले, तबतक इस निरीक्षण-कार्यको रोकनेकी जरूरत नही। प्रत्यक्ष कार्य अपने-आपमें ट्रेनिंगका काम करेगा।

नगरपालिकाएँ, स्थानीय सस्थाएँ और राज्य तुरन्त स्वयसेवकोको चमडा निकालने और कमानेकी ट्रेनिग देनेका काम हाथमे ले सकते हैं। इस काममे मकानो और निष्णातोके लिए थोडा खर्च तो जरूर करना पडेगा। उन्हे इस कामके लिए सचमुच एक प्रशिक्षण विद्यालय खोलना चाहिए और सहयोग, सुझावो और सहायताके लिए इस कामके परोपकारी निष्णातो और पशु-चिकित्सा करनेवाले सर्जनोको आमन्त्रित करना चाहिए।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १२-३-१९३३

७०. सत्यसे ही[1]

[१२ मार्च, १९३३][2]

मैंने हरिजन-सेवकके लक्षण इग्रेजी 'हरिजन'मे दिये है। मेरी आशा है कि सपादकजी उसका तात्पर्य दे चुके होगे, इस लेखको तो मै १२ मार्चको लिख रहा हू। जितना और सोचता हू इतना ही मुझे मालुम होता है कि यदि सचमुच यह आदोलन धार्मिक ही है और धर्म शुद्धि, धर्म रक्षाके ही लिये है तो उसमे असत्यका कुछ भी मिश्रण नहि होना चाहिये। सत्य ही एक धर्मकी सच्ची प्रतिष्ठा है। जब सत्य ही परमेश्वर है तो धर्ममे असत्यको स्थान कभी नहि हो सकता है। यह बात सब हरिजनसेवकको हृदयमे अकित कर लेनी चाहिये।

सनातनी अखबार और लेख मेरे पास काफी आते हैं। नये भी निकलते जाते हैं। सनातनीयोका धन इस काममे खूब लग रहा है। यह जागृति मुझे प्रिय लगती है। इसका सदुपयोग होता तो कैसा अच्छा रहता? दु खकी बात है कि इन अखबारोमे लेखोमे असत्य बहुत भरा है। किसी-न-किसी तरह इस आदोलनको रोकनेकी वे चेष्टा कर रहे हैं। इस असत्यका उत्तर कैसे दिया जाय?

असत्यसे कभी नहि। सत्य ही से इसका उत्तर हो सकता है। थोडे सनातनीयोने मेरे पास सुधारकोके बारेमे फरीयाद की है सही। वे कहते है सुधारक लोग असत्य चलाते है और सनातनीयोकी सभामे जाकर हल्ला मचाते है। सिवाय एक फरीयादके बारेमे मुझको कोई प्रमाण नहि भेजा गया है। मैंने मागा तो है। सनातनी लेखकोने मुझको कुछ प्रमाण नहि भेजे हैं उससे मै ऐसा भी ख्याल नहि करता हू कि कोई हरिजन-सेवक कुछ दोष नहि करता होगा। हरिजन-सेवकोमे दोष होनेका बहुत सभव है इसी कारण तो मै यह लेख लिख रहा हू।

मेरे मनमे सनातनी और सुधारक ऐसा भेद नहि है, दोनोसे मैं सत्यकी भिक्षा मागता हू। परतु सनातनी मुझको अपनेसे भिन्न मानते है, कोई मुझको दूष्मन भी समजते है इस लिये आज वे मेरा विनय नहि सुनेगे ऐसा मुझे डर है। सुधारक सुनेगे तो भी हमारा कार्य निपट जायेगा। क्योकि यह सनातन और निरपवाद नियम है कि असत्यका निवारण सत्यसे है ठीक उसी तरह जैसे अधेराका निवारण प्रकाशसे है। ऐसा नियम होनेके कारण हम समज सकते है यदि हरिजन-सेवक मात्र अपना सब कार्य सत्यसे ही करेगे तो सनातनीयोका दिल पीघल जायेगा, वे असत्य छोड देगे और हिदु धर्मकी रक्षा हो जायेगी। \

मैं इतनी प्रतिज्ञा अवश्य करूगा कि हिंदु धर्मका अथवा किसी धर्मका नाश किसीके आक्रमणसे कभी नहि हो सकता है। यह स्वयसिद्ध नियम है। जिसका नाश

१. इसका सम्पादित रूप हरिजनसेवकमें १७-३-१९३३ को प्रकाशित हुआ था।

२. गाधीजी का कहना है कि उन्होंने इसे इसी तिथिको लिखा था।

कोई भी बाह्य शक्तिसे हो सकता है वह धर्म नहिं। वह भले सामाजिक व्यवहार हो। धर्मका नाश उसके भीतर कुछ गदगी पैदा होनेसे ही हो सकता है। अस्पृश्यता हिंदु धर्ममे एक ऐसी गंदगी है। उसका नाश न करे तो हिंदु धर्मका नाश निश्चित है। अस्पृश्यता महा असत्य है। उसका निवारण स्पर्शसे है। अस्पृश्यता हमारे दिलमें है। यह आदमी अस्पृश्य जातिका है इसलिए उसका मै स्पर्श नहिं करुगा ऐसे मानना घोर पाप है। इसमे घृणा भरी है, अहंकार है, उच्च-नीच भाव है। यह सब अधर्म है, असत्य है। मुझे ज्ञान है कि असत्यका समर्थन सत्यसे नहिं हो सकता है, घृणाका समर्थन प्रेमसे नहिं हो सकता है, अहकारका निरहकारसे नहिं हो सकता है। यही कारण है कि आज मैं सनातनी अखवारोमे घृणा, अहकार, असत्य देख रहा हू, मुझे सनातनी पूछेगे "क्या ऐसा कहनेमे निजी असत्य, घृणा, अहंकारका दर्शन तुम ही नहिं कराते हैं?" हो सकता है। मै तो इतनी प्रतिज्ञा कर सकता हू कि मुझे ऐसा ज्ञान नहिं है, मुझे ज्ञान होगा तव मैं उसी समय उसका त्याग कर दूंगा। अपना दोष देखनेके लिये मै टीकाकारोको आदरसे मिलता हूँ, सुनता हूँ, वे लिखते है उसको एक हद तक पढ लेता हूँ। जितना मैंने प्रयत्न किया इतना ही ज्यादा मैंने असत्यादि दोषोका दर्शन उन टीकाकारोमे किया है। मेरे इस दुखकी कथा मै यहा लिखना नहिं चाहता हूं।

इस लेखका उद्देश्य इतना ही है कि हरिजन-सेवक असत्यसे, अहकारसे, घृणासे वचे, अतिशयोक्ति भी असत्य है। मेरे पास रिपोर्ट आ जाते हैं, "इतने मन्दिर खुले, इतने कुए खुले इ०।" तलाश करने पर पता चलता है कि उतने मदिर नहिं खुले, उतने कुए नहिं खुले। उसमे से थोड़े ऐसे भी थे जो केवल भ्रम पैदा करनेके लिये खुले थे। पीछे वध कीये गये। ऐसा होना नहिं चाहिए। यदि लोग मदिरादि खोलनेके लिए तैयार न हो तो हम वलात्कारसे खुलवाना नहिं चाहते है। जिसका पालन स्वेच्छासे किया जाय वही धर्म हो सकता है। मदिरादिके खोलनेमे शुद्धि है ऐसा मानें वही खोले तव लाभ हो सकता है। इसलिये जितना कार्य किया जाय वह सव पक्का और शुद्ध होना चाहिए। जो रिपोर्ट भेजा जाय वह सच्चा ही हो। और कोई मदिर या कुआ खुलकर वध भी हो जाय तो उसका स्वीकार करनेसे अच्छा ही होगा। अस्पृश्यता नीकल गई ऐसा कहनेसे अस्पृश्यता नीकली ऐसा कुछ नहिं है। और सचमुच नीकल जायगी उसकी डाडी पीटनेकी आवश्यकता नहिं होगी। मदिरादि खुलनेकी सच्ची खवर फैलानेका लाभ इतना हि है की दूसरोको प्रोत्साहन मिले अस्पृश्यता निवारण सघोको प्रवृत्तिकी गतिका पता चलता रहे।

ऐसे भी मेरे साथी है जो मुझ पर प्रेमके कारण और मेरे अनशनव्रतके भयसे कुछ ज्यादती कर लेते है, कुछ अतिशयोक्ति कर लेते है। उनको मैं सावधान करना चाहता हूं। उनका प्रेम प्रेम नहिं मोह है। और ऐसे अव प्रेम करनेवाले मेरा अनशनको रोकेंगे नहिं वल्कि अनशनको आगे लायेंगे, ज्यादा शक्य वनायेगे। मेरी जान वचानेके लिये भी असत्यका प्रयोग न किया जाय।

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६०) से।

७१. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

१२ मार्च, १९३३

चि० कुसुम (देसाई),

अबतक तो तू छूट गई होगी। फिर भी तेरा कोई पत्र नही मिला यह क्या बात है? क्या कोई व्रत लेकर बाहर निकली है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८४८)से।

७२. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी ९ तारीखकी डाक मिल गई है। यह तुम्हे मगलवारको मिल जायेगा इस आशासे भेज रहा हूँ।

रमाबहनका पोस्टकार्ड मुझे मिला है। वह लिखती है कि तुम अभीतक उसके पास नही गये हो। अग्रेजीके पठन-पाठनके बारेमे तो तुम मुझसे विचार-विमर्श करना किन्तु रमाबहनके पास जानेके बारेमे मैंने तुम्हे जो पत्र लिखा था, मेरे खयालसे, उसका तात्पर्य तो यही है कि इस सम्बन्धमे मुझसे विचार-विमर्श करनेकी आवश्यकता नही है। रमाबहनने मुझसे कहा था और उसके पोस्टकार्डसे भी यही ध्वनि निकलती है कि तुम उसके पास कभी नही जाओगे। मैंने उससे कहा है कि यह असम्भव है। अब तुम मेरे उक्त कथनको सही सिद्ध करना।

क्या बाबला[1] मगन हौजमे डूबते-डूबते बचा था? यह कब और कैसे हुआ?

परचुरे शास्त्रीके बारेमें तुम्हारा तार शुक्रवारको मिल गया था। यदि सभीनें स्वतन्त्र निर्णय लिया होगा तो मैं इसे बहुत अच्छी बात मानूँगा। परचुरे शास्त्रीको काकाने यह बता भी दिया है। अभी तो वे अपने गाँव गये हैं। जो-कुछ होगा तुम्हे लिखूँगा। आशा है लक्ष्मीका विवाह निर्विघ्न निबट गया होगा। वर-वधू यदि मुझसे मिलना चाहे तो आकर मिल जाये। मैं समझता हूँ मारुतिकी ऐसी इच्छा है।

आशा है, कलकी डाक मिल गई होगी। उसमें मैंने आनन्दीके बारेमे लक्ष्मीदासको लिखा है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३३ से भी; सौजन्य नारणदास गाधी

१. नारायण देसाई, महादेव देसाई के पुत्र।

७३. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

१२ मार्च, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,[1]

तेरा पत्र मिला। मै तेरे पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा था। तेरा यह लिखना ठीक है कि आश्रमके पुस्तक-सग्रहमें बहुत-सी बेकार पुस्तके है। यदि मैकफैडनकी[2] कोई पुस्तक वहाँ न हो और कहीसे मिल भी न सके तो तुझे पुस्तक खरीद लेनी चाहिए। अन्य पुस्तकोपर भी नजर डाल देना। गौरीशकरके अनुभवका पूरा लाभ उठाना। जमना[3] और चिमनलालपर[4] अपना प्रयोग अवश्य करना। उसमे हानि पहुँचनेका तो कोई खतरा है ही नही। तू धैर्यपूर्वक अपना प्रयोग करना। इसीसे तुझे काफी अनुभव हो जायेगा।

मुझे पत्र लिखता रहना। यदि तू मुझे वहाँकी पुस्तकोकी सूची भेज देगा तो मै यह बता सकूंगा कि उसमे कितनी पढने योग्य है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०९) से। सौजन्य · नारणदास गाधी

७४. पत्र : गुलाब ए० शाहको

१२ मार्च, १९३३

चि० गुलाब,

पहले कमीज-पतलून पहनना और जब मरजी हुई तब घाघरी-ओढनी पहनने लग जाना उचित नही है। पतलूनसे तेरा मतलब जाँघिया ही है न? यदि तू एक ही तरहकी पोशाक पहने तो अच्छा हो। यदि तेरा उच्चारण सुधर गया हो तो खेतीका काम करते हुए तुझे 'गीता' घोखनी चाहिए। शिक्षककी अनुमतिके बिना तू पुस्तक अपने पास नही रख सकती।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १७३५)से।

१. नारणदास गाधीके पुत्र।
२. बर्नार मैकफैडन; अमरीकी लेखक तथा दूधकी खुराकके हिमायती।
३. पुरुषोत्तम गाधीकी माताजी।
४. एक आश्रमवासी।

७५. पत्र : रमाबहन जोशीको

१२ मार्च, १९३३

चि० रमा,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। तुम धीरज मत छोड़ना। नारणदास आकर तुम्हे अवश्य देखेगा। उससे जानेके लिए कहना मेरा कर्त्तव्य है और उसका कर्त्तव्य तुम्हे जाकर देखना है। तुम्हारा कर्त्तव्य उसे न बुलाना और यदि वह आना चाहे तो उसे रोकना है। सामाजिक मधुरताको इसी प्रकार निभाया जा सकता है। किन्तु अब तो परख लेनेके बाद ही तुम भले अगला कदम उठाना। इस बीच चिन्तित मत होना। आशा है, तुम्हारा हाथ ठीक हो गया हो।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४३) से।

७६. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१२ मार्च, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरी दलील एम० ए० को शोभा दे ऐसी ही है। 'कोई औंधे सिर लटके तो मैं क्यो न बाजा बजाऊँ?' इस तरहके प्रश्न रचने हो तो रचे जा सकते है। और उत्तर यही मिलेगा कि ऐसा न करनेका कोई कारण नही मिल सकता। एक आदमी एक काम कर सकता हो तो दूसरा आदमी दूसरा काम क्यो न करे?

परन्तु यह जरूर है कि कुछ लोग स्वय औंधे सिर लटके, तो अपने इस कार्यका भी दूसरोके समझने लायक कारण वे बता सकते है; अपने औंधे लटकनेवालो को देखकर मेरे-जैसे जो लोग बाजा बजाने बैठ जाये, सम्भव है, वे अपने बाजा बजानेका कारण किसीके गले न उतार सके। मगर ठीक है। अब तू आश्रमवासियोके सामने अपना प्रस्ताव रखना और उसके पक्षमे बहुमत हो तो जरूर सारी तैयारियाँ कर लेना। मै ठहरा कैदी, इसलिए मुझसे तो उस बारातमे आया नही जा सकता। और कैदीको तो मताधिकार नही होता, इसलिए मुझसे पूछनेकी भी जरूरत नही हो सकती। इस तरह जो सिद्ध करना था वह सिद्ध हो गया।

धुरन्धरके पत्रकी राह धैर्यपूर्वक देखूँगा।

तू उत्तर दे या न दे, मै तो तेरे स्वास्थ्यके विषयमें पूछता ही रहूँगा। बोल, तबीयत अच्छी रहती है न? गला ठीक है या नही? कमर दुखती है? वजन बढ रहा है?

तेरी पूनियोका जो सूत मै कात रहा हूँ उसे देनेका समय जब आयेगा तब यदि तेरी योग्यता बनी रही तो तुझे जरूर दूंगा। इस उत्तरको तो तू ठीक मानेगी न? सूतका अक ७५ से ऊपर नही जा सकता। पूनियोमे गाँठे काफी है। सम्भव है देव-कपासके लिए केशूका यन्त्र भी पूरा काम न देता हो। देव कपास साधारण पीजनसे तो धुनी ही नही जाती, यह तू जानती है न?

महादेवको बुरा लगा है इसका मुझे जरा भी पता नही। महादेवने कुछ लिखा है यह भी मै नही जानता था। नारणदासके पत्रसे मैंने इस विषयमे कुछ जाना। तिरस्कारकी बात तो तेरे पत्रसे ही मालूम हुई। महादेवसे इस सम्बन्धमे मेरी कोई बात नही हुई। मैंने जब महादेवसे तेरी पूनियाँ कातनेको कहा तब उन्हे धर्म-सकट मालूम हुआ, यह भी मै नही जानता था।[1] इसमें मुझे तेरी बात बिलकुल सच लगती है। तेरे लिखनेके ढगमे या माँगमे मुझे तिरस्कारकी गध तक नही लगी। मुझे पता नही कि महादेवको यह गध कहाँसे आई। इस समय तो मेरा मौन है, नही तो पूछता। तेरी माँगमे मैंने मोह जरूर देखा। मेरे प्रति मोह कैसा? जो किसीका बनने योग्य न रहे, जो रोज सबका बननेका ही प्रयत्न करे, उसके विषयमे मोह त्याज्य है, निरर्थक है। परन्तु यह एक बात है। इसमें से दूसरेके प्रति तिरस्कारका भाव निकालना बिलकुल दूसरी बात है।

सरदारके वचनमे तो उनके स्वभावके अनुसार विनोद ही था, ऐसा मै मानता हूँ।

अब यह देख कि तेरे प्रेमकी मैंने कैसी कदर की। तेरी पूनियोका मुझे वही उपयोग करना चाहिए न, जिसे मै अच्छेसे-अच्छा मानूं? उसीमे प्रेमकी कदर मानी जायेगी न? कोई वैद्य बहुत प्रेमसे मेरे लिए सुवर्ण-भस्म भेजे और उसका मेरे लिए जितना उपयोग हो उसकी अपेक्षा मेरे पडोसीके लिए अधिक उपयोग हो, तो भस्म उसे दे देना क्या ठीक नही होगा? अथवा कोई मेरे चलानेके लिए गाडी भेजे, और मेरा पडोसी मेरी अपेक्षा उसे अधिक सुरक्षापूर्वक चलाए इसलिए उसे चलाने देकर मै उसका उपयोग करूँ, तो मैंने दानीके प्रेमकी सच्ची कदर की ऐसा माना जायेगा न? यही बात पूनियोकी है। ऐसी बढिया पूनियोका सबसे अच्छा उपयोग हमारी मडलीमे महादेव कर सकते है। इसलिए मैंने उन्हे आधी कातनेको दे दी। इससे उनकी शक्तिका पता लगेगा, देशका धन बढेगा और मेरा सन्तोष बढेगा। इसलिए तुझे यह चाहनेका अपना स्वभाव बदलना चाहिए कि जिसे तू भेंट भेजे उसीको उसका उपयोग करना चाहिए। भेंट देनी हो तो बिना किसी शर्तके देनी चाहिए। तुझे सुशीलाने जो उपाधि दी वह सच्ची थी। किसनके लिए दिये गये फल

१. प्रेमाबहनने पूनियोंका एक पार्सल उपहारस्वरूप गांधीजी को भेजा था। जिस पर "पू० महात्माजी के लिए" लिखा हुआ था। अतः उन पूनियोंको कातना महादेवभाईको उचित नहीं जान पड़ा।

वह समयपर न पा सके, तो तेरे खा लेनेमे ही सुशीलाकी और किसनकी सेवा थी। उन्हे सड़ने देनेमे तेरी मूर्खता थी। दूसरी समस्या हल हुई।

तेरे अन्तिम प्रश्नका उत्तर नही दिया जा सकता। इसलिए लाचार हूँ।

आशा है, लक्ष्मीके साथ तूने खूब बाते की होंगी।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३४०) से। सी० डब्ल्यू० ६७६९ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

७७. पत्र : लक्ष्मीबहन ना० खरेको

१२ मार्च, १९३३

चि० लक्ष्मीबहन,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। तुम्हारी लिखावटको खराब कौन कह सकता है? मेरी अपेक्षा तुम्हारी लिखावट तो बहुत अच्छी मानी जाएगी, अतः मुझे अवश्य लिखती रहना। इस बार तो तुमने महज मुझे रिझानेके लिए ही लिखा था।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८२) से। सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे

७८. पत्र : मैत्री गिरिको

१२ मार्च, १९३३

चि० मैत्री,[1]

तेरा पत्र मिला। कोष्ठबद्धताके लिए क्या तूने विरेचन लेकर देखा है? विरेचन लेनेके बावजूद यदि कोष्ठबद्धता बनी रहे तो बिना तेलकी हरी सब्जियाँ और दूधपर रहकर देख। दूध कच्चा ही लेना।

दुर्गा[2] क्यों चुप लगा गई है? इधर महावीरका[3] पत्र भी नहीं मिला है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२३८) से।

१. नेपालके कांग्रेसी कार्यकर्ता खड्गबहादुर गिरिकी कन्या।
२. मैत्रीकी बहन।
३. मैत्रीका भाई।

७९. पत्र : भगवानजी पी० पण्ड्याको

१२ मार्च, १९३३

चि० भगवानजी,

तुम हरिजनोके बीच अच्छे घुसे। मै चाहता हूँ कि तुम अब इस कामको न छोडो। अपना विश्वास न खोना। भंगियोके परिवारोमें घुलना-मिलना। जब तुम उनका प्रेम प्राप्त कर लो तो जूठन खानेकी उनकी आदत छुडाना। वे लोग जहाँ काम करते है उन परिवारोके नाम और उनका ठिकाना आदि जान लेना जिससे जूठन न देनेकी बात उन्हे भी समझाई जा सके। अपने अनुभव मुझे लिखते रहना। तुमने शायद देखा होगा कि तुम्हारे पहले पत्रका उपयोग मैंने अंग्रेजी 'हरिजन' मे किया है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५३) से। सौजन्य : भगवानजी पी० पण्ड्या

८०. पत्र : विद्या आर० पटेलको

१२ मार्च, १९३३

चि० विद्या,

खेतीका काम करते हुए 'गीता' अवश्य कठस्थ की जा सकती है किन्तु उच्चारण खराब हो तो कंठस्थ नही करनी चाहिए। उच्चारण तो शिक्षकसे ही सीखना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६३४) से। सौजन्य . रवीन्द्र आर० पटेल

८१. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

१२ मार्च, १९३३

चि० गंगाबहन (वैद्य),

तुम्हारा सुन्दर पत्र मिला। हम नही मिले क्योकि यही हमारा धर्म था, और धर्मका पालन करके हमे सदा प्रसन्न ही होना चाहिए।

इस बारका तुम्हारा अनुभव अच्छा रहा। पढाई भी ठीक हुई और तुम्हारा शरीर भी स्वस्थ रहा। तुम्हारे बारेमे मीराबहनने तो लिखा ही था। उसके बारेमे तुम्हें जो अनुभव हुआ हो वह मुझे लिखना।

सभी जेलोंमे पत्रोके मामलेमे ऐसा ही हुआ करता है। इस मामलेमे फिलहाल कुछ बहुत सुधार होनेकी आशा मैंने छोड़ दी है। यदि वे हमे कोई पत्र ही न लिखने दे तो क्या हम उसे स्वीकार नही करेगे; अतः जो मिल जाये हमे उसीसे सन्तोष कर लेना चाहिए। कैदीका मतलब है जिसके शरीरका पूरा अधिकार कैद करनेवाले ने ले लिया हो। और जो लोग स्वेच्छासे यह कैद भोगते है वे तो जानते है कि यदि उन्हे खाने-पीनेको न मिले तो वे उसे भी सुख माने। यह 'गीता'की कला है।

आशा है, इससे पहलेका मेरा पत्र मिला होगा। मै तुम्हारे पत्रोकी उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करता रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो-६ : गं० स्व० गंगाबहेनने से। सी० डब्ल्यू० ८७९८ से भी; सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

८२. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ मार्च, १९३३

मैंने आज सुबह एक पत्र लिखकर डाकमें डाला है। आशा है, वह निकल गया होगा। अत. कुछ विशेष लिखनेको नही है। आशा है, तुम रमाबहनसे मिले होगे।

देवदास वहाँ पहुँच गया होगा।

बापू

कुल १६ पत्र है, जो सभी एक साथ नत्थी है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३२ से भी, सौजन्य. नारणदास गाधी

८३. तार : माणिकबाई मेहताको

१३ मार्च, १९३३

माणिकबाई[1]
१२१, मुगल स्ट्रीट
रंगून

तार मिला। धैर्य रखें। मै भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ।[2]

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल न० २०-१०।

१. स्वर्गीय डॉ० प्राणजीवन मेहताकी पत्नी।

२. डॉ० प्राणजीवन मेहताकी जायदादके विभाजनके लिए। देखिए "पत्र : नानालाल के० जसानीको", २७-३-१९३३।

८४. पत्र : एफ० मेरी बारको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय मेरी,

यह पत्र मुझे बोलकर ही लिखवाना पड़ेगा। तुम्हारा वह पत्र मिला जिसमें तुमने बाबलाके पराक्रमोंका वर्णन किया है। वह कई तरहसे एक अकालप्रौढ़ बच्चा है। इसलिए तुम देखोगी कि उसने तरह-तरहकी छुट-पुट बाते ग्रहण कर ली हैं और उनमें से अधिकाश काफी ठीक तरहसे ग्रहण की है। अगर तुम उससे पूछो तो हो सकता है वह तुम्हे यह भी न बता पाये कि ये बाते उसने कहाँसे ग्रहण की, क्योकि इस तरहसे बातोंको ग्रहण करनेके पीछे कोई सचेतन प्रयास नही रहता।

यह जानकर खुशी हुई कि तुम बाहर सोती हो। अपने वर्षोंके अनुभवके बाद मैं कह सकता हूँ कि मनको शीतलता प्रदान करनेके लिए खुलेमें सोने-जैसी कोई चीज नही है — यहाँतक कि मच्छरदानीका ऊपरी साया भी मुझे बाधा-जैसा लगा है, मानो आकाशसे मेरे सीधे सम्पर्कके मार्गमे कोई व्यवधान उपस्थित हो गया हो। इसका मतलब यह नही कि अगर खुले आसमानके नीचे सोनेमें भी तुमको मच्छर तकलीफ दे तो तुम मच्छरदानी न लगाओ। अगर मच्छर तुम्हें तग करें तो मच्छर-दानी अवश्य लगाओ। मैं नही चाहता कि आश्रममे रहते हुए तुम मच्छरोके काटनेसे मलेरियाकी शिकार हो जाओ।

जबतक मजबूत और एकसार सूत निकालनेमे सिद्धहस्तता प्राप्त न हो जाये तबतक चाल बढानेके पीछे न पडकर तुम बिलकुल ठीक और समझदारीका काम कर रही हो। जब तुम इन दोनो चीजोको साध लोगी तब चाल तो तनिक-से प्रयाससे बढ जायेगी।

मैं किसी खतरे या कठिनाईसे घिरा हुआ हूँ, इसका मुझे कोई बोध नही है; सो तुम किसी पूर्व-चिन्तासे परेशान मत होना। बस एक कदम आगेकी चिन्ता करो — यह आदेश ऐसा है जिसकी उपेक्षा हमे कभी नही करनी चाहिए।

परशुराम द्वारा बोलकर लिखाई तुम्हारी हिन्दीका नमूना मुझे अभीतक देखनेको नही मिला है। मिलने पर मैं उसकी जाँच करके नतीजा तुम्हे बता दूँगा।

आशा है, तुम्हारे और डकनके सयुक्त पत्रका तुम दोनोको एक ही साथ दिया मेरा उत्तर[1] तुम्हे मिल गया होगा।

सस्नेह —

हृदयसे तुम्हारा,

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९९) से। सी० डब्ल्यू० ३३२४से भी, सौजन्य: एफ० मेरी बार

१. देखिए "पत्र: एफ० मेरी बार और डंकन ग्रीनलीजको", ८-३-१९३३।

८५. पत्र : गौरीशंकर भार्गवको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय गौरीशकर,

राजस्थान दलित वर्ग सम्मेलन (राजस्थान ऑप्रेस्ड क्लासेज कार्फ्रेंस)के प्रस्तावके साथ आपका पत्र मिला। मुझे लगता है कि 'टाइम्स ऑफ इडिया'की वह रिपोर्ट[1] मैं नही देख पाया। इतना तो है ही कि मुझे उसका स्मरण नही है। फिर भी, मुझे इस बातकी खुशी है कि आपने उस ओर और वहाँके हरिजन भाइयोकी भावनाओ की ओर मेरा ध्यान दिलाया है। मैं चाहता हूँ कि आप उन्हे 'हरिजन' शब्दके उद्‌भवके बारेमे, जैसाकि वह 'हरिजन'के सबसे पहले अंकमें बताया गया है,[2] समझाये। इस शब्दपर लोगोकी अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हुई है। जिन लोगोने मुझे पत्र लिखे है, उनमे से अधिकाश तो इसे पसन्द ही करते है। आखिरकार इसे स्वय कुछ हरिजनोके सुझावपर ही तो अपनाया गया था और जिन लोगोने यह नाम सुझाया वे खुद प्रतिनिधि थे।

जहाँतक इस सुझावका सम्बन्ध है कि सारा आन्दोलन 'दलित वर्गोके हाथोमे छोड दिया जाना चाहिए' और एक या अधिक बोर्ड केवल उनका मार्गदर्शन करके ही उन्हें सहायता पहुँचाये, यह व्यावहारिक नही है, क्योकि प्रायश्चित्त तो सवर्ण हिन्दुओको करना है और इसलिए इस आन्दोलनका सचालन करके अपनी सदाशयताका परिचय देना उन्हीका कर्त्तव्य है। इसमे सन्देह नही कि अगर सम्भव हो तो उसपर हरिजनोकी सहमति भी प्राप्त की जानी चाहिए। लेकिन प्रायश्चित्त किसी प्रतिनिधिको नही, बल्कि खुद उसे करना है जिसके हृदयमे पश्चात्तापकी भावना जागी है। यदि इस आन्दोलनके साथ-साथ हरिजन भी कोई सुधार-आन्दोलन करे तो यह मै समझ सकता हूँ और ऐसा आन्दोलन होना भी चाहिए। सवर्ण हिन्दुओ द्वारा हृदयसे किये गये पश्चात्तापका स्वाभाविक परिणाम भी यही होना चाहिए।

जहाँतक तीसरे सुझावका सम्बन्ध है, मुझे यह मालूम नही कि श्रीयुत शारदा बोर्डके वाजिब प्रतिनिधि है या नही। उसके सम्बन्धमे आप केन्द्रीय बोर्डको लिखे।

१. यह रिपोर्ट २ मार्चके टाइम्स ऑफ इंडियामें प्रकाशित हुई थी। इसमें कहा गया था कि सम्मेलनमें गांधीजी की आलोचना की गई। गौरीशंकर भार्गवके अनुसार यह सम्मेलनकी कार्यवाहीका गलत विवरण था।

२. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ २९१।

चौथी और अन्तिम बात यह कि अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका कार्यक्रम किसी भी अर्थमें केवल मन्दिर-प्रवेश तक ही सीमित नहीं है। इसका उद्देश्य इन वर्गोंकी आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक अवस्थामें भी सुधार करना है। मन्दिर-प्रवेश कार्यक्रमका एक हिस्सा है और ऐसा माना गया है कि इससे हरिजनोंको न केवल धार्मिक समानताका दर्जा मिलेगा, बल्कि आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रमको गति प्रदान करनेमें भी यह सहायक होगा। आप सभी हरिजन भाइयों तथा जिन अन्य लोगोंकी आशकाएँ आपने अपने पत्रमें व्यक्त की है उन सबको भी यह समझा दें। इन विभिन्न मुद्दोंकी ओर मेरा ध्यान दिलाकर आपने बहुत ठीक किया।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५६२) से।

८६. पत्र : नी० को

१३ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

समय बचानेके लिए यह पत्र मैं बोलकर लिखवा रहा हूँ और तुमको किसीसे कुछ छिपाना भी तो नहीं है।

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई, हालाँकि वह अपेक्षाकृत देरसे आया। अभी पिछले दिनों ही तुम्हें रामचन्द्रके पतेपर पत्र लिखा था, और इसे भी उन्हींकी मार्फत भेज रहा हूँ। जबतक तुम किसी और पते पर भेजनेको नहीं कहोगी, यही चलाता रहूँगा।

यह जानकर खुशी हुई कि तुम हरिजन बस्तीमें चली गई हो और मकान-मालकिनसे तुमने सब-कुछ तय भी कर लिया है। तुम्हें अपना दिन-प्रतिदिनका कार्यक्रम मुझे विस्तारसे बताना चाहिए। जितनी बातचीत नितान्त आवश्यक हो उससे अधिक बातचीत बिलकुल न करो और तुमको सभी सेवाकार्योंमें एस०[1] की भी दिलचस्पी पैदा करनी चाहिए। अगर तुम उसे यह समझाती जाओगी कि वह क्या और क्यों कर रहा है तो वह उसके लिए सबसे सच्ची शिक्षा होगी। इसके अलावा तुम उसे जितनी दे सकती हो उतनी किताबी शिक्षा तो दोगी ही।

मुझे बताना कि तुम्हें खानेको क्या मिलता है और नहाने, कपड़े धोने आदिके लिए कैसी और क्या व्यवस्था है और तुम कपड़े खुद धोती हो या नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुमने अपनेको जिस परीक्षामें डाला है उसमें तुम शत-प्रतिशत अंक प्राप्त

१. नाम नहीं दिया जा रहा है।

करो। हम अक्सर तुम्हारी चर्चा करते है और तुम्हारे बारेमें सोचते है। मेरी प्रार्थनाएँ सदा तुम्हारे साथ है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५७१)से।

८७. पत्र : रामचन्द्रको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे खुशी है कि वहाँ जो-कुछ हो रहा है, उससे तुम मुझे अवगत रखते हो। अगर नी० छावनीमे नही रह सकती तो उसे तुरन्त जगह बदल लेनी चाहिए। अगर वह बगलोरमें कही नही रह सकती तो उसे पूनामें रहना चाहिए। जबतक वह इस अग्नि-परीक्षाको पार नही कर लेगी, तबतक मै उसे कही और नही भेज सकता।

मकान-मालकिनके लिए क्या किया जा सकता है, मै नही जानता? यह तो है ही कि नी० मूलत जिम्मेदार है, मगर यही बात मकान-मालकिनपर भी लागू होती है। उसे अग्रिम अदायगीका आग्रह करना चाहिए था और अगर वह यह नही करना चाहती थी तो उसे कमसे-कम साप्ताहिक अदायगीका आग्रह तो रखना ही चाहिए था। अब तो मै यही सुझा सकता हूँ कि जो नौजवान नी० के इर्दगिर्द मँडराते रहते थे वे आपसमे चन्दा करके, तनिक शर्म खाकर, मकान-मालकिनका पूरा या कुछ कर्ज चुका दे।

साथमे नी० को पत्र भेज रहा हूँ। अगर आप चाहे तो इसे भी पढ सकते है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५७०) से।

८८. पत्र : एस० नागसुन्दरम्को

१३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

सरकार तथा विधायक सदनोंके नाम जारी की गई मुद्रित अपीलकी प्रतिके साथ भेजे आपके इसी महीनेकी १० तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० नागसुन्दरम्
पहली मंजिल, लक्ष्मी निवास
किंग्स सर्किलके निकट
माटुंगा, बम्बई-१९

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५६५) से।

८९. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० विधान,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। १२ ग्राहकोंके नाम मैंने प्रबन्ध विभागको दे दिये हैं। पैसे शायद वहाँ प्राप्त कर लिये गये होंगे। मैंने यह निर्देश भी दे दिया है कि सतकौड़ी बाबूको आपके दिये पतेपर हर हफ्ते १०० प्रतियाँ भेज दी जायें। सारे पैसे अग्रिम चुका दिये जानेकी अपेक्षा की जाती है। इसलिए आप सख्त निर्देश दे दें कि हफ्ते-दर-हफ्ते १०० प्रतियोंके पैसे भेज दिये जायें और जब उन लोगोंको इन प्रतियोंकी जरूरत न हो तो तार द्वारा सूचित कर दें।

हृदयसे आपका,

डॉ० विधानचन्द्र राय
३६, विलिंग्डन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५६९) से।

९०. पत्र : सत्यमूर्तिको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय सत्यमूर्ति,

मेरे नाम हिन्दीमे नन्ही कमलाके लिखे पत्रके साथ आपका पत्र पाकर खुशी हुई। उसका विचार है कि वह तो इतनी छोटी है कि मेरी लड़की हो नही सकती, इसलिए मेरी पोती ही बन गई है। आपको हिन्दी सीखनी चाहिए — और किसी कारण नही तो विनोदका आनन्द लेनेके लिए ही। और आपकी प्रतिभाको देखते हुए मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप विनोदको समझने लायक हिन्दी महीने-भरमे सीख लेंगे। फिर, अब तो दक्षिणमे हिन्दी शिक्षकोकी एक पूरी फौज ही मौजूद है। फिलहाल तो यह बात मै कमलापर ही छोडता हूँ कि आप साथका पत्र उसे दे तो इसमे किया गया विनोद वह आपको समझाये और अगर न समझा पाये तो उससे वे सोनेके झुमके छीन लीजिए। सरदार साहब कहते है कि अब आपको फिरसे बिलकुल ठीक और तगडे हो जानेमे जरा भी देर नही करनी चाहिए। हम सब भले-चगे और जैसा कि आप समझ सकते है, खासे व्यस्त है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५६८) से।

९१. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

१३ मार्च, १९३३

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। मुझे तो आप जितना भी दे सकें उतने से ही सन्तोष करना है। अतः आपसे जितना कहा जा सकता है उतना कहकर मुझे चुप हो जाना चाहिए। रमाबहनकी जो स्थिति है वही आप मेरी समझे। यदि कोई चीज उसे आपसे न मिले तो उसके लिए मेरे-जैसे व्यक्तिके सामने वह अपना दुखड़ा थोड़े ही रोनेवाली थी?

आप शायद यह समझते है कि आप अमरपट्टा लिखाकर लाये है इसलिए जनताको कोई नुकसान नही होगा। किन्तु बात यह है कि जहाँ राजाके हस्तक्षेपकी आवश्यकता है वहाँ उन्हे अवश्य हस्तक्षेप करना चाहिए। 'राजा' का अर्थ भले उनकी

कार्यकारिणी सभा या समिति अथवा विधानसभा हो, किन्तु उत्तरदायित्व किसी-न-किसीपर अवश्य होना चाहिए जिससे कि परम्परा चलती रहे। मैं जब आपकी कार्य-प्रणालीका विश्लेषण करता हूँ तो यही उत्तर मिलता है कि उसमे भी प्रच्छन्न शासन है। आप भले स्वयंको और लोगोको इस धोखेमे रखे कि सब-कुछ अपने-आप चलता है, किन्तु सही बात यह है कि कुछ भी अपने-आप नही चलता। अतः मरे हुए ढोरोको उठाना, पाठशालाओमे प्रवेश आदिके बारेमे जहाँ-कुछ करना आवश्यक हो और जनताकी राय भी अनुकूल हो वहाँ निश्चय ही कानूनकी आवश्यकता है। जहाँ कानून नही होता वहाँ शासन-व्यवस्था नही हो सकती बल्कि वहाँ अन्धेरगर्दी और अराजकता ही होती है। मुसोलिनी भी शासन-व्यवस्था चलानेका दिखावा करता है। यह कहनेमे किसीको दिक्कत नही होनी चाहिए कि राजासाहब अर्थात् भावनगर रियासत छुआछूतको नही मानती। सनातनी भले उसका पालन करे और समाजके सहयोगसे उसपर अमल किया जा सकता हो तो करें। आप अपने कुटुम्बमे कितने ही धार्मिक नियमोका पालन करते हैं, किन्तु यदि अपनी ही रियासतमे आप उनपर अमल कराना चाहे तो नही करा सकते। आप किसीको चोट पहुँचाये बिना कह सकते हैं कि राजा इस विषयमे निष्पक्ष है। फिर भले आपकी पाठशालाओमे कोई तथाकथित अछूत न आये। मुर्दा ढोरोके बारेमे मैंने गुजराती 'हरिजन' मे लिखा है,[1] फुरसत मिलने पर आप उसे पढ जाये। उसमे कुछ तो आपको ही सम्बोधित करके कहा गया है हालाँकि उसमे नाम-धाम कुछ नही दिया है।

हम दोनों बूढे होनेके बावजूद लोभी ही रहे। हममे सेवा करनेकी भारी हौस है। जितना पैसा हो उतना लुटा दे। किन्तु आपको तो राजकाज चलाना पडता है। उसीमे आपके बाल सफेद हुए है। तिसपर मेरे जैसेकी सगत करना। आप विकट काम ले बैठे है। सरसरी तौरपर देखे तो आपका रास्ता अलग है और मेरा अलग। दोनोका उद्देश्य एक है और दोनोको उसी लक्ष्यपर पहुँचना है, किन्तु सभी मामलोमे क्या आप यही कहते रहेगे कि 'मेरी पद्धति' के अनुसार ऐसा करो। मुझे तो परि-णामसे मतलब है, कार्य-पद्धतिकी बारीकी भले राजदरबारकी शोभा बढाये। यदि आप हरिजनोको सन्तुष्ट कर सके तो मै गगा नहा जाऊँगा।

थोडे लिखेको बहुत समझे।

आप अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखे। आपसे मैंने बहुत पाया है और बहुत पाना है।

मोहनदासका
हरिजन-कल्याण

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९८०) से। सी० डब्ल्यू० ३२४२ से भी, सौजन्य : महेश पी० पट्टणी

१. देखिए "मरे ढोरोंका निबटारा", १२-३-१९३३।

९२. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

१३ मार्च, १९३३

आदरणीय भाई,

आपका पत्र मिला। आपकी आशा मै नही छोडूँगा और आप मेरी आशा न छोडे। ऐसा करते हुए बहुत-से लोगोका मेल बैठा है। ऐसा भी हुआ है कि किसी-किसीका नही बैठा। किन्तु हमारी गिनती इन 'नही' वालोकी श्रेणीमे मैं तो नही करूँगा। यह भगवान्‌का काम है। और मैं तो प्रयत्न करता रहूँगा।

सभी सुधारक निष्पाप नहीं है। निष्पाप कोई नही है। फिर भी बहुत से लोग इसके लिए प्रयत्नशील है, बहुतोको धर्म प्रिय है। वे मानते है कि वास्तवमे अस्पृश्यता आन्तरिक चीज है और उसका कोई बाहरी चिह्न नही है। उससे हम सभीको बचना चाहिए। कोई मनुष्य अस्पृश्य होकर जन्म नही लेता। जो चीज किसी अन्य धर्ममें न हो और हिन्दू धर्ममे हो तथा धर्मकी वृद्धि करनेवाली हो तो वह बुद्धिसे भी सिद्ध होने योग्य होनी चाहिए। उसका उज्ज्वल परिणाम भी निकलता हुआ दिखाई देना चाहिए। जन्मसे अस्पृश्यताका सिद्धान्त न तो बुद्धिग्राह्य है और न उसका उज्ज्वल परिणाम ही निकलता है। यदि आप कहे कि मन्दिर-प्रवेशके अतिरिक्त अन्य मामलोमें उनकी सहायता करनी चाहिए तो आप अपना धर्म समझकर उक्त सहायता क्यो न दें? मेरी मार्फत सहायता न देना चाहे तो भले स्वतन्त्र रूपसे दें।

धर्मकी अधोगति होते तो आप भी देख रहे है। बाह्य शुचितापर पूरा जोर देनेसे इसकी रक्षा थोड़े होनेवाली है? मुझे बाह्य शुचिता बुरी नही लगती। मैं समझता हूँ कि इसका जितना ज्ञान मुझे है उसका मैं पालन करता हूँ। किन्तु मैं यह नही मानता कि इससे मेरी आत्मा शुद्ध होती है। इससे मेरा शरीर शुद्ध रहता है। आत्माको शुद्ध रखनेके लिए मुझे आन्तरिक शुचिताकी आवश्यकता जान पड़ती है जिसे हम सर्वथा भूल गये है। परिणामस्वरूप धर्म हीन और तेजहीन होकर स्वार्थ-लिप्त होनेके बावजूद हम यह मान बैठे है कि धर्म सुरक्षित है और मेरे-जैसा कोई व्यक्ति यदि अस्पृश्यताके कलकको धोना चाहे तो धर्म खतरेमे है की पुकार लगाई जाती है, और असत्यका प्रचार किया जाता है (मै इतना अवश्य चाहता हूँ कि आप-जैसे व्यक्ति ऐसी प्रवृत्तियोको बढावा न दें और इसीलिए मै आपसे विनती करता हूँ)। जहाँ हमारा मतभेद हो वहाँ हम एक-दूसरेको अपना दृष्टिकोण समझानेका प्रयत्न करे और जिनके बारेमे हमारा मतभेद नही है उन प्रवृत्तियोको, भले स्वतन्त्र रूपसे किन्तु एक ही दिशामें, चलायें। यदि ऐसा किया जाये तो फिलहाल शक्तिका जो अपव्यय हो रहा है वह रुक जायेगा।

इस पत्रको आप फुरसतसे पढ़े। अघोईमे आपको समय तो मिलना चाहिए।

मोहनदासके प्रणाम

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५६४) से।

९३. पत्र : स्वरूपरानी नेहरूको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय भगिनि,

तुम्हारा खत मिला है। मैं प्रतिक्षा कर रहा था।

जवाहरलालका खत आया है उसने तुमारे शरीरका वर्णन किया है। दुबली बहुत हो गई है। शीघ्रतासे पुणामे हि आ जाना हि अच्छा होगा। इस वखत रहने का स्थान बदलनेकी कोशीश करूँगा। जवाहरने भी इस बारेमे लिखा है।

कलकत्तेके बारेमे अंतर कहे वही करो। मुझे इस बारेमे अभिप्राय रखनेका भी अधिकार भी नही, न मैं कुछ रखता हूँ।

कमला तो अब देहरा[दून] जा रही होगी। सरूप दो-तीन दिनमे यहा आ जायगी। उसका काठीयावाडका दौरा ठीक हुआ। इदु[1], चाद[2] मुझे शनिवारको मिल गयी। अच्छी थी। ताराको[3] खेलनेमे से आराम कहाँसे मिले कि वह आवे? जमनालालजी का कमलनयन और रामकृष्ण भी वही पढ़ते है।

पूना आनेके दिनका पता मुझे कुछ आगेसे दिया जावे।

आपका,

मोहनदास

गांधी-इन्दिरागांधी पत्र-व्यवहार फाइल। सौजन्य : नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय

१. इन्दिरा गांधी।

२ और ३. चन्द्रलेखा और नयनतारा, विजयलक्ष्मीकी पुत्रियाँ।

९४. पत्र : गिरधारीलालको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय गिरधारीलाल,

आपका साप्ताहिक विवरण पाकर और यह जानकर कि अभी भी धीमी गतिसे ही सही लेकिन प्रगति जारी है, खुशी हुई। हम सबकी यही कामना है और प्रभुसे हम यही प्रार्थना करते हैं कि यह प्रगति निश्चित गतिसे होती रहे और इसके परिणामस्वरूप यह बुराई दूर हो।

हृदयसे आपका,

लाला गिरधारीलाल
१०९-ए, महेन्द्र मैंशान्स
एस्प्लेनेड रोड, फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५८०) से।

९५. पत्र : मियाँ मुहम्मद रफीकको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और मेरे सम्बन्धमें लिखी कविताओंकी पुस्तकके लिए आपका आभारी हूँ। काश मेरे पास आपकी कृति पढ़नेका समय होता कि मैं अपने-आपको आपकी नजरोंसे देख सकता और अपने उर्दूके ज्ञानमें भी कुछ वृद्धि करता। लेकिन अभी तो मेरा सारा समय 'हरिजन' ही ले लेता है और पता नहीं, आपकी पुस्तकको कब हाथ लगा सकूँगा। पुस्तक मिलते ही मैं इसे तृषित नेत्रोंसे देखने लगा, लेकिन फिर मैंने देखा कि आपकी टकसाली उर्दू समझनेमें मुझे कठिनाई होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत मियाँ मुहम्मद रफीक
बागबानपुरा
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५७८) से।

९६. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

सचिव
बम्बई सरकार
गृह-विभाग

१४ मार्च, १९३३

प्रिय महोदय,

मुझे खगोलीय दूरवीक्षण यन्त्रका प्रयोग दिखानेके लिए ऋतु-विज्ञान विभागके डॉ० रामनाथन् और डॉ० देसाईको शामको अँधेरा होते ही यरवडा सदर जेलमें आनेकी अनुमति दिलानेके लिए दिये गये, मेरे प्रार्थना-पत्रके सम्बन्धमे अधीक्षकने मुझे अभी-अभी सूचित किया है कि आदेशमे बताये गये कारणोसे सरकार ऐसी अनुमति देनेमे असमर्थ है। मै यह कहे बिना नही रह सकता कि मुझे ऐसे निर्णयकी आशा बिलकुल नही थी। मेरी जानकारीमे तो यरवडा सदर जेल और अहमदाबाद सदर जेल, दोनो ही जरूरत पडनेपर रातमें खोले जाते रहे हैं। मैंने प्रार्थना-पत्र किसी अजनबीको नही, बल्कि सरकारी अधिकारियोको अनुमति देनेके लिए भेजा था; और उसमें केवल आधे घटेतक बिलकुल निर्दोष ढगकी जानकारी देनेके लिए ऐसे किसी भी दिन उन्हे आनेकी इजाजत देनेका निवेदन किया गया था जो अधिकारियोके लिए सुविधाजनक हो। मेरा मन यह माननेको तैयार नही है कि सरकार इतने सीधे-सादे अनुरोधको भी अस्वीकार कर देगी, इसलिए मै इसके लिए फिरसे प्रार्थना करता हूँ। लेकिन अगर सरकार अपने निर्णय पर पुनर्विचार करनेसे इनकार करती है, तो क्या वह उपर्युक्त दोनों अधिकारियोको जेलके दरवाजे बन्द होनेसे ठीक पहले जैसी भी सम्भव हो, वैसी जानकारी मुझे देनेकी अनुमति देगी?[१]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८०) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल नं० ८०० (४०) (४), भाग-२, पृष्ठ १५९ से भी

१. अन्तमें उन दोनों अधिकारियोंको दिनमें जेलमें जानेकी अनुमति दे दी गई और वे ३ अप्रैलको वहाँ गये।

९७. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र[1] आज मिला और अम्तुस्सलामका पत्र पढ़नेसे पहले ही मैं तत्काल उसका उत्तर दे रहा हूँ। मेरा तुमसे कहना यह है कि तुम आश्रम चले जाओ, उन रोगियोको देखो जो अब भी वहाँ है और वहाँ कुछ समय तक रहेंगे और इस बातका विचार करो कि ठडी जलवायुवाले स्थानमे ले जाये बिना उनकी चिकित्सा हो सकती है कि नही। अहमदाबादमे अप्रैलतक तो इतनी गर्मी नही पडती जितनी लोग समझते है। राते तो काफी ठडी रहती है और मुझे तो गर्मीकी ऋतु भी कुछ कष्टकारी प्रतीत नही हुई। मैंने तो स्वयं अपना इलाज आश्रममें एकसे अधिक बार करानेमें झिझक नही की यद्यपि मुझे कुछ डाक्टरोने परामर्श दिया था कि मैं किसी पहाडी स्थान या कमसे-कम किसी समुद्र तटके किसी स्थानपर चला जाऊँ। परन्तु तुमको तो स्वयं ही निश्चय करना है और यदि तुम यह आवश्यक समझो तो मैं कोई ठडी जगह ढूंढनेका प्रयत्न करूँगा। तुम्हारे आश्रम जानेसे दो काम बनेंगे—एक तो तुम जगह और परिस्थितिसे परिचित हो जाओगे और आश्रम-जीवनका पहला अनुभव ले सकोगे; साथ-ही-साथ वहाँ पुराने मलावरोधके रोगियो पर—ऐसे रोगी आश्रममें अकसर रहे है और है—अपनी चिकित्सा आजमा सकोगे। दो रोगी वहाँ पुराने दमेसे पीड़ित है जो प्रायः इन रोगोको दूर करनेवाले जलाशयोका सेवन करने कही बाहर नही जाते और जहाँतक बस चलता है आश्रममे ही रहते है। तुम आश्रममे जब चाहो जा सकते हो और यदि अम्तुस्सलामको भी साथ ले जाना चाहो तो ले जा सकते हो।

मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारी बच्ची प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा चेचकके रोगसे ठीक हो गई।

यदि तुम्हारा इरादा आश्रम जानेका हो तो केवल एक तार या एक पत्र अपने वहाँ पहुँचनेकी तिथिका भेज देना ही काफी होगा। मैं इस पत्रकी एक प्रतिलिपि मैनेजरको भेज दूंगा।

तुम्हारा शुभचिन्तक,

डॉ० एच० एल० शर्मा
सन-रे हॉस्पिटल
करोल बाग, दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५७९)से। बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० १९-२० से भी।

१. अपने पत्रमें डॉ० शर्माने गांधीजी को कुछ समयके लिए आश्रममें आकर रहनेके अपने निश्चयकी सूचना दी थी और पूछा था कि उन्हें वहाँ क्या काम करना होगा।

९८. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

आपको सविधानका मसविदा[1] भेजनेमे मैंने बहुत देर कर दी। अब आपका तार आया है। मैंने उसे तैयार तो गत रविवारको ही कर लिया था और उसके बाद यह पत्र लिखवानेके लिए रुका हुआ था। इसी बीच आपका तार मिला। आप देखेंगे कि इसपर कितनी मेहनत की गई है। आपके पास जो मसविदा जा रहा है वह महादेवका तैयार किया हुआ तीसरा मसविदा है। मै तो केवल उसकी देख-रेख कर रहा था और कुछ सुझाव दे रहा था। मेरा खयाल है, मै आपको यह बता चुका हूँ कि जब मैंने पहली बार इसे पढा तो मुझे लगा कि इसमे कई जगह दोबारा लिखने और काफी सोच-विचार करनेकी जरूरत है। उसके बाद वह शास्त्रीको[2] दिया गया। शास्त्रीने उसे ध्यानपूर्वक पढकर कुछ सुझाव दिये। उसके बाद महादेवने उसमे हाथ लगाया। इसलिए आप ऐसा कह सकते है कि यह तीन लोगोके परिश्रमका फल है। इसे छपवानेसे पहले इसपर सघकी समितिकी स्वीकृति ले लेनी चाहिए। मेरा खयाल है कि समिति द्वारा विचार करनेसे पूर्व हृदयजी को[3] इसपर अपनी विधि-विशेषज्ञ नजर डाल लेनी चाहिए और एक वकीलकी हैसियतसे उन्हे इसमे जो जरूरी लगे, ऐसे सशोधन और परिवर्धन करने चाहिए। अगर वे इसे अपेक्षित समय न दे सके तो यह किसी ऐसे वकीलको दे देना चाहिए जिसको इस सघ-जैसी सस्थाओके सविधानके मसविदे तैयार करनेका अनुभव हो। यदि सघको एक बडी और कार्यक्षम सस्थाके रूपमे विकसित होना है, तो इस कामपर जितना भी समय दिया जायेगा और श्रम किया जायेगा वह बेकार नही होगा। मैं जानता हूँ कि यह काम केवल सविधानसे नही, बल्कि कार्यकर्त्ताओके कार्यसे ही हो सकेगा। फिर भी, एक अच्छे और व्यवहार्य सविधानके बिना हम अपनी सस्था तथा इसकी शाखाओकी विभिन्न इकाइयोको एक साथ बाँधकर नही रख सकेगे। अन्तिम मसविदा जब पास किये जानेके लिए तैयार कर लिया जाये और तब उसके तदर्थ प्रस्तुत किये जानेसे पूर्व, अगर इतना समय हो तो, मै चाहूँगा कि उसकी एक प्रति मुझे भेज दी जाये, क्योकि आपको बता दूँ कि साथके मसविदेको मैंने सागोपाग नही परखा है।

पजाब-यात्राकी आपके मनपर क्या छाप पडी और हरिजन नेताओका आपका अनुभव कैसा रहा, यह जाननेके लिए मै उत्सुक हूँ। स्वात्मानन्दजी[4] मुझे काबिल

१. देखिए "हरिजन सेवक संघके संविधानका मसविदा", ९-३-१९३३।

२. हरिजनके सम्पादक आर० वी० शास्त्री।

३. हृदयनाथ कुंजरू।

४. स्वात्मा दास; देखिए "पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको", १६-३-१९३३।

आदमी लगते है। वे सुलझे-सुथरे हिन्दी लेखक है और उनके विचार मौलिक लगते है। उन्होने बताया है कि वे आपसे मिले थे। उनकी सोसाइटीने आपको जो अभिवेदन भेजा था उसकी एक प्रति उन्होने मुझे भी भेजी है। मैंने उनकी जो रिपोर्ट आपको भेजी थी, उससे आपने यह तो देखा ही होगा कि मुख्य सवर्ण हिन्दुओ द्वारा विभिन्न अस्पृश्यता-विरोधी सगठनोके चलाये जानेमें उनका विश्वास नही है। हमें जहाँतक बने, उनकी शका-निवारण करना है, और अगर उनके आरोपोमे कोई तत्त्व नही है, तो हमे उनसे ऐसा कह सकना चाहिए और कायल करने लायक प्रमाण देकर अपनी बातकी पुष्टि कर सकनी चाहिए।

मै जानता हूँ कि मैंने आपको उस एकमात्र सहायकसे वचित कर दिया जो आपको पूरा सन्तोष देता था। अगर आपने शास्त्रीको छोडनेमें अपनी असमर्थता समझाई होती, तो मै किसी तरह काम चला लेता। अब मुझमें यह कहनेका साहस नही है कि "आप चाहते हो तो शास्त्रीको ले लीजिए।" साथ ही, मै यह भी जानता हूँ कि किसी कार्यकुशल सहायकके बिना आपका काम नही चल सकता, तो क्या आप यह चाहेगे कि मैं आपके लिए कोई आदमी देखूँ? अगर चाहते हो, तो आप ठीक-ठीक बताइए कि कैसा आदमी चाहिए और उसे आप कितना देनेको तैयार है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११११३) से। एस० एन० २०५७६ से भी।

९९. पत्र : प्रेमलीला ठाकरसीको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

तुम्हारे पत्रसे हमे बहुत आश्वासन मिला। हम सब लोग कोई खबर[1] पानेकी बाट देख रहे थे, किन्तु पत्र सुबह ही मिला। रातको भी बाट तो देखी लेकिन कैद तो कैद ही है। अत उसका कोई दु.ख नही है।

तुमने और लीलाबहनने उस समय वहाँ उपस्थित रहकर बहुत अच्छा किया। अब तो तुम बारी-बारीसे जाती ही रहोगी और मुझे खबर भी देती रहना।

जैसाकि तुमने अपने पत्रमें लिखा है, तुम बारह बजे अस्पताल जानेवाली हो। अत. आनन्दीको लिखा पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। उसे पत्र पढवा देना और उसका सन्देश मुझे भेज देना। मै तुमसे बहुत काम ले रहा हूँ। किन्तु मै क्या

१. आनन्दी आसरके बारेमें, जिनका पूनाके सैंसून अस्पतालमें एक दिन पहले आन्त्रपुच्छका ऑपरेशन हुआ था।

करूँ? अनिच्छापूर्वक कर्ज लेना पडता है। ईश्वर चुकायेगा। मुझे लक्ष्मीदासका[1] तार तो मिल ही गया है।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च]

अब नारंगियाँ या मोसम्बियाँ मत भेजना। वर्धासे काफी आ गई हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४८२८)से, सौजन्य प्रेमलीला ठाकरसी। जी० एन० ७४ से भी।

१००. पत्र : बद्रीनाथ शर्माको

१४ मार्च, १९३३

भाई बद्रीनाथ शर्म्मा,

आपका खत मिला। लेखकी कतरने देखनेमे नहिं आई। प्रयागके प्रस्ताव संतोष-जनक नहिं है।[2]

आपका,
मोहनदास गांधी

श्री बद्रीनाथ शर्म्मा
केतकी देव
गया
बिहार

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५५६) से।

१०१. पत्र : नारणदास गांधीको

१५ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

काकासाहब आज आनन्दीको प्रो० त्रिवेदीके घर ले आये हैं। अस्पतालमे आवश्यक सुविधाकी व्यवस्था न हो पाने और ऑपरेशन तथा उसके बाद मरहम-पट्टी करना बहुत ही आसान होनेके कारण डाक्टरने ही यह सुझाया था कि उसे किसी निजी अस्पताल अथवा घरमे रखना चाहिए ताकि उसकी अच्छी तरह देखभाल हो सके। डाक्टर रोज सुबह-शाम प्रो० त्रिवेदीके यहाँ आकर मरहम-पट्टी कर जायेगा।

१. लक्ष्मीदास आसर, आनन्दीके पिता।

२. सम्भवत: तात्पर्य उन प्रस्तावोंसे है जो कि ५ मार्च, १९३३ को भारतीय संवैधानिक सुधारोंके लिए प्रस्तावोंके प्रति असन्तोष प्रकट करनेके लिए पास किये गये थे।

और नर्सों—स्वयसेविकाओ—की तो कोई कमी ही नही है। हरिजन कार्य करनेवाली दो-तीन पारसी बहनें और लीलावती मुशीकी कन्या नियमित रूपसे वारी-बारीसे उपस्थित रहती हैं। प्रेमलीलाबहन और लक्ष्मीदास भाईकी बहन लीलाबहन तो रात-दिन रहती ही हैं। दिनको हलका-सा बुखार हो जाता है किन्तु डाक्टरका कहना है कि यह सर्वथा सामान्य बात है। वह फलोका रस और दूध लेती है तथा प्रसन्न रहती है। चिन्ताका कोई कारण ही नही है। फिर भी उसका कहना है कि यदि वेलाबहन पास होती तो अच्छा होता। अत लगता है प्रेमलीलाबहनने तार दिया है। वेला-बहनका मन न माने तो वह अवश्य आ जाये। शायद वह कल रवाना हो भी चुकी हो या फिर देवदासके साथ कल सुबह पहुँचेगी।

बापूके आशीर्वाद[1]

श्री नारणदास गाधी
सत्याग्रहाश्रम
सावरमती

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३४ से भी, सौजन्य नारणदास गाधी

१०२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१६ मार्च, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपके ८ मार्चके पत्रका उत्तर इससे पहले देनेका मौका ही नही निकाल सका।

चयन-बोर्डसे मेरा मतलब यह था आपको एक छोटी और कार्यक्षम समिति नियुक्त करनी चाहिए, जिसमे एक आदमी, उदाहरणके लिए, थडानी-जैसा हो, कोई एक सेट स्टीफन कॉलेजका हो और एक तीसरा आदमी मन्त्री हो तथा आप और ठक्कर वापा पदेन सदस्य हो। यह समिति डेविड स्कीम स्कॉलरशिपके[2] लिए आवेदन-पत्र आमन्त्रित करेगी। यह आवेदन-पत्रोकी जाँच करके बोर्डसे सिफारिश करेगी। अगर बोर्ड सिफारिशे मजूर कर लेगा, तो छात्रवृत्तियाँ देनेकी स्वीकृति दे देगा। इस समिति से एक ऐसी योजना तैयार करनेको भी कहा जायेगा जिसमे उन शर्तोका निर्देश रहेगा जिनके अधीन छात्रवृत्ति दी जायेगी। इन शर्तोमे उम्मीदवारोकी योग्यताएँ बताई जायेगी और इन्ही शर्तोके अन्तर्गत आवेदन-पत्र आमन्त्रित किये जायेंगे। मेरा सुझाव है कि समिति श्री डेविडसे उस हदतक सम्पर्क बनाये रखे जिस हदतक वे समितिको अनौपचारिक तौरपर अपने मार्ग-दर्शन और सलाह-मशविरेका लाभ देनेको तैयार हो। इतना तो हुआ चयन-बोर्डके बारेमे।

१. इसपर गांधीजी की ओरसे महादेव देसाईने हस्ताक्षर किये थे।

२. यह योजना कुछ चुनिन्दा हरिजन लड़कों और लड़कियोंकी शिक्षाके लिए सवर्ण हिन्दुओंसे चन्दा एकत्र करनेके बारेमें थी। देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ४२७-८।

जहाँतक अनुदानोका सम्बन्ध है, आपने जो-कुछ कहा है उससे मुझे सन्तोष नही। मुझे ऐसी आशका थी कि इस तरहके अनुदानोके लिए की गई अपीलके प्रति लोग शायद पर्याप्त उत्साह न दिखाये। यह बात मैंने श्री डेविडसे उस समय साफ-साफ कह भी दी थी जब मैंने उन्हे यह बताया था कि उनकी योजना पसन्द होनेपर भी मै सार्वजनिक रूपसे उसको समर्थन देनेमे सकोच क्यो कर रहा हूँ। इसलिए उनसे मैंने आपसे और बम्बई बोर्डसे सलाह करनेको कहा। तदनुसार उन्होने सलाह की और आप दोनोने इस कामको बडे तपाकसे हाथमे लिया। यहाँतक कि सविधानके मसविदेमे आपने इसे विज्ञापित भी किया। इसलिए काफी लम्बे अरसे तक प्रतीक्षा करनेके बाद मुझे कुछ साहस मिला और मैंने 'हरिजन' मे इस योजना को अपना आशीर्वाद दिया। मै निश्चय ही ऐसा महसूस करता हूँ कि सामान्य चन्देसे अलग विशिष्ट हेतुसे इकट्ठे किये गये कुछ दान भी अवश्य होने चाहिए। जो सामान्य चन्दा जमा किया जा चुका है उसीमे से कुछ रकमे अलग रखनेका विचार मुझे पसन्द नही। अगर बने तो हमे कुछ सनातनियोसे दान प्राप्त करना ही चाहिए। खैर, मेरा तो यही विचार है और जमनालालजी, सरदार वल्लभभाई और हम सबका भी ऐसा ही है। जानकीदेवीसे २,५०० रुपये देनेका निवेदन कर चुका हूँ और दूसरोको भी तुरन्त लिखने जा रहा हूँ। मै आपका नाम भी दाताओमे शामिल करके उसे प्रकाशित करना चाहूँगा।

इस सम्बन्धमे 'हरिजन' मे मै तभी कुछ लिखूँगा जब आपसे इस पत्रका सुचिन्तित उत्तर मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५९२) से। सी० डब्ल्यू० ७९३२ से भी, सौजन्य : घनश्यामदास बिडला

१०३. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१६ मार्च, १९३३

प्रिय सतीशबाबू,

आपका पत्र मिला। आपने जो अनुवाद[1] भेजा है, उसका उपयोग मै कर रहा हूँ। गुजराती 'हरिजन' के लिए उसका सीधे बगलासे अनुवाद करके महादेवने दे दिया है। हिन्दी 'हरिजन' मे मै आपके लेखका अनुवाद देख चुका था। हिन्दी 'हरिजन' की खामियोके बारेमे आपने जो-कुछ कहा, वह मेरी निगाहमे भी रहा है और मैंने उसके सम्पादकका ध्यान खास तौरपर उसकी ओर दिलाया है। वे एक उत्साही कार्यकर्त्ता है और उन्हे जो भी सुझाव दिये जाते है, वे खुशी-खुशी स्वीकार कर लेते है इसलिए अब आप उसमे धीरे-धीरे निश्चित सुधार देखेंगे।

१. १-४-१९३३ के हरिजनमें प्रकाशित "काबुली जुल्म"।

अग्रेजीके लेख जैसे-जैसे तैयार होते जायेंगे, आपको भेजता जाऊँगा। मुझे तो सबको गुरुवारकी सुबहतक लिख-लिखाकर निवटा देना है। सोमवारसे पहले कुछ शुरू नही होता। अधिकाश मगलवार और बुधवारके बीच तैयार हो जाता है।

आपका ४८ कालमोका विश्लेषण रोचक है। फिर आश्चर्य क्या कि आपके पत्रकी ग्राहक-सख्या दिन-दिन बढती ही जा रही है।[1] यह सारा काम आप दिलसे पसद करते हैं और यह अच्छी बात है। कोई कारण नही कि ग्राहक सख्या १०,००० या इससे भी अधिक न हो जाये। आशा है, आपके यहाँ कर्मचारियोकी एक अच्छी टोली है। ऐसा न हो कि ज्यादा बोझ लेकर आप स्वास्थ्य बिगाड ले। और किसी कारण नही तो आपके लेख पढनेके लिए ही बगला सीखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, लेकिन फिलहाल तो यह इच्छा एक स्वप्न ही है।

'रामायण'की अपनी हिन्दी भूमिकाका पहला फर्मा तो आप भेज ही चुके है। इसे मै अपनी बगलमे ही रखता हूँ, ताकि समय मिलते ही पढ़ जाऊँ।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९४) से।

१०४. पत्र : गो० कृ० देवधरको

१६ मार्च, १९३३

प्रिय देवधर,[2]

प्रोफेसर पुरन्दरे[3] के बारेमे आपका पत्र मिला। बात यो है। उन्होने पूनामे कुछ भाषण दिये थे। हरिभाऊ उनको मेरे पास लाये थे। हरिभाऊने मुझे बतलाया था कि लोगोने उनके भाषणोको काफी पसन्द किया था और इसलिए प्रचार शुरू करने और पुरन्दरेकी सहायता करनेके खयालसे मैने सुझाया था कि उनके भाषणोको पुस्तकाकार प्रकाशित कराया जाये। वे इस बातपर बिलकुल राजी थे। उन्होने मुझसे कहा था कि उनकी आवश्यकताएँ बहुत ही कम है और वे बड़ी खुशीसे इस उद्देश्यके लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करेगे। मैने उनसे पूछा कि भाषणोको सगृहीत करने और शायद उनको फिरसे लिखने और उनके प्रूफ देखने इत्यादिके सारे कामके लिए उनको क्या दिया जाना चाहिए। मेरे काफी आग्रह करने पर भी उन्होने कोई निश्चित राशि नही बतलाई, उन्होने बस इतना ही कहा था कि मै जितनी भी राशि तय

१. बंगला हरिजन जो खादी प्रतिष्ठान, कलकत्ताके तत्त्वाधानमें प्रकाशित होता था और सतीश बाबू जिसके सम्पादक थे।

२. सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी और अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघके महाराष्ट्र डिवीजनल बोर्डके अध्यक्ष।

३. एन० एच० पुरन्दरे।

कर दूँगा और केन्द्रीय बोर्डसे जितना-कुछ मिलेगा, वे उसीसे पूरी तरह सन्तुष्ट हो जायेंगे। पुस्तक पूरी हो जानेपर जब अदायगीका समय आया तो मुझे निश्चित राशि बतलानेमे सकोच हुआ। इसलिए मैंने मामला हरिभाऊको सौप दिया। उनका सुझाव था कि १२५ रुपये दिये जाये। मैंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया और चेक भी तैयार करवा लिया। लेकिन तब अचानक प्रोफ़ेसर पुरन्दरेने इतनी राशि स्वीकार करनेसे मना कर दिया और कहा कि ३,००० रुपये नही तो कमसे-कम १,००० रुपये तो दीजिए ही।

उसके बादसे यही होता रहा है कि मेरे पास बस गुस्से और गालियोंसे भरे पत्र आते रहे है। खैर, इसका इतना महत्त्व नही। मैंने उनसे कहा कि छपाईका खर्च भुगतान करके वे सारी प्रतियाँ स्वय ले सकते हैं। इसपर उन्होने कहा कि छपाईका बिल ही ठीक नही है, उसमे बहुत अधिक दर लगाई गई है। तब मैंने कहा कि कोई निष्पक्ष मध्यस्थ जो भी राशि निर्धारित कर देगा मैं उसे स्वीकार कर लूँगा। इसपर भी वे राजी नही हुए। मैं इससे भी काफी ज्यादा लिख सकता हूँ, लेकिन मैं समझता हूँ कि इतना ही काफी है।

मैं केन्द्रीय बोर्डके एक न्यासीकी हैसियतसे काम कर रहा हूँ। फिर मैं बिना किसी औचित्यके केन्द्रीय बोर्डसे अधिक राशि अदा करनेके लिए कैसे कह सकता हूँ? हाँ, अनुवाद आदिके अधिकार उनको दिये जा सकते है। हमारे पास जो पुस्तके है उनकी कोई बड़ी माँग भी नही है। मैं तो बडी खुशीसे कहता हूँ कि छपाईका खर्च पूरा करनेके बाद यदि कुछ राशि बच जाये तो उसको वे ले ले। अब इससे अधिक और क्या देनेकी बात हो सकती है?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९१) से।

१०५. पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको

१६ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

मैंने ११ तारीखकी तुम्हारी शिकायतके[1] जवाबमे तुम्हे विस्तारसे लिखनेका वचन दिया था। तुमने बड़े निस्संकोच भावसे लिखा है। यह बहुत ही ठीक किया। इसीलिए अब मैं तुमको बतला सकता हूँ कि मैंने क्या किया है। तुमने शायद 'हरिजन' का अक देखनेसे पहले ही अपना पत्र लिखाया होगा; क्योंकि उसमे मैंने

१. अमृतलाल वि० ठक्करने स्वात्मदासके बारेमें आम तौरपर शिकायत की थी और उसे "अति उत्साही तरुण", "कामके अनुभवसे शून्य" व्यक्ति कहा था और गांधीजी के इस सुझावको स्वीकार नहीं किया था कि विभिन्न हरिजन-सेवक संस्थाओंकी भर्त्सनासे भरी स्वात्मदासकी रिपोर्टको संस्थाओंके पास घुमा दिया जाये: उनका कहना था कि वैसा करना सौजन्यपूर्ण नहीं रहेगा।

स्वात्मदासके पत्रके बारेमे उनके नाम, प्रान्त या संस्थाओंका उल्लेख किये बिना और जान-बूझकर उसे एक आम समस्याका रंग देते हुए इस तरह लिखा है, कि स्वात्मदास स्वयं भी नहीं समझ सके कि मैंने अपने लेखका[1] आधार उन्हीके पत्रको बनाया है; और तुम्हे यह जानकर सचमुच एक सुखद आश्चर्य होगा कि लेलेका खयाल था कि मेरा इशारा बम्बईकी तरफ था। मै पिछले २५-३० वर्षोसे अनेक समस्याओंको इसी तरीकेसे सफलतापूर्वक निबटाता रहा हूँ। साथ ही, मैं इतने समय तक रुकना भी नहीं चाहता था कि तुम स्वयं उस रिपोर्टको देखकर अपनी कोई राय बना लो और फिर मुझे लिख भेजो। वह तो काफी लम्बा खिचता और कष्टकर होता, जबकि मै चाहता था कि जल्दसे-जल्द एक सीख उनके मनमे उतार दूँ। मैंने उसमे प्रान्त-विशेष या किसी संस्था-विशेष या अलग-अलग संस्थाओंके बारेमे की गई अलग-अलग शिकायतोंको लिया ही नहीं; उनको तबतक के लिए छोड़ दिया जबतक तुम सारी समस्यापर पूरी तरह विचार न कर लो। क्या इस तरीकेमें तुम्हे कुछ गलत लगता है? क्या इससे पंजाबकी संस्थाओंकी स्थिति किसी तरह अटपटी हुई है या स्वात्मदासको कुछ अनुचित महत्त्व मिल गया है? सम्भाव्य दोषोंके विषयमें 'हरिजन' मे लिखे गये उस लेखमे मैंने इतना भी नही कहा कि पत्र-लेखककी शिकायतें सही है। मैंने तो बस यही लिखा है कि भारत-भरकी सभी सुधारक संस्थाओंको आत्म-विवेचना करनी चाहिए। और मै तुम्हे बतला दूँ कि लेखका असर हो रहा है। तुम स्वात्मदासकी सभी शिकायतोंकी जाँच कर सकते हो और मै भी चाहता हूँ कि करो और अपना उत्तर मुझे लिख भेजो जिससे कि मैं उनके बारेमे लिख सकूँ। मै जानता हूँ कि स्वात्मदास द्वारा उल्लिखित पंजाबकी सभी संस्थाएँ केन्द्रीय संगठनसे सम्बद्ध नहीं है। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। और यदि हम शिष्टताके साथ उनसे कुछ पूछे तो उन संस्थाओंको भी उसका बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम्हारी पूछताछको वे किस रूपमें लेगी, यह बहुत-कुछ इसपर निर्भर करता है कि पूछताछका ढंग क्या रहता है। मै जानता हूँ कि तुम सदा ही शिष्टता और बिल्कुल मैत्रीपूर्ण ढंगसे ही उनको लिखोगे और अपना मंशा साफ-साफ बतला दोगे कि तुम एक मित्रके नाते उनकी सहायता करना चाहते हो, एक जाँच-अधिकारी की तरह उनके पास नही जा रहे हो। लेकिन यह तो मेरा सुझाव ही है। तुम वही करो जो तुम्हें उचित लगे; और यदि तुम समझो कि जाँच-पड़तालकी जरूरत ही नही तो वैसा लिखो। मै उससे भी सन्तुष्ट हो जाऊँगा। मेरा प्रयोजन तो मात्र इतना है कि तुम्हारे तई यह स्पष्ट कर दूँ कि नाम-पतेका उल्लेख किये बिना उस समस्याको बिलकुल एक आम ढंगसे पेश करना किसी भी तरह अनुचित नही था।

जहाँतक स्वात्मदासकी बात है, तुमने उसका जो वर्णन किया है, वह मेरे लिए सर्वथा अप्रत्याशित नहीं था। हमारे सम्पर्क मे ऐसे तरुण आयेगे ही और हमें उनसे निबटना ही पड़ेगा। यह अनिवार्य है। वे जो भी, जैसे भी है, उसके लिए

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०१-३।

हम खुद जिम्मेवार है। यह हमारे योग्य ही है। इसलिए हमको उनके साथ अधिकसे-अधिक सौजन्यपूर्ण बरताव करना चाहिए, पूरे धैर्यके साथ उनकी बात सुननी चाहिए और उनसे उनके योग्य सेवा-कार्य कराना चाहिए। मै समझता हूँ कि तुम्हारे पत्रमे उठाये गये सभी मुद्दोका उत्तर इसमे आ जाता है।

आशा है कि १४ तारीखका भेजा हुआ मेरा पत्र तुम्हे मिल गया होगा। नियमावलीका मसविदा रजिस्टर्ड डाकसे कल तुम्हे भेज दिया गया है। मैने तुम्हे उसकी रवानगीके बारेमे एक तार[1] भी भेजा था।

पजाब भूमि विक्रय अधिनियम (पजाब एलिनेशन ऑफ लैंड ऐक्ट)का तुम्हारा वर्णन पढकर बुरा लगा। क्या उस ज्यादतीको रोकनेके लिए कुछ भी नही किया जा सकता? मै चाहता हूँ कि तुम मुझे उस अधिनियमकी एक प्रति भेज दो।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११४) से।

१०६. पत्र : नारणदास गांधीको

१६ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा ११ तारीखका पत्र मिला। तुमने जो लिखा है वह बिलकुल ठीक है। लगता है यह आखिरी कसौटी है। मै तो चाहूँगा कि इसमे सब-कुछ होम दूँ। किन्तु यदि इस दुनियामे हम मनचाहा कर सकते होते तो हम राजा होते।

यह मै तुम्हे लिख चुका हूँ कि परचुरे शास्त्री अपने घर गये है। मेरे पिछले पत्र तुम्हे निर्णयपर पहुँचनेमे सहायक सिद्ध हुए होगे किन्तु निर्णय करनेका अधिकार तुमपर छोड देना मेरा कर्तव्य था। लेकिन उतावलीमे मै चूक गया था।

परशुरामने किससे कर्ज लिया है? यह चौकानेवाली बात है। कर्ज कौन देता है? मुझे पूरा समाचार देना। परशुरामके दोष मुझे बताना। इस बातका ध्यान रखना कि हम बहुत-कुछ सहन कर सकते हैं किन्तु उसकी भी एक सीमा होती है।

सहयोग और असहयोग, दोनो ही कर्तव्य हैं।

कलसोकी जोडी, थाली, पतीली आदि उपहार यदि लक्ष्मीके लिए भार सिद्ध न हो तो अच्छा हो। ये भी प्रेमके प्रतीक हैं। तुमने उसमे भाग नही लिया सो उचित किया। वेलाबहन आदिने कुछ देनेका निश्चय किया यह भी उचित ही है। यहाँ बैठे हुए मै नही कह सकता कि इसकी सीमा-रेखा क्या होनी चाहिए। लक्ष्मीको

१. यह उपलब्ध नहीं हुआ।

माला-जैसी चीज देनेकी मुझे भी तो इच्छा हुई ही थी न? जब कि रामीको कुछ भी देनेमे मुझे हिचकिचाहट हो रही थी। प्रेम ऐसा उलटा रूप ले लेता है। तुम्हारे [भाग न लेनेके] निर्णयके सही होनेके बारेमें मुझे तनिक भी सन्देह नही है। कलसो की जोडीके बारेमें ही [सन्देह] हो सकता है।

मैंने डाक्टर शर्माको जो पत्र लिखा है उसकी नकल साथ भेज रहा हूँ। तुम उसे पढोगे ही इसलिए इस बारेमे अधिक नही लिख रहा हूँ। उन्हे मैंने जो-कुछ लिखा है वह ठीक ही है न? मेरीबहनके[1] लिए एक पत्र भी इसके साथ भेज रहा हूँ।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३८५ से भी, सौजन्य: नारणदास गाधी

१०७. पत्र : अमतुस्सलामको

१६ मार्च, १९३३

प्यारी बेटी,

तुम्हारा खत मिला। अब तो मैंने डाक्टर शर्माको[2] लिख दिया है वे आश्रम चले जाएँ और तुमको भी साथ ले चले। इस खतको तुम देखेगी इसलिये ज्यादा नही लिखता हूँ। यह तो ठीक बात नही है कि आश्रम टी० बी० का घर है। सच तो यह है कि आश्रममे बहुत कम टी० बी० है।

कुदसियाकी[3] दवा कौन करता था?

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७९) से।

१. एफ० मेरी बार।

२. देखिए "पत्र: डॉ० हीरालाल शर्माको", १४-३-१९३३।

३. अमतुस्सलामकी भतीजी जो कुछ महीनोंतक आश्रममें रही थी।

१०८. पत्र : मीराबहनको

१७ मार्च, १९३३

चि० मीरा,

शुक्रवारको सुवहके ३। वजे है। तुम्हारा पत्र यथासमय आ गया था।

आज मै सक्षेपमे ही लिखूंगा, क्योकि और कई महत्त्वके पत्र लिखने है। मुझे जरा भी सन्देह नही कि तुम्हारी प्रगति जारी रहेगी, अगर मै चित लेटकर धीरे-धीरे गहरी साँस लेनेके सम्बन्धमे अपनी सूचनाएँ तुम्हे समझा सका हूँ। भाजी खूब खानेसे तुम्हारा कब्ज मिट जाना चाहिए। रोटी तो नही लेनी चाहिए, मगर पपीता मिल सके तो लेना चाहिए।

भोजनमे और कोई फर्क किये बिना पिछले सप्ताह मैने नमक-रहित भोजन स्थगित कर दिया। मैने केवल फलोके साथ दिन-भरमे कुल मिलाकर ३० ग्रेनतक नमक लेना शुरू कर दिया। इतने ही परिवर्तनकी खबर देनी है कि कल मेरा वजन बढकर १०५ हो गया। दूध या फलोमे कोई वृद्धि नही हुई है। परन्तु मै यह नही कह सकता कि वजन नमकके कारण बढा है। देखेगे।

वेरियर अब कुछ शान्त हो गया दिखता है और विवाह करनेका इरादा तो उसने निश्चय ही छोड दिया है। एक ही आश्रमके सदस्योमे आपसमे विवाह-सम्बन्धका निषेध वे लोग स्वीकार करेगे या नही, यह कहना कठिन है। मै तुम्हारे नामसे यह बात उससे कहूँगा तो।

लक्ष्मी और आनन्दीके वारेमे तुम वा के पत्रमे पढना, साथ ही मे है।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६७) से, सौजन्य · मीराबहन। जी० एन० ९७३३ से भी।

१०९. पत्र : नारणदास गांधीको

१७ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

सुबहकी प्रार्थनाके लिए सब लोग इकट्ठे हो, इस बीच मैंने एक पत्र मीराबहनको और एक बा को लिखा। इन पत्रोको सक्षेपमे ही पूरा कर दिया और अब इसे शुरू किया है। नरहरिका और तुम्हारा, दोनो पत्र पढ गया हूँ। उनकी चर्चा तो मैंने नहीके बराबर ही की है। समय कहाँसे लाऊँ? मनमे जो विचार उठते है उन्हे लिख डालता हूँ।

तुम्हे नरहरिको बुलाकर उनकी बात समझनेकी कोशिश करनी चाहिए। नरहरिके स्वभावको मैं ठीक-ठीक जानता हूँ। आश्रममे जो कतिपय निष्ठावान सेवक और सेविकाएँ इकट्ठी हुई है, उनमे से नरहरि एक है। दूध और शक्कर जिस तरह एक दूसरेमे घुल-मिल जाते है उसी तरह इन सब सेवक-सेविकाओको एक-दूसरेमें ओतप्रोत हो जाना चाहिए। यदि उनमे ऐसी शक्ति नही आती तो उसका परिणाम आश्रमका नाश ही हो सकता है। किसी तन्त्रके अलग-अलग अवयव आपसमे हिल-मिलकर रहे, यह जिम्मेदारी उस तन्त्रके तन्त्रीकी ही है। यह तत्त्व तुम्हे समझानेका काम मेरा है। तन्त्री किसी भी तन्त्रका मध्यविन्दु होता है। उसकी तरफ जो आकर्षित नही होता, वह उस तन्त्रके लिए विदेशी-जैसा है। तन्त्रीको चाहिए कि उसका या तो वह त्याग कर दे अथवा उसे तन्त्रमे ठीक स्थान दे और वहाँ उसे कार्य करनेकी ठीक सुविधा दे। नरहरिको विदेशी नही माना जा सकता। अमुक व्यक्तियोको हमने आश्रमरूपी शरीरका अग माना है। उनके त्यागकी बात हम नही सोच सकते। सोचे तो फिर हमे अपने त्यागकी बात भी सोचनी होगी। यानी, आश्रमको तोडनेकी ही बात सोचनी होगी।

यह तो सिद्धान्तकी बात हुई। इसमे से तुम जितना ले सको उतना बोध ले लेना।

शिक्षाके क्षेत्रमे नरहरिको विशेषज्ञ माना जा सकता है। इसलिए जहाँतक शिक्षाका सवाल है, हम अपने विचारोको गौण स्थान देगे। ऐसा करनेसे यदि हमें कोई उलटी चीज होती दिखाई दे तो हम उसे होने दे और जब वह हो चुके तब विशेषज्ञको उसकी भूल दिखाये। दूसरा कोई उपाय ही नही है। होना भी ऐसा ही चाहिए। जिस विषयको मैंने अपना माना है, उसमें यदि कोई मुझे मेरी भूल बताना चाहे तो मैं उसकी बात एकाएक नही मान सकता। मैं तो अपनी भूलको कड़वा अनुभव लेनेके बाद ही स्वीकार करूँगा। प्रत्येक विषयके विशेषज्ञके बारेमे यही नियम लागू होता है। यह भी मैंने केवल सिद्धान्तकी बात कही।

मगनभाईकी श्रेणीके सब लोगोको पुस्तकें लेनेकी छूट मिलनी चाहिए। ऐसा करनेसे यदि पुस्तके विगडती या खो जाती है तो उतनी पुस्तकोको हम नष्ट हुआ मानेंगे। लेकिन इस वातको लेकर किसीसे झगड़ा न करे। पुस्तकोका उपयोग करनेके नियम आश्रममें जहाँ-तहाँ लिखकर प्रयोग किये जाने चाहिए। वडे पुस्तकालयोमे उनके सदस्यो तकको यह छूट दी जाती है कि वे पुस्तकोको उनकी जगहसे उठाकर उनका उपयोग करे। उसके वाद यदि वे उन्हे यथास्थान नही रखते तो मेजपर छोडकर चले जाते हैं और अन्तमे पुस्तकालयका व्यवस्थापक ही उन पुस्तकोको उनकी जगह रख देता है। आश्रमवासियोको तो पुस्तके लेनेकी पूरी छूट होनी ही चाहिए। वे जव चाहे, तव पुस्तकालयकी चावी ले सके, ऐसी स्थिति होनी चाहिए। हाँ, यदि तुम इस वातका निश्चय न कर सको कि आश्रमवासी किसे कहा जाये तो तुम्हे कुछ व्यक्तियोको स्वय चुनना चाहिए, जिन्हें पुस्तकालयसे पुस्तके लेनेका और चावी माँगनेकी छूट दी जायेगी।

यदि वालकोके सोनेका समय सवा आठ वजे होता हो तो साढे आठसे साढे चार वजेतक उन्हे निर्भय सोने देना चाहिए। इसके सिवा उन्हे दिनमे भी एक घटा सोनेकी सुविधा मिलनी चाहिए। हाँ, इस वातका विचार कर लेना कि वालक किन्हे कहा जाये। माँ-वाप जिन्हे कहे, उन्हे वालक माना जा सकता है।

शिक्षकोको पढ़ानेकी तैयारी कराने लायक समय मिलना चाहिए। चिमनलाल कहता है कि उसे समय नही मिलता, यह वात मुझे असह्य लगी। जो काम स्वीकार किया जाये उसे अच्छी तरह पूरा करना चाहिए। या फिर स्वीकार ही नही करना चाहिए। स्वीकार करनेके वाद काम न करनेमे असत्य है। यदि मोटरका चालक मोटरको अच्छी तरह नही चलाता तो वह अपराधी ठहरता है। इसी प्रकार यदि कोई शिक्षक, किसी भी कारणसे क्यो न हो, अपने विषयको अच्छी तरह नही पढाता तो वह उस मोटरचालकसे अधिक वडा अपराधी है। किसीको भी अपनी शक्तिके वाहर जाकर कोई काम नही करना चाहिए।

व्यायामके विषयमे हमे कुवलयानन्द जीकी सूचनाओका चुपचाप पूरा पालन करना चाहिए।

मैंने जो-कुछ कहा उसका तात्पर्य इतना ही है कि तुम सव नरहरिके साथ बैठकर इस प्रश्नपर पूरा विचार करो और फिर जो उचित जान पडे सो करो।

अन्तमे इतना और कहूँ कि इसमें से जितना तुम पचा सको उतना ही करना। मैं तो दूर बैठा हुआ हूँ। अमल तुम्हे करना है। काम तुम्हे चलाना है। जिम्मेदारी तुम्हे निभानी है। इसलिए मैं तुम्हे सूचनाएँ तो दे सकता हूँ किन्तु उन्हे मानने या न माननेकी तुम्हे पूरी छूट होनी चाहिए। और तुम ऐसा समझना कि ऐसी छूट तुम्हे है।

इस सवसे प्रेमाका सरोकार है ही। उसे अपनी जीभपर और अपने हठपर विजय पानी चाहिए। उसका काम रात-भर पीसकर छोटेसे ढक्कनसे उठा लेने-जैसा ही है। उसे जितना समझाया जा सके उतना समझाना। किसी कामसे मुक्त करनेकी

आवश्यकता हो तो मुक्त कर देना। वह लगातार काम करती रहती है। इसलिए यदि वह अशान्त रहती हो तो उसे अपना काम कम कर लेना चाहिए। किन्तु यदि उसे उसीने शान्ति मिलती हो तो उसे सब लोगोकी आलोचना भी सुन सकना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३६ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

११०. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय चार्ली,

हम सबको इस बातकी बडी खुशी है कि तुम्हारे भाई अच्छे हो रहे है।

अस्पृश्यताके सिलसिलेमे सभी गति-विधियोंकी जानकारी तुम्हे 'हरिजन' दे देगा। हालाँकि सभी तरफ तूफान आया हुआ है, पर जैसे भी हो, मेरे अपने मनमें पूर्ण शान्ति है। मन्दिरोमे प्रवेशकी इस समस्यासे परोक्ष रूपमे अनेक आध्यात्मिक समस्याएँ हल होती जा रही है। इस समस्याने हमारे आन्दोलनको उसकी वास्तविक धार्मिक पृष्ठभूमि प्रदान कर दी है और अब भी कर रही है। बहुत-से लोगोका खयाल था और अब भी है कि यह समस्या एक निरी राजनीतिक और आर्थिक समस्या ही है। लेकिन अब महसूस किया जा रहा है कि अन्य सभी चीजोका दारोमदार सवर्ण हिन्दुओ के धार्मिक दृष्टिकोणके परिवर्तनपर ही है; क्योंकि मन्दिरोमे प्रवेशका वास्तविक महत्त्व यही है। हो सकता है कि धार्मिक दृष्टिकोणमे ऐसा परिवर्तन हमारे जीवन-कालमे न भी आ सके। बादमे यह भी सिद्ध हो सकता है कि मैंने अन्धविश्वासकी शक्ति कम करके आँकी थी। फिर भी समस्याका रूप दिन-दिन अधिक स्पष्ट होता जा रहा है। मन्दिर-प्रवेश और तत्सम्बन्धी सभी प्रश्नोके हल हुए बिना अस्पृश्यता समाप्त भी नही की जा सकती। मन्दिर-प्रवेशसे मेरा तात्पर्य कानून और बलके जरिये नही, बल्कि जनताकी स्वेच्छासे मन्दिर-प्रवेशकी अनुमति देनेसे है। मै अबतक सनातनी लोगोको यह समझानेमे सफल नही हो पाया हूँ कि इन दोनो ही विधेयकोका मंशा हिन्दुओके अपने धार्मिक विश्वासोमे किसी भी रूपमे किसी भी तरहका हस्तक्षेप करना नही है। इनका उद्देश्य केवल इतना है कि हिन्दुओके अपने धार्मिक विश्वासोपर पूरी तरह अमल करनेमें जो कानूनी बाधाएँ पेश आती है उनको दूर कर दिया जाये। मुझे इसका बहुत अधिक दुःख है कि सरकार इन दोनो विधेयकोका यह इतना स्पष्ट-सा उद्देश्य भी नही समझ पाई है। लेकिन 'हरिजन'मे मैंने जान-बूझकर इस

पहलूपर विचार नही किया है। मैंने इसके बारेमें वाइसरायको जरूर लिखा है[1] और इतनेपर ही सन्तोष कर लिया है।

वहाँके सभी लोगोको हम सबका स्नेह-वन्दन।

हृदयसे तुम्हारा,
मोहन

सी० एफ० एन्ड्रयूज
वुडब्रुक, सेली ओक
बर्मिंघम

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९८१) से।

१११. पत्र : अगाथा हैरिसनको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय अगाथा,

तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया। मेरा खयाल था कि 'हरिजन' की दस प्रतियो का एक पार्सल मै तुम्हे भेज चुका हूँ। जो भी हो, इसकी प्रतियाँ उन सभी मित्रोको भेजी जा रही है जिन्होने मेरी यात्राके दौरान मदद की थी। तुम्हे यदि अधिक प्रतियाँ दरकार हो तो लिखना।

सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

कुमारी अगाथा हैरिसन
११९, गोवर स्ट्रीट, डब्ल्यू० सी०-१

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४६३) से।

१. गांधीजी ने वाइसरायको १ और १९ फरवरीको पत्र लिखे थे, देखिए खण्ड ५३।

११२. पत्र : एच० एल० ह्यूबार्डको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

अपनी शुभेच्छाएँ व्यक्त करते हुए आपने जो पत्र भेजा है उसके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड एच० एल० ह्यूवार्ड
ऑल सेंट्स विकारेज
मार्गेट
इंग्लैंड

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६०५) से।

११३. पत्र : के० केलप्पनको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय केलप्पन,

यह कैसी तानाशाही है? आन्दोलनकी प्रगतिके बारेमें मुझे जानकारी तो देते रहो। अजीब बात है कि इतने दिनोंसे तुम्हारी ओरसे एक पत्र भी नहीं आया।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६००) से।

११४. पत्र : के० माधवन् नायरको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय माधवन्,

आपका पत्र मिला। उसमें बतलाया गया है कि श्रीयुत केलप्पनको एकमात्र अधिनायक नियुक्त कर दिया गया है और अस्थायी समिति भंग कर दी गई है। आशा है, यह परिवर्तन आगे चलकर अपना औचित्य सिद्ध कर सकेगा। मैं इस परिवर्तनको पूरी तरह समझ नहीं पाया हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९९) से।

११५. पत्र: जे० एस० एम० जोजेफ तथा हेलेन कोनॉर्डको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्रो,

पत्र और उसके साथ भेजी पुस्तकके लिए मैं आप दोनोका आभारी हूँ।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं उसे पहले ही पढ चुका हूँ। मैंने उसे काफी दिलचस्पीके साथ पढा और उससे बहुत-कुछ जाना-सीखा। यह बात वरसो पहलेकी है।

हृदयसे आपका,

डॉ० जे० एस० एम० जोजेफ तथा हेलेन कोनॉर्ड
१५८, हैरिसन स्ट्रीट
पासाइक, न्यू जर्सी (अमरीका)

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६०१) से।

११६. पत्र: पी० आर० लेलेको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय लेले;

आपके तीन पत्र मुझे मिले। कहना पडेगा कि आपके पहले दो पत्रोसे मैं सन्तुष्ट नही हूँ। मैंने जो पत्र प्रकाशित[1] किया है वह तो निश्चय ही इस तरह तैयार किया गया था जैसे वह प्रकाशनके लिए ही हो, और उसका मशा यह दिखाना भी था कि बकाया राशि हरिजनोको मिल गई थी। हो सकता है, आपने वह पत्र प्रकाशित करानेके खयालसे न लिखा हो, लेकिन तब वैसा पत्र लिखनेका कोई मतलब ही नही था। आप एक प्रकाशन विभाग-भर तो है नही कि ऐसी शेखी बघारे कि आपके प्रकाशनके कुल काम पर जितनी लागत बैठती है आपका ऊपरी खर्च उसका सिर्फ दस फीसदी ही रहता है। इन समितियोको अस्तित्वमें लानेवाले प्रस्तावको पढिए, तो मेरा आशय आपको साफ हो जायेगा।

१. हरिजनके ११-३-१९३३ के अंकमें।

मैने यह बात नोट कर ली है कि आप नही चाहते कि मै आपके भेजे हुए आँकड़े प्रकाशित करूँ।

१५ तारीखके आपके पत्रके साथ भेजी गई दो कतरनोके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
३१, मर्जबान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९५) से।

११७. पत्र : नी० को

१७ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारा पत्र मिला। यह पत्र मै स्वय हाथसे लिखना चाहता था, पर वैसा हो नही पाया। अचानक एक मुलाकाती आ धमके और मेरे वशकी बात नही रह गई।

मेरी आत्मा तुम्हारे चारो ओर उसी तरह मँडराती रहती है जैसे एक माँ की आत्मा अपने खोये हुए बच्चेके आसपास मँडराती है। मै तुमको एक बच्चीकी तरह अपनाना तो चाहता हूँ, लेकिन अबतक तुम्हारे प्रति मुझमे उतना विश्वास पैदा नही हो पाया है। हो सकता है, इसमें तुम्हारा अपना कोई दोष न हो, लेकिन जो चीज है वह तो है ही। तुमको मेरी विचारधारा पूरी तरह समझनी चाहिए। मेरे पास यही एक तरीका है तुम्हारे मार्ग-दर्शनका और अपनी एक पुत्रीकी तरह तुमको अपना सकनेका।

मुझे सचमुच लगता है कि तुम फिर जालमे फँस गई हो। आध्यात्मिक पति एक ही है, सभी स्त्री-पुरुषोका सच्चा साथी और मित्र एक ही होता है और वह है ईश्वर, जिसे मै पूरी तरहसे सत्यके रूपमे जानता हूँ। एक ईश्वर ही है, जिसके तईं कोई लिंग भेद नही होता। दैहिक विकारोसे मुक्त तो केवल ईश्वर ही है। अन्य सभी प्रकारके विवाहोमे न्यूनाधिक मात्रामे वासनाका अश होता ही है, दोनो पक्ष चाहे कितने ही उच्चादर्शोसे प्रेरित क्यो न हो। मानवताकी सेवाके निमित्त अपने-आपको अर्पित कर देनेवाले स्त्री-पुरुषोके लिए अनन्य सम्बन्ध जैसी कोई चीज होती ही नही।

इसलिए यदि तुम मेरी बात मानो तो इस तरह एकके-बाद-दूसरे गलत काम के चक्करमे मत पडो। फिलहाल तो लगता है कि तुम ऐसे ही चक्करमे पडी हुई हो। तुमने वचन दिया है कि तुम किसीके साथ कोई भी अनन्य या गुप्त या बिलकुल निजी सम्बन्ध नही रखोगी। तुम केवल अपने उद्देश्य या कार्यके प्रति समर्पित हो, अन्य किसीके भी प्रति नही।

तुम्हेको नियमित रूपसे पत्र लिखते रहना चाहिए।

सत्य ही ईश्वर है। वही तुम्हारा एकमात्र मार्ग-दर्शक, मित्र, साथी और चिरतन सम्बल बने।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६०३)से।

११८. पत्र : रामचन्द्रको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। नी० के लिए एक पत्र साथ रख रहा हूँ।

चूंकि मै स्वय शाकाहारी हूँ इसलिए मुर्गी-पालन और अडे बेचनेका विचार मुझे पसन्द तो नही है, फिर भी मै यह नही कह सकता कि किसी भी हरिजन सेवक संस्थाको ऐसा नही करना चाहिए। यदि तुम्हे यह उद्यम शुरू करना ठीक लगे, तो निस्सकोच करो। अडे किस तरहके होगे — मुर्गियाँ सामान्यतः जैसे अडे देती है वैसे या नई निर्दोष पद्धतिके जीव-रहित अडे?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९८) से।

११९. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

आप तीन दिन या अधिकसे-अधिक एक पखवारेके लिए यहाँ क्यो आना चाहती है? आपने यदि 'गीता' के मूल तत्त्वको थोडा भी ग्रहण किया हो तो आप समझ सकती है कि इस प्रकारकी इच्छाका दमन करके उसका उत्तोलन शुद्ध कर्मके रूपमे करना चाहिए। आपके लिए शुद्ध कर्मका अर्थ यह होगा कि आप वही अपना कर्तव्य करे। आपको अपनी बचतकी राशियोको सँभालकर रखना चाहिए और यदि आप उन्हे खर्च करनेसे अपनेको न रोक पाती हो तो उसे यहाँ हरिजन-कार्यके लिए भेज दे।

आशा है, मेरे पिछले सभी पत्र आपको मिल गये होगे।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स। सौजन्य . नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय। एस० एन० २०६०२ से भी।

१२०. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

१७ मार्च, १९३३

चि० नरहरि परीख,

तुमने महादेवको लिखा अपना पत्र क्यो फाड़ डाला? जरा सोचो इसमे कितना क्रोध, कितनी हिंसा थी! नारणदासने पत्रके टुकडोको जोडकर उसकी पूरी नकल करके यहाँ भेजी है। नारणदासका चाहे कितना भी दोष क्यो न हो फिर भी उक्त पत्र फाड़नेका अधिकार तुम्हे नही था। तुम्हारा पत्र और नारणदास द्वारा महादेवको लिखा सक्षिप्त उत्तर भी मै पढ़ गया हूँ। उसकी मुझपर जो छाप पडी वह मैंने संक्षेपमें नारणदासको जता दी है। मैंने सूचित कर दिया है कि उक्त पत्र तुम्हे पढवा दिया जाये।

यह सच है कि नारणदासपर मेरा उतना ही विश्वास है जितना कि तुमने सुना है। यही मेरा स्वभाव है। उतना विश्वास सिर्फ उसीपर हो ऐसा नही है। मुझे उतना ही विश्वास तुमपर, पण्डितजी पर, काकापर है और इसी प्रकार तुम इसमे अन्य नाम भी जोड़ सकते हो। इन सब लोगोके विरुद्ध जबतक मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिलेगा तबतक मै कुछ भी माननेको तैयार नही हूँगा। इसलिए जो तुम्हारे सुननेमे आया उसमे अचरजकी कोई बात नही थी, न होनी चाहिए थी। किन्तु नारणदासके बारेमे मै जो मानता हूँ वह यह है कि उसमे कार्यदक्षता, धैर्य, विवेक-शक्ति, समता, निष्पक्षता और दृढता आदि गुण बहुत उच्च कोटिके है। उसके ये गुण मुझे मुग्ध कर देते है। अतः मै यह अवश्य चाहता हूँ कि तुम और अन्य सह-योगी उसके गुणोकी कद्र करे तथा उसकी सेवासे पूरा लाभ उठायें। किन्तु मेरे कहने-भरसे उसमे ये गुण नही आ सकते और न अन्य लोग उन्हे देख सकते है। यदि ये गुण तुम्हे नजर ही नही आते तो तुम क्या कर सकते हो? इससे स्पष्ट है कि यदि ये गुण तुम्हे दिखाई नही देते तो तुम उससे जितनी सेवा लेना चाहते हो उतनी कदापि नही ले सकते। इतना तो नारणदासके सम्बन्धमे मेरी मान्यताके बारेमे हुआ। तुम्हारा पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा। उसका पृथक्करण करने या उसमें जो नासमझी की बातें है उन्हे बतानेका मुझे समय नही है, बतानेकी आवश्यकता भी नही है। मै समझता हूँ उससे मुझे जितना सार ग्रहण करना चाहिए था उतना मैंने कर लिया है। नारणदासको मैंने जो सूचनाएँ दी है उनसे तुम उन्हे देख सकोगे।

मै तुमसे जो चाहता हूँ वह यह है कि तुम नारणदाससे मिलकर शान्त चित्तसे विवेचना करके जो सुधार करने लायक हो सो करवा लो। जो बात नारणदासके गले न उतरे उसके बारेमें तटस्थ रहो। मै समझता हूँ कि तुम ऐसा तो नही मानते

या चाहते कि आश्रमकी व्यवस्थाका भार नारणदासके बजाय किसी अन्यको सौप दिया जाये। यदि तुम ऐसा मानते या चाहते हो तो मुझे अवश्य लिखना। किन्तु यदि ऐसी बात न हो तो नारणदासको जहाँतक समझाया जा सके उतना समझाना तुम्हारा कर्तव्य है। आश्रमके हितके लिए तुम भी उतने ही जिम्मेवार हो जितना मैं अथवा नारणदास या अन्य कोई है। हम जो हैं सो हैं और हमारे कारण आश्रमका जो होना हो सो हो। इसलिए तुम पराये बनकर नही रह सकते। हिन्दू विवाहकी भाँति आश्रमवासियोका सम्बन्ध अटूट है। गौवर बिल अभी तो पास नही हुआ है किन्तु पास हो जानेके बाद भी जिसे प्रचलित अटूट विवाह-प्रथासे चिपके रहना होगा वह तो चिपका ही रहेगा। गौवर बिल अनमेल और जबरदस्ती हुए विवाहोको ध्यानमे रखकर बनाया गया है। हमारे इस विवाहको तुम अनमेल या बलात् हुआ तो नही मानोगे? यह तो स्वयंवर है। इस बातको ध्यानमे रखते हुए और यह समझकर कि जो अनिवार्य है उसे सहनेमे ही निस्तार है, तुम्हे तदनुसार व्यवहार करना चाहिए। तुम्हारा पत्र मैंने बहुत उतावलीमे पढा है। इसलिए मेरे करने लायक यदि कुछ छूट गया हो तो मुझे अवश्य बताना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०५७) से।

१२१. पत्र : प्रोफेसर सोरिजको

१७/१८ मार्च, १९३३

प्रिय प्रोफेसर सोरिज,

कल आपसे मिलकर बडी प्रसन्नता हुई और दिलचस्प जानकारी प्राप्त हुई कि गोआके ईसाइयोमे जाति-प्रथाका पालन होता है और वह इतने तक ही सीमित है कि अन्तर्जातीय विवाह न किये जाये।

आप यदि गोआवासी हरिजनो और अन्य हिन्दुओके बारेमे मुझे तुलनात्मक आँकड़े भेज सके और उसमे यह भी बता सके कि गोआ या, कहिए, पुर्तगाली भारत मे कितने हरिजन कौन-से पेशे करते है, तो मै आपका बड़ा आभार मानूंगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९७) से।

१२२. टिप्पणियाँ

छुआछूतसे बुराइयाँ

तेलुगु जिलोंमें और उनसे मिले हुए तमिल जिलोंमें भी मदीगा और माला जातिके लोग अछूत माने जाते हैं। ये लोग माताम्मा भारियम्मा और गंगाम्माको बलिदान देनेके लिए गाय-भैंस मारते हैं। इसमें तो सन्देह नहीं कि आवश्यकता और संकटके समय कुछ सवर्ण लोग भी इन देवियोंको बलि चढ़ानेकी मनौती मानते हैं, पर बलिदानका असल काम ये तथाकथित अवर्ण ही करते हैं। ये अछूत खुले मैदानमें बलिदान ही नहीं करते, बल्कि गोमांस भी खाते हैं। वे मुर्दार मांस भी खाते हैं। सवर्ण हिन्दू सूअरका मांस नहीं खाते, किन्तु ये खाते हैं। इसलिए मेरी विनय है कि आप अछूतोंको सलाह दें कि वे बलिदान करना और मुर्दार मांस खाना छोड़ दें। मुर्दार खानेसे ही उनका शारीरिक ह्रास हो रहा है। हम लोगोंको, जो अछूतोद्धारका काम कर रहे हैं, क्या आप कोई सन्देश भेजनेकी भी कृपा करेंगे?

आन्ध्र प्रान्तीय किसान-सभाके मन्त्रीके एक लम्बे पत्रका यह एक संक्षिप्त अंश है। इसमें सन्देह नहीं कि हरिजनोंके विरुद्ध जो दुर्भाव फैला हुआ है उसका बहुत-कुछ कारण उनकी मुर्दार मांस और विशेषकर गोमांस खानेकी आदत है। किन्तु हिन्दू धर्मकी या यों कहना चाहिए कि सवर्ण हिन्दुओंकी, सबसे बड़ी कमजोरी इसी बातमें प्रकट होती है कि वे अपने हिन्दू भाइयोंके ही एक समुदायको अछूत समझते हैं और अत्यन्त निठुराईसे उनकी उपेक्षा करते हैं। इसलिए अछूतोंके वर्तमान रहन-सहनके लिए हम ही तो जिम्मेवार हैं। परन्तु सुधारका मौका हाथसे निकल नहीं गया है। हरिजनोंको तो समझ लेना चाहिए कि अछूतपन कभीका मर चुका है। अलबत्ता, उसके अनिष्ट परिणाम तो बहुत कालतक चलते रहेंगे। वे कितने दिन तक चलते रहते हैं, यह इस प्रश्नके प्रति दोनों वर्गोंकी उपेक्षापर निर्भर है। परन्तु सवर्ण हिन्दुओंकी जवाबदेही इस बारेमें उनसे कहीं अधिक और भारी है। अगर वे अपना कर्तव्य निभायेंगे और पूरा दिल लगाकर काम करेंगे तो उन्हें इन बलिदानों और मुर्दार मांस खानेकी आदतको रोकनेमें सफलता अवश्य मिलेगी। समाजके अन्ध-विश्वासों और बुरी आदतोंको छुड़वानेके लिए बस ज्ञानके प्रचारकी जरूरत है। परन्तु मैं सुधारकों और साधारणतः तमाम सवर्ण हिन्दुओंसे यह एक बात बार-बार कह देना चाहता हूँ कि अगर वे इस सुधारको अछूतोद्धारकी एक शर्त बना देंगे तो हरिजनोंकी एक भी बुरी आदतको दूर न कर सकेंगे। बल्कि हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि ये बुराइयाँ अछूतपनसे पैदा हुई हैं, न कि यह अछूतपन इन

बुराइयोंसे पैदा हुआ है। कमसे-कम मौजूदा अछूतपन तो निश्चय ही इन बुराइयोंका परिणाम नही है।

जहाँतक मुर्दार मास खानेकी बुराईका सवाल है, पाठक 'हरिजनबन्धु' मे प्रकाशित मेरे एक लेखमे उसके सम्बन्धमे कुछ ठोस सुझाव देखेंगे। इस लेखका अनुवाद[1] अन्यत्र दिया जा रहा है।

ईसाई हरिजन

'ईसाई हरिजन', इन दोनो शब्दोमे अन्तर्विरोध है — इसलिए कि भारतसे हम जिस अस्पृश्यताको हटाना चाहते हैं, वह (सुधारकोकी दृष्टिमे) हिन्दू धर्मका एक विशेष अभिशाप और (सनातनियोकी दृष्टिमे) उसको मिला एक विशेष वरदान है। परन्तु हिन्दुओके सम्पर्कमे आनेसे ईसाइयोको ऐसी छूत-सी लग गई कि कमसे-कम मलाबारमे तो ईसाइयोमे भी अस्पृश्यता दिखाई पडने लगी है और उसका स्वरूप लगभग वही है जो हिन्दुओके बीच है। एक मलाबारी ईसाई सज्जनने श्रीयुत अमृतलाल ठक्करको लिखा है :[2]

> विख्यात वाइकोम सत्याग्रहके दिनोंसे त्रावणकोरके हरिजनोंकी वास्तविक दशा . . .के बारेमें काफी विस्तृत जानकारी तो मिलती रही है, लेकिन लोगों को इसका गुमान भी नहीं है और न किसीको इसका पता लगा है . . . कि त्रावणकोरके ईसाई हरिजन नागरिक या सामाजिक अधिकारों और भयंकर गरीबीके मामलेमें बिलकुल अपने हिन्दू हरिजन भाइयोंकी ही तरह है। पिछले सालकी जन-गणनाकी रिपोर्टके मुताबिक त्रावणकोरके पुलाया या चेरूमा, परिया या साम्भव, इगनाओं या ईनापुलाया और कुछ अन्य छोटी-मोटी जातियोंके लोगोंकी संख्या ६,००,००० थी। ये लोग त्रावणकोरकी बहिष्कृत जातियोंमें सबसे निचले तबकेके माने जाते हैं।
>
> कुल मिलाकर देखें तो धर्मान्तरित (ईसाई) पुलायों या परियाओंकी स्थिति वैसी ही है जैसी अन्य जातियोंकी। त्रिवेन्द्रम-जैसे कुछ शहर जो इसके अपवाद कहे जा सकते है वे भी वास्तविक अपवाद नहीं है। यहाँ भी अन्य जातियोंसे धर्मान्तरित इन लोगोंकी स्थितिमें कोई अन्तर है तो यही कि ये लोग कुछ ज्यादा दिखावा करते है और यहाँ उन लोगोंके बीच मुट्ठी-भर ऐसे लोग हो सकते हैं जो कुछ ज्यादा पढ़े-लिखे है या रोजी-रोटी कमानेके कुछ बेहतर धन्धोंमें लगे हुए है।
>
> सार्वजनिक संस्थाओं, सड़कों, सरायों, विश्रामालयों, मन्दिरों, गिरजों, कचहरियों, व्यावसायिक संस्थानों, दुकानों और यहाँतक कि शराबघरोंमें भी इन

१. देखिए "मरे ढोरोंका निवटारा", १२-३-१९३३।
२. यहाँ कुछ ही अंश दिये जा रहे हैं।

लोगोंका प्रवेश उतना ही वर्जित है जितना अन्य हरिजनोंका। नम्बूदिरी-जैसे सवर्णोके लिए तो दोनो ही जातियोके लोग आज भी अदर्शनीय बने हुए हैं।

दक्षिणमें नडार और उत्तरमें सीरियाई-जैसे खाते-पीते ईसाई समुदाय, हम ईसाइयोके लिए वैसे ही हैं जैसे कि हमारे हिन्दू हरिजन भाइयोंके लिए सनातनी लोग हैं। (ईसाई हों या हिन्दू) हम हरिजनोंके लिए सैकड़ों गिरजोके दरवाजे बन्द रहते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निचले तबकेके ईसाई हरिजनोंके लिए अपने पंचम भाइयोंके साथ मिलकर काम करना क्यों जरूरी है। . . .

हमें यह भी बतलानेकी अनुमति दीजिए कि हम अधिकांशतः खेतिहर कम्मी लोग हैं और इसलिए हम अपने सवर्ण हिन्दू और ईसाई मालिकोके ही आश्रित रहे हैं और आज भी हैं। बढ़ती गरीबी और उत्तरोत्तर छोटे-छोटे टुकड़ोंमें भूमिके बँटते जानेसे हमारी आर्थिक दशा दिन-दिन बिगड़ती जा रही है। . . .

इस प्रकारकी स्थिति निस्सन्देह हिन्दू धर्मपर एक कलंक है, लेकिन धर्मके लिए यह यदि अधिक नही तो भी किसी कदर कम कलंकपूर्ण नही है। वर्तमान आन्दोलन स्वतः ईसाई हरिजनोके लिए सहायक सिद्ध हो रहा है। लेकिन यदि अब भी लोग इस आन्दोलनका लाभ उठाकर ईसाई धर्मसे अस्पृश्यताको दूर करनेकी कोशिश नही करेंगे तो मुझे आश्चर्य होगा। मैं यह भी आशा करता हूँ कि नडारो और एजवा समुदायोके अनेकानेक शिक्षित लोग खुद हरिजनोके अन्दर मौजूद — तरह-तरहके भेदभावोको मिटानेके लिए अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न कर रहे होंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-३-१९३३

१२३. हरिजनोंके विचार

'हरिजन' के पिछले अंकमें पाठकोने ठक्कर बापाके पजाबके दौरेका वह विवरण पढा और भली-भाँति समझ लिया होगा जो उन्होने स्वयं ही तार द्वारा भेजा था। गुजरातमे, विशेपकर हरिजन लोग, उनको प्रेमसे ठक्कर बापा ही कहते हैं। उनसे मुलाकात करनेवाले हरिजन प्रतिनिधि-मण्डलोने अपनी ओरसे जो मानपत्र उनको भेंट किये थे, उनकी प्रतियाँ मेरे पास भी भेजी हैं। जालधर नगरके आदि धर्म-मण्डल और लाहौर शहरके वाल्मीक आदि धर्म-मण्डल द्वारा भेंट किये गये मानपत्रमे यह कहा गया है:

पंजाब प्रान्तमें उच्च वर्णके घमंडी हिन्दुओने समाजमें हमें ऐसी अधम और पतित अवस्थामें पहुँचा दिया है जिसके बारेमें कुछ कहा नहीं जा सकता। हमारे स्पर्श-मात्रसे वे अपने-आपको अपवित्र मानने लगते हैं। सार्वजनिक स्थानोंमें हमारा प्रवेश और सार्वजनिक कुओं तथा तालाबोंसे पानी लेना तक आपत्ति-

जनक समझा जाता है। हिन्दू धोबी और नाई हम लोगोंके कपड़े धोने और हजामत बनानेको तैयार नहीं होते। हमें हिन्दू भोजनालयोंमें भोजन करनेकी अनुमति नहीं। हमें अपने विवाहोंमें बैंड, पालकियाँ आदि इस्तेमाल नहीं करने दी जातीं। पर उनके विवाहोंमें हम लोगोंको हिन्दू वधुओंकी पालकियाँ उठानेपर विवश किया जाता है। हमारे अच्छे कपड़े पहननेपर भी उनको नाराजी होती है। पंजाब प्रान्तके दलित वर्गोंके सामने कई कठिनाइयाँ हैं। उच्च वर्गके हिन्दुओंने उनको हर तरफसे गिरा और दबाकर रखा है। जातिकी समस्या बड़ी दुखदायी बन गई है। उनके रहनेके मकानोंको भी उनकी अपनी सम्पत्ति नहीं माना जाता। गाँवों और शहरोंमें उनकी आर्थिक दशा बहुत ज्यादा गिर गई है, और उनके उत्थानके लिए एक जोरदार प्रचार-आन्दोलन दरकार है।

यदि पंजाब-जैसे उन्नत प्रान्तमें उनकी दशा इतनी खराब है, तब फिर भारतके अन्य प्रान्तोंमें तो पूछना ही क्या! और जैसा कि ठक्कर बापाके तारसे स्पष्ट है, हरिजनोंको कृषि-भूमिके मालिकाना अधिकारसे वंचित करनेके लिए कानूनने सवर्ण हिन्दुओंके साथ जैसे एक षड्यन्त्र रच रखा है। हम आशा करते हैं कि पंजाबकी अनेकानेक समाजोद्धारक संस्थाएँ ऊपर गिनाई निर्योग्यताओंमें कुछको तो तत्काल दूर करनेके लिए अवश्य ही एक सम्मिलित प्रयत्न करेंगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-३-१९३३

१२४. इन अन्त्यजोंके प्रति भी

इस लेखके शीर्षकके लिए मैंने रस्किनका एक बहुप्रचलित एवं सुप्रतिष्ठित मुहावरा उधार लिया है, और उधर उन्होंने यह मुहावरा 'बाइबिल' से लिया था। मूल मुहावरेमें 'भी' मैंने 'भी' (इविन) शब्द जोड़ दिया है और 'इस' (दिस) को बदलकर 'इन' (दीज) कर दिया है।[१] मैं जो चाहता हूँ उसे पूरी तरह कहनेके लिए यह आवश्यक था। हरिजनोंकी पंक्तिमें भंगी लोग सबसे अन्तमें खड़े दीखते हैं, यद्यपि वे समाजके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य — उतने ही अनिवार्य जितनी एक बातमें माता अपने बच्चोंके लिए होती है — सदस्य हैं। यदि सवर्ण हिन्दुओंको पाखाने आदिकी सफाईका काम स्वयं करना पड़ता तो भंगियोंको यह काम जिन गन्दे तरीकोंसे करना पड़ता है उनमें से कुछ तो कबके समाप्त हो चुके होते। मथुराके अस्पृश्यता-विरोधी बोर्डने वहाँके नगरनिगमको जो पत्र भेजा है, उसका कुछ अंश मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ :[२]

१. मूल अंग्रेजीमें गांधीजीने रस्किन द्वारा प्रयुक्त बाइबिलके मुहावरे "अन टु दिस लास्ट" को किंचित् बदले हुए रूपमें दिया है — अर्थात् "इविन अन टु दीज लास्ट"।

२. गांधीजी द्वारा उद्धृत अंशके कुछ हिस्से ही दिये जा रहे हैं।

> ...कोई क्षीणकाय, दुर्बल और वय-जर्जर स्त्री अपने सिरपर विष्टासे भरी टोकरी लिये शहरकी गलियोंसे विष्टा जमा करनेके गढ़े या उसे बहानेके स्थल को चली जा रही है — प्रतिदिन सुबह-सुबह यह करुण दृश्य देखकर जिसका मन द्रवित न हो उठता हो, वह अवश्य ही बड़ा निष्ठुर हृदय व्यक्ति होगा। पुराने जमानेसे चली आ रही यह बात सर्वथा अमानवीय, क्रूरतापूर्ण और बर्बरताका अवशेष है, यह अस्वास्थ्यकर भी है। . . . इसका उपाय सरल है। आप ठेले खरीदकर अपने इन मूक सेवकोंको दे दें, ताकि ये विष्टाको अपने सिरोंपर ले जानेके बजाय उन ठेलोंमें ले जायें। एक और भी बातका ध्यान रखा जाये तो अच्छा हो। हर पाखानेमें मिट्टी या धातुका एक बरतन हो, ताकि मल साफ करनेका तरीका उतना गन्दा न रहे।

पाठकगण लेखक द्वारा प्रयुक्त किंचित् आडम्बरपूर्ण भाषाका उपहास न करें। उन्होंने जो-कुछ कहा है वह परम सत्य है। भंगियोंने अबतक तो अपना काम बिना किसी शिकवा-शिकायतके किया है, और इसीलिए सवर्ण लोगोंने यह जाननेकी फिक्र नहीं की है कि ये लोग किस प्रकार सदियोंसे समाजकी सेवा करते आ रहे हैं। यदि हमने समाजके इन सेवकोंको अस्पृश्य न माना होता तो उनकी या उनके कामकी ओरसे हम अपनी आँखें बन्द न कर लेते। मगर हमने यही करना पसन्द किया है और भंगियोंको नरकमें डाल रखा है, जिसका परिणाम यह हुआ है हम खुद ही प्रतिदिन पाखाना कहे जानेवाले इस नरकमें गिरते हैं और न तो अपने चारों ओरकी गन्दगीको देखनेकी फिक्र करते हैं और न उसमें भरी दुर्गन्धकी ओर ध्यान देते हैं। जो बात मथुराके भंगियों और नगरपालिका पर लागू होती है वही कमोबेश भारतके सभी भंगियों और नगरपालिकाओं पर लागू होती है। मथुराके अस्पृश्यता-विरोधी बोर्डने जो सुधार सुझाया है वह अत्यन्त वांछनीय है और बिना किसी ज्यादा खर्चके उसे प्रत्येक नगरपालिका लागू कर सकती है।

अभी पिछले ही दिनों मैंने इलाहाबादसे प्रकाशित 'लीडर' में इलाहाबादकी गलियोंमें एक जमीदार द्वारा शुरू किये गये सफाईके कामके बारेमें पढ़ा था। वह काम अभी दो दिन ही चल पाया था कि इस कामको शुरू करनेवाले उस उत्साही नौजवानने टोकरियोंके बदले कोई और तरीका इस्तेमाल करनेकी सोची। तो मैं एक उद्धरण २७ फरवरीके 'लीडर' से भी दे रहा हूँ

> अस्पृश्यता-विरोधी कार्यकर्त्ता, इन दिनों लोगोंके निजी पाखानोंसे मल आदि उठानेके लिए मेहतर लोग जिन टोकरियोंका इस्तेमाल करते हैं, उनके बदले लोहेके हलके ठेले, जिनमें अलग कर दिये जा सकनेवाले डोल लगे रहेंगे, दाखिल करनेकी कोशिश कर रहे हैं। प्रस्तावित योजनाके अनुसार उन ठेलोंका खर्च मेहतरोंसे काम लेनेवाले लोग उठायेंगे। ऐसा मालूम हुआ है कि इलाहाबाद लॉ जर्नल कम्पनीके प्रबन्धकने प्रचार-कार्यको ध्यानमें रखकर अपने खर्चपर गन्दगी हटानेवाली छोटी गाड़ीका एक नमूना तैयार करवानेका काम अपने जिम्मे

लेनेकी उदारता दिखाई है। इस योजनाके अनुसार प्रत्येक निजी पाखानेमें दो बर्तन रखने होंगे। किसी उच्च गोत्रीय ब्राह्मण महिलाने अपना नाम जाहिर किये बिना कालिमणिका स्थानमें या उसके आसपास एक सार्वजनिक शौचालय बनवानेके लिए अनुदान दिया है। नगरपालिका अधिकारी उस क्षेत्रमें ज्यों ही जलकी आपूर्ति और उसके बहावकी समुचित व्यवस्था कर देंगे त्यों ही यह काम शुरू कर दिया जायेगा।

आशा है, यह खबर छपनेसे लेकर आजतक के सप्ताहोंके दौरान यह उत्साह ठंडा नही पड गया होगा। यदि कुछ सच्चे और उत्साही कार्यकर्त्तागण सन्नद्ध रहेगे तो यह अत्यावश्यक सुधार प्रत्येक शहर और नगरमे प्रारम्भ किया जा सकता है। अगर यह खबर सही है कि सार्वजनिक पाखाना बनवानेके लिए एक ब्राह्मण महिलाने अनुदान देनेकी उदारता दिखाई है तो इससे श्रीयुत हीरालाल शाहको बडी प्रसन्नता होगी, क्योकि वे अपने इस प्रस्तावपर बडे उत्साहके साथ आग्रह करते रहे है कि मेहतरोके लिए अपना दैनिक कार्य खत्म करनेके बाद नहाने और कपडे बदलनेकी व्यवस्था होनी चाहिए।[1]

इस प्रकार तीन ऐसे सुधार है जिन्हे तनिक-सी दूरदर्शिता दिखानेसे और बहुत थोडे अतिरिक्त खर्चमे भारत-भरमे प्रारम्भ किया जा सकता है। इससे एक ओर तो हरिजनोको सुविधा मिलेगी और वे सफाईसे रह सकेगे और दूसरी ओर यह आम तौरपर सारे समाजके स्वास्थ्यके लिए लाभदायक होगा। तात्पर्य यह कि हम अपने साथ जैसे व्यवहारकी अपेक्षा दूसरोसे रखते है वैसा ही व्यवहार हमे समाजके इन 'अन्त्यजोके प्रति भी' करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-३-१९३३

१२५. कुछ उलझन-भरे प्रश्न

मूर्तिपूजाके विरोधी एक शिक्षकने ये तीन प्रश्न पूछे है·

१. श्री रामचन्द्रके जीवनका अनुकरण करनेवाले हिन्दूके लिए क्या यह भी आवश्यक है कि वह मन्दिरमें जाकर उनकी प्रतिमाके दर्शन करे? क्या दर्शन सदाचरणसे श्रेष्ठ है?

२. यदि हम किसी मनुष्यको सिर झुकाकर या हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं तो वह भी उसका उत्तर देता है, किन्तु प्रतिमा तो नहीं देती। फिर उसको नमस्कार करनेका क्या प्रयोजन हो सकता है? जो जवाब ही न दे उसको पत्र लिखनेसे क्या लाभ?

१. देखिए "एक विचारणीय योजना", १९-३-१९३३।

३. जिस व्यक्तिकी प्रतिमाकी हिन्दू पूजा करता है, सम्भव है, उसने अपने जीवनमें गलत काम भी किये हों। जो भक्त उसकी प्रतिमाकी पूजा करता है, हो सकता है, वह उसके गलत कामोंकी भी नकल करे। इससे क्या उसकी हानि न होगी?

इस तरहके प्रश्न पहले भी बहुत पूछे जा चुके है और उनके उत्तर भी दिये जा चुके है। किन्तु मन्दिर-प्रवेशके सवालने उन्हे फिरसे खड़ा कर दिया है और ये सवाल इन पत्र-लेखक भाई-जैसे ईमानदारीसे शका करनेवाले लोगोके मनोको इस तरह मथ रहे है मानो पहले कभी उनके जवाब दिये ही नही गये। तो मै उत्तर देनेकी भरसक कोशिश करूँगा, हालाँकि मुझे तो इस बातमे सन्देह है कि शका करनेवाले ऐसे लोगोको सन्तुष्ट भी किया जा सकता है।

किसी भी हिन्दूके लिए रामचन्द्र (की प्रतिमा)की पूजा करनेके लिए मन्दिरमे जाना आवश्यक नही है। यह चीज उन लोगोके लिए है जो मन्दिरमे रामकी प्रतिमा के दर्शन किये बिना अपने रामको अपने ध्यानमे नही उतार सकते। हो सकता है यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है, किन्तु सचाई यही है कि उसका राम जितना उस मन्दिरमें निवास करता है उतना और कही नही करता। मै तो इस सहज-सरल श्रद्धामें कोई विक्षेप नही डालना चाहूँगा।

पहले प्रश्नके साथ जो उप-प्रश्न खडा हुआ है, वह ठीकसे प्रस्तुत नही किया गया है। दर्शन और कर्ममें तुलनाका तो कोई प्रश्न ही नही उठता। अगर ऐसा प्रश्न उठ सकता तो मैं निस्संकोच कहता कि कर्म दर्शनसे श्रेष्ठ है। किन्तु, दर्शनका प्रयोजन तो कर्मकी प्रेरणा ग्रहण करना, आत्माकी स्थिरता और शुद्धि प्राप्त करना है। इस प्रकार दर्शन कोई सदाचरणका विकल्प नही है। वह उसमें प्रवृत्त होनेकी एक प्रेरणा-मात्र है।

दूसरा प्रश्न पूछनेमें तो शिक्षक महोदयने मन्दिरमें पूजा करनेके सारे मर्मको ही भुला दिया है। मै जब किसी जीवित व्यक्तिको नमस्कार करता हूँ और वह उसका यथोचित उत्तर देता है, तो वह सौजन्यका पारस्परिक आदान-प्रदान होता है और उसमे कोई खास खूबी नही होती। वह सुसभ्य लालन-पालनका द्योतक हो सकता है। मन्दिरमें तो लोग आत्मशुद्धिके लिए जाते है। पूजा करनेवाला उस समय, उसके अन्दर जो-कुछ भी सत् है, उस सबका आह्वान करता है। किसी जीवित व्यक्तिको नमस्कार करके तो वह, यदि उसका नमस्कार निस्स्वार्थ है तो, उसीके अन्दरके सत् अशको उभार सकता है। जीवित व्यक्तिमे तो न्यूनाधिक दोष होते ही है, जैसा कि स्वयं उस नमस्कार करनेवाले व्यक्तिमे होगा। किन्तु, मन्दिरमें वह मूर्तिमन्त ईश्वरकी पूजा करता है, जो इतना पूर्ण और दोष-रहित है जितनेकी हम कल्पना भी नही कर सकते। जीवित व्यक्तियोको पत्र लिखे तो उनके उत्तर बराबर मिलेगे ही, यह आवश्यक नही है और अगर मिले भी तो अकसर ऐसा देखा गया है कि अन्तमे व्यथा और वेदना ही पत्र लिखनेवाले के हाथ लगती है। किन्तु ईश्वरको, जो भक्तकी कल्पनाके अनुसार मन्दिरोमे रहता है, पत्र लिखनेमे न कागज, न स्याही

और न कलमकी जरूरत पडती है—यहाँतक कि वाणीकी भी नही। उसकी तो मूक प्रार्थना ही उसका पत्र होती है और उसका उत्तर उसे निश्चित रूपसे मिलता है। यह सारी विधि श्रद्धाका एक सुन्दर क्रियागत रूप होती है। इसमे कोई प्रयास निष्फल नहीं होता, हृदयको कोई व्यथा नही सहनी पडती, गलत समझे जानेका कोई भय नही होता। पत्र-लेखकको मन्दिर, मसजिद या गिरजेमे पूजाके सीधे-सादे अर्थको समझनेकी कोशिश करनी चाहिए, यदि वे यह समझ ले कि ईश्वरके इन विभिन्न प्रकारके निवास-स्थलोमे मैं कोई अन्तर नही करता तो मेरा आशय वे ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेगे। ये स्थल वैसे ही तो है जैसा हमारी श्रद्धाने उन्हे बनाया है। ये किसी प्रकार अदृश्यतक पहुँच पानेकी मनुष्यकी पिपासाक परिणाम है।

तीसरे प्रश्नसे यह प्रकट होता है कि पत्र-लेखकने, शायद हिन्दू अवतारोके सिद्धान्तको समझनेकी कोशिश नही की है। श्रद्धालु हिन्दूके लिए तो उसकी कल्पनाका अवतार सर्वथा दोष-रहित ही है। हिन्दू भक्तोका कृष्ण एक सर्वथा निर्दोष और पूर्ण व्यक्तित्व है। आलोचना करनेवालो की तीखी बातोका उनपर कोई असर नही होता। कृष्ण और रामके लाखो भक्तोके जीवन इन्ही नामोसे ईश्वरकी उपासना करते-करते बिलकुल बदल गये है। यह कैसे होता है, मुझे नही मालूम। यह एक रहस्य है। मैंने इसे सिद्ध करनेकी कोशिश भी नही की है। यद्यपि मेरी बुद्धि और हृदयने बहुत पहले ही यह समझ स्वीकार लिया है कि ईश्वरका सबसे बड़ा गुण और उसका नाम सत्य है, लेकिन मै सत्यको रामके नामसे भी जानता हूँ। मेरी परीक्षाकी कठिनतम घडीमे इस एक नामने ही मेरी रक्षा की है और वह आज भी कर रहा है। हो सकता है, इसका कारण मेरा बचपनका सस्कार हो, सम्भव है, इसकी वजह तुलसी-दास द्वारा मेरे मनमे रामके प्रति उत्पन्न किया गया तीव्राकर्षण ही हो। लेकिन, जो प्रबल तथ्य है वह तो है ही। और ये पक्तियाँ लिखते हुए भी मेरे मनमे बचपनकी वह स्मृति ताजा हो आई है जब मै अपने पैतृक घरके निकट स्थित राम-मन्दिरमे जाया करता था। तब मेरा राम वही निवास करता था। उसने मुझे अनेक तरहके भय और पापोसे बचाया। मेरे लिए वह अन्धविश्वास नही था। वहाँकी मूर्तिकी देख-रेख करनेवाला आदमी भले ही बुरा रहा हो। मुझे उसके किसी दोषकी जानकारी नही है। हो सकता है, उस मन्दिरमे कुकृत्य भी किये जाते रहे हो। मगर मुझे उसकी भी कोई जानकारी नही है। इसलिए मुझपर उनका कोई प्रभाव पड़नेवाला नही है। जो बात मुझपर लागू होती थी और होती है, वही करोड़ों हिन्दुओपर भी लागू होती है। मै चाहता हूँ कि मेरे हरिजन भाई भी, यदि वे चाहे तो, अपने करोड़ो सहधर्मियो, तथाकथित हिन्दुओके साथ मन्दिरोमे पूजा करनेमे शरीक हो सके। अपने मन्दिरोके द्वार अपने हरिजन भाइयोके लिए खोलनेका कर्तव्य उन सवर्ण हिन्दुओका है। मन्दिरोमे पूजा करना मानव जातिकी एक आकुल आध्यात्मिक आवश्यकताकी पूर्ति करता है। उसमे सुधारकी गुजाइश अवश्य है, किन्तु वह कायम तो मानवके अस्तित्व पर्यन्त रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-३-१९३३

१२६. अनुकरणका भय

मैं दर्शन-शास्त्रका एक विनम्र अध्येता हूँ और इसलिए मनुष्य-जातिके एक हिस्सेकी प्रगतिके मार्गमें आजतक बाधा बनी अस्पृश्यताको मिटानेके आन्दोलनके औचित्यको भली-भाँति समझता हूँ। मैं उपवासके द्वारा प्रायश्चित्त करने की विधिको भी समझ सकता हूँ, लेकिन मेरी एक ही उलझन है। 'भगवद्-गीता' में कहा है कि "श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, अन्य जन भी वैसा ही करते हैं।" सो यदि आप जैसा महात्मा उपवासका उदाहरण प्रस्तुत करता है तो क्या ऐसा खतरा नहीं है कि अपने आचरणके समर्थनमें आपका उदाहरण देकर वे आपका अन्धानुकरण करें? फिर, आप अन्तरात्माके निर्देशकी भी बात कहते हैं। इस हालतमें तो हर आदमी अन्तरात्माके ही निर्देशके नामपर बोलने का दावा करने लगेगा और फिर जो अन्तर्जातीय विवाह और खान-पानका सिलसिला चलनेपर समाजमें विशृंखलता आयेगी उसके लिए इस अन्तरात्माके निर्देशवाली बातको ही जिम्मेदार माना जायेगा। और जब अन्तरात्माके निर्देश की आड़में ऐसी घोर अनुशासनहीनताका बोलबाला हो जायेगा तो फिर आप सामान्य जनोंका, विशेषकर अस्पृश्योंका स्तर ऊपर कैसे उठायेंगे?

यह तो बता ही देना चाहिए कि मैंने लेखकके काफी लम्बे पत्रको यहाँ बहुत सक्षेपमे पेश किया है। किन्तु, मुझे पूरा विश्वास है कि पत्रका सक्षेप करनेसे पत्र-लेखककी बातका सार किसी तरह छूट नही पाया है। मेरा उत्तर सीधा-सादा है। उन्होने 'गीता' का जो श्लोक उद्धृत किया है, उसकी शिक्षाको मै स्वीकार करता हूँ। निश्चय ही इस श्लोकमे समाजके नेताओको ऐसे आचरणके खिलाफ चेतावनी दी गई है जिसका अनुकरण करनेसे समाजको हानि हो सकती है। यह ऐसे आचरणपर लागू नही हो सकता जिसका समझदारीसे अनुकरण करनेपर हानि होनेकी कोई सम्भावना नही है। क्योकि अगर यह उसपर भी लागू हो तो उसका मतलब तो प्रगतिका बिलकुल बन्द हो जाना और किसीके द्वारा कोई अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करनेके क्रमकी समाप्ति ही होगा। जिस आचरणके विरुद्ध कुछ कहा ही नही जा सकता हो, ऐसे आचरणके बारेमे भी यह खतरा बराबर रहता है कि लोग उसका गलत अर्थ निकालकर गलत तरीकेसे उसका प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु जो सही काम है वह तो गलत अर्थ लगाये जाने और गलत तरीकेसे प्रयुक्त किये जानेके खतरेके बावजूद करना ही है और सदासे किया ही जाता रहा है। अपने उपवासको मै सब तरहसे अच्छा और अपना कर्तव्य-रूप मानता हूँ। अगर उस उपवासके साथ जुडी शर्तोंका खयाल रखते हुए सम्पूर्ण मानव-जाति भी उसका अनुकरण करे तो भी उससे कोई हानि नही हो

सकती। जिस उपवासका उद्देश्य एक बडे आन्दोलनको कल्याणकारी ढगसे प्रभावित करना था उसे केवल इस डरसे कि कुछ लोग उसका दुरुपयोग कर सकते है, छोडा नही जा सकता था। प्रायश्चित्तके लिए उपवास करना, निस्सन्देह, एक अच्छी प्रथा है।

और अन्तिम बात यह कि उपवास तो अपने-आपमें ऐसी चीज है जो अपने दुरुपयोगकी सम्भावना नहीं छोडता। बहुत ज्यादा लोग उपवास करना नही चाहेंगे और चाहकर भी वैसा करनेवाले लोग तो और भी कम होंगे।

अन्तरात्माकी आवाजके सम्बन्धमें भी बहुत-कुछ यही बात कही जा सकती है। मेरे जानते तो इस सम्भावनासे किसीने भी इनकार नही किया है कि कुछ लोगोको परमात्माकी आवाज सुनाई दे सकती है, और अगर एक भी व्यक्तिका यह दावा वास्तवमे सिद्ध किया जा सकता है कि वह जो-कुछ कह रहा है, अन्तरात्माकी आवाजके इगितपर कह रहा है तो वह ससारके लिए एक उपलब्धि है। दावा तो बहुत-से लोग कर सकते है, किन्तु वे सबके सब उसे सिद्ध नही कर सकते। किन्तु, झूठे दावेदारो को रोकनेके लिए उसे दबाया नही जा सकता और न दबाना चाहिए। अगर अन्त-रात्माकी सच्ची आवाज बहुत-से लोग भी सुन सके और वे ईमानदारीके साथ तदनुसार आचरण करें तो कोई खतरा नही है। लेकिन, दुर्भाग्यवश पाखण्डको मिटानेका कोई उपाय नही है। सद्‌गुणको इस भयसे दबाना नही चाहिए कि बहुत-से लोग सद्‌गुणी होनेका स्वांग रचेंगे। अन्तरात्माकी आवाजके अनुसार बरतनेका दावा करनेवाले लोग तो संसार-भरमे सदासे रहे है। किन्तु, उनके थोडे दिनोके क्रिया-कलापसे दुनियाको कोई हानि नही हुई है। कोई भी आदमी दीर्घकाल तक काफी कडे प्रशिक्षणके बाद ही उस आवाजको सुननेकी क्षमता प्राप्त कर सकता है, और जब वह आवाज सुनाई पडने लगती है तो उसमे किसी तरहकी भूलकी गुंजाइश नही रह जाती। दुनियाको सदाके लिए मूर्ख नही बनाया जा सकता। इसलिए यदि मुझ-जैसा कोई तुच्छ व्यक्ति इसके लिए तैयार न हो कि उसे दबाया जाये और जब उसे यह विश्वास हो कि वह अन्तरात्माकी आवाज सुन रहा है तो उसके तदनुसार बरतनेका साहस करनेसे दुनियामे अव्यवस्था फैल जानेका डर नही है। वातावरणमे स्वैरताकी प्रवृत्ति अवश्य व्याप्त है। चाहे धर्म हो या कोई अन्य क्षेत्र, सर्वत्र अशान्ति दिखाई देती है। स्वतन्त्रताकी भावना तीव्र रूपमे फैली हुई है। युवा समुदाय सदासे ऐसा रहा है कि ऐसी बातोका प्रभाव उसीके मानसपर सबसे अधिक होता है। इसलिए वह स्वभावतः उस भावना का शिकार हो गया है, और स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेकी जल्दीमे इस केन्द्रीभूत तथ्यको भूल गया है कि स्वतन्त्रता पारस्परिक निर्भरता और सहिष्णुतासे ही मिल सकती है और यह आत्मसयमके दीर्घ प्रशिक्षणका ही सुफल है। वह यह भूल ही गया है कि स्वतन्त्रताका मतलब स्वैरता नही होता। इसलिए युवा समुदायकी उच्छृखलताके लिए आजके समयकी भावना ही दोषी है। लेकिन यदि कोई आत्म-सयमके सजग अभ्यास और इस बातका उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रयत्न करनेके बाद कि वह अपने अन्दर बैठे ईश्वरकी इच्छाका, जिसे उस अभ्यास और प्रयत्नके उपरान्त अन्तरात्माके

आदेशकी सञ्ज्ञासे अभिहित किया जाता है, निर्द्वन्द्व भावसे पालन करे, सच्ची स्वतन्त्रता का दावा करता है तो युवा वर्गकी उच्छृखलताके लिए उसके इस व्यवहारको जिम्मेदार ठहराना गलत होगा।

इन विनम्र दार्शनिक भाईके तीसरे प्रश्नका उत्तर देना अब शायद काफी आसान हो गया होगा। हरिजनोंके स्तरको ऊपर उठानेका एकमात्र रास्ता यही है कि हरिजन-सेवक प्रार्थना तथा प्रायश्चित्त-रूप उपवास करके और अपनी श्रवण-शक्तिको अन्तरात्मा की आवाज सुननेका प्रशिक्षण देकर स्वयं अपना स्तर ऊपर उठायें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-३-१९३३

१२७. पत्र: डॉ० मुहम्मद आलमको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० आलम,

पक्की बात है कि आपने मुझे ऐसा काफी मसाला दे दिया है जिससे मैं आपके घरमें खासा झगड़ा खड़ा करा सकता हूँ, लेकिन मैं चूँकि अहिंसाका हामी हूँ, इसलिए आपको कोई खतरा नहीं है। बेगम आलम आपकी गद्दारीके बारेमें जो भी कहें, लेकिन आपने मुझपर सचमुच एक अहसान ही किया है — इसलिए कि अनवरको देकर आपने मुझे उर्दूमें खत लिखनेवाला एक और बहुत ही बढ़िया लड़का दे दिया है। इसलिए खुदगरजीके खयालसे भी मैं आपके और बेगम आलमके बीच झगड़ेका कारण नहीं बनना चाहूँगा।

यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आप अब अच्छे हो रहे हैं और जल्द ही इलाज पूरा करानेके लिए कलकत्ता चले जायेंगे। उम्मीद है कि आगे फिर कभी इस तरह नहीं जाना पड़ेगा। आपको जानकर खुशी होगी कि हम सब भले-चंगे हैं और अकसर अपने आपसी दोस्तोंकी याद करते रहते हैं।

हृदयसे आपका,

डॉ० शेख मुहम्मद आलम
३, बहावलपुर रोड
लाहौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०) से।

१२८. पत्र : टी० अमृतलिंगम्को

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। मैंने वर्ण-धर्मके बारेमें जो-कुछ लिखा है, यदि आप उसे पढ़े तो देखेंगे कि मेरी व्याख्या और मेरा सुझाव मान लेने पर फिर ऊँच-नीचकी कही कोई गुंजाइश ही नही रह जाती।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० अमृतलिंगम्
डिण्डीगल

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१३) से।

१२९. पत्र : नरगिस कैप्टेनको

१८ मार्च, १९३३

श्रीमती नरगिस कैप्टेन,

आपका खत मिला। भगवान्ने आपको कैसा नाजुक शरीर दिया है! पर हमे उसका शुक्रिया अदा करना चाहिए कि हालाँकि आपका शरीर अकसर साथ नही दे पाता, लेकिन दिमाग हमेशा तरोताजा ही बना रहता है।

आशा है, आप बम्बई लौटते हुए मुझसे मिलती जायेंगी।

मैं समझता हूँ कि गरमीके महीने आप पचगनीमें ही बितायेंगी। गरीबोकी तरह हरिजनोका साथ भी आपको हर जगह मिलता रहेगा, कही भी जाये, इसलिए पचगनीमें भी हरिजनोके बीच रहने और उनकी सेवा करनेका सुयोग मिल जायेगा। खम्भाता भी महाबलेश्वरमे दो महीनोके अपने प्रस्तावित वासके दौरान यही करनेका विचार कर रहे है।

मैं डाकघर द्वारा लौटाया हुआ एक पत्र[2] इसके साथ रख रहा हूँ। यह मैंने आपको कुम्बकोणम्के पतेपर भेजा था।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१६२) से।

१. ९ मार्चका। अमृतलिंगम्ने सुझाव रखा था कि वर्ण-व्यवस्था ईश्वरीय विधानके विरुद्ध है, इसलिए उसका उन्मूलन किया जाना चाहिए

२. यह उपलब्ध नहीं हुआ।

१३०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

'हरिजन' को भेजा गया आपका तार मुझे अच्छा नही लगा। शास्त्रीको उसके आगे-पीछेकी कोई जानकारी नही थी और न मुझसे पूछनेका समय ही उसके पास था, इसलिए उसने अपने ही विवेकसे काम लिया और उसे प्रकाशित कर दिया था। यदि तार मेरे पास आता, तो मै उसे रोक लेता। ब्रिटिश भारतीय सघको दिये गये अपने उत्तरकी प्रति[1] मै इसके साथ आपको भेज रहा हूँ। इससे आपको मेरे विचारो का पता चल जायेगा। आप देखेगे कि वह पत्र भी प्रकाशनके लिए नही है। मेरा खयाल है कि जबतक सामने कोई खतरा ही न दिखने लगे तबतक हमे परिवर्तनवादियो के साथ बहस-मुबाहिसे करके ही उनकी राय बदलनेका तरीका अपनाना चाहिए, लेकिन हमे अपनी तरफसे उनके साथ सार्वजनिक रूपसे विवाद नही करना चाहिए, क्योकि उससे स्थितिमें सुधार होनेके बजाय तनाव ही बढेगा। हाँ, यदि हमें विवाद के लिए विवश ही हो जाना पडे, तो उसमें भाग लेनेसे हिचकना भी नही चाहिए। अपने आचरणके बारेमें हमे यही ध्यानमे रखना है।

अब आपकी दलील लेता हूँ। आप कदापि यह नही कह सकते कि मद्रासकी अपेक्षा बगालमे अस्पृश्यताका अभिशाप ज्यादा बडा है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि बगालमे पाई जानेवाली अस्पृश्यता, मद्रासकी अपेक्षा अधिक विषाक्त है, लेकिन यह तो निश्चय ही सही नही है। वास्तवमें मद्रासकी तरह बगालमे मात्र स्पर्श करने या देखने या छाया पडने-भरसे छूत लगना नही माना जाता। बगालमें प्रचलित अस्पृश्यताका एक अपना प्रकार है और वह जलके स्पर्श पर प्रतिबन्ध लगानेतक ही सीमित है। वैसे यह भी काफी बुरी चीज है, लेकिन मद्रासमे अस्पृश्यताके नामपर जैसे बेहिसाब अत्याचार किये जाते है, उनसे यह काफी भिन्न किस्मकी है। यदि आप अपनी दलील इसी ढगसे पेश करते, तो उसकी सार्थकता खत्म न हो जाती। इसलिए जरूरत सिर्फ इस बातकी थी कि आप इस आपत्तिजनक वाक्यको हटा देते "मै फिर कहता हूँ . . मद्रास।" और क्या आपका यह कहना सही है कि सरकार द्वारा की जानेवाली परिभाषा हरिजन सेवक सघ द्वारा की गई परिभाषासे मिलती-जुलती है? तब फिर आप इस तथ्यको अनदेखा नही कर सकते कि बगाल सरकारने अस्पृश्योकी परिभाषामें जिन लोगोको शामिल किया है, उनमें से कुछ ऐसे भी है जो उसमे स्वयके सम्मिलित किये जानेका विरोध करते है। लगता है कि आपका यह भी खयाल है

१. देखिए "पत्र: ब्रिटिश भारतीय संघको", ९-३-१९३३।

कि विधायकगण पूरे समझौते[1] (पैक्ट)से ही इनकार करके सब-कुछ पहले-जैसा ही बना देना चाहते है। उनकी माँगके बारेमें मेरी दृष्टि ऐसी नही है। यदि ऐसा है, तो बडी ही खेदजनक स्थिति हो जायेगी। मै तो समझता हूँ कि वे सिर्फ इतना ही चाहते है कि बगालमे हरिजनोके लिए निश्चित स्थानोकी सख्या कुछ घटा दी जाये। वे जब इसको लेकर समझौतेसे सम्बन्धित पक्षोके पास जायेंगे, तब इस दिशामे कार्रवाई करनेका उपयुक्त समय होगा। हम अहिंसामे अपना विश्वास प्रकट करते रहते है और मै समझता हूँ कि उसके कारण हमें तबतक अपना मत समाचार-पत्रोमे प्रकाशित करानेमे जल्दबाजी नही करनी चाहिए जबतक कि हम समाचार-पत्रोकी शरणमे जानेके पहले समझौतेके अन्य सभी साधनोको प्रयोग करके न देख ले और वे निष्फल सिद्ध न हो जाये।

मै तो यही समझता हूँ। लेकिन हो सकता है कि आपने जिस प्रकारके कडे शब्दोका प्रयोग करते हुए वह तार भेजा है उसका आपके पास पर्याप्त औचित्य मौजूद हो।

बगला 'रामायण'की आपकी लिखी प्रस्तावनाका हिन्दी अनुवाद मैने पढ लिया है। सचमुच बडी सुन्दर है, भक्ति-भावनासे ओतप्रोत। बाकी प्रूफ मिलनेका मुझे इन्तजार है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१८) से।

१३१. पत्र : डॉ० गोपीचन्द भार्गवको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० गोपीचन्द,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद। आशा है, आप स्वस्थ और प्रसन्न होंगे। आपने हिसारमें बुनाईके सगठनके सम्बन्धमे जो भी लिखा है, मै उस सबका महत्त्व समझता हूँ और जानता हूँ कि आप वही करेंगे जो यथासम्भव सर्वोत्तम होगा।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१०) से।

१. बंगाल विधान परिषद्ने १४ मार्चके पूना समझौतेके विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया था।

१३२. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

१८ मार्च, १९३३

गृह-सचिव
बम्बई सरकार

प्रिय महोदय,

कल मेजर भण्डारीसे यह सुनकर मुझे बडा दुःख हुआ कि म० प्रा० में सिवनी जेलके एक बन्दी, सेठ पूनमचन्द राँकाको उनका कथित उपवास त्याग देनेकी सलाह देते हुए मैंने वर्धाके सेठ जाजूजी के नाम जो तार भेजा था, उसे सरकारने रोक लिया है।[1] म० प्रा० सरकारके गृह सदस्यके नाम मेरा एक इसी प्रकारका तार भी रोक लिया गया था। मैंने सोचा कि इसका कारण तो मैं समझ सकता हूँ। परन्तु सेठ जाजूजी को भेजे गये इस तारको रोकनेका कारण मेरी समझमे नही आया। १९२२ से[2] ही सरकार यह मानती रही है कि उसे मेरी मानवीयतापरक सेवाओपर किसी तरहका कोई प्रतिबन्ध नही लगाना चाहिए[3], क्योंकि प्रकृतिने मुझे ऐसी योग्यता प्रदान की है और कुछ अन्य कार्योंके साथ-साथ इस सेवाके लिए मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। यह तार इसीके अनुरूप था। सेठ पूनमचन्द मेरे सहकर्मी हैं। उन्होंने बहुधा मेरा मार्ग-दर्शन स्वीकार किया है। मुझे पक्का भरोसा है कि सरकार बन्दियोंके जीवनको भी उतना ही मूल्यवान समझेगी जितना कि जनताके जीवनको और इसलिए वह उनको बचानेके लिए वैधानिक रूपसे दी जा सकनेवाली किसी भी सहायतासे उनको वंचित नही करेगी। मुझे इस बातकी कतई कोई जानकारी नही कि सेठ पूनमचन्दकी हालत इस समय कैसी है। पर सरकारसे मेरा सादर अनुरोध है कि वह अपने निर्णयपर पुनर्विचार करे और मेरा तार उनके पास जाने दे। चूंकि इस मामलेमें समय ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, इसलिए मेरा अनुरोध है कि इसका उत्तर शीघ्रसे-शीघ्र दिया जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८१) से। बम्बई सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल न० ८०० (४०) (३) ए, पृष्ठ ५५ से भी।

१. देखिए "तार: बच्छराजको," ११-३-१९३३।

२. यहाँ १९२३ होना चाहिए।

३. गांधीजी को अपने साथी कैदियोंसे मिलकर तथा उनपर अपना प्रभाव डालकर उपवास बन्द करानेकी अनुमति दी गई थी; देखिए खण्ड २३; पृष्ठ १८२-८३ और १९६

१३३. पत्र : एच० कादिर खाँको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और 'लाइट'[1] नामक अखबारकी एक कतरनके लिए मैं आभारी हूँ। आप जितनी सोचते हैं, मेरी कठिनाई उससे कही गम्भीर है। मै धर्मोंकी कभी आलोचना नही करता, इसलिए कि ससारके सभी महान् धर्मोके प्रति मेरे मनमें उतना ही सम्मान है जितना कि हिन्दू धर्मके प्रति। मेरा विश्वास है कि सभी धर्म मानवताकी विभिन्न आवश्यकताओकी पूर्ति करते है, और यदि हम इस सारभूत तथ्यको भली-भाँति समझ ले तो फिर हम विभिन्न धर्मोकी परस्पर तुलना करनेके बजाय उनका अध्ययन करनेमे लग जायेगे और उस अध्ययनसे हमें अपने लिए अनेक उपयोगी बाते मिल जायेंगी। मै सभी धर्मोको विशुद्ध धार्मिक दृष्टिसे देखता हूँ और इसलिए उनमे निहित सौन्दर्यको समझनेके लिए ही उनका अध्ययन करता हूँ। आपको मेरी सलाह है कि आप भी ऐसा ही करे, और यदि आप ऐसा करेंगे तो आपको मेरे लेखोमे ऐसे मार्ग-दर्शनके लिए पर्याप्त सामग्री मिल जायेगी कि ससारके अन्य धर्मोके प्रति हमे क्या दृष्टि रखनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

एच० कादिर खाँ साहब
अर्कलगौड, डाकघर
(दक्षिण भारत)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६०९)से।

१. लाइटके लेखमें कहा गया था कि गाधीजी अस्पृश्योंको "थोड़ा दूर ही" रखना चाहते हैं और "जाति-व्यवस्था न हटे, इसलिए उनके साथ अन्तर्जातीय भोजों और अन्तर्जातीय विवाहोंकी अनुमति देनेको भी तैयार नहीं हैं।"

१३४. पत्र : सी० नारायण मेननको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मेनन,

इस मासकी ९ तारीखका आपका पत्र मुझे पसन्द आया। आपका तर्क मान लेनेमें मुझे एक ही सकोच है, लेकिन वह भी काफी बडा है। आपका तर्क पर्वतो-जितना ही पुराना है। यदि ससार उसके ही अनुसार चला होता तो कही कोई प्रगति न हो पाती। क्या आपका तर्क परिपाटीका, चिर-व्यवहार-सिद्धताका तर्क नही है? परन्तु चिर-व्यवहार किसी गलत बातको सही सिद्ध नही कर सकता। प्रत्येक व्यवहार सारे ससार द्वारा स्वीकृत, सार्वभौमिक नैतिकताकी कसौटीपर कसा जाना चाहिए। तथाकथित दैवी वचन भी किसी ऐसे व्यवहार या विश्वासके काम नही आ सकता, उसकी रक्षा नही कर सकता, जो मानवजाति द्वारा स्वीकृत मूलभूत मूल्योके प्रतिकूल पडता हो, और अस्पृश्यताकी प्रथाके समर्थनमे मुझे आजतक ऐसा कोई भी तर्क नही मिला जो इस सार्वभौमिक दृष्टिकोणपर आधारित हो।

मन्दिर-प्रवेश विधेयकसे सम्बन्धित आपके तर्कका खण्डन करनेकी मुझे कोई आवश्यकता नही दिखाई पडती, क्योकि मै जानता हूँ कि आप नियमित रूपसे 'हरिजन'के पृष्ठोका पारायण करते है। इसी तरह आपके पत्रके दूसरे अनुच्छेदोका उत्तर देनेकी भी कोई आवश्यकता नही समझता। मै आपको एक अन्वेषी मानता हूँ और इसलिए मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही कि आप देर-सबेर सत्यको पा ही लेगे और यदि मेरी समझमे कोई गलती न हो तो आप देरसे नही, बल्कि जल्द ही सत्यतक पहुँच जायेगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० नारायण मेनन, एम० ए०, पी-एच० डी०
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१४) से।

१३५. पत्र : डॉ० टी० एस० एस० राजन्‌को

१८ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० राजन्,

अभी उस दिन श्रीयुत गणेशन् मद्रासमें एक थियोसॉफिकल हरिजन पाठशालाको बन्द करनेकी स्थिति पैदा हो जानेके बारेमें बात कर रहे थे। इतने अरसेसे चली आ रही एक पाठशालाको यदि बन्द कर देना पड़े या उसका प्रबन्ध सार्वजनिक संस्था के हाथसे निकल जानेकी स्थिति आ जाये तो सचमुच बुरा होगा। इसलिए यदि पाठशालाकी स्थिति सचमुच वैसी है जैसी मुझे बतलाई गई है तो मैं समझता हूँ कि उसे बचानेके लिए कोई भी कोशिश उठा नही रखनी चाहिए। श्रीयुत गणेशन्‌का कहना है कि आपके पास सारे आँकड़े पहुँच चुके है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१९) से।

१३६. पत्र : के० कुन्ही रमणको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। आपने वर्ण-धर्मके उद्भवके सम्बन्धमें ठीक उद्धरण दिया है, परन्तु मैं उसकी व्याख्या आपसे सर्वथा भिन्न ढंगसे करता हूँ। चार वर्णोंकी तुलना एक ही शरीरके चार अंगोंसे करना बतलाता है कि चारों अंगोंके अपने काम अलग-अलग रहते हुए भी वे चारों परस्पर समान है। निश्चय ही आपका यह कथन तो सरासर गलत है कि मस्तिष्क हाथोंसे या हाथ जंघाओंसे और ये तीनों अवयव पैरोंकी तुलनामें श्रेष्ठ है। ये सब अपनी-अपनी जगह समान रूपसे उपयोगी है और प्रत्येक अवयवको शेष सभी अवयवोंका ध्यान रखना पड़ता है।

१. १०-३-१९३३ का। कुन्ही रमणके अनुसार गांधीजी ने लिखा था कि सच्चा वर्णाश्रम हिन्दू धर्मका एक अविभाज्य अंग है और आज डॉ० अम्बेडकरकी कल्पनाके वर्णाश्रमपर अमल हो रहा है।

मेरा आपसे आग्रह है कि और अधिक जानकारीके लिए, यदि आपमें धीरज हो तो, हर सप्ताह 'हरिजन'के अंक पढ़ते रहें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० कुन्ही रमण
'नारायण विलास'
ईवान्स रोड
कालिकट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६०८) से।

१३७. पत्र : रा० को[1]

१८ मार्च, १९३३

प्रिय रा०,

आशा है, तुम इस पत्रका, और इसको बोलकर लिखानेकी बातका भी बुरा नही मानोगे। नी० के साथ काफी देरतक बातचीत करनेसे मेरे मनपर कुछ ऐसी छाप पडी है कि उसके असरमे आनेवाले तुम और तुम्हारे युवा साथियोने उसके सम्पर्कसे सचमुच कोई लाभ नही उठाया, बल्कि तुम अपने और उसके पतनमें सहायक ही बने। उसने मुझे तुम्हारा एक पत्र दिखाया था। मुझे तुम्हारे पत्रमे प्रयुक्त अनुचित आत्मीयता-भरा सम्बोधन और उसमे कही गई बाते भी अच्छी नही लगी। मुझे बडी आशंका है कि तुमने उसके साथ ऐसा स्वच्छन्द व्यवहार किया है जैसा कि आत्मसंयमी युवकोको किसी अजनबीके साथ करना कदापि शोभा नही देता। नी० ने बतलाया है कि तुम उसके साथ ऐसे आध्यात्मिक विवाहो या आध्यात्मिक मैत्रियोकी बाते करते रहे हो, जो लगभग वैवाहिक सम्बन्ध ही है। यह आगसे खिलवाडके अतिरिक्त और कुछ नही। यह एक अत्यन्त प्रच्छन्न वासनाकी ही अनुगूंज है। इसलिए मै बडी उत्कटताके साथ तुम और अन्य युवकोसे आग्रह कर रहा हूँ कि आगसे खिलवाड करना बन्द कर दो, और चेतन या अवचेतन रूपसे नी०की नैतिक प्रगतिमे बाधक मत बनो, इधर हाल ही में तो उसने समझना शुरू किया है कि उसका पिछला जीवन कितना अनैतिकतापूर्ण था। तुमको यह समझ लेना चाहिए, उसका स्वभाव ऐसा है कि उसे सहज ही किसी बातपर राजी किया जा सकता है। वह तो अबतक इतना भी नही समझ पाई है कि वह पहले जो भी कर रही थी, वह घोर मिथ्याचार और अनैतिकता ही थी। आशा है कि तुम मेरे पत्रका कोई गलत अर्थ नही लगाओगे। मेरा खयाल है कि कुछ वर्ष पहले मै जब बंगलोरमे बीमारीके बाद स्वास्थ्य-लाभ कर रहा था, तब मैने तुम सब युवकोको देखा था, लेकिन देखा हो

१. यहाँ पत्र प्रापकका नाम छोड दिया गया है।

या न देखा हो, तुम लोगोके प्रति मेरा भाव सिर्फ वही है जो माता-पिताका अपने बच्चोके प्रति होता है, और यह पत्र मै स्वय ही अपने ऊपर ऐसा दायित्व लेकर इस आशासे लिख रहा हूँ कि यदि मै अपनी बात तुम्हारे मनमे बैठा सका तो तुम लोग स्वयं अपनेको सही रास्तेपर ले आओगे, और नी०के साथ अन्तरग सम्बन्ध स्थापित करनेसे अपनेको रोककर उसे उसके पिछले जीवनसे ऊपर उठनेमे मदद दोगे।

यह पत्र तुम अपने साथियोको दिखा सकते हो और मै चाहूँगा कि इसे तुम नी०को पढवा दो। मेरे हृदयमे उसके लिए बडी सहानुभूति है, क्योकि मुझे विश्वास है कि मिथ्याचारिता और पिछले अनैतिक जीवनके बावजूद उसके अन्दर त्याग तथा सेवाकी अद्‌भुत क्षमता मौजूद है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६२४) से।

१३८. पत्र : श्रीप्रकाशको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय श्रीप्रकाश,

आपका पत्र मिला और मुझे यह जानकर खुशी हुई कि शारीरिक स्वास्थ्य-लाभके साथ-साथ आप अपने मनमे घिर आये नैराश्यसे भी बाहर निकलते आ रहे हैं और मुझे पूरा भरोसा है कि पर्याप्त विश्राम और अन्य सभी बातोंको सर्वथा भूलकर आप उससे पूरी तरह छुटकारा पा लेगे। मै समझता हूँ कि इस मामलेमे अग्रेज लोग हमसे कही आगे है, हालाँकि हम गीता-धर्मके अनुयायी माने जाते है, जिसका उपदेश है कि हमे किसी भी वातकी कोई चिन्ता नही करनी चाहिए और फल सर्वशक्तिमान्‌पर छोड देना चाहिए। मुझे याद है कि लॉर्ड एस्क्विथ युद्धके सबसे घमासान दौरमे भी डाक्टरोकी सलाहपर किस तरह भूमध्य सागरमे स्वास्थ्य-लाभके लिए जल-विहारको चले गये थे, उन्होने राज्य-सम्बन्धी सभी चिन्ताओका भार पूरे तौरपर अपने उत्तराधिकारियोपर छोड दिया था।

वर्गीकरणके[1] बारेमे हालाँकि मेरे विचार अत्यन्त दृढ है, फिर भी मुझे यहाँ उसकी चर्चा नही करनी चाहिए, क्योकि इस विषयपर चर्चा करनेकी अनुमति नही है।

मै बाबूजीको[2] विश्राम करनेके लिए लिखूंगा, पर मै जानता हूँ कि उनका मन तो पूर्णत अस्पृश्यता-विरोधी सघर्षमे लगा हुआ है।

१. बन्दियोंका।
२. डॉ० भगवानदास, श्रीप्रकाशजी के पिता।

हाँ, शिवप्रसादका[1] साप्ताहिक बुलेटिन मेरे पास आता रहता है। हम सब हर सप्ताह उसकी राह देखते हैं। जमनालालजी का स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। उनकी आँखोका कष्ट पूरे तौरपर ठीक नही हो पाता। सरदार, महादेव और छगनलाल जोशी भी साथमें आपको स्नेह-निवेदन कर रहे हैं। छगनलाल जोशीसे शायद आपकी मुलाकात न हुई हो, हालाँकि आपने आश्रममे उनको देखा जरूर होगा।

सप्रेम,

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

श्रीप्रकाश पेपर्स, फाइल न० जी०-२, सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। एस० एन० २०६२३ से भी

१३९. पत्र : जी० सुब्रह्मणियन्‌को

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत नही कि मैसूर राज्यमे हरिजनोमे काम करनेके लिए आपके अतिरिक्त कोई और कार्यकर्त्ता है ही नही। मेरी जानकारी तो इसके बिलकुल विपरीत है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० सुब्रह्मणियन्
प्रचारक,
शृंगेरी पोस्ट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१७) से।

१. शिवप्रसाद गुप्त, वाराणसीके कांग्रेसी नेता और समाजसेवी

१४०. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

आपकी हिसार-यात्रा और उस क्षेत्रमे पडे अकालके बारेमे आपका जो पत्र आया है, उस पर ११ फरवरीकी तिथि दी हुई है, जो मेरा खयाल है, ११ मार्च होगी। अब मेरे पास डॉ० गोपीचन्दका भी एक पत्र आ गया है। मै समझता हूँ कि डॉ० गोपीचन्दके कथनमे काफी वजन है। यह तो सम्भव नही कि हम सभी जगह बुनाई केन्द्र खोल दे और फिर बुनकरोसे उम्मीद करे कि वे जैसे-तैसे काते घटिया सूतसे कपडा बुने। अन्य सभी उद्योगोकी भाँति इस हस्त-उद्योगके लिए भी ऊँचे दरजेका तकनीकी कौशल, और सच पूछिए तो कताई-बुनाई मिलोके लिए अपेक्षित कौशलसे कुछ मायनोमे कही ऊँचे दरजेका कौशल, दरकार है। उन मिलोमे तो हर क्रियाका मानकीकरण हो जाता है, पर हस्त-शिल्पमे किसी भी चीजका पूर्ण मानकीकरण नही हो सकता, क्योकि प्रत्येक कारीगर द्वारा निर्मित वस्तुकी एक अपनी ही विशिष्टता होती है और जब इस तरहके हजारो कारीगरोका उनके अपने-अपने ढगका काम सामने आये तो कुशलसे-कुशल सगठनकर्त्ताको भी उनकी पटरी बैठाना मुश्किल पड जाता है। इसलिए सभी धन्धोकी तरह, बुनाई और कताईके धन्धेके जरिये लोगोको सहायता पहुँचानेके कामकी अपनी एक मर्यादा भी है, भले ही उसमे सहायता-कार्यकी सभावनाएँ अन्य सभी धन्धोसे अधिक व्यापक हो। यदि हमारे पास एक ऐसी सस्था हो जो हजारो विशेषज्ञोके विशेष ज्ञानका उपयोग कर सकती हो और जिसके पास इसके लिए पर्याप्त वित्तीय साधन हो, तो हम हर जरूरतमन्दके लिए अच्छा पैसा कमाने लायक काम जुटा सकते है। यह उस जरूरतमन्द व्यक्तिके साथ-साथ उस सस्थाके लिए भी अन्य धन्धोकी तुलनामे कही अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। लेकिन दुर्भाग्यकी बात है कि हमारे पास न तो इतनी बडी सख्यामे विशेषज्ञ है और न ऐसे वित्तीय साधन ही सुलभ है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११५) से।

१४१. पत्र : डी० वलीसिन्हाको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और 'महाबोधि जर्नल'की एक प्रतिके लिए मेरा धन्यवाद लीजिए।[1]

मैं हिन्दू धर्मके स्थानपर अन्य कोई धर्म लानेके लिए नही, बल्कि हिन्दू धर्ममे ही सुधारके लिए प्रयत्नशील हूँ। मेरा अपना विश्वास है कि गौतम बुद्ध स्वयं भी कोई पृथक् धर्म या सम्प्रदाय स्थापित नही करना चाहते थे; वे हिन्दू धर्ममें से उन बातोको छाँट देनेके लिए ही प्रयत्नशील थे जो उनके लेखे बुराइयाँ थीं। जो भी हो, मेरा अपना विश्वास है कि हिन्दुओंको धर्म-परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नही।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वलीसिन्हा
महामन्त्री
महाबोधि सोसाइटी
४-ए, कॉलेज स्क्वेयर
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६२१) से।

१४२. एक विचारणीय योजना

भंगी भाई स्वच्छ रह सके, इस उद्देश्यसे श्री हीरालाल शाहने एक योजना प्रकाशित की है। योजना विचारणीय है। भंगियोंके प्रति जो घृणा है वह उनके धन्धेकी वजहसे है। निस्सन्देह इसमे सारा दोष तथाकथित उच्च वर्णके हिन्दुओका है। किन्तु दोषारोपण करनेके विचारसे मैं यह लेख लिखने नही जा रहा हूँ। आज हमारा क्या कर्तव्य है, हमे तो इसीपर विचार करना है और इसमे हमें श्री हीरालालकी योजनासे मदद मिलती है। योजना यह है: मैला उठाते समय भंगियोंके लिए पहननेकी खास पोशाक होनी चाहिए और मैला उठा चुकनेके बाद उन्हे स्नान करने और कपड़े बदलनेके लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। दोनोमें से एक भी काम वे स्वेच्छासे तुरन्त नही करेंगे। उन्हे समझाकर तथा इसके लिए आवश्यक सुविधाओंकी

१. डी० वलीसिन्हाने महाबोधि जर्नलमें प्रकाशित अपने एक लेखके बारेमें गांधीजीकी राय जाननी चाही थी। उस लेखमें उन्होंने यह "दिखानेकी कोशिश की थी कि बौद्ध धर्म किस प्रकार इस समस्या [अस्पृश्यता] को सबके लिए सन्तोषजनक ढंगसे हल कर सकता है।"

व्यवस्था करके ही यह काम पूरा किया जा सकता है। इस कामको बड़े पैमानेपर तो नगरपालिकाएँ ही कर सकती है, लेकिन छोटे पैमानेपर भंगियोसे सेवा लेनेवाला हरएक गृहस्थ यह काम कर सकता है। वे अपने-अपने भगीको अपनायें, उससे नहानेको कहे और नहानेका ठीक इन्तजाम कर दे और अपनी तरफसे उसके लिए अलगसे पोशाक बनवा दे। एक भगी-कुटुम्ब बहुत-से घरोकी टहल करता है। जिसने इस सुधारका मूल्य समझ लिया है, वह अपने भगीके द्वारा अन्य सम्पन्न गृहस्थोके नाम मालूम करके उनसे भी पोशाक बनवानेमे मदद ले तो उस पोशाकका खर्च किसीको भार-स्वरूप न लगेगा। इस तरह यदि कुछ समयतक यह कार्य चलता रहे तो भगीको खुद ही स्वच्छ रहनेकी आदत पड जायेगी। और जिस हदतक यह घृणा छुआछूतका कारण है उस हदतक तो अस्पृश्यता नष्ट हो जायेगी। जो काम सब लोगोके करनेका है वह किसी एक व्यक्तिका नही, इस सनातन दोषके वशीभूत होकर आसानीसे हो सकनेवाले इस सुधारकी अवहेलना नही करनी चाहिए। जिससे हो सके वह इसे आरम्भ कर दे और दूसरोको भी इस ओर आकर्षित करे।

इसके साथ-साथ दो और सुधार तुरन्त हो सकते है — टट्टियो और मैला उठाकर ले जानेकी रीतिमें सुधार। तथाकथित उच्च वर्णके हिन्दुओने भगियोको दूर रखा। उसका परिणाम यह हुआ कि उनके पाखाने नरककी खान जैसे रहते है और भगीको बिलकुल बेढंगी और निर्दय रीतिसे मैला उठाना पडता है। पाखानोमें बहुत आसानीसे सुधार हो सकता है। इसके लिए खासकर सूखी मिट्टीकी जरूरत है। मैलेके टोकरे सिरपर उठानेका रिवाज बन्द कर देना चाहिए। यह आन्दोलन मथुरा और प्रयागमे शुरू हो गया है।[1] वहाँ मैलेको सिरपर उठानेके बजाय छोटी-सी ठेला-गाडीमे ले जानेकी व्यवस्था की गई है। जहाँ ठेला न जा सके या न मिल सके वहाँ लकडी पर मैलेकी बालटी लटका कर ले जा सकते है। वजन ज्यादा न हो तो छोटी-सी बालटी हाथसे उठाकर ले जाई जा सकती है। मैला सिरपर ढोनेकी प्रथा एकदम बन्द हो जानी चाहिए।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १९-३-१९३३

१. देखिए "इन अन्त्यजोंके प्रति भी", १८-३-१९३३।

१४३. पत्र-लेखकोंको उत्तर

शुद्धि-संस्कार करके प्रवेश करने दो[१]

हरिजनोका शुद्धि-सस्कार करनेका अर्थ यह मान लेना है कि हरिजन हिन्दू नही है। किन्तु हमारा पूरा आन्दोलन यह मानकर ही चलाया जा रहा है कि हरिजन हिन्दू समाजका एक महत्त्वपूर्ण अग है। अत जो-कुछ भी करना हो सो सब अस्पृश्यताको मिटानेके बाद ही किया जा सकता है। फिर शुद्धि कौन किसकी करेगा? शुद्धि तो अन्तरकी होनी चाहिए। आन्तरिक शुद्धि तो शुद्ध अर्थात् परिपूर्ण मनुष्य ही करा सकता है। अत किसी सस्कार विशेषके अनुसार शुद्धि करानेका विचार भी मेरे लिए असह्य है। चाहे जो हो, अस्पृश्यताको मिटानेकी शर्त यह शुद्धि तो कदापि नही हो सकती।

किन्तु आपने जो सुझाव दिया है उसपर अमल करनेसे मै आपको या अन्य किसीको रोक नही सकता। यह स्पष्ट है कि मै इस सुझावका समर्थन नही कर सकता। जैसा कि आप कहते है उस ढगसे शुद्धि कराकर यदि आप अपने इलाकेके हरिजनोको श्रीरगम्‌मे प्रविष्ट करा सकते हो तो मै उसका विरोध नही करूँगा।

हमारी पवित्रतासे सब सिद्ध होगा[२]

इसमे कोई सन्देह नही कि कठिनाइयोका कोई अन्त नही है। मुझे इसमे भी कोई सन्देह नही कि इन कठिनाइयोको धैर्यपूर्वक हल किया जा सकता है। हमारे साधन अत्यन्त पवित्र होने चाहिए। धर्मके नाम पर अस्पृश्यता फैली है। जबतक विशुद्ध धर्मके द्वारा सामना नही किया जायेगा तबतक उसका नाश नही होगा। हम कोई नया पथ नही चला रहे बल्कि जो-कुछ हमारे सामने है, उसके दोषोको दूर करनेका प्रयत्न कर रहे है। जिसे दोष दिखाई देते है उसे स्वय दोषरहित होना चाहिए। अत जिस हदतक हम स्वय पवित्र होगे उस हदतक हम आगे बढते जायेगे। ढेढ, भगी आदि 'अस्पृश्यो'के बीचकी आपसी बाडे तभी टूटेंगी जब हम अस्पृश्यताको दूर कर देंगे। अत्यधिक सावधानी और उतने ही प्रेमसे काम लेना। सनातनियोके रोषको प्रेमसे ठडा करना। जितना काम आप कर सके उतना ही ले, किन्तु जितना ले उसे भली-भाँति करे। तेते पाँव पसारिये जेती लावी सौर।

१. एक पत्र-लेखकने सुझाव दिया था कि यदि गाधीजी मन्दिर-प्रवेशके पहले हरिजनोंका शुद्धि-सस्कार करानेको सहमत हों तो श्रीरंगपट्टम्‌का मन्दिर उनके लिए खोला जा सकता है।

२. यह पत्र अपने कार्यक्षेत्रसे ऊबे और आसपासके वातावरणसे घबराये हुए एक कार्यकर्ताको लिखा गया था।

आधुनिक कैसे ?[1]

मै यह कदापि नही मानता कि अस्पृश्यता सनातन कालसे चली आ रही है या इसका सनातन धर्मसे कोई सम्बन्ध है। शौचाचारके लिए आवश्यक थोडी-बहुत अस्पृश्यता प्रत्येक देश, प्रत्येक सभ्यतामे विभिन्न रूपोमें बरती जाती रही है। किन्तु मै यह कदापि नही मानता कि अस्पृश्यताके कलकको हम आज जिस रूपमे देखते है उसी रूपमे वह प्राचीन कालमे भी था। अन्य किसी भी धर्ममे यह नही है। यदि ऐसी अस्पृश्यता सनातन धर्मका अग हो तो उक्त धर्म मेरे किसी कामका नही। ऐसे सनातन धर्मके लिए प्राण न्योछावर करनेकी मूर्खता मै नही करूँगा।

सनातन धर्मको मै जैसा मानता हूँ उसका उसी रूपमे वर्णन करता हूँ। यदि समूची जनता इस वजहसे मुझे त्याग देगी तो हिन्दू होनेका मेरा दावा रद्द हो जायेगा।

क्या आप मन्दिरोंमें विश्वास करते है ?[2]

मै मन्दिर-प्रवेशकी कोई आज नई बात नही कह रहा हूँ। किन्तु बरसो पहले जब अस्पृश्यता निवारणके लिए मैने सार्वजनिक रूपसे आमरण अनशनकी प्रतिज्ञा की थी तब भी मैंने यह घोषणा की थी कि हरिजनोके लिए मन्दिर-प्रवेश अस्पृश्यता-निवारणका महत्त्वपूर्ण अग है। मैने स्वय बहुत-से मन्दिरोको खोलनेकी क्रिया सम्पन्न की है और इसके लिए जमनालालजी को भी प्रेरित किया है। मन्दिर, मस्जिद या गिरजेमे मै कोई भेद नही करता। मनुष्य-मात्र किसी एक रूपमे नही तो दूसरे रूपमें प्रतिमाकी पूजा करता ही है। प्रत्येक व्यक्ति, भले अलग-अलग भाव और अलग-अलग ढगसे, अपनी प्रतिमाके द्वारा उस परमेश्वरकी ही पूजा करता है। आपको शायद पता न हो कि मै अपने जीवनमे अधिक नही तो हजारेक बार — कभी शिष्टाचारवश तो अनेक बार भक्ति-भावपूर्वक — तो मन्दिरोमे गया ही हूँगा। मै यह नही जानता था कि आप इतने अधिक असहिष्णु है और मन्दिरोको अस्पृश्यताकी अपेक्षा कही अधिक बुरा मानते है। आज करोडो लोगोको मन्दिरोसे जो आश्वासन मिलता है, मन्दिरोको ध्वस्त करके उन्हे उससे वचित कर दो और फिर देखो कि कितना भयकर परिणाम निकलता है। मन्दिर-प्रवेशको आप नरक-प्रवेश कहते है तो क्या आप यह मानते है कि भारतभूषण मालवीयजी, जिनके घरमे अपना मन्दिर है और जो नियमित रूपसे पूजा करते है, प्रतिदिन नरकमे प्रवेश करते है और वे भगवान्की दृष्टिमे मेरी और आपकी अपेक्षा हलके है ? इस सम्बन्धमे आप जरा गहराईसे विचार करे।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १९-३-१९३३

१. एक पत्र-लेखकने गांधीजी से पूछा था कि वे अस्पृश्यताके पहले "आधुनिक" विशेषण क्यों लगाते हैं। उसका कहना था कि यह तो अनादिकालसे चली आ रही है और उतनी ही पुरानी है जितना कि सनातन धर्म।

२. गाधीजी द्वारा चलाये जा रहे हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेश सम्बन्धी आन्दोलनके बारेमें आश्चर्य व्यक्त करते हुए एक मित्रने पूछा कि वे कबसे मन्दिरोंमें विश्वास करने लगे है और हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवाकर वे उन्हें कौन-सा लाभ पहुँचाना चाहते है क्योंकि ऐसा करना तो कुएँसे निकलकर खाईमें गिरना है।

१४४. हिन्दू-मन्दिर क्या है?

एक हरिजन-सेवक लिखता है[1]

यह पत्र निर्मल भाव और शुभ उद्देश्यसे लिखा गया है और बहुतोके तो नही पर कुछ नवयुवकोके विचारोको दरसानेवाला है अत मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूँ।

किन्तु मेरे विचारसे इस पत्रमें आक्रोशके अतिरिक्त और कुछ नही है। लेखकने मन्दिरोके बारेमे जो-कुछ कहा है, उसके समर्थनमे उसके पास कोई प्रमाण नही है। सम्भवत उसने काशी विश्वनाथ, पुरी या गुरुवायूरके मन्दिरोके दर्शन नही किये है। इन मन्दिरोमें यदि अनाचार चलता भी हो तो लाखो हिन्दू यात्री और दर्शनार्थी उससे अनजान और अलिप्त हैं। हम सब जहाँ जो चीज लेनेकी इच्छासे जाते है वहाँ वही पाते है। पिता अपनी पुत्रीको पुत्रीके रूपमे देखेगा, उसका पति स्त्रीके रूपमें, उसका पुत्र माताके रूपमे और व्यभिचारी उसे अपने शिकारके रूपमे देखेगा। व्यभिचारीके अस्तित्वके कारण क्या पिता, पति और पुत्रको उसका त्याग करना चाहिए? मै स्वय काशी विश्वनाथ और पुरी, दोनो मन्दिरोमे गया हूँ। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि मैं श्रद्धासे प्रेरित होकर दर्शन करने वहाँ नही गया था किन्तु असख्य निर्दोष लोगोको भक्तिभावसे जाते देखकर मुझे उनपर तरस नही आया बल्कि उनके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ और मैं उनके भक्तिभावको समझ पाया। उक्त मन्दिरोमें यदि किसी तरहका अनाचार होता भी हो तो इन असख्य भक्तोको उसकी जानकारी तक नही थी। इतना याद रखना चाहिए कि गुप्त रीतिसे अनाचार किया जाता है और बहुत कम लोगोको ही उसकी जानकारी होती है। भक्तगण भगवान्मे पूर्णताका आरोपण करते है। भक्तोका भगवान् सदा निर्दोष और पूर्ण होता है। अभक्तोका भगवान् दोषोका पुज होता है। असख्य हिन्दुओके कृष्ण पूर्ण अवतार है। आलोचकोके कृष्ण व्यभिचारी, जुआरी और असत्यवादी आदि है। मन ही मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण है। यह जो त्रैकालिक शाश्वत सत्य है उसे इस नवयुवकको जानना और समझना चाहिए। जिस प्रकार देहधारी देहके बिना आत्माकी कल्पना नही कर सकते उसी प्रकार मन्दिरोके बिना धर्मकी कल्पना नही की जा सकती। मन्दिरोके बिना हिन्दू धर्म नही चल सकता। मन्दिरोमें अनाचार नही है। कुछ व्यक्ति अनाचारी हो सकते है किन्तु सभी कदापि नही। पूजाकी विधिको किसी तरह

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकका तर्क था कि मन्दिर-प्रवेशकी प्रवृत्तिसे हरिजनोंका कल्याण होनेकी बजाय उन्हें और ज्यादा नुकसान पहुँचेगा क्योंकि मन्दिर भगवान्‌का घर नहीं बल्कि बुराइयोंको पोसने और बढ़ानेका स्थान है। सनातनी हिन्दुओंने हरिजनोंके साथ दुर्व्यवहार करते हुए उनका एक हित जरूर किया कि उन्हें मन्दिरोंमें नहीं घुसने दिया। हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार दिलानेके लिए कानूनकी मदद लेनेका प्रयत्न गांधीजी की नासमझी है।

पूरा-भर करनेवाले के लिए मूर्ति पत्थरका टुकडा है किन्तु भक्तके लिए वह चेतन है। मन्दिरोमे सुधारकी गुजाइश है। मन्दिरोको तोड डालना उचित नही। मन्दिरोको तोड़ा नही कि धर्म टूटा।

इसके अतिरिक्त सभी मन्दिरोमे अनाचार नही चलता। अनेक ग्रामीण मन्दिरोमें अनाचार नही होता। ग्रामीणोमे जो तरह-तरहके वहम है उसका मन्दिरोसे कोई सम्बन्ध नही है। मन्दिर विभिन्न धर्मोकी सभ्यताके सग्रहालय है। पुराने जमानेमे मन्दिरोमे देव था, वहाँ देवत्व था, वहाँ पाठशाला और धर्मशाला थी तथा वहाँ गाँवके प्रमुख व्यक्तियोकी बैठक जमती थी। ऐसे मन्दिर आज भी बहुत-से स्थानोपर देखनेमे आते है। हरिजनोके मनमे मन्दिर इस प्रकार बसे हुए है कि वे अपने जैसे-तैसे मन्दिर खडे कर लेते है। इन मन्दिरोमें हमे उनकी दीनताके दर्शन होते है। जबतक हरिजन सवर्ण हिन्दुओके मन्दिरोमे नही जा पाते तबतक उनकी दीनता कभी नही मिट सकती, उनका हिन्दुत्व अपूर्ण रहेगा और वे हिन्दू धर्मकी छठी अँगुली बनकर बहिष्कृत ही रहेगे। किसी हिन्दूको इस बारेमे तनिक भी सन्देह नही होना चाहिए कि हिन्दू धर्ममे हरिजनोको सम्मान प्राप्त होनेका प्रथम और व्यापक लक्षण मन्दिर-प्रवेश ही है। यह मानना घोर अज्ञानका सूचक है कि मन्दिरोमे प्रवेश न कर पानेके कारण ही हरिजनोका भला हुआ है। मन्दिरोसे बाहर रहनेके कारण हरिजन सभी चीजोसे बाहर रहे है। और आज भी सनातनी उन्हे मन्दिरोमे प्रविष्ट होनेसे रोकनेका प्रयत्न कर रहे है जिससे पता चलता है कि वे हरिजनोका बहिष्कार जारी रखना चाहते है।

अत प्रस्तुत पत्रका भाव शुद्ध होनेके बावजूद वह दु खद है। उससे अपनेको सुधरा हुआ माननेवाले आधुनिक नवयुवककी दयाजनक स्थितिकी झलक मिलती है। नवयुवक तो शायद मेरे इस वाक्य पर क्रोध भी करे और मुझे तथा मेरे-जैसोको दयाका पात्र माने। किन्तु मेरा अनुभव ऐसे नवयुवकके अज्ञानको प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट करता है।

मै बचपनमे बहुत-से मन्दिरोमे गया हूँ और उनका मुझपर तनिक भी बुरा असर नही पड़ा। आज भी मै अपने अनेक स्नेहियोको मन्दिरोमे जाते देखता हूँ। वे मन्दिरोके दोषोको नही जानते किन्तु मन्दिर जानेवालो के दोषोका उन्हे भान है। अत: वे लोग पूर्णत अलिप्त हैं। मै मन्दिर नही जाता इसमे मै अपनी कोई बड़ाई नही मानता या देखता। मुझे इन मन्दिरोकी भूख नही रही इसलिए मै वहाँ नही जाता। हरिजनोके लिए मन्दिर-प्रवेशकी छूट प्राप्त करनेका अर्थ उन्हे मन्दिरमे ले जाना नही है। जिसकी इच्छा होगी, वह जायेगा। जो वहाँ जायेगा उसे कोई दोष नही लगेगा। इसकी सम्भावना अवश्य है कि जो नही जायेगा वह कुछ गँवायेगा।

अब दो शब्द कानूनके बारेमे। जिस प्रकार लेखकने आक्रोशमे बिना किसी प्रमाण या नगण्य प्रमाणके मन्दिरोकी निन्दा की है उसी आक्रोशमे उसने कानूनके बारेमे भी अपना अज्ञान प्रकट किया है। मुझसे थोडा-बहुत परिचय होनेके बावजूद उसने यह नही सोचा कि मेरे-जैसा व्यक्ति जो कानूनका कमसे-कम सहारा लेता है, वह यदि मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी कानूनकी आवश्यकता महसूस करता है तो उसका कोई-न-कोई

सवल कारण होना चाहिए। अब वह उस कारणको समझ ले। आज कानून कहता है कि कोई भी सार्वजनिक मन्दिर हरिजनोके लिए खुला नही है और जो न्यासी उनके लिए मन्दिर खोलेगा वह दण्डका भागी होगा। ऐसी हालतमे इस स्थितिसे उवरनेके लिए यदि हम कानूनकी मॉग नही करेगे तो हरिजनोके लिए मन्दिर कभी खुलेगे ही नही। कानूनकी मदद अनिवार्य है। बुरा कानून तो अच्छे कानूनसे ही रद्द हो सकता है। अन्य कोई उपाय नही है। हमने कानून द्वारा हस्तक्षेप करनेकी मॉग नही की, वल्कि कानून जो हस्तक्षेप करता आ रहा था उसे दूर करनेकी मॉग की है। बुरे कानूनको रद्द करवानेके लिए भी कानूनकी जरूरत होती है, जो इस वातको मानता है वह यह समझ सकता है कि हरिजनोसे सम्बन्धित कानून बनवानेका जो आन्दोलन चल रहा है वह इसी प्रकारका है।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १९-३-१९३३

१४५. वर्ण-धर्म

यह प्रश्न[1] एक हरिजन-सेवकने किया है। मेरी बात इसलिए समझमे नही आती क्योकि आज हम जिसे वर्ण-व्यवस्था मानते है, उसे मै नही मानता। आजकी वर्ण-व्यवस्थाका मतलब छुआछूत और रोटी-बेटी-व्यवहारकी पावन्दियाँ है। आजकलकी छुआछूतको मै अखा भगतकी भाषामे 'फालतू अग' मानता हूँ, और उसे त्याज्य मानता हूँ। रोटी-बेटी-व्यवहारकी पाबन्दीको वर्ण-व्यवस्थाका हिस्सा माननेके लिए रूढिके सिवा शास्त्रोका कोई आधार नही है।

इसके विपरीत वर्णका आजीविकाके साधनके साथ नजदीकका सम्बन्ध है। जिसका जो धन्धा हो वह उसका स्वधर्म है। जो उसे छोड देता है वह वर्ण-भ्रष्ट हो जाता है और उसका नाश हो जाता है, अर्थात् उसकी आत्मा मर जाती है। वह आदमी वर्णोका सकर करता है और इससे समाजको नुकसान पहुँचता है, सामाजिक व्यवस्था टूट जाती है। जब सभी अपना वर्ण छोड देते है, तो सामाजिक कुव्यवस्था वढ जाती है, अराजकता फैल जाती है और समाज नष्ट हो जाता है। यदि ब्राह्मण वर्ण विद्या देनेका काम छोड दे तो उसका पतन हो जाता है। यदि क्षत्रिय प्रजाकी रक्षाका काम छोड दे तो वे वर्ण-भ्रष्ट हो जाते है। वैश्य द्रव्योपार्जन करना छोड़ दे तो वे अपने वर्णसे गिर जाते है। यदि शूद्र सेवा करना छोड दे तो उनका पतन हो जाता है। सभी अपने-अपने धर्मके पालनमे लगे रहकर बराबरीके वने रहते है। जो

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। हरिजन-कार्यकर्त्ताने गांधीजीसे पूछा था कि एक ओर तो वे ऊँच-नीच और छोटी-छोटी जातियोंको मिटाने तथा अन्तर्जातीय विवाह और खान-पानकी हिमायत करते हैं किन्तु दूसरी ओर वर्ण-व्यवस्थाको तोड़ना नहीं बल्कि उसमें सुधार करना चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें यह सवाल उठता है कि वे किस हदतक अन्तर्जातीय विवाह और खान-पानको स्वीकृति देंगे।

अपना धर्म छोड़ देता है, उसीका पतन होता है। स्वधर्मको छोडनेवाले ब्राह्मणसे स्वधर्मका पालन करनेवाला शूद्र अच्छा है।

इस वर्ण-व्यवस्थामे किसी प्रकारके विशेषाधिकारकी गुंजाइश नही है। यह सिर्फ धर्म है, कर्त्तव्य है। जहाँ कर्त्तव्यकी वात है, वहाँ ऊँच-नीचकी भावनाकी गुजाइश ही नही हो सकती।

आजकल वर्ण-धर्म लुप्त हुआ दिखाई दे रहा है। यदि कोई एक वर्ण भी अपना धर्म छोड़ देता है तो पूरी वर्ण-व्यवस्था मिट जाती है। आज तो ब्राह्मणोने ब्राह्मणत्व, क्षत्रियोने क्षत्रियत्व और वैश्योने वैश्यत्व छोड़ दिया है। कोई यह शका कर सकता है कि रुपया कमानेकी आकाक्षा तो सबको है, उसके लिए तो सभी मेहनत करते हैं, इसलिए वैश्यत्व अब भी बना हुआ है ऐसा माननेमे क्या दोष है? मगर ऐसा कहना ठीक नही। आजके वैश्य अपने ही लिए रुपया पैदा करते हैं, इसलिए 'गीता' की भाषामे वे चोर माने जायेगे। वैश्यका धर्म रुपया पैदा करके उसमे से अपने गुजारे लायक लेकर बाकी समाजके काममे लगाना है। ऐसे वैश्य धर्मका पालन करनेवाला कोई मुश्किलसे ही नजर आता है। इसलिए वैश्यका वर्ण भी मिट ही चुका है।

अब रह गया शूद्रका धर्म। इसका पालन करनेवाले कितने शूद्र निकलेगे? बेमनसे की हुई मजदूरी सेवा नही है। धर्ममे जबरदस्तीकी गुजाइश नही होती। धर्म समझकर स्वेच्छासे समाजकी उन्नतिके लिए की हुई मजदूरी ही सेवा कहलायेगी। अत दुखके साथ यह मानना ही पड़ेगा कि वर्ण-धर्मका बिलकुल नाश हो गया है। शूद्रको मजदूर बताकर व्याख्याकारने उसकी बेइज्जती की है और हिन्दू धर्मको नुकसान पहुँचाया है।

लेकिन वर्ण-धर्म हिन्दुओकी रग-रगमें पैठा हुआ है। बिना समझे उन्होने भले ही उसका सम्बन्ध रोटी-बेटी-व्यवहार और छुआछूतके साथ जोड दिया हो। वर्ण-धर्म की कल्पनाके बिना हिन्दुओको चैन नही पडता। इसलिए उसका पुनरुद्धार होना सम्भव है। तपके विना धार्मिक जागृति या उसका उद्धार करना नामुमकिन है। तप ही एक ऐसी महान् शक्ति है, जिसके द्वारा धर्मकी रक्षा और संस्थापना की जा सकती है। ज्ञानके बिना तप, तप नही वल्कि शरीरको दुख देना ही है। तप और ज्ञानका मेल तो ब्राह्मण धर्ममे ही सम्भव है। जो ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए परिश्रम करे वह ब्राह्मण होने लायक है। यदि आज ऐसा प्रयत्न किया जाये तो किसी दिन हिन्दू धर्म अर्थात् वर्ण-धर्मका उद्धार हो सकेगा। सौभाग्यसे ऐसा प्रयत्न करनेवाला एक छोटा-सा वर्ग आज मौजूद है। अत मुझे अटल विश्वास है कि हिन्दू धर्म — शुद्ध सनातन धर्म — फिर अपना तेज प्रकट करके जगत्को कल्याणका मार्ग दिखायेगा।

मेरा हिन्दू धर्म सर्वव्यापक है। उसकी किसी धर्मके साथ दुश्मनी नही और न वह किसीका अपमान करता है। सब धर्म एक-दूसरेमे गुँथे हुए हैं। सवमे कोई-न-कोई विशेषता पाई जाती है। किन्तु कोई भी धर्म दूसरे धर्मसे श्रेष्ठ नही है। मेरा ऐसा विश्वास है कि सब धर्म एक-दूसरेकी कमी पूरी करते है। इसलिए किसी धर्मकी विशेषता दूसरेके विरुद्ध नही हो सकती, जगत्के सर्वमान्य सिद्धान्तोकी विरोधी नही

हो सकती। वर्ण-धर्मको इस दृष्टिसे देखनेपर उसका वही अर्थ निकल सकता है जो मैंने किया है। और इतिहास बताता है कि हिन्दू धर्मके अनुयायी किसी समय स्वेच्छासे उसका पालन करते थे।

इस वर्ण-धर्मके पालनको फिरसे सम्भव बनानेके लिए सबको स्वेच्छासे शूद्रोका धर्म स्वीकार करनेकी जरूरत है। शूद्र मुख्यत· शारीरिक श्रम द्वारा सेवा करता है। यह धर्म सबके लिए सुलभ है। अत. सबके लिए ऐसा कर पाना सम्भव है। इसके सिवा, ऐसी मान्यता फैली हुई है कि शूद्र नीच है। सब अपनेको शूद्र समझे तो ऊँच-नीचका भाव जाता रहे।

कोई कहेगा, 'अगर सब अपनेको शूद्र मानें तो हरिजन ही क्यो न मानें?' मै इस आग्रहका तनिक भी विरोध नही करूँगा लेकिन धर्ममे पाँच वर्ण नही है, और छुआछूत तो मिट ही रही है। इसलिए मै 'शूद्र' शब्दका व्यवहार करता हूँ। मालवीयजी महाराजकी अध्यक्षतामें हिन्दू जातिके नामपर बम्बईमे ली गई प्रतिज्ञाके[1] बाद जन्मसे छुआछूतको माननेकी हिन्दू धर्ममे गुजाइश नही रही। इसलिए वर्ण-धर्मके पुनरुद्धारके समय सबकी गिनती हरिजनोमे करनेकी बात बेमौका समझी जायेगी। यदि हरिजन और अन्य सब लोग शूद्र बनकर रहे तो सहज ही सब हरिके जन हो जायेंगे।

लेकिन सब समझ-बूझकर सेवा-धर्मका पालन करने लगें और अपनेको शूद्र मानने लगे तो फिर यह तो हो ही नही सकता कि कोई ब्रह्मविद्या न सीखे। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार कोई ब्रह्मविद्या सीखेगा और सिखायेगा, कोई प्रजाका पालन करेगा और कोई रुपया पैदा करेगा। सबका रहन-सहन लगभग एक-सा होगा। यह हालत नही रहेगी कि एक करोड़पति हो और दूसरा भिखारी। वैश्यका धन प्रजाका धन माना जायेगा। इन तीनो शक्तियोका उपयोग केवल सामाजिक सेवाके लिए किया जायेगा। सब लोग शूद्र ही माने जायेंगे तो ऊँच-नीचका भेद नही रहेगा। इससे स्वभावत वर्ण-धर्मका पुनरुद्धार होगा।

वर्ण-धर्ममें निश्चय ही परम्पराके लिए स्थान है। उसके बिना सुव्यवस्था असम्भव है। इसलिए अध्यापन करानेवालो की सतान उसी धर्मका पालन करेगी। सबके-सब एकाएक ब्रह्मज्ञानी नही हो सकते और हो जायें तो कोई हानि नही। क्योकि ब्रह्म-ज्ञानी होनेका तात्पर्य तो सेवाकी पराकाष्ठापर पहुँचना है। उसमे घमण्ड अथवा खुदगरजीकी बू तक नही हो सकती। और जब अच्छी सख्यामे ऐसे ब्रह्मज्ञानी सामने आयेंगे तो वर्ण-व्यवस्था पुन· स्थापित हो सकती है।

अब दो शब्द रोटी-बेटी-व्यवहारके बारेमें।

जिन्होने उपर्युक्त अशको भली-भाँति समझ लिया है, उनके लिए तो असलमें और कुछ लिखनेको बाकी ही नही रह जाता। कोई किसीके साथ रोटी खाने या चाहे जिसे अपनी लडकी दे डालनेको बँधा नहीं है। इसलिए स्वाभाविक रूपसे सब अपने जैसे रीति-रिवाज और स्वभाववालो के साथ ही रोटी-बेटी-व्यवहार रखेंगे। मैंने

१. प्रतिज्ञाके पाठके लिए देखिए "हरिजन सेवक संघके सविधानका मसविदा", ९-३-१९३३।

अभी एक ही व्रर्णकी कल्पना की है और हरिजन उससे बाहर नही है; इसलिए इतना ही कहना काफी है कि सव लोग अपनी सुविधानुसार अपने रिश्ते ढूँढ लेगे और जहाँ उनकी आत्मा संतुष्ट होगी वहाँ खायेगे-पीयेगे और उठेगे-बैठेगे। छुआछूतके मिट जानेके बाद इस बारेमे ज्यादा कहने-करनेको कुछ नही रह जाता।

आखिरमे बहुत बार कही हुई बाते फिर दुहरा दूं। इस वर्ण-व्यवस्थाके प्रश्नका अस्पृश्यता-निवारणके साथ कोई सीधा सम्बन्ध नही है। अस्पृश्यता-निवारण हर हिन्दूका परम धर्म है। इसीके लिए हरिजन सेवक संघका अस्तित्व है। उसने अपना क्षेत्र निर्धारित कर लिया है और इस क्षेत्र-निर्धारणमे मेरा खास हाथ है।

वर्ण-धर्म-सम्बन्धी ये विचार अभी तो मेरे निजी विचार हैं। उन्हे जो न माने, उसे भी अस्पृश्यता दूर करनेसे न चूकना चाहिए। मैं उसमे विशेष रूपसे भाग लेता हूँ, इस कारण किसीको भडकनेकी जरूरत नहीं। वर्ण-व्यवस्था-सम्बन्धी मेरे विचारोंको यदि हिन्दू जाति नही मानेगी तो वे मेरे पास ही रह दिया जायेगे। मैं उन्हे जबरदस्ती नही मनवा सकता, मनवानेकी इच्छा भी नही है। यदि ये विचार हिन्दू धर्मके विरुद्ध होगे तो मै थोथे चनेकी तरह हिन्दू जातिमे से निकाल दिया जाऊँगा। लेकिन छुआछूतको मिटानेकी प्रतिज्ञाका, पालन करना तो सभी हिन्दुओका सामान्य धर्म है। मैं अपने किसी विचारको छिपाकर धोखा देना नहीं चाहता। वर्ण-व्यवस्थाके प्रश्नका छुआछूतके साथ परोक्ष सम्बन्ध है, इसलिए मै समझ सकता हूँ कि मेरे साथी और अन्य लोग इस बारेमे मेरे विचार जानना चाहते होगे। इसी कारण मुझे अपने ये विचार विस्तार से बताने पड़े है। मगर इन विचारोके कारण किसीको सोच-विचार या परेशानीमे पड़नेकी जरा भी जरूरत नही। धर्मके मामलेमे व्यक्तिकी कोई गिनती नही है। वे तो आते-जाते रहेगे। धर्म सनातन है और वह सदा चलता रहेगा। उसके बारेमे सदा ही विभिन्न प्रकारकी कल्पनाएँ होती रही है और भविष्यमे होती रहेगी। जिस तरह ईश्वरके गुणोका पार नही, उसी तरह धर्मकी मर्यादाका भी पार नही है। उसे पूरी तरह किसीने नही जाना। सब जितना जानते है उतना पालन करते रहे, तो धर्मकी गाडी आगे ही बढती रहेगी। इतना समझकर मुझे अलग रखकर ही सब अपने-अपने धर्मकी खोज करे। इसकी खोज करनेकी शर्त जग-जाहिर है। उन शर्तोका पालन करनेवाले ही किसी हदतक धर्मको पहचान सकेगे। सारे ज्ञानके पीछे उसे प्राप्त करनेके नियम होते है। उसके लिए परिश्रम आवश्यक है। धर्मकी खोजके लिए सबसे अधिक परिश्रमकी आवश्यकता है। और इसीलिए उसकी खोजके आरम्भमे ही अनुभवियोने यम-नियमोके पालनकी आवश्यकता बताई है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १९-३-१९३३

१४६. पत्र : एफ० मेरी बारको

१९ मार्च, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम्हारे दो सुन्दर पत्र मेरे सामने है। बात बिलकुल ठीक है कि अनेक अन्य व्यक्तियोकी भाँति तुमने भी मिशनमे काफी शारीरिक श्रम किया। मैंने उसके बारेमें नही कहा था। मेरा आशय तो यही था कि आश्रमवासियोकी तरह ही व्यवस्थित ढगसे शारीरिक श्रम किया जाये और विभिन्न शिल्पोमें सिद्धहस्तता हासिल की जाये। लेकिन मै इसके बारेमे अधिक विस्तारसे नही लिखूंगा। अपने भोजनका खर्च शारीरिक श्रमसे पूरा करना और इस तरह भोजनके लिए शारीरिक श्रम करना — यही आदर्श है जिसे हम आश्रममें रहकर अमलमे लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु तुम्हे तो वही करना है जो तुमको पसन्द हो और उसी ढगसे जो तुम्हे ठीक लगे। मै नही चाहता कि तुम मानसिक तनावकी स्थितिमे कोई काम करो। यदि मैंने पाया कि तुमने आश्रमकी चर्या पूरी करनेके लिए तनावकी मन.स्थितिमे काम किया है, तो मुझे बडी पीड़ा होगी। मै चाहता हूँ कि तुम आश्रमकी भावनासे अनुप्राणित होओ। हर कार्यावधिके बाद हृदयको सन्तोष और हर्षका अनुभव होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब हमारा प्रत्येक क्षण ईश्वरको अर्पित हो और हम हर काम ईश्वरके लिए, उसकी सृष्टिके लिए करे। अब आज अधिक कुछ कहनेका समय नही है।

हम सबकी ओरसे सस्नेह।

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०००)से। सी० डब्ल्यू० ३३२५से भी, सौजन्य एफ० मेरी बार

१४७. पत्र : केशवको

१९ मार्च, १९३३

प्रिय ब्रदर केशव,

आपकी योजनाके[1] बारेमें अब मै अपनी राय दे सकता हूँ। काका साहबकी राय है कि आपको फिलहाल कोई बडी रौबीली लम्बी-चौड़ी इमारत दरकार नही। साबरमती जानेवाले ब्रदर कोई बहुत अनुभव प्राप्त नही कर पाये। आपके यहाँ दो करघे तो है ही। फिलहाल उनको ही चलाना चाहिए। आप जितना सूत तैयार कर रहे है वह तो उन दोनो करघोको चालू रखनेके लिए भी काफी नही है। इसलिए आपको धीमी लेकिन सुस्थिर गतिसे आगे बढना चाहिए और कामको तभी अधिक फैलाना

१. देखिए "पत्र : केशवको," ७-३-१९३३।

चाहिए जब आपके पास ऐसे प्रशिक्षित कतैयो और बुनकरोंकी एक शुरुआती टोली जुट जाये, जिनको अपने काममे पूरी सिद्धहस्तता प्राप्त हो और जो बाजारमे खपने लायक सूत तथा खादी तैयार करने लायक हो। यदि आप ऐसा नही करेगे तो आपका भी वही हाल होगा जो कई और सस्थाओका हुआ है। मै जानता हूँ कि उन्होने बड़े ही ऊँचे और उदात्त लक्ष्यको सामने रखकर काम शुरू किया था, लेकिन कार्यक्षमता और अध्यवसायके अभावमे वे ठप हो गईं। यह एक ऐसा उद्यम है जिसके लिए उतना ही तकनीकी कौशल, अध्यवसाय और समय दरकार है जितना कि अन्य किसी भी उद्योगके लिए होता है। सच पूछिए तो इसके लिए कुछ अधिक ही चाहिए, कम तो किसी भी तरह नही।

इसलिए मै तो आपसे यही कहूँगा कि आप इस सार्वजनिक अपीलको वापस ले ले और बिना किसी दिखावेके चुपचाप अपने कामका विकास करते जाये; और जब आप इतना कर लेगे तो देखेंगे कि उसके विस्तारके लिए आपको धन भी सहज ही सुलभ है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६२६) से।

१४८. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१९ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

इसी मासकी १३ तारीखके आपके पत्र सख्या ९२१ का उत्तर दे रहा हूँ।

मै तो समझता हूँ कि आपकी शिकायतसे अपने-आपको बरी करनेके लिए मैं आपके सुझाये उस आसान-से तरीकेकी आड़ नही ले सकता। जब मैंने यह वाक्य लिखाया था कि "पता नही, आप 'हरिजन'का अंग्रेजी सस्करण पढते भी है या नही,"[1] तब मेरा आशय ठीक यही था। मै जानता हूँ कि आप कैसे लगनवाले कार्यकर्ता है। सामान्यतया मुझे आपसे ऐसी अपेक्षा नही ही रखनी चाहिए कि संघकी[2] ओरसे प्रकाशित सभी पत्र-पत्रिकाएँ आप पढ ही ले। यह तो किसी भी सस्थाके मन्त्रीके बसका काम नही होगा। स्थिति यह है कि इस सघके तत्त्वावधानमे प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रो, पत्रिकाओ और अन्य प्रकाशनोकी मात्रा इतनी अधिक नही है। परन्तु जितना प्रकाशन होता है, उस सबको भी पढ लेनेकी अपेक्षा आपसे नही रखी जा सकती और यदि आप ऐसी कोशिश भी करेगे तो कही अधिक उपयोगी कार्योकी बलि देकर ही कर पायेंगे। परन्तु मैं 'हरिजन'के अंग्रेजी और हिन्दी सस्करणको विशेष

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५७५।

२. हरिजन सेवक संघ।

स्थान दे रहा हूँ — अंग्रेजी संस्करणको इसलिए कि उसमे अपने सभी विचारोको लिखित रूप देता रहता हूँ और वे आपके लिए भी उतने ही होते है जितने कि हरिजन-कार्य करनेवाले अन्य कार्यकर्ताओंके लिए होते है; और ऐसा मै इसलिए करता हूँ कि संघकी नीति निर्धारित करने और उसका मार्ग-दर्शन करनेका काम मेरा ही माना जाता है। इसलिए मैंने विनम्रतापूर्वक वह प्रश्न पूछकर आपको यही सुझाना चाहा था कि अंग्रेजी संस्करणको आप एक विशिष्ट स्थान दे और उसे पढ़नेका समय अवश्य निकाल लिया करे। हिन्दी संस्करण तो आपको पढ़ना ही है, क्योकि वह आपके यहाँसे ही निकलता है और उसमे सबसे हालकी सामग्री भी दी जा सकती है, जबकि दूरीके कारण अंग्रेजी सस्करणमे वह नहीं दी जा सकती। हिन्दी सस्करण तथ्यो और आँकड़ोसे ठसाठस भरा रहना चाहिए। स्थिति यह होनी चाहिए कि मै उससे तथ्य और आँकड़े उद्धृत करूँ और ऐसा करना मुझे बडा अच्छा लगेगा। उसके जरिये आप असंख्य कार्यकर्ताओ तक अपनी बात पहुँचा सकेंगे और उनको ठीक-ठीक हिदायतें दे सकेंगे। और अगर यह नही होता तो उसे निकालना ही बेमतलब है। हिन्दी 'हरिजन' मे लेख और निबन्ध आदि देनेकी जरूरत नही। उसमे तो मेरे सन्देशोका अनुवाद और मुख्य कार्यालयसे प्राप्त चुनी हुई प्रामाणिक सूचनाएँ तथा कार्यकर्ताओंके लिए हफ्तेवार हिदायतें ही रहनी चाहिए। तभी वह अपने प्रकाशनका औचित्य सिद्ध कर सकेगा।

अब आपके पत्रके दूसरे अशको लेता हूँ। मै बतला ही चुका हूँ कि अन्य सगठनोके बारेमे मेरा क्या दृष्टिकोण है। हमें उनको अपने ही संगठन मानकर चलना चाहिए — यह इसलिए नही कि हम उनको अपने इशारोपर चला सके, बल्कि इसलिए कि उनकी सहायता-सेवा कर सकें और यदि वे हमे अपना सहयोग दे तो उनकी सेवाओका उपयोग कर सके। पर इस बातकी सबसे ठीक जानकारी तो आपको ही है कि उन सस्थाओसे सम्पर्क करनेकी कोई जरूरत भी है या नही और यदि है तो कैसे सम्पर्क किया जाये। सचमुच लाला मोहनलालके[1] विरुद्ध मेरे मनमे कोई बात न तो थी और न हो ही सकती है। लेकिन मेरे अपने खयालके मुताबिक मेरा और आपका काम यही है कि हम अच्छी-बुरी या निरुद्देश्य सभी शिकायतोकी जाँच करे, जिससे कि जहाँतक आदमीसे बन सकता है, उनमे गलतियो या शिकायतोंकी कोई गुंजाइश हमारी ओरसे न छूट पाये।

अब आपके पत्रके अन्तिम अशको जिसमे ऊपरी खर्चकी बात उठाई गई है, लेता हूँ। आप और मै दोनो आरम्भसे ही कार्यकर्ता रहे है और अनेकानेक सस्थाओंके साथ हमारे सम्बन्ध रहे हैं। सचमुच मै स्वयंको अपने ही ढंगसे एक विशिष्ट अर्थशास्त्री और सगठनकर्ता मानता हूँ। यदि हम यह नही दिखा सकेंगे कि हमारी अपनी उगाही हुई राशिका अधिकांश हरिजनोंकी जेबोमे पहुँचा है, तो मौजूदा पीढ़ी नही तो आगे आनेवाली पीढ़ियोको हक होगा ही कि वे हमे जी-भरकर कोसे। इसलिए ऊपरी खर्चोपर दस प्रतिशत खर्च कर देना मै ज्यादती समझता हूँ। प्रचार तो हमे करना ही चाहिए और काफी करना चाहिए तथा हरिजनो और सवर्णों,

१. हरिजन सेवक संघकी पंजाब शाखाके मन्त्री।

दोनोके बीच करना चाहिए। लेकिन हमे अपने प्रचार-कार्यको, विशेषकर सवर्णोंके बीच किये जानेवाले प्रचार-कार्यको, ऐसा बनाना चाहिए कि वह अपना खर्च खुद ही लगभग पूरा कर ले, बाहरसे उसकी पूर्ति न करनी पड़े। मेरी रायमे सर्वोत्तम प्रचार तो हरिजनोके बीच रचनात्मक कार्य करना ही है। उसका असर हरिजनोपर ही नही, सवर्णोपर भी पड़ेगा। फिलहाल आप दो मदोके लिए चन्दे ले सकते है — एक तो रचनात्मक कार्यकी मदमे और दूसरा प्रचारकी मदमे। पहले चन्देकी राशि सीधे हरिजनोकी जेबोमे जायेगी। सच तो यह है कि प्रचार-कार्यका खर्च हमारे साप्ताहिक पत्रो और अन्य साहित्यकी बिक्रीसे निकलना चाहिए, जिससे कि अन्य प्रकारसे इकट्ठी की गई सारी-की-सारी राशियाँ हरिजनोको मिल सके। इसलिए हमारे सवर्ण कार्यकर्ता या तो स्वयंसेवक होने चाहिए या फिर उनको गुजारे लायक पैसा ही लेना चाहिए और हमे जितने भी जुट सके, उतने हरिजन कार्यकर्ताओको आगे लाकर उनको काफी अच्छा वेतन देना चाहिए। हो सकता है कि फिलहाल वे कोई बहुत अच्छा काम करके न दिखा सके, पर मुझे उसकी चिन्ता नही; मै तो उनको काम करनेका ढग सिखानेपर ही ध्यान दूँगा। यह सब काम तभी हो सकता है जब हमारे कार्यकर्ता धार्मिक विचारोके हो, वे इस आन्दोलनको मुख्यत धार्मिक आन्दोलन मानकर इसमे धार्मिक भावनासे भाग ले। तब आप देखेंगे कि हमे कमसे-कम विरोध का सामना करना पड रहा है और विरोध कितना ही सामने आये, हमारा आन्दोलन फूलता-फलता चलेगा। यदि हमे अपना आन्दोलन चलाने और ऐसी भावनासे ही चलानेके लिए पर्याप्त संख्यामे कार्यकर्ता नही मिल पाते, तो कमसे-कम मै यह कहनेमे तनिक भी सकोच नही करूँगा कि हमे सगठन कायम नही रखना चाहिए। उस सगठनके बिना भी आपके सामने अपना और मेरे सामने मेरा अपना महान् कार्य तो है ही। सगठनकी स्थापना इसी विश्वाससे की गई थी कि जनताको उसकी जरूरत है। मेरा अपना विश्वास आज भी यही है, लेकिन उसे वास्तवमे जरूरत है या नही, यह तो मैंने जो कसौटी रखी है, उसीसे सिद्ध हो सकता है।

मेरे दिमागमे जो विचार-प्रवाह चल रहा है, उसकी मात्र रूपरेखा मैंने आपको बतलाई है। यह पत्र आप श्रीयुत घनश्यामदासको दिखला दीजिए; और यदि लाभकारी समझे तो इस पूरी चीजपर बातचीत करनेके लिए आप यहाँ आ सकते है। लेकिन यदि आपने मेरे पत्रकी भावना ठीक-ठीक समझ ली हो और आप उसे ठीक मानते हो तो आनेका कष्ट उठानेकी आवश्यकता नही।

अन्तमे मै यही कहता हूँ कि आप इस पत्रमे कही गई किसी भी बातपर सिर्फ इसलिए अमल न करे कि वह मैंने लिखी है। आप सिर्फ उस बातपर अमल करें जो आपको ठीक जँचे, अन्यथा नहीं। अपने विचार आपके सामने रखकर मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६३३)से।

१४९. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

१९ मार्च, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा पत्र मिला।

आशा है तुम्हारे सूतके अंक, समानता और मजबूतीमें सुधार हुआ होगा। सूतके अंककी अपेक्षा उसकी मजबूती और समानताकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि रुई या पूनियाँ खराब होगी तो सूतके अंकमें अवश्य अन्तर आ जायेगा किन्तु इस कारण उसकी समानता और मजबूतीमे कदापि अन्तर नही पडना चाहिए। जबतक तुम इन दो कसौटियोपर पूरा उतरनेकी हदतक प्रगति नही कर लेते तबतक यह कहा ही नही जा सकता कि तुमने सूत काता। सचाईकी खातिर यह कहना जरूरी है।

खेतीमे या अन्य जो भी काम किया जाये उसमें रस आना चाहिए। जो कर्तव्यपरायण है उसके लिए सम्पूर्ण रस कर्तव्य-पालनमें है, न कि किसी कार्य-विशेषमे। अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले को अपनी पसन्दका काम चुननेकी इच्छातक नही होती। जो काम उसके हाथमे आ जाता है उसे वह रसपूर्वक करता है क्योकि वैसा करना वह अपना कर्तव्य समझता है। जो अनिच्छासे कोई काम करता है वह अपने धर्मका पालन नही करता। धर्मका पालन भी क्या कही जबरदस्ती कराया जा सकता है?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

१५०. पत्र : नारणदास गांधीको

१९ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

एकके बाद एक कोई-न-कोई धर्म सकट मेरे सामने खडा ही रहता है। इस समय ऐसा लगता है कि जिसपर मेरा सम्पूर्ण विश्वास था . . .का[1] पतन हुआ है. के[2] पीछे वह पागल हो गया है। कामी पुरुष जिस तरह विह्वल हो जाता है उसी तरह वह विह्वल हो गया है। . . के[3] नाम लिखे उसके मोहान्ध पत्र अचानक . के[4] हाथ पड़े। उसने वे पत्र मुझे भेज दिये। वे पत्र विषयान्ध पुरुषकी तस्वीर पेश करते है। इन पत्रोको वापस पानेके लिए उसने कपटपूर्ण प्रयत्न

१ से ४. यहाँ नाम नहीं दिये गये हैं।

किये किन्तु इसमे उसे सफलता नही मिली। वह कल मुझे . के[1] साथ मिला। उसकी उदारता . . मे[2] कम नही है। मेरे प्रति उसका प्रेम इतना अधिक है कि मैं उसके बोझसे दबा जाता हूँ। मै देखता हूँ, मुझसे नाराज होनेके बजाय मेरे प्रति वह अब भी उससे कही अधिक प्रेम रखती है जितनी कोई लडकी अपने पिताके प्रति रखती है। दूसरी ओर . . . की[3] बात सोचकर तो मै काँप उठता हूँ [4] तो अब ऐसा कहता है कि उसका से[5] विवाह करनेका कोई विचार ही नही था। वह तो उसकी परीक्षा ले रहा था। यह बात सच हो तो मुझे अच्छा लगेगा। मैं चाहता हूँ कि ऐसा ही हो। यद्यपि यह भी अनुचित तो था ही। किन्तु उसकी इस बातपर विश्वास नही बैठता। कोई उसे स्वीकार नही करता। यदि [6] अभी भी धोखा दे रहा है तो कहना होगा कि वह अप्रत्याशित नीचता दिखा रहा है। वल्लभभाईका .[7] पर मोह था; उनका मोह भी अब उतर गया मालूम होता है। मै स्वय उसके मनकी थाह नही पा सका। 'दिशो न जाने न लभे च शर्म' ऐसी मेरी स्थिति कही जा सकती है[8]। मेरे सामने कर्तव्य पडा हुआ है, इसलिए मेरी सब वेदनाओको वह दबा सकता है। किन्तु मेरे हृदयमे दु खकी ऐसी आग जल रही है जिसे मै भी नही जानता।

जेलसे बाहर होता तो कह नही सकता कि मै इसका क्या प्रायश्चित्त करता। यहाँ रहते हुए इस सम्बन्धमे मेरा क्या धर्म है, सो मै जानता नही। . का[9] कोई दोष है, इस बात पर मेरा विश्वास नही बैठता। वह तो बिलकुल भोली लडकी है जो किसीका भी विश्वास कर लेती है। यह पत्र पण्डितजी, चिमनलाल, कमलाबहन, दुर्गा, लक्ष्मीबहन और तोतारामको तो दिखाना ही। जिन अन्य लोगोको दिखाना तुम्हे ठीक लगे उन्हे भी दिखा देना। इस सम्वन्धमे उन्हे जो कहना हो सो वे मुझे लिखे। . . .[10] वहाँ हों तो वह भी अवश्य बाँचे। उसे तो मैंने परसो ही पत्र लिखा है . .के[11] साथ और बातचीत करनेके लिए मैने काका साहबसे कहा है। वह . [12] जानेवाला था। काका साहबसे मैंने उसे रोकनेको कहा है। इस विषयपर तुम जो भी प्रकाश डाल सको डालना। मै तो इस समय और अधिक नही लिख सकता, क्योकि मै 'धर्म सम्मूढ चेतस' हूँ।

धर्मको मैं छोड नही सकता और मेरा विश्वास है कि सदाकी भाँति इस सकटमे से निकलनेका मार्ग भी ईश्वर मुझे दिखायेगा। इसलिए यद्यपि इस पत्रमे तुम मेरी व्यथा देखोगे तथापि ऐसा मानना कि मेरा मन शान्त है।

बापू

१ से ७. यहाँ नाम छोड दिये गये हैं।
८. भगवद्गीता, अध्याय ११, श्लोक २५।
९ से १२. यहाँ नाम नहीं दिये गये है।

[पुनश्च :]

इसके साथ सन्तोकबहन और लक्ष्मीदासभाईके लिए पत्र रख रहा हूँ।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१५१. पत्र : नारणदास गांधीको

१९ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

आज सवेरे कुछ पत्र डाकमें छोड़नेके लिए दिये थे। वे मिल गये होंगे।

लक्ष्मीदासको लिखा गया पत्र यहीं रह गया था, अब उसे बारडोली भिजवाया है।

आनन्दीकी तबीयत ठीक होती जा रही है। कमजोरी है, थोडा बुखार भी रहता है। ऐसा खयाल है कि बुखार ऑपरेशनके कारण रहता होगा। परिचर्या ठीक हो रही है।

परचुरे शास्त्रीके निर्णयका समाचार अब मिल गया होगा।

सुरेशके पत्रमें एक वाक्य इस प्रकार है. "सब संस्थाओंमें लोग धनिकोंका ही सम्मान करते है, गरीबका कोई नही करता।" मैंने उससे पूछा है कि क्या यह बात आश्रमपर भी लागू होती है? उसे लिखा हुआ पत्र पढ़ना। यदि आश्रमके सम्बन्धमें उसका ऐसा ही अनुभव हो तो उससे प्रेमपूर्वक उसके इस कथनका प्रमाण माँगना। यदि हममें यह दोष हो तो हमें इसे सुधारना चाहिए।

वालजीभाईका 'यीशु चरित' वहाँ पहुँचा है क्या? पहुँचा हो तो जिसने उसे पढ़ा हो वह मुझे उसके सम्बन्धमें अपना मतामत लिखें[1]। न पहुँचा हो तो मैं पुस्तककी एक प्रति यहाँसे भेजूँगा।

बापू

पत्रोंकी कुल संख्या २२।

[पुनश्च :]

ये २२ पत्र एक साथ बँधे हुए हैं। २३ वाँ पत्र जो प्रभुदासके[2] नाम है, अलग है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३३८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. पुस्तकके विषयमें गांधीजी के विचारोंके लिए देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ २७५-७७।

२. नारणदास गांधीके भतीजे और छगनलाल गांधीके पुत्र।

१५२. पत्र : विद्या आनन्द हिंगोरानीको

१९ मार्च, १९३३

चि० विद्या,

अब तो तुमको महादेव[1] मिला फिर मुझे पत्र कैसे लिखोगी। साफ-साफ कह दे ना 'महादेव'के घरमे प्रगट होने कारण पत्र लिखनेमे देर होती है इसलिए क्षमा नहि माग सकती। बच्चोको कबज्ञसे बचा लेना आवश्यक है। नित्य भी थोडा-सा एरंडीका तेल दे सकती है सिर्फ दस टीपे काफीसे अधिक हो जायगे। जब लिखो तब आनंदको आशीर्वाद दे दो।

दा० महेताको फिर मिलनेका नहि हुआ है।

बापूके आशीर्वाद

हिन्दीकी माइक्रोफिल्मसे। सौजन्य : नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इण्डिया और आनंद टी० हिंगोरानी

१५३. पत्र : रमाबहन जोशीको

१९ मार्च, १९३३

चि० रमा,

नारणदासको मैंने लिखा था जिसके उत्तरमें वह लिखता है :

> यमूजी द्वारा रमाबहनकी क्लास लेनेकी सूचना मैं आपको दे चुका हूँ। वह तो क्लास आरम्भ होनेके पहले ही नाराज हो गई होगी। आशा है अब उसकी नाराजगी दूर हो जायेगी। यह कैसे हो सकता है कि मैं उसके पास कभी न जाऊँ? ऐसा तो मुझे सोचना भी नहीं चाहिए। मैंने उसकी क्लास लेनेकी व्यवस्था की और उससे कुछ देर बातचीत की। और अब तो उसके घर, बालमन्दिर आदिमें भेंट होती ही है। यदि उसे विश्वास न हो तो मुझे उसका विश्वास प्राप्त करनेका प्रयास करना चाहिए।

तो फिर तुम्हारी हार हुई न? या अब भी 'मेरी मुर्गीकी डेढ़ टाँग' ही है? अपनी पढ़ाईकी प्रगतिका विवरण मुझे भेजती रहना। तुम्हारा हाथ कैसा है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४४) से।

१. हिंगोरानीके पुत्र।

१५४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ मार्च, १९३३

चि० प्रेमा,

तू व्यर्थ शका करती है। जैसे तू शुद्ध भावसे अपनी इच्छानुसार आलोचना करती है वैसी ही महादेवने की है। मैंने उससे पूछा। वार-वार 'महात्माजी के लिए' पर जोर देनेसे महादेवको उसमें तिरस्कारकी गध आई। उन्हे जैसा लगा वैसा उन्होंने कहा। तूने उत्तर दिया इसलिए मामला निबट गया। तुझे सहन-शक्ति वढानी चाहिए, अधीरता मिटानी चाहिए। थोडी विनोदी प्रकृति बनानी चाहिए। जगत्‌की सारी आलोचनाको सोनेके ही काँटेसे नही तोलना चाहिए, लोहा या पत्थर तोलनेकी तराजू का उपयोग करना चाहिए। उसमे मन-आध-मनका तो हिसाव तक नही होता। तू ऊपरसे नाजुक नही दीखती, लेकिन तेरा मन वहुत नाजुक मालूम होता है। अव तू उसे कठिन या सहनशील वना ले। अव तुझसे अनुरोध करनेके बजाय आज्ञा देनेका इरादा कर रहा हूँ। भले ही तू उसका अनादर करे। दूसरोकी आज्ञाओका अनादर करनेकी तो तुझे इजाजत नही मिलती, इसलिए तू मेरी आज्ञाओका अनादर किया करना। यह अनादर सविनय माना जाये अथवा अविनय, दीवानी माना जाये या फौजदारी, यह देखा जायेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३०) से। सी० डब्ल्यू० ६७७० से भी, सौजन्य . प्रेमाबहन कटक

१५५. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

१९ मार्च, १९३३

भाईश्री परीक्षितलाल,

तुम्हारा निर्मल पत्र मुझे मिल गया है। अपने दृष्टिकोणसे मुझे तुम्हारा आँकडा भयकर लगता है किन्तु यदि मैं सामनेवाले के दृष्टिकोणको स्वीकार कर लूँ तो तुम्हारा आँकडा उत्तम है। तुम्हारा काम सिपाहीका है। कार्यकी जो भी पद्धति तय हो तुम्हे उसपर अमल करना चाहिए। पद्धति तय करनेका काम तुम्हारी स्थानीय या प्रान्तीय (अथवा इसे वे जो कहते हो) समितिका है। मेरा काम केवल पथ-प्रदर्शन करना है। परिस्थितिको ध्यानमे रखते हुए उनमें से जो अनुकूल जान पड़े उसपर अमल करना चाहिए। मेरे सुझावोपर आँख मूँदकर अमल करनेसे उसका उलटा परिणाम

निकलनेकी पूरी सम्भावना और भय है। इसलिए तुम्हारा पहला काम यह है कि तुम अपने अनुभवकी दृष्टिसे मेरे सुझावको तोलो। यदि वह हलका उतरे तो उसे बिलकुल भूल जाना तुम्हारा कर्तव्य है। यदि तुम्हे उसमे कुछ वजन दिखाई दे तो उसे अपनी समितिके सामने रखना चाहिए। यदि समितिको भी वह पसन्द आ जाये तो उसे ठक्कर बापाके सामने रखना चाहिए और वे भी पास कर दे तो उसपर अमल करना चाहिए। इससे अधिक यहाँ और कुछ नही लिखूँगा। अपने सुझावोके बारेमे अब मैं अंग्रेजी-गुजराती 'हरिजन' मे चर्चा करूँगा। उससे तुम्हे उनके बारेमे जानकारी मिल जायेगी।

तुम्हारे विचार करनेके लिए दो नियम लिख रहा हूँ.

१. प्रचार-कार्यके लिए आवश्यक पैसा उसीमे से निकलना चाहिए अर्थात् उसे स्वावलम्बी होना चाहिए।

२ रचनात्मक कार्य ही सच्चा प्रचार-कार्य है। उसमे लगाये हुए पैसेका पूरा लाभ मिलेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६२९) से।

१५६. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

१९ मार्च, १९३३

चि० नर्मदा,

तेरा पत्र मिला। यदि तू 'गीता' और संगीत सचमुच सीखना चाहती होगी तो जरूर सीख लेगी। किन्तु जो भी सीखे उसको पूरी तरह सीखना।

यदि खेतोमे काम करनेमे सबको आनन्द आता हो तो उन्हे मेरी बधाई।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७७४) से। सौजन्य . रामनारायण एन० पाठक

१५७. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२० मार्च, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

मै आपको एकाधिक बार सरदार वल्लभभाईकी नाककी हालत बतला चुका हूँ। आप यह भी जानते है कि वे स्वय इसके बारेमें बात करनेमे कितना सकोच अनुभव करते है। लेकिन उसकी जानकारी रखनेवाले हम लोगोको चिन्ता हो रही है। उसका दौरा पडनेके समय उनको भयकर पीडा होती है। आपने और मेजर मेहताने जितने भी उपचार बताये, सबका प्रयोग करके देख लिया है, पर कोई लाभ नही हुआ। अब दौरे भी ज्यादा जल्दी-जल्दी पड़ते है और ज्यादा पीडाजनक होते जा रहे है। पिछले शनिवारको सबसे बुरा दौरा पड़ा था। तीस घटोसे भी अधिक समयतक नाक बहना और छींकें आना जारी रहा। आँखे और स्वाभाविक ही था कि नाक भी बिलकुल लाल हो गई थी। उन्होने दिन-भर कुछ नही खाया, बस सुबह चाय और शामको फल, दूध तथा उबली हुई सब्जियाँ ली थी। वे अपना आहार नही ले पाते। मै समझता हूँ, अब समय आ गया है कि उनके अपने विशेषज्ञ पूरे तौर पर उनकी परीक्षा कर ले। डॉ० देशमुख उनके परामर्शदाता है और वे जिसे ठीक समझे उस नाक-विशेषज्ञको बुलानेका काम मैं उनपर ही छोड़ना चाहूँगा। डॉ० दामानी सामान्यतया उनकी नाककी चिकित्सा करते रहे हैं, लेकिन मुझे पता चला है कि उनको चेचक निकल आई है, इसलिए वे सुलभ नही होगे।

आप इसे सरकारके पास भेजकर शीघ्र ही निर्णय करानेकी कृपा करे।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८२)से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्सट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल न० ८००(४०)(१) ए, पृष्ठ ३ से भी

१५८. पत्र : भाऊ पानसेको

२० मार्च, १९३३

प्रिय भाऊ,

तुम्हारा फिलहाल वहीं बने रहनेका निश्चय बिलकुल ठीक है। कोष्ठबद्धतासे पूरी तरह छुटकारा पा लेना वाछनीय है। क्या तुम वहाँके किसी काममे हाथ बँटाते हो? तुम्हें कभी-कभी राजकोटके आसपासके गाँवोमे घूम आना चाहिए। कुछमे तो यो ही घूमते-फिरते जाया जा सकता है।

शामके समय किसानोको कहानी सुनानेका कार्यक्रम रखा है तो क्या उनके साथ ही रह जाते हो?

मैं तुम्हारा पत्र दुबारा पढ़ गया। उससे मुझे मालूम हुआ कि जमनादास तुमसे वहाँका कोई काम नही लेता। कुछ नये लोगोसे जान-पहचान की है क्या?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७५४)से। सी० डब्ल्यू० ४४९५से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे

१५९. पत्र : जमनादास गांधीको

२० मार्च, १९३३

चि० जमनादास,

तू पत्र लिखनेमें आलस्य क्यो करता है। तेरा स्वास्थ्य अब भी ठीक हुआ नही लगता। ठीक नही होगा क्या?

सरूपबहन उस ओर आयी थी। उनके बारेमें क्यो नही कुछ लिखा। मैं तुझसे [इस घटनाके] विवरणकी आशा रखता था।

भाऊका तेरा क्या अनुभव रहा? वहाँके हरिजन-कार्यका पूरा हाल लिखना।

खुशालभाई[1] कैसे है? प्रभुदासने लिखा है कि कानसे मवाद बहता है। देवभाभी[2] कैसी है?

क्या भाई कुछ मदद करते है?

कान्तिने[3] लिखा है कि बुआ[4] मिलनेके लिए आना चाहती है। उनसे कहना कि मिलनेका मोह छोड दे। मैं अच्छी तरह हूँ। फिर उनकी मर्जी। उनकी आँखे कैसी है? सुशीला और भाऊके लिए पत्र इसके साथ रख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं देखता हूँ कि तू भाऊसे कोई काम नही लेता। इसका खर्च आश्रमसे मगा लिया कर।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४७) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. खुशालचन्द गांधी, गांधीजी के चचेरे भाई।
२. खुशालचन्द गांधीकी पत्नी।
३. हरिलाल गांधीके पुत्र।
४. सम्भवतः गांधीजी की बहन, रलियातबहन।

१६०. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

२० मार्च, १९३३

चि० मणिलाल तथा सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। आशा है मेरे पत्र भी मिलते रहे होंगे। इसके साथ शान्तिको[1] भी पत्र लिख रहा हूँ। सीताके फोडे बहुत दिन बने रहे। जालभाईकी लडकीका किस्सा पढ़कर आश्चर्य हुआ। क्या वह कोई परिचित आदमी था? वह लडकी उसके सम्पर्कमें आई कैसे? और फिर उससे छुटकारा कैसे मिला? सोराबजीका कैसा चल रहा है?

गत मगलवारको लक्ष्मीका मारुतिसे विवाह हो गया। अभी तो ऐसा लगता है कि यह सम्बन्ध सफल सिद्ध होगा। लक्ष्मी और मारुति मजुके साथ रहते है। यह पता चलने पर कि आनन्दीको आन्त्रपुच्छ है, उसका ऑपरेशन हुआ है। वह त्रिवेदीजी के यहाँ है। वेलाबहन यही है। आनन्दी मजेमें है। रामदास और जमनालालजी यही है और साथ-साथ रहते हैं। दोनो अच्छे हैं। आशा है अग्रेजी और गुजराती 'हरिजन' मिलते होगे। राजाजी और देवदास दिल्लीमे है। बा मीराबहनके साथ है और अच्छी है। आशा है, मणिलालको अब न्यासी नियुक्त कर दिया गया होगा। छापेखानेके बारेमें तुम्हारी वेस्टसे बातचीत हुई होगी। इस बातचीतका कोई परिणाम निकले या न निकले, तुम्हे वेस्टसे अपने सम्बन्ध बनाने चाहिए।

हम चारो लोग आनन्दमे है।

ऐसा लगता है कि अब सुशीला कुछ-कुछ पत्र लिखना सीख गई है। यदि जालभाईने सीताको 'खेल' सिखा दिया तो क्या ऐसा नही कहा जा सकता कि मैंने सुशीलाको कुछ-कुछ ढगसे पत्र लिखना सिखा दिया?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०८) से।

१. देखिए अगला शीर्षक।

१६१. पत्र : शान्तिलाल जे० मेहताको

२० मार्च, १९३३

चि० शान्ति,

तुझसे पत्र पानेकी आशा करना तो कुछ ज्यादा ही माना जायेगा न?

यदि तू फीनिक्समे ही रहनेकी सोच रहा हो तो फिर तुझे [वहाँ जो कुछ हो रहा है उसके सिवा] कोई इतर कार्य करनेका या बहुत-सारा पैसा कमानेका मोह छोड देना चाहिए या फिर फीनिक्सको ही अविलम्ब छोड देना चाहिए। जो लोग सेवा और स्वार्थ, दोनोको साधनेकी कोशिश करते है वे दोनोको ही बिगाडते है। मैं तुझसे कुछ ज्यादा अच्छा करनेकी आशा रखता हूँ।

तेरी पत्नी तुझसे सहमत होगी, ऐसा मानता हूँ। उसे अपना ज्ञान बढानेमे प्रोत्साहन देना। अपना रहन-सहन खर्चीला मत बनाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म, (एम० एम० यू०/२२) से

१६२. पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मै उसके बारेमे 'हरिजन' मे लिखनेकी सोच रहा हूँ।[1] लेकिन मै चाहूँगा कि आप अपने इस कथनके समर्थनमे मुझे कुछ ठोस सबूत जुटा दे कि ब्राह्मणवादके विरुद्ध प्रचार चल रहा है। यदि मुझे मालूम हो जाये कि उस कथनके पीछे आपका मशा क्या था और आपके पास क्या सबूत था, तो मै इस प्रश्नके बारेमे अधिक विस्तारसे लिख पाऊँगा[2]।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० आर० चक्रवर्ती
प्रोफेसर, नरसिंह दत्त कॉलेज
१२९, बेलिलिअस रोड
हावडा

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४१) से।

१. देखिए "ब्राह्मणोंके खिलाफ निन्दात्मक प्रचार", २५-३-१९३३।
२. देखिए "पत्र: आर० आर० चक्रवर्तीको", १-४-१९३३।

१६३. पत्र : ईश्वरसिंहको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका १५ तारीखका पत्र मिला। आप 'हरिजन' के अंग्रेजी संस्करणका उर्दू अनुवाद अपनी ही जिम्मेदारीपर, उसकी विषयवस्तुके साथ किसी भी रूपमे मेरा नाम जोडे बिना, कर सकते है। यदि अन्तमे आप इसी निष्कर्षपर पहुँचते है कि 'हरिजन' के उर्दू अनुवादका प्रकाशन आप करेंगे, तो मै यही अपेक्षा रखूंगा कि आप इस बातका पूरा ध्यान रखे कि अनुवाद सही और यथातथ्य हो, और ज्यादा अच्छा होगा, यदि आप हरिजन सेवक सघकी प्रान्तीय शाखाके सहयोगसे उसका प्रकाशन करे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ईश्वरसिंह
प्रबन्धक, लाजपतराय एण्ड सन्स
लाहौरी गेट, लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४४) से।

१६४. पत्र : के० आर० कृष्ण अय्यरको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपने जिस विवाहका[1] उल्लेख किया है, उसका अछूतोद्धार आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नही था। वह तो बरसो पहले पक्का हो चुका था। मुझे मालूम नही कि बच्चीका पति किस वर्णका है। एक आश्रमवासी उस अनाथ बालकको ले आये थे और उन्होने उसे अपने ही बच्चेकी तरह पाला-पोसा है।

और वर्णाश्रमके बारेमें तो मै 'हरिजन' के पृष्ठोमे अपने विचार पहले ही प्रकट कर चुका हूँ। उनमे मैं अपना यह विश्वास प्रकट कर चुका हूँ कि अन्तर्जातीय विवाहो और खान-पानपर प्रतिबन्ध लगाना वर्ण-धर्मका कोई आवश्यक अग नही

१. एक हरिजन बालिका लक्ष्मीका मारुतिके साथ विवाह सम्पन्न हुआ था, उसीका उल्लेख है।

है और हिन्दू धर्मके स्वर्ण-कालमे नही था।[1] उसमे मैंने अपना यह मत भी प्रकट किया है कि आजकल भारतमे वास्तवमे एक ही वर्ण सम्भव है और वह है शूद्र वर्ण, दूसरे शब्दोमे, सेवा करनेवालो का वर्ण। लेकिन 'हरिजन' के पृष्ठोमे आपको मेरे विचार अधिक विस्तृत रूपमे मिल जायेगे।

अन्तमें यही कहूँगा कि हरिजन सेवक सघके कार्यक्रमपर अमल करना तो सभी अछूतोद्धार कार्यकर्ताओके लिए अनिवार्य है, लेकिन मेरे निजी विचारो या कार्योके अनुसार काम करना किसीके लिए भी अनिवार्य नही।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० आर० कृष्ण अय्यर
कल्लडाइकुरिची (एस० आई० आर०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४५) से।

१६५. पत्र : एम० मैअप्पाको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके इसी १७ तारीखके पत्रके लिए आभारी हूँ। मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आपने गरीब हरिजनोमे खादी वितरितकी और अस्पृश्यताविरोधी एक सभाकी अध्यक्षता भी की। आप और भी बहुत-से काम कर सकते है। 'हरिजन' के पृष्ठोमे आपको ऐसे, कामोका विवरण मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० मैअप्पा
वेत्रीयूर
वाया शिवगगा (एस० आई० आर०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४७) से।

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ४९६-८।

१६६. पत्र : मोहनलालको[1]

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मोहनलाल,

आपका पत्र मुझे अत्यन्त मर्मस्पर्शी लगा। उसके लिए सफाई देनेकी कतई कोई जरूरत नही, और न मेरे लेखे आप कोई अभियुक्त ही थे। मै जानता था कि आप लालाजी की सस्थाके सदस्य थे। लेकिन कार्यकर्ताओंको सभी तरहके आरोपोके उत्तर तटस्थ भावसे देने पडते है। आपको शायद मालूम नही कि स्वयं लालाजी को कैसे-कैसे आरोपोके उत्तर देने पडे थे। इनके बारेमे मेरी उनके साथ काफी लम्बी बातचीत चली थी। मैंने 'आत्मकथा'में दादाभाईपर लगाये गये आरोपोका उल्लेख किया है। इसलिए आप इतने बडे-बडे लोगोकी कोटिमें शामिल रहे है। खैर, आपने मेरी इच्छा और अपेक्षाके अनुसार पत्र लिखा है।

हृदयसे आपका,

लाला मोहनलाल
मार्फत–हरिजन सेवक सघ
लाजपतराय भवन
लाहौर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४८) से।

१६७. पत्र : एन मेरी पीटर्सनको

२१ मा-, ११११

प्रिय मेरी,

बस एक-दो पक्तियाँ लिख रहा हूँ आपके पत्रके मिलनेकी सूचना देने और यह बतलानेके लिए कि अस्पृश्यता-सम्बन्धी मामलोके सिलसिलेमे मुझसे मुलाकात करने-वालो के लिए अधीक्षककी अनुमति लेनेकी आम तौरपर जरूरत नही रहती, क्योकि सरकार ऐसा एक सामान्य आदेश पहले ही निकाल चुकी है। अधिकृत रूपमें उत्तर मिलनेमें विलम्ब भी हो सकता है, इसी खयालसे मैं आपको यह बतलानेके लिए लिख रहा हूँ कि यदि आप रविवारको छोडकर — हाँ आपसे बन सके तो बुधवार

१. मोहनलालने अमृतलाल वि० ठक्करके कहनेपर अपने १५-३-१९३३ के पत्र (एस० एन० २०५१८) में अपने ऊपर स्वात्मदास द्वारा लगाये गये आरोपोंके उत्तर दिये थे। देखिए "पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको", १६-३-१९३३ भी।

और गुरुवारको भी छोडकर — अन्य किसी भी दिन ऐसी मुलाकातोके लिए निर्धारित समयके अन्दर — अर्थात् दोपहर एक बजेसे लेकर चार बजे तक — आयें, तो आपको प्रवेश मिल जायेगा। रविवारको प्रशासनकी और बुधवार तथा गुरुवारको 'हरिजन' के लिए मेरे कामकी सुविधाके खयालसे छोड देना चाहिए।

आप जितनी जल्दी यहाँसे निबटकर जाये और अपने थके हुए शरीरको विश्राम दे सके आपके और आपके परमार्थ-कार्यके लिए उतना ही अच्छा रहेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४६) से।

१६८. पत्र : रामपालसिंहको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय राजा साहब,

आपके द्वारा हस्ताक्षरित एक परिपत्र मुझे मिला था। उससे पता चला था कि स० प्रा० धर्म-रक्षण सभा मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नके बारेमे पण्डितोके मतामत सग्रह कर रही थी। क्या उस सिलसिलेमे आगे भी कोई कार्रवाई की गई है, और यदि की गई हो तो उसका क्या परिणाम निकला?

हृदयसे आपका,

माननीय राजा, सर रामपाल सिंह, के० सी० आई० ई०
अध्यक्ष
स० प्रा० धर्म-रक्षण सभा
लखनऊ

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४९) से।

१६९. पत्र : स्वामी श्यामानन्दको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए मैं आभारी हूँ। मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि मन्दिर जानेवाले लोगोंको ही यह तय करनेका अधिकार होना चाहिए कि उनके मन्दिरोंमें किन लोगोंका प्रवेश वर्जित होगा।

हमारे मन्दिरोंमें मध्यवर्गके लोग नियमित रूपसे जाया करें — इसकी आवश्यकता या वाछनीयता तो एक बिलकुल ही दूसरा प्रश्न हो जाता है। लोग स्वेच्छासे मन्दिरोंमें जाने लगें, इसके लिए मन्दिरोंमें होनेवाली पूजन-विधिमें काफी सुधार करना पड़ेगा। और मैं समझता हूँ कि सुधार आयेगा भी, लेकिन वह अपनी ही गतिसे आयेगा।

हृदयसे आपका,

स्वामी श्यामानन्द
मार्फत — रामकृष्ण मिशन
रंगून

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६५०) से।

१७०. पत्र : सुदर्शन वी० देसाईको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मावो,

तेरा पत्र मिला। तुझे अक्षर अच्छी तरह लिखना सीखना चाहिए। तू पहले सीधी रेखा, त्रिभुज और वृत्त खींचना सीख लेगा तभी अक्षरोंको अच्छी तरह लिख सकेगा। क्योंकि इन तीनोंसे अक्षर बनाना कठिन है। मैं यह बात तुझे कैसे समझाऊँ?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७६४) से; सौजन्य : वा० गो० देसाई

१७१. पत्र : नारणदास गांधीको

२१ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा १८ तारीखका पत्र कल मिला। रमाबहनके सम्बन्धमे तुमने जो लिखा है वह सर्वथा तुम्हारे योग्य है। यही धर्म है। आशा है, डकनकी तबीयत अब ठीक हो गई होगी।

परचुरे शास्त्री अब वहाँ लड़केंके साथ शीघ्र ही पहुँचेगे। उनकी पत्नी तो अभी वहाँ नहीं आयेगी। इसलिए उसके निर्वाहके लिए हमे प्रति माह अधिकसे-अधिक ३० रुपये भेजने पडेंगे। उसके पास जितने जेवर थे वे सब खा-पीकर बराबर हो गये। परचुरे शास्त्रीके साथ अच्छी तरह परिचय कर लेना।

शान्ता पानवेलकरका पत्र तुम्हे वापस भेज रहा हूँ, उसे सँभालकर रख लेना। मुझे लगता है कि उसे हमे २० रुपया देना चाहिए। किन्तु तुम और प्रेमा इस विषयमे ज्यादा समझते हो। मैंने तो उसे देखा भी नही है। इसलिए यदि तुम्हारी राय मेरी रायके विरुद्ध हो तो वह पत्र शान्ताको मत भेजना। हाँ, यदि तुम्हारी सहमति हो तो मण्डलकी अनुमति लेकर भेज देना। केवल अपनी दोनोकी जिम्मेदारी पर भी ऐसा न करना। . . का[1] अनुभव यहाँ तो बहुत कडवा आ रहा है। बिलकुल ही गिर गया लगता है। अपना दोष ढकनेकी बहुत कोशिश करता मालूम होता है। काकासाहबके साथ बातचीत कर रहा है। देखूंगा क्या होता है। इस बीच इस सम्बन्धमे तुम सब लोगोके विचार तथा अनुभवकी राह देख रहा हूँ। . . . को[2] अभी रोक लिया है। . . .[3] वहाँ हो तो उसे यह पत्र पढवा देना।

बापू

[पुनश्च :]

इसके साथ शान्ताका मूल पत्र, उसका उत्तर तथा डंकन, वालजीभाई और मावोके नाम लिखे पत्र रख रहा हूँ।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३३९से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१, २ और ३. यहाँ नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

१७२. पत्र : दिवाकर सिंहको

२२ मार्च, १९३३

प्रिय दिवाकर,

आपका पत्र मिला। ऊपरी दिखावे और टीम-टामपर आप जितना कम ध्यान दे, निस्सन्देह, आपके लिए उतना ही अच्छा रहेगा और आपके काममें उतना ही स्थायित्व आयेगा।

आपके पत्रका अन्तिम अनुच्छेद पढकर बडा खराब लगा। आप कहते है: "सार्वजनिक सडकोपर झाड़ू लगानेका काम अनियमित हो गया है।" ऐसा नही होना चाहिए। काम एक बार शुरू कर देनेपर आपको उसे बाकायदा, बिलकुल ठीक ढग और नियमित रूपसे करना चाहिए। सडकोकी सफाईमे अनियमितता आने पर जनता आपके कामसे बिलकुल भी प्रभावित नही होगी। आपने देखा ही कि कामका उद्घाटन किस तरह ढोल पीटकर किया गया; और मुझे यह पढकर खुशी हुई थी कि मैला ढोनेके लिए आप विशेष किस्मकी गाडियाँ और ठेले तैयार करा रहे हैं। परन्तु यह सब तो उसी दशामे आवश्यक होगा जब आप अपना हर कार्य सम्यक् रीतिसे करे। यदि एक काम पूरा किये बिना आप दूसरेको हाथमे लेनेके लिए दौडते रहे तो व्यर्थ ही मे अपनी शक्तिका अपव्यय करेगे और कोई भी काम पूरा नही हो पायेगा। यदि कोई बढई एक मेज अधूरी छोडकर कुछ और बनाने बैठ जाये, तो क्या होगा? क्या आप उसे शक्तिका अपव्यय करना नही कहेगे? धर्मार्थ शुरू किये जानेवाले कामोमे आम तौर पर बिलकुल यही होता है। मै चाहता हूँ कि आप इस गलतीसे बचनेकी कोशिश करे। आप यदि सडकोकी सफाईका काम हाथमे लेते है तो आपको सडकोका नक्शा सामने रखकर अपने स्वयसेवकोकी सख्याके आधारपर एक कार्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए और एक सडक पर काम शुरू कर देनेके बाद उसे तबतक नही छोड़ना चाहिए जबतक कि इसके किनारे रहनेवाले लोग स्वय सफाई नही करने लगते। उनको स्वय सफाई करनेकी आवश्यकता समझानेके लिए आपको उनके साथ विनम्रता और धैर्यसे काम लेना चाहिए और आपका सफाईका काम इतना त्रुटिहीन और पूर्ण होना चाहिए कि लोग उससे खुश हो और उसकी तारीफ करने लगे। ऐसा होनेपर आप स्वय देखेगे कि प्रथा चल पडी है, लेकिन इसके लिए आपको अपना सारा ध्यान तबतक उस एक ही कामपर लगाये रखना होगा जबतक उसे देखनेवाले दूसरे लोग खुद ही न कह उठे· "बहुत बढिया तरीकेसे किया गया है।"

आपने हरिजन बालकोको उपहारमे फुटबाल दिया है। यह मुझे ठीक नही लगा। भारत-जैसे देशमे चार-पाँच रुपयेका बाल एक काफी खर्चीली चीज हो जाती है। हरिजन बालकोको उनके सरक्षकोसे फुटबाल मिल जायेगे। सेवकोको अपने

सेवा-कार्यके दौरान अधिकसे-अधिक सावधानी और विवेकसे काम लेना चाहिए, खास तौरसे तब जब चुनाव उनको ही करना पड़े।

आप नौकरोंकी श्रेणीके कर्मचारियोंके लिए बनाये घरोंमें से किसीमें रहने लगे हैं, यह बहुत अच्छा किया है। वहाँ यदि आप अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखते हुए हरिजनोंकी जितनी ही सादगीसे रहें तो उत्तम रहेगा।

हृदयसे आपका,

कुँवर दिवाकर सिंह
हॉलैंड हॉल
इलाहाबाद

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६५६) से। सौजन्य . नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद। एस० एन० २०६५८ से भी

१७३. पत्र : प्रकाशको

२२ मार्च, १९३३

प्रिय प्रकाश,

आपका पत्र पाकर और यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके फेफड़ोंमें कोई भी खराबी नहीं थी। यदि आप पहले आमिषाहारी रहे हैं तो अब माससे परहेज करके अपना स्वास्थ्य चौपट मत कीजिए। यदि आपका धार्मिक विश्वास हो कि मांसाहार गलत है तो बात और है। फिर, अगर आप मांसाहारको त्यागनेपर तुले हुए ही हों, तो आपका शरीर तभी पनप सकता है जब आप जितना पचा सकते हों उतना दूध और मक्खन लें, माँडयुक्त आहार कभी-कभी ही लें और यदि हो सके तो कोई भी दाल कभी न लें। आदर्श और पूर्ण आहार होगा —— गेहूँके चोकरयुक्त आटेकी चपातियाँ, डबल रोटी, हरी सब्जियाँ, रसदार ताजे फल, दूध और मक्खन।

मेरी सलाह है कि आश्रमके बारेमें अपने ब्योरेवार विचार और सुझाव आप नारणदासको भेजें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्रकाश
मार्फत — अनन्तचरण राय
जेलर
पटना कैम्प जेल

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६६६) से।

१७४. पत्र : एम० सी० राजाको

२२ मार्च, १९३३

प्रिय रावबहादुर,

आपका पत्र मिला और साथमे कन्नप्पार नि शुल्क वाचनालयके लिए चन्देकी अपील भी[1]। भरोसा रखिए, उसके लिए मै जितना बन पडेगा, अवश्य करूँगा[1]।

मेरा खयाल है कि आपके 'बिल' के सिलसिलेमें मेरा पिछला पत्र आपको मिल गया होगा। हाँ, उसमें कुछ ऐसा तो था नही जिसके लिए उसकी प्राप्ति-सूचना भेजना जरूरी हो, और न अब उसकी प्राप्ति-सूचना भेजना दरकार है। उसके न मिलनेकी सूचना देनेवाले किसी पत्रका आपकी ओरसे न आना ही मेरे यह मान लेनेके लिए पर्याप्त होगा कि आपको मेरा पत्र मिल गया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६०) से।

१७५. पत्र : डॉ० टी० एस० एस० राजन्‌को

२२ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० राजन्,

कन्नप्पार नि.शुल्क वाचनालयसे सम्बन्धित कुछ कागजात भेज रहा हूँ।

कृपया लिखिए कि इस सिलसिलेमे आप कितना-कुछ कर सकते है और क्या-कुछ मुझे करना होगा। अपने उत्तरके साथ ये कागजात लौटा दीजिएगा।

हृदयसे आपका,

सलग्न पत्र[2]

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६१) से।

१. देखिए अगले दोनों शीर्षक।
२. ये उपलब्ध नहीं है।

१७६. पत्र : कन्नप्पार वाचनालयके मन्त्रीको

२२ मार्च, १९३३

मन्त्री
कन्नप्पार नि.शुल्क वाचनालय
रायपुरम्, मद्रास

प्रिय मित्र,

आपका गत २४ जनवरीका पत्र मुझे रावबहादुर एम० सी० राजाके सौजन्यसे कल प्राप्त हुआ।

मै यह पता लगानेके लिए शीघ्र ही कार्रवाई कर रहा हूँ कि मै उस मामलेमे क्या-कुछ कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६५९) से।

१७७. पत्र : पी० आर० साठेको

२२ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। मै ठीकसे समझ नही पाया कि आप कहना क्या चाहते है। मद्य-निषेध और सफाईसे रहनेकी आदतोको यदि अस्पृश्यता-निवारणकी एक शर्त न बना दिया जाये तो उनके लिए प्रचार करनेमे तो मुझे कोई हर्ज नही दिखाई देता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० साठे
वकील
गोंदिया, म० प्रा०

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६२) से।

१७८. पत्र : जाति-नाशिनी सभाके मन्त्रीको

२२ मार्च, १९३३

मन्त्री
जाति-नाशिनी सभा
कन्नानूर

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप तो मेरे लेखमें से अपना मन पसन्द अर्थ निकाल सकते है, परन्तु मै स्वीकार करता हूँ कि मैं इतना ग्रहणशील नहीं कि आपके लिखे शब्दोमे अपना मनपसन्द अर्थ तलाश सकूँ। इसमे सन्देह नही कि आप यह स्वीकार करते है कि मै ऊँच-नीचका कोई भेद नही मानता। परन्तु क्या आप उसी तरह यह भी स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक व्यक्तिको अपना पुश्तैनी पेशा ही अपनाना चाहिए, जिससे राष्ट्रकी शक्ति और प्रतिभा सुरक्षित रह सके, सम्पदाके असमान वितरण तथा तीव्र प्रतियोगितासे बचा जा सके? यदि करते हो तो आपको अपनी सभाके उद्देश्यो और प्रयोजनोको बदल देना होगा, लेकिन अगर प्रस्तुत विचारके अनुरूप सभाके उद्देश्यो और प्रयोजनोमें परिवर्तन करनेको आप तैयार न हो तब तो आपको मेरे इस विचारसे शायद सहमत होना चाहिए कि आप अपने उद्देश्यो और प्रयोजनोको जिस प्रकार कार्यरूप दे रहे है, उसे अगर अस्पृश्यताके सवालसे जोड़ देंगे तो लोगोके मनमे उलझन और सन्देह पैदा होगा। क्या आपने इस बातपर ध्यान नही दिया है कि मै तो वर्णधर्मके सुधरे हुए रूपको भी अस्पृश्यताकी समस्याके साथ नही जोडता? मैने तो केवल अपना मत व्यक्त कर दिया है, जिससे कि गलतफहमी पैदा न हो और इससे भी महत्त्वपूर्ण यह कि मुझपर ऐसा आरोप न लगाया जा सके कि मैने अधिकाधिक लोगोको अस्पृश्यता-निवारणका समर्थक बनानेके खयालसे अपनी रायको पूरी तरह व्यक्त नही किया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६५) से।

१७९. पत्र : लीलावती आसरको

२२ मार्च, १९३३

चि० लीलावती,[1]

तू मूर्ख लड़की है। यदि मैं ऐसा कहूँ कि तू अच्छी लडकी है इसीलिए तुझे मैंने स्वीकार किया है, बुरी हो तब तो मैं तुझे त्याग दूँ, तो क्या तुझे मेरी इस बातसे दुख होगा? यदि इस बातसे दुख न हो तो जो मैंने कहा, उससे दुख क्यो हुआ? मैंने जो-कुछ कहा वह तो प्रेमसूचक ही था। तेरी भावना अच्छी है, इसलिए तेरी अस्थिर चित्तताके बावजूद मैं तुझे अपने पास रख रहा हूँ — ऐसा कहकर मैंने तेरे प्रति प्रेम ही व्यक्त किया है, किन्तु तूने इसका उलटा ही अर्थ लगाया। इस प्रकार जो अपना अहकार प्रकट करे उसका क्या किया जाये?

तू यह अच्छी तरह समझ ले कि कोई धन्धा या अक्षरज्ञान सीखकर तू स्वावलम्बी तो हो सकती है परन्तु इससे यह निश्चित नही हो सकता कि तू इससे अच्छी भी अवश्य बन जायेगी। किन्तु यदि तू अच्छी, दृढ सकल्पवाली और शरीरसे स्वस्थ बनती है तो तेरे चरित्रका विकास होगा। और तू स्वावलम्बी भी अवश्य हो जायेगी। इसका यह अर्थ नही कि तू अपना अक्षरज्ञान न बढाये अथवा कोई उद्योग न सीखे। यह सब तू आश्रममे रहते हुए समयकी सुविधाके अनुसार जितना सीख सके उतना सीख और उतनेसे सन्तोष मान। कर्तव्यपरायणतामे सब आ जाता है, इस सुनहरे नियमको हृदयमे अकित कर ले। इसलिए अभी तो मुझे इतना ही कहना है कि नारणदास जो कहे सो पूरी श्रद्धाके साथ करती जा, अपने पैसेको अपना मत समझ, तू उसकी ट्रस्टी-मात्र है। इसलिए इस पैसेका उपयोग तू मेरे लिए फल खरीदनेमे भी नही कर सकती क्योकि मुझे फल दूसरोसे मिल जाते है। इसकी जरूरत तो हरिजनोको है। इसे उनके लिए रख।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५७२) से।

1. एक बालविधवा जो साबरमती आश्रममें १९३० में आई थी। बादमें बम्बईमें चिकित्सा-शास्त्रका अध्ययन कर अस्पतालोंमें कार्य किया और राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लिया।

१८०. पत्र : नारणदास गांधीको

२२ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी भारी डाक मिली।

[चमार] बालकोने भैंसका मास खाना छोड़ दिया, यह एक बड़ी बात हुई। किन्तु इसके पीछे हिंसा हो सकती है। यदि उन्होने डरके कारण ऐसा किया हो तो ठीक नही हुआ। उनके लिए तो यह उनके आहारकी वस्तु थी। इसलिए यदि उनकी इच्छा हो तो उसकी जगह हमे उन्हे कोई दूसरी चीज देनी चाहिए थी। अत. तुम्हे अथवा किसी अन्य जिम्मेदार आश्रमवासीको जाकर उनसे पूछ लेना चाहिए। यदि उन्होने [मास] स्वेच्छासे दे दिया हो और अब वे मास छोड देनेके लिए तैयार हो तो वहुत अच्छी बात है। न छोड़े तो हमें धीरज रखना है।

उनसे या जो हमारे सम्पर्कमें आये हो, ऐसे किन्ही दूसरे 'चमारोसे हमे यह जान लेना चाहिए कि एक [मृत] ढोरकी कीमत क्या होती है। उसके चमडेकी अँतड़ियो, हड्डियो आदिकी अलग-अलग क्या कीमत मिलती है। उनका वे क्या उपयोग करते है। यह सारी जानकारी मिल सके तो प्राप्त करना।

डकनको जैसी उलटी हुई वैसी यदि किसी औरको हो तो तुरन्त पेड़ू पर गरम सेक करना चाहिए, और बर्फ चूसनेको देनी चाहिए। नीबू देना चाहिए। एक-एक चम्मच करके ठडा पानी देना चाहिए। बहुत बार ऐसा करनेसे उलटी शान्त हो जाती है। यदि कोई विषाक्त पदार्थ पेटमें न गया हो तो उलटीसे डरनेका कोई कारण नही है। ऐनिमा लेनेसे भी उलटी शान्त हो सकती है। आश्रमवासियोको यह सब बता देना जरूरी है।

. . .[1] और . . .[2] के बीच मलिन कोटिका प्रेम उत्पन्न हो गया था। दोनोनें इस बातको काफी समय तक छिपाया। फिर अकस्मात् मुझे उस बातकी जानकारी मिली। वे दोनो लोगोकी निगाह बचाकर एक-दूसरेसे मिलते थे और एक-दूसरेको गुप्त रूपसे पत्र भी लिखते थे। उनके मनकी थाह मुझे अभी तक नहीं मिली है। . . की यह मलिनता कहाँतक जा पहुँची थी, यह मै नही जान सका हूँ। दोनोनें अभीतक अपने मनका मार्जन किया नही दिखता। आश्रममे जो लोग आश्रमवासीके रूपमें रहते है उन्हे सगे भाई-बहनोकी तरह रहना चाहिए, ऐसा हमारा निरपवाद नियम है। यह सम्बन्ध इस रेखाका उल्लघन कर गया था। आश्रममे स्त्री-पुरुषोको एकान्तमें मिलनेका निषेध है। इन दोनोने इस नियमको भी भग किया। इसके सिवा

१ और २. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

पूरे आश्रमको धोखा देनेका सफल प्रयत्न तो उन्होने किया ही, अर्थात् इस तरह उन्होने एक बुनियादी सत्यका भग किया। इस प्रकार उन्होने आश्रमके तीन महत्त्वपूर्ण नियमोको भंग किया है।

. . पर मेरा अपार विश्वास था। उसे मैंने प्रथम श्रेणीका ब्रह्मचारी माना था। मैंने अभिमानपूर्वक ऐसा मान लिया था कि मुझे तो वह कभी नही ठगेगा। . . . को मैंने भोली, निर्मल और निर्विकार लडकी माना था। उसे मैंने अपनी पहली लडकी माना था। उसे समझनेमे मुझसे भूल हुई। जो व्यक्ति सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यका पालन करता है उसके निकट असत्य छिपा नही रह सकता। विकारी व्यक्तिको वह तुरन्त पहचान लेता है और हिंसा उसकी सन्निधिमे शान्त हो जाती है। मैंने निरन्तर इन व्रतोके पालनका प्रयत्न किया है, किन्तु मै इस परीक्षामे विफल हो गया माना जाऊँगा। मेरा यह कथन अभिमानका सूचक नही है। मै यह बात सत्यके अनुरोधसे कह रहा हूँ। . को मुझे पहचान सकना चाहिए था, किन्तु मै नही पहचान सका। यह इस योगकी मेरी साधनाकी एक कमी है। मै उसमे उपर्युक्त तीन गुणोकी कमी देखता हूँ। अपनी इस आध्यात्मिक गरीबीको मै पहचानता हूँ। मेरे अनजानेमे अवश्य ही मेरे भीतर कही असत्य, हिंसा और विकार छिपे हुए है।

इसलिए अपने ऊपर मुझे जितना क्रोध आता है के और के ऊपर उतनी ही दया आती है। उनका न्याय मै नही कर रहा। हममे से कोई भी वैसा न करे। तथापि उनके प्रति मेरा व्यवहार अब बदला हुआ ही दिखेगा। वस्तुत बदले हुए तो वे दिखेगे। बीमारके प्रति बीमारके जैसा और तन्दुरुस्तके प्रति तन्दुरुस्तके जैसा व्यवहार ही समान व्यवहार है। दोनोमे सत्य और प्रेम होना चाहिए। दोनोमे उस दूसरे व्यक्तिके प्रति कल्याणकी भावना होनी चाहिए। मेरा व्यवहार इसी नियमके अनुसार होगा। मै उन्हे बीमार मानकर उनकी सार-सँभाल करूँगा। हम सब वैसा ही करे। यह किस तरह किया जा सकता है, सो मै बादमे बताऊँगा।

इस घटनासे हम सब लोगोको सीख लेनी चाहिए। लडके और लडकियाँ सावधान हो जाये। जो अपने मनमे विकार उत्पन्न हुआ देखे वे कह दे। इसमे लज्जाका कोई कारण नही है। मुझे अपने विस्तरमें सर्प दिखे तो इसमे मेरा दोष नही माना जायेगा। देखनेके बाद मुझे उसे दूर करना चाहिए। विकार शरीरमे पाया जानेवाला सर्प ही है, वह दिखे तो प्रकट करनेमे शर्मकी कोई बात नही है, बल्कि वह तो धर्म है। उसे रखना और उसका पोषण करना ही पाप है। उसका त्याग धर्म है। कोई भी लडकी या युवक विवाह करना चाहे तो उसे वैसा करनेकी आजादी है। हाँ, इस मर्यादाका अवश्य पालन करना होगा कि भाई-बहन आदि आपसमे विवाह न करे। मैंने कई बार यह चेतावनी दी है कि किसीको भी छिपा हुआ पत्र-व्यवहार नही करना चाहिए। सबको अपने पत्र मन्त्रीके हाथमे खुले देने चाहिए। आश्रम एक कुटुम्ब है, सत्यमे गोपनीयताके लिए कोई स्थान नही हो सकता। इतने नियमका पालन जो करेगा वह अनेक आपत्तियोसे बच जायेगा। तथापि इस नियमका पालन जोर-जबरदस्ती नही कराया जा सकता। वयस्क व्यक्तियोके पत्रोके साथ अभी तक जो कुछ किया जाता रहा है, वैसा ही किया जाता रहेगा।

पत्रका इतना अंश सबके लिए है। इसमे यदि तुम कोई परिवर्तन सुझाना चाहो या सबको पढकर न सुनाना चाहो तो अभी मत सुनाना और मुझे लिखना कि क्या करना ठीक होगा। . .[1] की अनियमितताके विषयमे, उसके आलस्यके विषयमें तुमने मुझे सावधान किया था। . [2] के साथ उसके अति-परिचयके विषयमे तो मुझे कई लोगोने चेताया था। किन्तु मै नही चेता। देखना है कि ऐसा मूढ़ और आग्रही मै अब कितना सुधरता हूँ।

तुम्हारी यह इतनी भारी डाक मामूली लिफाफेमे आती है। यहाँ पहुँचते-पहुँचते वह बिलकुल फट जाता है। किसी दिन लिफाफेमे से कुछ गुम हो जायेगा। या तो तुम मजबूत लिफाफेमे भेजने पर खर्च करो या इसी लिफाफेको बुकपोस्टकी तरह बाँध कर भेजो और उसपर वही टिकिट लगाओ जो सामान्य लिफाफेपर लगाये जाते है। बाँधकर भेजनेमे डरका कारण यहाँ इस आफिसमे है। हो सकता है कि कोई पत्र निकल जाये। खर्च ही बचाना हो तो वहाँ किसीको इसके लायक मजबूत लिफाफा बनाना चाहिए। रोज एक बने तो भी काफी होगा। तुम्हारे पास वहाँ मजबूत ब्राउन कागज तो आता ही होगा। और इसी तरह ऐसी खादी भी वहाँ बहुत होगी जो पहनने लायक नही रह गई है। इससे ऐसे मजबूत लिफाफे आसानीसे बन सकते है जिनके एक ओर कपड़ा हो।

क्या वहाँ परसरामके सिवा हिन्दी और अंग्रेजी ठीक-ठीक जाननेवाला कोई और है? हो तो उनके नाम लिख भेजना।

बापू

[पुनश्च :]

धीरूके नाम लिखा पत्र पढ़ना, और उससे बातचीत करके मुझे लिखना। कलका लिखा पत्र मिल गया होगा। उसमे मैंने शान्ता पानवेलकरके बारेमें लिखा है। . . .[3]का पत्र पढ गया हूँ। मुझे नही लगता कि उसे जैसे भी हो आश्रममें रखना हमारा कर्तव्य है। आश्रमको हम अपाहिजोके रहनेका स्थान नही बना सकते। वह अपने माँ-बापके भरण-पोषणका खर्च भी माँगता है। यह हम नही दे सकते, उसे समझा देना। हाँ, उसे अस्पतालमे जाना हो तो जरूर जाये। उसकी माँको कोई उद्यम करना चाहिए। उसके गाँवके किसी आदमीको लिखा जा सकता है। किन्तु हम उसे नही रख सकते, मुझे तो यही लगता है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० / १) से। सी० डब्ल्यू० ८३४० से भी, सौजन्य नारणदास गांधी

१, २ व ३. यहाँ नाम छोड़ दिया गया है।

१८१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२३ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र और कटिंग मिले। तुम जबतक ऑपरेशनके लिए समय निकालोगे नही तबतक तुम्हे समय नही मिलेगा। कार्यव्यस्त आदमियोका ऐसा ही होता है। इसलिए स्वास्थ्यकी बातको भी व्यापारकी बात जैसा समझना आवश्यक है। मै यह कोई दार्शनिक तथ्य नही, बल्कि एक ऐसा व्यावहारिक सत्य बता रहा हूँ जिसका प्रयोग मैंने स्वय अपने जीवनमे भी किया है और दूसरोके जीवनमे भी। इसलिए मुझे आशा है कि तुम इलाजके लिए एक महीना अलग निकाल लोगे और डाक्टरोके साथ उसके लिए पहलेसे ही समय तय कर लोगे — इस दृढ निश्चयके साथ कि डाक्टरको दिया हुआ वक्त टल न जाये।

कलकत्तेके कार्यके सम्बन्धमे जो लिखा सो जाना।

श्री डेविडकी योजनाके[1] सम्बन्धमे मै और अधिक सुननेकी आशा करता हूँ।

ज्यो ही मै हिन्दी 'हरिजन'को अभीष्ट स्तरपर पहुँचा देखूँगा कि मै उसके सम्बन्धमे अग्रेजी 'हरिजन'के स्तम्भोमे तुरन्त लिखूँगा। इस सम्बन्धमे मै ठक्कर बापा और वियोगी हरिको अपनी बात पूरी तरह समझाकर लिख ही चुका हूँ, इसलिए यहाँ दुहराना अनावश्यक है। तुम उसके लिए जितना समय दे सकते हो दोगे, और उसे आवश्यक जानकारी तथा मार्गदर्शक सूचनाओसे इतना भर दोगे कि किसी कार्यकर्ताका काम उसके बगैर न चले।

तुम कहते हो कि केन्द्रीय बोर्डको दिया जानेवाला रुपया मै बम्बईमे तुम्हारी फर्मके पास भेज दूँ।[2] इस तरह कमीशन कैसे बचेगा? यदि नोट किसी बम्बई आते-जातेके हाथ भेज दिये जाये तो बात दूसरी है, पर उसमे रुपया खो जानेका भी तो भय है। मुझमे इतना साहस नही है।

यरवडा पैक्टको बगाल कौसिलने धिक्कारा है, पर उससे मै विशेष उद्विग्न नही हुआ हूँ, न मेरा यही खयाल है कि यह समय जवाबी प्रचार-कार्य आरम्भ करनेका है। जबतक सारे दल राजी न होगे, पैक्टमे हेरफेर असम्भव है। जब दलोके साथ बाकायदा मशविरा कर लिया जायेगा तो बगालके विरोधकी ओर ध्यान देनेके लिए काफी समय मिलेगा। मेरी सलाह ली गई थी, और मैंने अपनी राय भेज दी है।[3]

१. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", १६-३-१९३३।
२. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ९-३-१९३३।
३. देखिए "पत्र : ब्रिटिश भारतीय संघको", ९-३-१९३३।

साथमे उसकी नकल भेजता हूँ। परन्तु बगालमे क्या करना उचित होगा, यह तो मेरी अपेक्षा तुम और सतीश बाबू ही ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हो।

तुम्हारा,
बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६७१) से। सी० डब्ल्यू० ७९३३ से भी, सौजन्य · घनश्यामदास बिड़ला

१८२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

आपका १२ तारीखका पत्र मिला। मेरी रायमें 'अस्पृश्य' शीर्षकके अन्तर्गत हम 'पैक्ट' (समझौते) के मुताबिक सिर्फ उन लोगोको शामिल कर सकते है जिनके स्पर्शसे छूत लगती है और जो अस्पृश्य होनेके कारण कुछ निर्योग्यताओसे पीडित होते है; परन्तु यदि समझौतेकी व्याख्या दूसरे ढगसे की जा सके और उसमें तथाकथित पिछडे वर्गोके लोगोके साथ-साथ सभी दलित समझे जानेवाले और जो वास्तवमे दलित है, उन लोगोको भी शामिल किया जा सके तो मुझे खुशी होगी। मुझे तो बडी खुशी होगी, यदि समझौतेमे यह गुजाइश भी रखी जाये कि जो भी चाहे वह अपने-आपको अस्पृश्य वर्गमे शामिल करा सकता है। परन्तु इसमे मुझे अनेक बडी-बडी कठिनाइयाँ दिखती है। अस्पृश्योकी श्रेणीमें यदि जन्मत. अछूत लोगोके अलावा दूसरो को भी शामिल किया जायेगा तो जन्मसे अछूत लोग उसका इस आधारपर विरोध करेगे कि तब उन दूसरोको भी आरक्षित स्थानोके लिए ससदीय चुनावोमे खडे होनेका अधिकार मिल जायेगा और इस प्रकार जन्मत अछूत लोगोका चुना जाना आजकी तरह निश्चित नही रह जायेगा। उनका यह तर्क सर्वथा उचित होगा, और आजके इस नैतिक बलको तोडनेवाले वातावरणमें मुझे नही दिखाई पडता कि लोग सच्चे विवेक और उदार भावनाओसे पूरा-पूरा या तनिक भी काम लेगे।

मेरी अपनी राय और शकाओका आधार इससे आपकी समझमे आ जायेगा। फिलहाल मै अपनी राय सार्वजनिक रूपसे इसलिए व्यक्त नही करता कि वैसा करना अप्रासगिक होगा और असामयिक भी। उपयुक्त समय आनेपर मै उसे व्यक्त करनेमें कोई सकोच नही करूँगा।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७९) से।

१८३. पत्र : एस० सी० घोषको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

इस तरहके प्रश्न मुझसे पूछनेसे फायदा क्या? महत्त्वकी बात यह नही कि मेरी क्या आस्था है, बल्कि यह है कि आपकी क्या आस्था है और आपकी अपनी आस्था प्रार्थना और ईश्वरके सिरजे प्राणियोकी सेवाके जरिये ही आपके अन्दर पैदा होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० सी० घोष
९६, बेलतल्ला रोड
कालिघाट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७३) से।

१८४. पत्र : गिरधारीलालको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

आपके पत्र मिले और सरूप आपकी भेजी हुई मिठाइयाँ ठीक तरहसे ले आया है। इसके लिए पूरे परिवारकी ओरसे धन्यवाद स्वीकार कीजिए। मै प्रसन्न हुआ कि लगातार सुधार हो रहा है। मैंने डॉ० अग्रवालका इलाज नही आजमाया है। मैंने उनके पत्र और उनकी भेजी पुस्तककी प्राप्ति-सूचना-भर भेज दी है। ऐसी प्राकृतिक चिकित्साके प्रति मुझे सदासे एक आकर्षण रहा है और इसीलिए मैंने लिख दिया था कि मैं इलाजको आजमाकर देखना चाहूँगा। परन्तु खेद है कि मुझे समय नही मिल पाता।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६९) से।

१८५. पत्र : एन० के० गोगटेको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके[1] लिए धन्यवाद। आपकी दलीलमे जो वजन है, उसे मै समझता हूँ। स्वयं भी अद्वैत दर्शनको मानता हूँ। परन्तु उस दर्शनमें ऐसा तो कुछ नही जो मन्दिरोमे हमारे विश्वासको गलत बतलाये।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० के० गोगटे
चालीसगाँव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७२) से।

१८६. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

२३ मार्च, १९३३

सेवामे
गृह-सचिव
बम्बई सरकार

प्रिय महोदय,

अपने १८ तारीखके पत्रका[2] उत्तर मुझे सरकारकी ओरसे अभी-अभी मिला है। मुझे आशका है कि सरकारी उत्तरमे एक महत्त्वपूर्ण मसला फिर उठाया गया है, जब कि मेरा खयाल था कि सरकार उस मसलेको १९२२ में[3] अन्तिम रूपसे तय कर चुकी है। सरकारने अब जो एक सिद्धान्त पेश किया है, उसने १९२२मे ठीक इसी सिद्धान्तसे अलग हटकर काम किया था। उन दिनो भी यही सहयोगी बन्दियो द्वारा किये गये उपवासका प्रश्न था। तब मेजर जोन्स सुपरिंटेंडेंट थे। मुझे जब उपवासकी बात मालूम हुई, मैंने बन्दियोको परामर्श देनेके खयालसे उनसे मुलाकातकी अनुमति माँगी थी। मेजर जोन्सने मेरे प्रस्तावपर कान ही नही दिया। तब मुझे तत्कालीन गवर्नर महोदयको लिखना पडा था। मुझे साथी बन्दियोसे मिलनेकी अनुमति मिल गई थी और उसके बहुत ही अच्छे परिणाम निकले थे।[4] १९३० मे जब

१. इसमें गांधीजी के ११-३-१९३३ के "क्या मन्दिर जरूरी हैं?" शीर्षक लेखकी चर्चा की गई थी।
२. देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १८-३-१९३३।
३. यहाँ १९२३ होना चाहिए था।
४. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १८२-८३ और १९६।

मुझे दूसरी बार जेल हुई तब भी ठीक यही प्रश्न उठा था।[1] मेजर मार्टिन सुपरिंटेंडेंट थे और वे भी एक उपवासी बन्दीसे मुलाकात करनेके मेरे अनुरोधको सुननेके लिए भी तैयार नही थे। मैंने सरकारके साथ लिखा-पढी की और उसे बताया कि मै सबसे पहले तो मानवतावादी हूँ और इस रूपमे अपने प्रभावका इस्तेमाल करना जहाँ कही भी सम्भव है, वहाँ उसका इस्तेमाल किये बिना मै जीवित ही नही रह सकता। और इस मामलेमे मेरा तनिक भी मशा नही था कि जेलके अनुशासनमे कोई व्यवधान पड़े। अन्तमे मेरी बात मान ली गई और सरकारने मुझे उन बन्दियोसे हर सप्ताह मिलनेकी अनुमति दे दी, जिससे कि मै उनके विचार जान सकूँ और जब भी जरूरी लगे उनको उपयोगी सुझाव दे सकूँ। जहाँतक मेरी जानकारी है, मुझे इस प्रकारकी स्वतन्त्रता देनेके सरकारी निर्णयके कारण मेजर मार्टिनको कभी भी दु खी नही होना पडा। इस बार जेल आनेपर भी मेरी वह स्वतन्त्रता बरकरार रही, हाँ, इतना प्रतिबन्ध अवश्य लगाया गया कि मै एक पखवारेमे एक निश्चित सख्यामे ही बन्दियोसे मिल सकता हूँ। मेरी जानकारीमे तो मेजर भण्डारीको इसके कारण कोई असुविधा नही हुई। जिन सुपरिंटेंडेंटोके अधीन मै जेलमे रहा हूँ वे, और जेलोके इन्स्पेक्टर जनरल शायद इस बातकी ताईद करेगे कि मैंने आवश्यकता पड़नेपर जहाँ-जहाँ भी कोई हस्तक्षेप किया है, वह उपयोगी ही रहा।

मैंने अब जो यह अनुरोध किया है उसका भारत सरकारके उन विशेष आदेशोसे कोई भी सम्बन्ध नही जो अस्पृश्यतासे सम्बन्धित मामलोके बारेमे निकाले गये है। सरकारसे मेरा अनुरोध है कि इतने पहले १९२२ मे किये गये अपने ही एक ऐसे निर्णयको वह पलटकर न रख दे जिसकी उसने पूरी तरह सोच-विचारकर १९३० मे पुष्टि भी कर दी थी और जिसपर वह मेरे वर्तमान कारावासके दौरान भी अमल करती रही है। मै यह कहनेका साहस करता हूँ कि इस दौरान ऐसी कोई भी नई परिस्थिति पैदा नही हुई जिसके कारण उस निर्णयपर पुनर्विचार करना जरूरी हो गया हो। मैंने कोई नया मुद्दा भी पेश नही किया है। सचमुच मुझे यह जानकर बडा ही दु ख और आश्चर्य हुआ कि सेठ पूनमचन्द राँकाके कथित उपवाससे सम्बन्धित मेरे तारको रोक दिया गया है। इसलिए मै फिर अनुरोध करता हूँ कि बजाज[2] (वर्धा)के नाम मेरा तार अविलम्ब भेज दिया जाये और मैंने १९२२ तथा १९३० के जिन निर्णयोका उल्लेख किया है उनकी पुष्टि की जाये, जिससे मेरे मनको शान्ति मिल सके।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८३) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल न० ८०० (४०) (३), ए, पृष्ठ ७३ से भी

१. देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ १५५-५७।

२. लगता है बच्छराजके स्थानपर भूलसे यह लिखा गया है।

१८७. पत्र : वि० दा० हुलयालकरको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप जो भी प्रचार-कार्य इस समय कर रहे है, उसमें मैं कुछ ठोस काम भी जोडना चाहूँगा, जैसे कि हरिजन बच्चोको पढानेका काम। मैं यह मान लेता हूँ कि आप 'हरिजन' खूब ध्यानसे पढते है।

अब आपके प्रश्न लेता हूँ।

१ देवदासी प्रथाकी समस्या बहुत छोटी-सी है, परन्तु आप अपने जीवनकी पवित्रता कायम रखकर और धैर्यपूर्वक प्रयत्न करके इस बुराईको और भी कम करलेमें सफल हो जायेगे। मुझे तो एक ही कारगर दलील सूझ पडती है, वह यह कि हरिजनोको महसूस करना चाहिए कि अपनी एक पुत्रीको देवदासी बनानेके लिए अलग रखनेकी प्रथामें कोई धर्म नही है, जिसका सीधा-सादा कारण यह है कि अन्य लाखो हिन्दू परिवार ऐसा नही करते और इस तरह अपनी एक पुत्रीको देवदासी बनानेके लिए अलग रखना अपवित्र कार्य मानते है। और जो लोग अनैतिक जीवनमे फँस ही चुके है, वे उसे केवल तब त्यागेगे जब हरिजन लोग उसे शर्मनाक समझने लगेगे। आपके इस प्रकार व्यग्र होनेसे कोई लाभ नही होनेका।

२ यदि आप अपना प्रचार-कार्य पूर्ण विनम्रता और सज्जनताके साथ करते हुए अपने रचनात्मक सेवा-कार्यके बलपर हरिजनोके प्रेम और श्रद्धाके पात्र बन जायेगे तो वे लोग कीचड-पानीका खेल छोड देगे।

३ इससे अच्छी तो कोई बात ही नही कि हरिजन लोग शाकाहारी बन जाये, लेकिन यदि वे नही बनना चाहते तो कमसे-कम गोमास और मुर्दार मासका भक्षण तो त्याग ही दें।

४. सही है कि उनको दिनके समय घरोमे पाना कठिन होता है। इसलिए आपको निश्चय ही उनसे रातमें या बडे सुबह जाकर मिलना चाहिए। हाँ, बडे सुबह वे आपकी बात ठीकसे सुननेकी मन स्थितिमे नही होगे।

५ यदि आप हरिजनोके अपमानके खिलाफ लगातार खडे होते रहेगे तो वे भी अपमानका बुरा मानना सीख जायेगे।

६. सभी बातोको देखते हुए, मास और सब्जियोके मिले-जुले भोजनकी अपेक्षा एक सतुलित शाकाहारी भोजन कही अच्छा रहेगा, यदि उसके साथ थोडा खालिस दूध भी लिया जाये।

७ निश्चय ही, विश्रामके लिए तमाखू पीना जरूरी नहीं है। जहाँ मजदूर सगठित ढगसे काम करते हो, वहाँ उनके मालिकोसे आग्रह करना चाहिए कि एक

निश्चित अवधिके बाद उन सबको विश्राम करनेका समय दिया जाये — तमाखू पीनेवालोको भी और न पीनेवालोको भी।

८ मेरा खयाल है कि यह तर्क सही ही है कि दफ्तरोमे चपरासी वगैरहके कामकी अपेक्षा मेहनत-मजूरीके कामसे पैसे ज्यादा मिलते है, हालाँकि चपरासियो वगैरहके कामके लिए मोटे तौरपर शिक्षित होना भी एक अनिवार्य शर्त है। और इसीलिए हरिजन लोग तबतक अपने बच्चोको पाठशालाओमे भेजनेके लिए आसानीसे तैयार नही होगे जबतक कि उनको यह न समझा दिया जाये कि ऐसा करना आगे चलकर उनके लिए लाभप्रद सिद्ध होगा।

९ किसमे पहले और किसमे बादमे — ऐसा कोई प्रश्न ही नही उठता, जागृति तो हरिजनो और सवर्ण लोगो, दोनोमे एक साथ, सामान्य रूपसे आनी चाहिए।

१० निश्चित बात है कि सत्य और अहिंसाको ही सदा सफलता मिलेगी। ईंटका जवाब पत्थरवाला नियम मानवीय नही, पाशविक है।

११. मुझे इसमे तनिक भी शका नही कि वर्तमान हरिजन आन्दोलन हिन्दू धर्ममे चौमुखी सुधार लायेगा और समाजमे अशान्तिके कारणोको दूर करेगा और विघटनको रोकेगा।

१२. हरिजन सेवकोसे सब तरहके सवाल पूछनेका सभी लोगोको हक है, हरिजन माता-पिताओको तो इसका और भी ज्यादा हक है, इसलिए सवालोके जवाब धैर्य-पूर्वक तथा शिष्टताके साथ दिये जाने चाहिए।

१३ यदि आपने सोमवारको मौन तथा उपवास रखनेका व्रत लिया हो, तो आप उसे किसी भी कारण भग नही कर सकते। हाँ, आपने ऐसी कोई गुजाइश व्रतमे छोड़ रखी हो, तो बात दूसरी है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विष्णु दामोदर हुलयालकर
फ्रीडम हाउस
जामखण्डी (एस० एम० सी०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७४) से।

१८८. पत्र : पी० आर० लेलेको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय लेले,

आपका २० तारीखका पत्र मिला। मै आपका मुद्दा और आपकी मुश्किल समझता हूँ। अब आपको उसके बारेमें चिन्ता करनेकी जरूरत नही। मै आम किस्मकी कोई हिदायतें जारी नही कर सकता, क्योंकि मुझे उसका अधिकार नही है। ऐसी हिदायतें तो केन्द्रीय बोर्ड, अर्थात् ठक्कर बापाकी ओरसे ही दी जानी चाहिए। मै तो अपनी विनम्र राय ही दे सकता हूँ, और मै यह भी समझता हूँ कि बाहरकी दुनियासे सम्पर्क न रहनेके कारण मैं इसमे भयकर गलतियाँ भी कर सकता हूँ। इसलिए आम तौर पर मैं सामान्य सिद्धान्तोकी चर्चा करके ही रह जाता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७५) से।

१८९. पत्र : एस० टी० मिश्रको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

'आज' के परिशिष्टाकमे एम० श्रीधर शास्त्री और उनके मित्रकी राय[1] प्रकाशित हुई थी। उसकी एक प्रति महामहोपाध्यायको भेजनेके लिए श्रीयुत हरिभाऊ पाठकको दी गई थी। यह कुछ दिन पहलेकी बात है।

हृदयसे आपका,

पण्डित एस० टी० मिश्र
मुगलई बाजार
धूलिया

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७७) से।

१. अस्पृश्यताकी समस्याके बारेमें।

१९०. पत्र : एन० वाई० नाडकर्णीको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और उसमे दी गई जानकारीके लिए मेरा धन्यवाद। यदि सुधारक लोग अपने प्रयत्नोमे धैर्यपूर्वक जुटे रहे तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि सनातनियो पर उसका प्रभाव अवश्य पडेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० वाई० नाडकर्णी
फोर्थ कान्ट्रैक्टर्स चाल
चर्नी रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७८) से।

१९१. पत्र : बॉयड टकरको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय बॉयड,

आपकी बातोसे मुझे खीझ कमी नही हो सकती, क्योकि आप मेरे बोले या लिखे हर शब्दमे, मेरे हर काममे जो रुचि ले रहे है उसकी मै कद्र करता हूँ। मै यह भी जानता हूँ कि आप व्यर्थके वाद-विवादकी भावनासे कोई तर्क पेश नही करते। मैं आपकी कठिनाई समझता हूँ। आप चीजोका बस एक पक्ष देखते है, या मुझे ही ऐसा लगता है। जैन दर्शनके अनेकातवादमे मेरी गहरी आस्था है। वह वस्तुओके मात्र एक पक्षके स्थानपर, उसके अनेक सम्भावित पक्षको सामने रखनेका सिद्धान्त है। इस प्रसिद्ध सिद्धान्तको दृष्टान्त द्वारा समझानेके लिए एक कथा भी सर्वविदित है—'एक हाथी और सात अधोकी कथा।' उनमे से प्रत्येकने उस एक हाथीका वर्णन अलग-अलग ढगसे किया था। कवि अन्तमे यह कहकर उसे समाप्त करता है कि वे सब वर्णन सच थे और वे सब वर्णन झूठे थे। और हम इसमे जोड सकते है—'एक ईश्वर ही सच है, उसके अतिरिक्त कोई भी पूर्णत सच नही हो सकता।'

ऐसी दृष्टि रखनेके कारण मैं आपके दृष्टिकोणको समझ सकता हूँ, उसकी पैरवी कर सकता हूँ, परन्तु साथ ही मैं अपने दृष्टिकोणकी पैरवी भी कर सकता हूँ। यदि मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नके बारेमे मेरे दृष्टिकोणसे ससार अपने नही बल्कि मेरे ही ढगसे प्रभावित होता है, तो उसकी नैतिक सुरक्षाके बारेमे मेरे मनमे कोई शका नही रह जायेगी।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि एक महाराष्ट्री सज्जनने आपके दृष्टिकोणका पूरी तरह पक्ष लेते हुए और मेरे उत्तरसे बिलकुल असहमति प्रकट करते हुए एक बडा जोशीला पत्र[1] लिखा है। और आपने इस समस्यापर गुरुदेवका शानदार पत्र देखा ही होगा। वह मुझे ऐसे वक्त मिला जब 'हरिजन' के इस अककी सामग्री पूरी तैयार हो चुकी थी। इसलिए अब अगले सप्ताह उसे देनेकी आशा कर रहा हूँ[2]। मेरा खयाल है कि गुरुदेवने उसे प्रकाशनके लिए ही भेजा होगा। पर आप उनसे पूछ लीजिए। यदि वह प्रकाशन न चाहे, तो जाहिर है, मै उसे प्रकाशित नही करूँगा। वैसी स्थितिमें आप तुरन्त तार द्वारा सूचित कर दीजिए। आशा है, गुरुदेव भले-चगे होगे। हम सबकी ओरसे उनको सादर-सप्रेम।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६८४) से।

१९२. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

२३ मार्च, १९३३

सुज्ञ भाईश्री,

शायद आपको याद होगा, आपके द्वारा स्वीकृत [विधेयकका] प्रारूप सरूपबहन उर्फ विजयलक्ष्मी बहनने मुझे दिखाया है। क्या मै उसे प्रकाशित कर सकता हूँ? यदि आप अनुमति देगे तो मै उसे प्रकाशित कर दूंगा। वह अच्छा जान पडता है। उसमे रियासतके मन्दिरोमें से एक मन्दिर हरिजनोके लिए खोल देनेकी बात है। उसके बादके पत्रमे आपने लिखा है कि इस तरह मन्दिर खोलनेका विचार छोड दिया गया है क्योकि उससे जनमत-सग्रह (रेफरेडम) जैसा हो जानेका भय है और वैसा होनेपर सवर्ण हिन्दू जनता मन्दिरमे जाना बन्द कर देगी जिससे उलटा असर पडनेका डर है। किन्तु मै कहूँ, धर्म-कार्य करनेमे भय कैसा? भले कोई अन्य सवर्ण उस मन्दिरमे न जाये किन्तु आप तो जायेगे, रमाबहन तो जायेंगी? महाराजा, रानी साहेबा आदि तो जायेगी न? कुछ अन्य सुधारक तो जायेगे ही। हरिजनोको इस तरह यदि एक ही मन्दिरका लाभ मिले तो भी अच्छा है। आपने जो वजह बताई है यदि वही वजह हो तो मेरा अनुरोध है कि काफी जोखिम उठाकर भी आप

१. देखिए "क्या मन्दिर जरूरी हैं?" ११-३-१९३३।
२. देखिए "यह सवर्थ आवश्यक है", १-४-१९३३।

कमसे-कम एक अच्छा मन्दिर खोल दे। आपके पत्रसे जान पड़ता है कि भावनगरमे ही राज्यके अधिकारमे चार-एक मन्दिर है। यदि उनमे से एकमे हरिजनोका प्रवेश हो तो सनातनियोको भी यह असह्य नही होना चाहिए। आशा है मेरा इससे पहलेका पत्र मिल गया होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९२७) से। सी० डब्ल्यू० ३२४३ से भी, सौजन्य महेश प्र० पट्टणी

१९३. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

२३ मार्च, १९३३

चि० ब्रजकिसन,

तुमारा खत मिला। जन्मदिनके बारेमे मेरे आशीर्वाद है ही। ईश्वर तुमको अनासक्ति और समता देगा। दूसरे साथी भी यही इच्छामे शामिल है। सब भाइओ को हमारे सबके तरफसे यथायोग्य कहो। तुम दोनोका सद्भाग्य है कि ऐसे साथियोका सहवास तुम दोनोका[1] मिला है। राधा ऐसी ही है। कुसुमके भी अच्छे हाल तो नहिं है। हम सब तो अच्छे है। जमनालालजी ठीक है।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २३९९) से।

१९४. पत्र : अमतुस्सलामको

२३ मार्च, १९३३

प्यारी बेटी,

तुम्हारा खत मिला है। मैंने तुमको खत लिखा है सो मिल जाना चाहिए। तुम्हारे निराश नही होना (है)। खुदा चाहता है वही करता है। हम इलाज करके खामोश रहे। डॉ० शर्माको मैंने आश्रमके जानेके बारेमे लम्बा खत[2] लिखा है। वह मिलना चाहिए। उसके साथ तुम्हारे लिए खत था। लक्ष्मीकी शादीका तो तुमने सुन ही लिया होगा। वह बारडोली चली गई है।

बापूकी बहुत दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २८०) से।

१. ब्रजकृष्ण चाँदीवाला इन दिनों मुल्तान जेलमें थे, जहाँसे वे मईके शुरूमें रिहा हुए थे।
२. देखिए "पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको", १४-३-१९३३।

१९५. पत्र : जमनादास गांधीको

[२३ मार्च, १९३३ या उसके पश्चात्][1]

चि० जमनादास,

तेरे दोनो पत्र मिले। मैंने मन्दिरके बारेमे कल जो तार दिया था, आशा है वह मिल गया होगा। यदि यह मन्दिरका काम हो जाये तो मै इसे एक अच्छा कदम मानूंगा।

मुझसे अनुमति प्राप्त करनेके बारेमे भी तूने जो लिखा है वह बिलकुल ठीक है। किन्तु मेरी रायके लिए इस प्रकार इन्तजार करना ही नही चाहिए। भावनगरका एक मन्दिर खुलवानेके लिए मैंने पट्टणीजी से बहुत अनुरोध किया है। जहाँ जितने मन्दिर खुलवाये जा सके उतने अवश्य खुलवाने चाहिए। यदि कोई ऐसा नया मन्दिर बनवाये जिसमे सभी लोग जा सके और सनातनी भी उसमे सहायता दे तो यह बहुत ही अच्छा होगा।

तू अपनी तबीयतके बारेमे कुछ लिखता ही नही। ऐसा मत कर।

बुजुर्गोके बारेमे तूने जो-कुछ लिखा है उसे मैं समझता हूँ। उन्हे यह कौन समझा सकता है कि अब उन्हे सिर्फ फलोके रसपर रहना चाहिए, इससे उनका शरीर शुद्ध और शान्त रहेगा, ताकतके लिए अन्य किसी चीजकी जरूरत उन्हे नही है। किन्तु यह उनकी जानकारीके लिए नही बल्कि तेरी ही जानकारीके लिए है ताकि तू अभीसे यह जान ले कि तुझे बूढा होनेपर क्या करना चाहिए और यदि ईश्वर मुझे उस स्थितिमे पहुँचा दे और मैं उस समय उपवासके लिए तैयार न हो सकूँ तो वह मुझे आखिर फलोके रसपर रहनेकी इच्छा और शक्ति दे। मुझे इस बारेमे तनिक भी सन्देह नही है कि जब शरीरके अधिकाश अग शिथिल पड जाते है तो हवा-पानी ही खुराक होती है। किन्तु यह सब तो भविष्यके गर्भमे छिपा हुआ है। तेरा मसविदा इसके साथ वापस भेज रहा हूँ।

बापू

[पुनश्च]

सुशीला और भाऊको लिखे पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ।[2] हरिजन-कार्य सम्बन्धी जेठालालका पत्र मुझे मिला हो ऐसा नही लगता।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६२५) से।

१. भावनगरमें हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवानेके उल्लेखसे यह तारीख निश्चित की गई है। देखिए "पत्र: प्रभाशंकर पट्टणीको", २३-३-१९३३।

२. ये पत्र उपलब्ध नहीं है।

१९६ पत्र : नी० को

२३/२४ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारे दो पत्र मिले थे। मुझे अच्छे लगे। उनमे से एक मैं जो काव्यका पुट था, वह बहुत ठीक चस्पाँ हुआ था।[1] आशा है, मेरा तार[2] तुम्हे मिल गया होगा। उसे मैंने तुम्हारा पत्र पढते ही भेज दिया था और उसमे तुम्हारे गाँव जाकर हरिजनोके बीच रहनेके विचारसे सहमति प्रकट की थी। अगर तुमने खूब सोच-समझकर यह तय किया हो तो यह योजना तो बहुत अच्छी है। लेकिन, अब तुम्हे कोई भी कदम जल्दी या उतावलेपनमे नही उठाना चाहिए। जबतक सत्य तुम्हारे लिए एक स्वाभाविक वस्तु नही बन जाता है, तबतक तो तुम्हे जीवन कठोर लगेगा ही और तुम्हे ऐसे अनुभव भी होगे जो निराशाओ जैसे लगेगे। जब मनुष्य सत्यसे आप्लावित हो जाता है तब उसके लिए निराशा-जैसी कोई वस्तु रह ही नही जाती। तब तो उसके मनमे सत्यका आलोक भर जाता है और फिर उससे उसका समस्त जीवन आलोकित हो उठता है।

रुद्रमणिके विषयमे और भी बताना। तुम्हारा ईश्वर अर्थात् सत्यके अतिरिक्त और कोई मार्गदर्शक नही होना चाहिए। मैं नही चाहता कि तुम आगे भी किसीके जादूमे रहो। यदि कोई तुम्हारी सहायता कर दे और वह सहायता स्वीकार करना तुम्हारे लिए उचित हो तो तुम उसके लिए उसका आभार भले ही मान लो। और सहायताके तौर पर तुम्हे कोई भी सिवा इसके और क्या दे सकता है कि तुम्हारी जरूरतका भोजन तथा जीवनके लिए आवश्यक अन्य वस्तुएँ जुटा दे? सेवककी, और विशेषतया हरिजनोके सेवककी आवश्यकताएँ इससे अधिक नही होती। इस सेवासे अधिक उदात्त और प्रेरणाप्रद वस्तुकी तो मैं कल्पना ही नही कर सकता। यह कर्ताको सम्पूर्ण सन्तोष देती है।

साथमे सि०[3] के नाम एक पत्र है। उससे वे चन्द पक्तियाँ लिखवाकर तुमने बहुत अच्छा किया, और यह तो बडी अच्छी बात रही कि बचे हुए पैसेका उपयोग तुमने जैसा लिखा है, उस तरहसे किया। उसका वर्णन पढकर मेरी आँखें नम हो आईं।

हृदयसे तुम्हारा,

१. अपने २१ मार्चके पत्रमें नी० ने लिखा था कि "... मैं हर कठिनाईको झेलकर आपके बताये रास्तेपर चलती रहूँगी। सिवा सत्यके, जिसका रूप यह सुन्दर और विस्तृत ब्रह्माण्ड है, मेरे लिए इस धरतीपर या स्वर्गमें भी अब और कोई गुरु नहीं है।

२. यह मिल नहीं सका।

३. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिया गया।

२४ मार्च, १९३३

[पुनश्च :]

आज तुम्हारा बहुत अच्छा पत्र मिला है। ऊपरका हिस्सा मैंने कल लिखाया था। तुम्हारा परिवेश सत्यमय हो, तुम्हारा जीवन सत्यसे आप्लावित हो, यही मेरी कामना है।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६८९) से।

१९७. पत्र : मीराबहनको

२४ मार्च, १९३३

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र कल आया। इस समय सुबहके सवा तीन बज रहे हैं।

जानकर खुशी हुई कि तुमको कब्जसे छुटकारा मिल गया है। तुम अगर सिर पर भीगी पट्टी लगातार रखती रहो तो तुम्हें गरमी बिलकुल भी नही महसूस होगी। इससे पूरे शरीरमे ठडक पहुँचती है। मुझे पता नही कि वे लोग तुम्हे कैसा दूध देते हैं। दूधको यदि दुहनेके बाद तुरन्त छान लिया जाये या बोतलमे भरकर उसे अच्छी तरह कार्कसे बन्द करके गीले कपडेमे लपेट दिया जाये, तो वह दूध कई घटोतक ठीक बना रहेगा और उसे उबाले बिना वैसा ही पिया जा सकता है। मैंने उबला दूध लेना बिलकुल बन्द कर दिया है और मुझे उससे कोई नुकसान भी नही हुआ है। उससे मुझे सारे पोषक तत्त्व मिल जाते है और उस पौंड-भर दूधसे मुझे जितनी शक्ति मिल जाती है उतनी शायद उससे अधिक मात्रामें लिये जानेपर भी उबले दूधसे नही मिलेगी। मेरा आहार अब भी दूध, पपीते, सतरे और खजूर ही है। सतरे मैं एक बार ही लेता हूँ। लगता है कि यह काफी है, शायद जरूरतसे ज्यादा ही। लेकिन मैं तुम्हे यह बतलाना चाहता हूँ कि यदि तुम बिना उबाला दूध पीनेका इन्तजाम कर सको, तो तुम्हे गरमीसे कम परेशानी होगी। दूधकी बोतल इस तरह बन्द होनी चाहिए कि उसमें जहाँतक सम्भव हो, हवा न जा सके और उसे गीले कपडेमे लपेटकर रखना चाहिए। गीले कपडेमे वह बर्फ-जैसा ठण्डा बना रहता है। तुम उसे अपने सामने कपडेसे छान सकती हो। छाननेके बाद तुरन्त ही कपडेको और बोतलको भी अच्छी तरह धो लेना चाहिए। इतना किया जाये, तो तुम्हारे बिना उबाला दूध लेनेपर भी मैं निश्चिन्त रहूँगा। आशा है, मैंने अपनी हिदायतें काफी स्पष्ट शब्दोमे बतला दी हैं। यदि तुम तरीका बदलना न चाहो और वैसे अपने-आपको भली-चंगी महसूस करती हो, तो ऐसी तब्दीली करनेकी जरूरत भी नही।

मेरा वजन १०४ पौंड ही बना हुआ है। समझमे नही आता क्यो। हालाँकि मै आसक्तिरहित[1] ढगसे रहनेकी कोशिश करता हूँ, परन्तु निस्सन्देह कुछ ऐसी चीजे है जो अनजाने ढगसे मुझपर प्रभाव डालती है। तुम जानती हो कि . . .के[2] लिए मेरे मनमे कितना सम्मानभाव है। आश्रममे वह मेरा सबसे दृढ़व्रत ब्रह्मचारी और सत्यनिष्ठ बालक रहा है। तुम यह भी अच्छी तरह जानती हो कि . . के[3] लिए मेरे मनमे इतनी गुजाइश थी कि उसे पक्षपात भी कहा जा सकता था। लेकिन देखो तो ये दोनो मेरे विश्वास और भरोसेका बेजा फायदा उठाकर एक-दूसरेसे प्रणय-व्यापार करते पाये गये है। ये दोनो शादी करनेकी योजना भी बनाते रहे है। के[4] पत्र मेरे हाथ पड गये है। को मै ठीक ढगकी एक हरिजन बालिकाकी तरह विकसित होते देखनेकी आशा लगाये था। पर मै नहीं कह सकता कि . . . और . . . का अब क्या होगा। मै इन फूटे बर्तनोको जोडनेकी कोशिश कर रहा हूँ। परन्तु मै निश्चयपूर्वक नही कह सकता कि मुझे इसमे कहाँतक सफलता मिलेगी या ये दोनो मेरे साथ इसमे कितना सहयोग करेगे। लेकिन सोचनेकी यह पूरी शैली अनासक्तिकी नहीं, आसक्तिकी ही है। अनासक्तिकी भाषा मै जानता हूँ। लेकिन मै चूँकि उसपर अमल नहीं कर रहा हूँ, इसलिए उसके अनुरूप भाषाका प्रयोग करना सत्यनिष्ठ नही होगा। मै इन दोनोको इतनी आसानीसे अपने दिमागसे नही निकाल पाता। आशा है, कुछ समय बीतनेपर ऐसा कर सकूँगा। सामने जो काम पड़े रहते है, उनके कारण मुझे उनके पतनके बारेमे सोच-सोचकर परेशान होनेका समय तो नहीं मिल पाता, लेकिन तुमको यह सब लिखनेके दौरान मैने स्पष्ट देख लिया है कि मेरी मन:स्थिति क्या है। तुम इसे लेकर चिन्तित मत होना। इस तूफानके बावजूद मै भला-चगा हूँ। ईश्वर मुझे भला-चंगा रखता है। मैने अपने अन्तरमे चलनेवाला द्वन्द्व तुम्हारे सामने खोलकर रख दिया है। पर यह सब क्षणिक है। आश्रम धूलमें मिल जाये और मेरी सभी उपास्य मूर्तियाँ खण्ड-खण्ड हो जाये, तो भी सत्य तो कायम रहेगा ही। . .का[5] व्यवहार शानदार रहा है। और कौन कह सकता है कि इस सबका पता चलनेका परिणाम यह नही होगा कि अब हर तरफ पहलेसे अधिक स्वच्छ वातावरण बनानेका प्रयत्न किया जायेगा। इसलिए तुमको इससे दु:खी नही, बल्कि खुश होना चाहिए। यहाँ सवा चार बजे प्रार्थना शुरू हुई थी। प्रार्थनाके बाद कुनकुने पानीके साथ शहद लिया और अब पौने पाँच बज रहे है। राजकुमारी एरिस्टार्ची हर हफ्ते 'हरिजन' के प्रति प्रेम-भरा पत्र भेजती रहती है। वे 'हरिजन' के कार्यके लिए उपवास और प्रार्थना और बचत कर रही है। तुम यदि चाहोगी तो मै उनके भेजे हुए और अधिक कार्ड बड़ी खुशीसे तुमको भेज दूँगा। वे और मेडेलीन रोलाँ तुम्हारे प्रति अपना स्नेह निवेदन करती है। लगता है कि कठिन शीत और जर्मनीमे लोकतंत्र तथा व्यवस्था ठप हो जानेके बावजूद ऋषिकी[6] मन स्थिति काफी ठीक बनी हुई है। वे सब तुमको अपना स्नेह भेजते रहते है। यो तो यूरोपसे जो भी पत्र लिखता है,

१. साधन-सूत्रमें यहाँ 'अनासक्ति' अंग्रेजी पर्याय है, जो स्पष्टतः भूल है।
२, ३, ४, और ५. यहाँ नाम नहीं दिये जा रहे है।
६. रोमाँ रोलाँ।

तुम्हारे प्रति अपना स्नेह निवेदन करता ही है। लेकिन तुम जानती ही हो कि ऐसे स्नेह-सदेश तुम तक पहुँचानेके प्रति मैं कितना उदासीन रहता हूँ। वा से कहना कि मैं उसे शायद हर हफ्ते पत्र न लिख सकूँ।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६७२) से। सौजन्य: मीराबहन

१९८. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रचूजको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी इच्छानुसार माल्कम मैकडॉनाल्डको 'हरिजन' पहुँचता रहेगा। अगाथाने कुछ और नाम भी दिये हैं। उनको भी जाता रहेगा। यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि 'हरिजन' शीर्षकका अक्षर-लेखन लोगोको काफी पसन्द आया।

बनारसीदासके बारेमे दिया गया सुझाव ठीक-ठीक समझमे नही आया। निश्चय ही वे एक अग्रणी कार्यकर्ता है और इतने ही अग्रणी हिन्दी-लेखक भी। ऐसे काममें वे जी-जानसे जुटे हुए भी है। पर उनसे विशेष काम क्या लिया जा सकता है? 'हरिजन'का एक हिन्दी-सस्करण घनश्यामदास और अमृतलाल ठक्करकी सीधी देखरेखमें दिल्लीसे निकलता है। इसके बगला, तमिल और गुजराती सस्करण भी निकलते हैं। गुरुदेव सहयोग कर रहे हैं। इसी सप्ताह उनका एक बडा सुन्दर पत्र[1] और एक कविता[2] मुझे मिली। वह कविता उनकी अपनी ही बंगला कविताका खुद उन्हीका किया अनुवाद थी। तुम्हारे पास कोई और सुझाव या कुछ और है?

हम सब अच्छी तरह और स्वस्थ है; अपनी शक्ति-भर काम कर रहे हैं।

हम सबकी ओरसे सप्रेम।

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९८२) से।

१. पत्रके पाठके लिए देखिए "यह संघर्ष आवश्यक है", १-४-१९३३।

२. हरिजनके २५-३-१९३३ के अंकमें "पवित्र स्पर्श" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित।

१९९. पत्र : राजकुमारी एफी एरिस्टार्शीको

२४ मार्च, १९३३

आपके सभी पत्र मर्मस्पर्शी है। मै आपके निस्स्वार्थ प्रेम तथा आपकी सचमुच हृदयसे उद्भूत प्रार्थनाओकी बडी कद्र करता हूँ और मुझे इसमे लेशमात्र भी सन्देह नही कि शुद्ध हृदयोसे निकली प्रार्थनाएँ सदैव फलीभूत होती हैं। इसलिए आपका यह कथन सोलहो आने सही है कि हरिजनोके लिए की गई अपनी प्रार्थनाओको फलीभूत बनानेके लिए आवश्यक है कि आप अपने अन्दर अधिकसे-अधिक पवित्रता पैदा करे। इसलिए आपको अपने लम्बे-लम्बे पत्रोके लिए कोई सफाई देनेकी जरूरत नही। मुझे वे पत्र इतने लम्बे नही लगते। यदि आपके पत्र मिलनेके दिनो मै अत्यधिक व्यस्त होता हूँ तो मै उनपर एक सरसरी नजर डालकर उनको जरा फुरसतके समय ध्यानसे पढनेके लिए अलग रख लेता हूँ।

मुझे जानकर बड़ी खुशी हुई कि 'हरिजन' आपको पसन्द है। यदि आप किसीको 'हरिजन' की मानार्थ प्रतियाँ भिजवाना चाहती हो, तो लिखनेमे कोई सकोच मत कीजिए।

मेरे पास मीराके पत्र हर सप्ताह आते रहते हैं। मै उसे आपकी ओरसे स्नेह लिख देता हूँ और वह अपनी ओरसे आपको लिखवाती रहती है। पर मै ऐसे स्नेह-सन्देशोके वाहकके रूपमे बहुत लापरवाह हूँ। मै तो सोचता हूँ कि मित्रोको अपने बीच ऐसे परस्पर स्नेहका अस्तित्व तो मानकर ही चलना चाहिए, जिसे व्यक्त करनेकी जरूरत ही नही।

राजकुमारी एरिस्टार्शी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६९८) से।

२००. पत्र : डॉ० हैरी जे० एलिखको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। एक पुस्तकका नाम है—'कीनर विजन विदाउट ग्लासेज'। इसके लेखक हैं—बेंजामिन गेलॉर्ड हाउसर, और मिलनेका पता है—टेम्पो बुक्स इनकॉरपोरेटेड, ५८०, फिफ्थ एवेन्यू, न्यू यॉर्क।

हृदयसे आपका,

डॉ० हैरी जे० एलिख
८४, चर्च स्ट्रीट,
न्यू ब्रुसविक, न्यू जर्सी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७००) से।

२०१. पत्र : आर० बी० ग्रेगको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय गोविन्द,

तुम्हारा पत्र मिला और पुस्तक[1] भी मिल गई थी। मैं आजकल इस पुस्तकको पढ़ रहा हूँ। मैं उसमें बतलाये गये तरीकेको आजमाकर जरूर देखना चाहता हूँ, और यदि मैं बरसोंके इस्तेमालके बाद अब इस चश्मेसे छुटकारा पा सकूं तो मुझे सचमुच बड़ी खुशी होगी। काकासाहब यहीं हैं। उन्होंने इस तरीकेकी अबतक आजमाइश नहीं की, लेकिन अब शायद करें।

आशा है कि 'हरिजन' के अंक तुम्हें नियमित रूपसे मिल रहे होंगे। मैं चाहता हूँ कि तुम और राधा[2] उसे आलोचनात्मक दृष्टिसे पढ़ो और अपने सुझाव मुझे लिख भेजो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत गोविन्द
५४३, बॉयल्स्टन स्ट्रीट
बोस्टन, मास० स० रा० अ०

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६९९)से।

१. बेंजामिन गेलॉर्ड हाउसर-कृत कीनर विजन विदाउट ग्लासेज।

२. आर० बी० ग्रेगकी पत्नी।

२०२. पत्र : एस्थर मेननको

२४ मार्च, १९३३

रानी बिटिया,

थोड़ी प्रतीक्षाके बाद तुम्हारा विस्तृत पत्र मिला। तुम्हारी सभाका वर्णन काफी रोचक है। अपने शब्दोंमें तुमने जितनी एकाग्रता और जितना आत्मिक बल भर दिया था उसके बाद तो यह असम्भव ही था कि उनमे प्रभावोत्पादकता पैदा न होती।

सामान्य सभाओमे आम तौरसे सलीबके अर्थकी जैसी संकीर्ण व्याख्या की जाती है, उससे हटकर जब भी उसे एक सार्वभौमिक अर्थ प्रदान किया जाता है, तब निस्सन्देह, सलीबकी प्रेरणा सार्वभौमिक हो जाती है। परन्तु उसके लिए, तुम्हारे अपने शब्दोमे, हमारे पास अन्तश्चक्षु होने चाहिए, जिनसे उस सार्वभौमिक अर्थको ग्रहण किया जा सके।

यह जानकर प्रसन्न हुआ कि तुम हैदराबादकी एक मुसलमान लडकीका लालन-पालन कर रही हो। और अच्छी तरह परिचित हो जानेपर मुझे उसके बारेमें ज्यादा लिखना।

मुझे पता ही नही था कि वहाँके लोग कभी अपने सिरोपर बोझे ढोते है। तुमने जो देखा है, क्या इग्लैडके उस प्रदेशमे उसका आम चलन है? उसका वजन कितना तक होता है और उन बोझोको किस तरहके पात्रोमे रखकर ढोते है? कितनी दूरीतक ढोते है? और क्या उसमे घरका आम कूडा-कचरा रहता है?

आशा है कि हैन्स[1] की प्रार्थना फलीभूत हो गई होगी।

अभी उस दिन मेरियाका पत्र आया था। उससे पता चला कि तुम्हारे आनेकी खबरसे वह कितनी खुश है। वह मन और शरीर दोनोसे हारी-थकी लगती है। बस, जैसे टूटने ही वाली हो और मै बहुत चाहता हूँ कि इस चलती-फिरती हालतमें ही वह काश्मीर जाकर चन्द महीनोके लिए अपने मन और शरीरको विश्राम दे। यह उसके लिए बेहद जरूरी है।

हम सबका स्नेह और बच्चोको प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सख्या १२१) से, सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार। एस० एन० २०६९७ से भी

१. सैली ओकमें मेनन-परिवारके साथ रहनेवाला एक जर्मन बालक।

२०३. पत्र : नी० को

२४ मार्च, १९३३

तुम प्रयत्न करो, इतना ही काफी नही। यह जरूरी है कि तुममे बल हो। ईश्वरको प्रयत्नसे सन्तोष होता है। पर उसका वचन है कि सच्चे प्रयत्नसे जरूरी बल हमेशा पैदा होता ही है। इसलिए तुम जो परिणाम दिखाओगी, उसके आधारपर ही मैं तुम्हारे प्रयत्नकी कीमत आँकनेवाला हूँ। यह अच्छी तरहसे समझमे आ रहा है न? बुरे भूतकालपर विजय पानेके लिए तुम्हें भयंकर सग्राम करना पड़ेगा। परन्तु यदि सत्य तुममे बस गया होगा, तो डरनेकी कोई जरूरत नहीं। प्रकाश गहरेसे-गहरे अन्धकारका नाश करता है। सत्य घोरतम पापपर विजय प्राप्त करता है। पापका ही दूसरा नाम असत्य है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी पहरेदार बनो।

[अग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य: नारायण देसाई

२०४. पत्र : रामचन्द्रको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। नी० देवीके वक्तव्यके प्रकाशनको लेकर बहुत अधिक चिन्तित होनेकी जरूरत नही। साथके पत्रसे[1] तुमको पता चल जाएगा कि मैंने उसको इसकी एक प्रति भेजनेके लिए लिखा है; यदि तुम्हारे पास हो तो मुझे एक प्रति भेज दो। बुधवारको मैंने उसको तार भेजा था, क्योकि उसने अपने पत्रमें लिखा था कि वह जल्दी ही हरिजनोके किसी गाँवमे जा सकती है। आखिरकार, यही तो उसका लक्ष्य है, और यदि अब वह वहाँ जा सकती है तो बेहतर ही है। मैंने उससे पूछा है, लेकिन तुम भी मुझे लिखो कि जब वह गाँव जायेगी तो उसके द्वारा खाली की गई जगह का क्या होगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६९६ ए)से।

१. यह प्राप्त नहीं हो सका।

२०५. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

तुम्हारे पत्र तो घडीकी सुईकी-सी नियमिततासे आते रहते हैं। कहनेकी जरूरत नहीं कि अगर एक यहूदिन होनेके कारण तुम्हे वहाँसे निकाल दिया जाये तो उससे तुम्हे घबराना नही चाहिए। तुम्हारा क्या हुआ, यह जाननेके लिए अब मैं आतुरतासे तुम्हारे पत्रोकी राह देखूँगा।

अगर तुम चाहो तो मितव्ययिताका श्रेय ले सकती हो, हालाँकि तुम्हे यह पुरानी कहावत याद रखनी चाहिए कि 'एक कोयलके कूकने से वसन्त नही आ जाता,' और इसलिए भोजनके सवालको यदि तुम एकदम महत्त्व देना छोड दो तो उसका मतलब यह नहीं होगा कि तुम्हारे लिए समाधान उतना ही सरल है जितना तुम सोचती हो। भोजनको अधिक महत्त्व देनेकी जरूरत नही है, लेकिन यह सोचना बिलकुल गलत है कि आदमीके नैतिक विकास, बल्कि शारीरिक विकाससे भी भोजनका कोई सम्बन्ध नही है। दुनिया-भरके सन्त-महात्माओके अनुभवसे यह प्रकट होता है कि उन्होने इसे महत्त्व दिया है — किसीने कम, किसीने ज्यादा, और उनमे से अधिकांशने यह स्वीकार किया है कि जिसमे जीव-हत्या न करनी पड़े, ऐसा आहार आध्यात्मिक प्रबुद्धताके लिए आवश्यक है।

तुम्हारी शिष्याओने अहिंसाको समझनेकी क्षमताका परिचय बहुत कम दिया। इससे भी तुम्हे परेशान होनेकी जरूरत नही है।[1] मुझे इससे कोई आश्चर्य नही होता। वहाँ वातावरण ही ऐसा नही है कि लोग अहिंसाकी ओर उन्मुख हो। उन्हे इसको किंचित् भी महत्त्व देनेकी शिक्षा कभी दी ही नही गई, बल्कि शायद उन्हे इसको हिकारतकी नजरसे देखना ही सिखाया गया है। तुम्हारे यहाँ जैसा अहिंसा-विरोधी वातावरण है उसमे तुम्हे उन सबसे एकाएक अहिंसाके महत्त्वको समझनेकी अपेक्षा नही करनी चाहिए।

महादेवको तुम्हारे पत्र मिलते रहे हैं और तुम्हारी पुस्तिका भी उसे मिल गई है। चूँकि मैंने 'पार्सीफाल' के बारेमे सुन रखा था और वह थी भी सच्चे अर्थोमे पुस्तिका ही, इसलिए मैं दो दिनोमे जबतब मौका मिलनेपर उसे पढ गया। पुस्तिका मुझे बहुत पसन्द आई।

१. मार्गरेट स्पीगलने गांधीजी को लिखा था कि वे दो महीनेसे अपनी शिष्याओंके साथ यंग इंडियामें प्रकाशित गांधीजी के लेखोंके जर्मन स्कूली संस्करणका अध्ययन करती आ रही थीं। . . . फिर उसका नतीजा कुछ नहीं निकला। २० लड़कियोंमें से एकके भी दिलमें वे अहिंसाको उतार नहीं पाईं।

हाँ, श्री कोदण्डरावको भी तुम्हारा पत्र मिल गया।

हृदयसे तुम्हारा,

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल-पेपर्स। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय। जी० एन० २०७०१ से भी

२०६. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

२४ मार्च, १९३३

चि० हरिभाऊ,

अहिंसा-सम्बन्धी तुम्हारा लेख मैंने अभी-अभी पढ़ा। तुम्हारे विचार जहाँतक जाते हैं वहाँतक ठीक हैं। किन्तु वह छपवाने लायक नहीं है। अभी और भी गहराई-मे उतरनेकी आवश्यकता है। अहिंसा कोई ऐसी चीज नहीं है जिसकी थाह आसानी से पाई जा सके। उसके सम्बन्धमें लेख लिखनेका प्रयत्न करनेकी अपेक्षा उसपर अमल करते हुए जो नये विचार और कठिनाइयाँ आये उनका विवरण देना ज्यादा अच्छा होगा। तुम्हारा यह लिखना भी सर्वथा सही नहीं है कि धर्मके रूपमें तो अहिंसा सर्वमान्य है। यह ठीक है कि वह थोड़ी-बहुत हदतक सर्वमान्य है। लेकिन बहुत-से लोग हिंस्र पशुओंका वध करना धर्म मानते हैं। अन्य लोग पापी माने जाने-वाले लोगोंको मारना धर्म मानते हैं।

अपने मानसिक विचारोंको स्पष्ट करनेके लिए तुम ऐसे लेख बार-बार लिखो तो इसमें अनुचित कुछ नहीं होगा।

अब तुम कैसे हो?

लेख वापस लौटा रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७८)से; सौजन्य: हरिभाऊ उपाध्याय

२०७. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

२४ मार्च, १९३३

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा विस्तृत और सुन्दर पत्र मिला। किससे लिखवाया? जबतक वहाँ रहनेकी आवश्यकता समझो तबतक रहना और समस्याओंको सुलझाना।

रमीबहन[1] अपने मनपर बोझा क्यों लिये फिरती है? उसका संस्कृत और 'गीता'का अध्ययन कहाँ गया?

१. रमीबहन कामदार, गंगाबहनकी बहन।

महावीर और कृष्णमैयादेवीको विगाड मत देना। कृष्णमैयादेवीको काम अवश्य करना चाहिए। महावीरको पाई-पाईका हिसाव रखना चाहिए। उसे भिखारी मत वनने देना। 'जो पाता है उसका प्रतिदान उसे अवश्य देना चाहिए। वह परिश्रम करनेका जितना अभ्यस्त होगा उतना ही सुखी होगा। उसे आश्रम के नामका उपयोग नही करना चाहिए। नौकरी आदि पानेमे जितनी मदद दी जा सके उतनी अवश्य दो।

हम लोगोका मिलना तो नही हो सकता, किन्तु तुम्हे जो पूछना हो वह पत्र लिखकर पूछ लेना।

मीरावहन वा की आलोचना क्यो करती थी? नि सन्देह उसमे दोप तो है, किन्तु उसकी एकनिष्ठताकी कीमत नही आँकी जा सकती। इसमे कोई सन्देह नही कि वा स्वयको खूब शोभान्वित करती रही है। वा की दृढता उसके दोषोको ढक देती है।

तुम्हारी पढी हुई पुस्तकोकी सूची तो मुझे मिल गई थी। अव मै तुम्हारे विचारोके विवरणकी प्रतीक्षा करूँगा।

काका रोज मिलते है। उनकी तवीयत अच्छी है। फिलहाल वे सिर्फ दूध और फलोपर गुजर कर रहे है। दूधसे मेरा तात्पर्य दही से है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी डब्ल्यू० ८७९९) से, सौजन्य: गगावहन वैद्य

२०८. टिप्पणियाँ

क्या मन्दिर सूने हो जायेंगे?

एक एम० ए०, एल-एल० बी० सज्जन पूछते है:

> **यदि हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशकी अनुमति दे दी जायेगी, तो बहुत सम्भव है कि सवर्ण हिन्दू जनता और पुजारी मन्दिरोंमें जाना छोड़ देंगे। उस हालतमें मन्दिर-प्रवेशके अधिकारका क्या लाभ होगा?**

इस प्रश्नका मेरा यही उत्तर हो सकता है कि प्रश्नकर्ताने स्पष्ट ही मन्दिर-प्रवेश-सम्वन्धी आन्दोलनको समझा नही है। वह तो सिर्फ उसकी निन्दा करता है। उसके प्रश्नका अन्तर्हित आशय यही है और उसके जिस लम्वे पत्रसे मैने यह प्रश्न उद्धृत किया है उससे भी यही प्रकट होता है। पर मन्दिर-प्रवेश-सम्वन्धी उद्देश्यके लिए मेरा यह उत्तर काफी न होगा।

प्रश्नकर्ता और उन्हीके समान विचारवाले व्यक्तियोको यह जान लेना चाहिए, कि जिस सयोगकी वे आशका करते है वह आयेगा ही नही, क्योकि इस आन्दोलन का यह मंशा नहीं है कि किसी भी मन्दिरमे हरिजनोको कानूनन या किसी दूसरी तरह जवरन प्रवेश कराया जाये। कानूनकी सहायता तो सिर्फ इसलिए माँगी जाती

है कि जहाँ जनमत मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें हो, वहाँपर हरिजनोके लिए मन्दिर खोल दिये जाये। आज तो यह हालत है कि जहाँ जनमत एक स्वरसे मन्दिर-प्रवेश चाहता है, वहाँ भी मन्दिरोको खोलना असम्भव हो रहा है। इसलिए, जबकि सवर्ण हिन्दू और साथ ही पुजारी भी यह चाहते है, कि अमुक मन्दिरोमे उनके साथ-साथ हरिजनोको भी जाने दिया जाये, तब तो मन्दिरोके सूने हो जानेकी बात किसी तरह उठती ही नही। जब हरिजनोके लिए लोग मन्दिर-प्रवेशकी इजाजत इस प्रकार अपनी राजीखुशीसे देगे, तो मन्दिर तो उनके प्रवेशसे और भी पवित्र हो जायेगे। यह बात देखनेमे भी आ रही है कि जहाँ लोगोने अपने किसी मन्दिरमें हरिजनोको प्रवेशकी आज्ञा दे दी है, वहाँ उस मन्दिरमें न तो पुजारियोने जाना छोडा है और न सवर्ण हिन्दुओने।

हरिजन-सेवामें कटककी महिलाओका योगदान

कटककी श्रीमती रमादेवीने[1] मुझे हिन्दीमे पत्र लिखा है। इस पत्रमे उन्होने कटककी महिलाओ द्वारा हरिजनोमे किये जा रहे सेवा-कार्यका ब्योरा दिया है। मै यहाँ पत्रके कुछ अशोका अनुवाद[2] दे रहा हूँ

> विगत अक्तूबरसे मै सात अन्य बहनोके साथ हरिजनोके बीचमें काम कर रही हूँ। हमने अपना काम कटकतक ही सीमित रखा है। हम सब स्वेच्छया-सेविकाएँ हैं। और हरिजन सेवक सघके आश्रयमे उसके निदेशानुसार अपना कार्य कर रही हैं। अलबत्ता, नगरपालिकासे पुस्तको और दवाओके रूपमे हमे कुछ आर्थिक सहायता मिलती है। इसके सिवा हमे और कोई आर्थिक सहायता नही मिलती। दवाओमे जो कमी रह जाती है उसकी पूर्ति एक स्थानीय कविराज करते हैं। हमने अपनेको भगियोकी चार बस्तियोमे बाँट लिया है; हर बस्तीमे दो-दो बहनें काम करती हैं। हम लड़कियोको लिखने-पढने और गणितकी प्रारम्भिक शिक्षा देती हैं, उन्हे भजन गाना सिखाती हैं और सरल धार्मिक पुस्तके पढकर सुनाती हैं। बीमारोको दवाएँ बाँटती हैं, उनके घरोकी सफाई करती हैं, उनकी विशेष कठिनाइयोकी सूचना समितिको देती हैं, और स्त्रियोको समझाती हैं कि उन्हे गोमास और मुर्दार मास खानेकी आदत छोड देनी चाहिए। हम जब उनसे पहली बार मिले तो वे हमसे डरती-सी थी। उन्हे हमारी बातोका विश्वास ही नही हो रहा था और वे हमें सुनना तक नही चाहती थी। किन्तु धीरे-धीरे हमारे प्रति उनके मनमे जो भयका भाव था वह दूर हो गया और अब तो वे हमारी बात कुछ-कुछ सुनती भी है। कटक की बहनोमें से हमें अब कुछ और स्वयसेविकाएँ मिलनेकी आशा हैं। कुछ लडकियोने तो हमारे साथ काम करना आरम्भ भी कर दिया है।

मै कटककी इन बहनोको इस आवश्यक सुधार-कार्यमे अपनी सेवाएँ अर्पित करनेपर बधाई देता हूँ। हमारे जीवनमे जितना-कुछ पवित्र है और धार्मिक है

१. रमादेवी चौधरी। देखिए "पत्र: रमादेवी चौधरीको" ४-४-१९३३ भी।

२. यहाँ उक्त अग्रेजी अनुवादका हिन्दी अनुवाद ही दिया जा रहा है।

स्त्रियाँ उसकी विशेष रूपसे रक्षा करती है। उनमें स्वभावसे परम्पराकी रक्षा और उसके सग्रहकी वृत्ति होती है, इसलिए जहाँ एक ओर वे अपनी अधविश्वासमूलक आदतोको बहुत धीरे-धीरे छोडती है वहाँ दूसरी ओर वे जीवनमे जो-कुछ पवित्र है और उदात्त है उसे भी आसानीसे नही छोडती। इसलिए इस धर्म-सुधारके सघर्षमे भारतीय नारी-समाजसे आगे बढकर हिस्सा लेनेकी उम्मीद की जा सकती है। इसलिए मै आशा करता हूँ कि कटककी इन बहनोका उदाहरण सक्रामक सिद्ध होगा और श्रीमती रमादेवी तथा उनके साथ काम करनेवाली दूसरी वहनोका यह कार्य उनके मार्गकी सारी कठिनाइयो और निराशाओके बावजूद जारी रहेगा।

और अधिक क्या करूँ?

दक्षिणसे एक सज्जन लिखते है.

> **मैने और मेरे एक मित्रने २० रु० की खादी खरीदकर हरिजन भाइयोंमें बाँट दी है। अस्पृश्यता-निवारणकी एक सभामें मै अध्यक्ष भी हुआ और यह कहते मुझे आनन्द होता है कि मेरे मित्र इस दिशामें काम कर रहे है। इससे अधिक और क्या करूँ?**

यह विचित्र सवाल है। लेकिन उसका अक्षरार्थ ही मैने नही लिया। मै मानता हूँ कि लेखकका यह अभिप्राय नही है कि इतना करके वे कृतकृत्य हो गये है। लेकिन वे कृतकृत्य हुए हो या नही, मेरी रायमे, इतने बडे भगीरथ कार्यमे कोई व्यक्ति अपने थोडे-से पैसे देकर या किसी सभाका अध्यक्ष होकर सन्तोष नही मान सकता। हाँ, उसके पास समय ही न हो तो बात दूसरी है। जब किसीको सुधार की लगन लग जाती है, तब उसे ऐसी सैकडो बाते सूझेगी जिन्हे करके वह हरिजनो की सेवा कर सकता है। लेकिन कोई आदमी खास तौरसे क्या करे, यह बताना मेरा काम नही है। उसे तो हरिजन सेवक सघका सारा कार्यक्रम देख लेना चाहिए और अपने दूसरे कर्तव्योके साथ-साथ उसमे से जो भी बन पडे वह उसे करना चाहिए। सघका कार्यक्रम भी उदाहरणरूप ही है, सर्वांग-सम्पूर्ण नही है। इसलिए अपने स्थानकी विशेष परिस्थितियोसे निपटनेके लिए यदि कोई चाहे तो इस कार्यक्रममे और भी बहुत-कुछ जोडकर उसकी पूर्ति कर सकता है।

यूरोपसे

एक यूरोपवासी मित्रसे प्राप्त एक पत्र नीचे इस खयालसे दे रहा हूँ कि उसे पाठक भी पढ ले[1]।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, २५-३-१९३३

१. यहाँ नही दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था, "आपने मुझे यह याद दिलाकर बहुत ठीक किया कि मैंने आपको समुद्री तार भेजनेमें नाहक इतना सारा पैसा खर्च किया।" उसने वचन दिया था कि वह ऐसी भूल फिर नहीं करेगा और कहा था कि उसने हरिजनोंके लिए पैसा बचाना शुरू कर दिया है।

२०९. ब्राह्मणोंके खिलाफ निन्दात्मक प्रचार

एक बंगाली प्रोफेसरने[1] लम्बा पत्र लिखा है उसमे से निम्न अंश देता हूँ :

> आपको यह जानकर दुःख होगा कि देशके कितने ही भागोंमें अस्पृश्यता-निवारणकी हलचल सही रास्तेसे हट गई है और उसने ब्राह्मणत्व और उसके आदर्शोंके खिलाफ नीच और हिंसक प्रचारकी सूरत अख्तियार कर ली है। ब्राह्मण-समाजको लोगोंकी आँखोंमें गिरानेके लिए आधा व पूरा झूठ जान-बूझकर फैलाया जाता है और लोगोंको भरमाया जाता है। क्या अस्पृश्यता की प्रथा अकेले ब्राह्मणोंमें ही है? क्या दूसरे वर्णोंके हिन्दू भी उतने ही गुनहगार नहीं? मान लीजिये कि शास्त्र ब्राह्मणोंके बनाये हुए हैं; पर ऐसा प्रमाण कहाँ है कि आज जिस तरहकी निर्दय अस्पृश्यता हिन्दुस्तानके कुछ हिस्सोंमें पाली जाती है, उसके लिए शास्त्रकी आज्ञा है?
>
> क्या यह सच नहीं है कि अस्पृश्यता-निवारणकी वर्तमान हलचलको सफल बनानेमें ब्राह्मणोंने बहुत बड़ा हिस्सा लिया है? क्या यह भी सच नहीं है कि (विधान सभाके) जिन सदस्योंने हरिजन-मन्दिर प्रवेश बिलमें बाधा डाली, उनमें से ज्यादातर अब्राह्मण थे? तब, निन्दाकी यह मुहिम ब्राह्मणोंके ही खिलाफ क्यों चलाई जा रही है? वे तो अस्पृश्यताके शापसे पैदा होनेवाली हालतकी गम्भीरताको और लोगोंसे ज्यादा समझते हैं।

देशमे अस्पृश्यता दूर करनेका आन्दोलन शुरू हुआ, उसके बहुत पहलेसे ब्राह्मणो के खिलाफ हलचल शुरू हो गई थी, और कई सालसे चल रही है। इस आन्दोलनको चलानेवाले पत्रो या पत्रिकाओके सिवा और कही मैंने ब्राह्मणत्वके खिलाफ हिंसक या अहिंसक हमले हुए नही देखे। हरिजन सेवक संघका ऐसे आक्षेपोके साथ कोई सरोकार नही है। लेखकका यह कथन बिलकुल सच है कि अगर मुझे पता चले कि अस्पृश्यता-निवारणकी हलचल अपने रास्तेसे हटकर ब्राह्मणत्वके विरुद्ध हीन और हिंसक आक्षेपकी सूरत अख्तियार कर चुकी है तो मुझे दुःख होगा। इसलिए मैंने इन लेखक को लिखा है कि उन्होने जो गभीर बात कही है, उसके समर्थनमे उनके पास जो भी सबूत हो वे मेरे पास भेज दे। मगर इस पत्रके सिलसिलेमें मै ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणोके बारेमे अपनी राय दोहरा देता हूँ।

मै मानता हूँ कि ब्राह्मणत्वका मतलब है ब्रह्मका दर्शन करानेवाला शुद्ध ज्ञान। मेरी यह राय न हो तो मै खुद हिन्दू नाम छोड दूँ। मगर मनुष्य-समाजके दूसरे लोगोके साथ-साथ सब ब्राह्मणोमे भी सच्चा ब्राह्मणत्व नही रहा। फिर भी मुझे

१. आर० आर० चक्रवर्ती; देखिए "पत्र: आर० आर० चक्रवर्तीको", २१-३-१९३३।

मानना पड़ता है कि जगत्के इन तमाम वर्गोमे ज्ञानकी यानी सचाईकी खोज मे सब-कुछ निछावर करनेवालो मे ज्यादासे-ज्यादा ब्राह्मण ही मिलेगे। हिन्दू धर्मके सिवा मैने एक भी ऐसा दूसरा धर्म नही देखा जिसमे सिर्फ ब्रह्मज्ञानकी खातिर स्वेच्छासे अकिंचन बनकर रहनेवाला एक अलग वर्ग पीढी-दर-पीढी चला आया हो।' ब्राह्मणोने अपने लिए जो आदर्श ठहराया था, उसे शोभा देनेवाला जीवन वे कायम न रख सके, इसमे उनका दोष नही। उनकी अपूर्णतासे इतना ही साबित होता है कि वे और मनुष्योकी तरह ही स्खलनशील थे। इसीसे हम धर्मशास्त्रके नामसे पहचाने जाने-वाले ग्रथोमे सडाँध घुसी हुई देखते है। इसीसे हम यह दु खदायी दृश्य देखते है कि जिन ब्राह्मणोने अपने लिए अत्यन्त नि स्वार्थ नियम बनाये है, उन्होने उन शास्त्रोमें अपनी सतानका हित-साधन करनेके लिए कई स्वार्थमूलक नियम भी जोड़ दिये है। लेकिन सडाँधके खिलाफ और स्वार्थपूर्ण क्षेपकोके खिलाफ विद्रोह करनेवाले भी ब्राह्मण ही थे। उन्होने ही बार-बार अपने और समाजके पाप धो डालनेकी कोशिशें की है। मै मंजूर करता हूँ कि मेरे मनमे ब्राह्मणत्वके लिए सर्वाधिक पूज्य भाव है और मन-ही-मन मै ब्राह्मणोका आदर करता हूँ। और यद्यपि यह देखकर मुझे दु ख होता है कि ब्राह्मण कहलानेवाले लोग इस सुधारके आन्दोलनके खिलाफ धाँधली मचा रहे हैं और अपनी शक्तिको विरोधी पक्षमे लगा रहे हैं। फिर भी एक बातसे मुझे तसल्ली होती है और हरएक निष्पक्ष हिन्दूको तसल्ली होगी कि सुधार-आन्दोलनके नेताओमे भी ऐसे लोग है, जो जन्मसे ब्राह्मण होकर भी जन्मका जरा भी अभिमान नही रखते। अस्पृश्यता-निवारणका काम करनेवाले सब सेवकोकी गिनती की जाये, तो यह जान पड़ेगा कि किसी भी तरहका पारिश्रमिक लिये बिना या उदर-पोषणके लिए जितना जरूरी है केवल उतना ही लेकर अपनी सारी ताकत इस हलचलमे लगा देनेवाले सेवकोमे बड़ा भाग ब्राह्मणोका ही है। लेकिन मै मानता हूँ कि ब्राह्मण वर्गका पतन हुआ है। ऐसा न होता और उन्होने अपने घोषित आदर्शोंका पालन किया होता तो हिन्दू धर्मकी आज जो अवनति हुई है वह न हुई होती। यह कहना कि ब्राह्मणोने अपना जीवन शुद्ध रखा है फिर भी हिन्दू धर्म आज इस हालतमें आ पडा है, परस्पर विरोधी बात समझी जायेगी। ऐसा हो ही नही सकता, क्योकि ब्राह्मणोने स्वयं ही हमे सिखाया है कि वे ब्रह्मज्ञानके सच्चे रक्षक है और जहाँ ब्रह्मज्ञान है वहाँ भय नहीं होता, गरीबी नही होती, ऊँच-नीचका भाव नहीं होता, वहाँ लालच, ईर्ष्या-द्वेष, लड़ाई, झगड़े और लूट-खसोट जैसी चीजे नही होती। ब्राह्मणत्वकी अवनति के साथ ही दूसरे वर्णके हिन्दू भी नीचे गिर गये। और मेरे मनमे जरा भी सन्देह नही कि ब्राह्मणत्व पुनरुज्जीवित न हुआ तो हिन्दू धर्म मिट जायेगा। अस्पृश्यताकी बुराई का जड़मूलसे मिटना, मेरी समझसे, ब्राह्मणत्वके यानी हिन्दू धर्मके फिरसे जीवित होनेकी अचूक कसौटी है। जैसे-जैसे मै हिन्दू धर्मशास्त्रोका ज्यादा अध्ययन करता जाता हूँ और सभी तरहके ब्राह्मणोके साथ उनकी चर्चा करता जाता हूँ, वैसे-वैसे मेरा यह विश्वास बढ़ता जाता है कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मपर बडे-से-बड़ा कलंक है। इस विश्वासका बहुत-से विद्वान् ब्राह्मणोने समर्थन किया है। इन विद्वानोका इसमे कुछ भी स्वार्थ नही है। वे तो सत्यकी खोजके लिए समर्पित हैं। उन्हे इससे कुछ मिलता

नही, अपनी रायके लिए धन्यवादतक नही। पर आज ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोरे नाम ही रह गये है। वर्णकी संस्थाका मै जो अर्थ करता हूँ उसकी दृष्टिसे और जैसा कि इसी पत्रमे मै समझा चुका हूँ आज तो वर्णका पूरी तरह सकर हो गया है। मै तो चाहता हूँ कि आज तमाम हिन्दू स्वेच्छासे शूद्र नाम धारण कर ले। ब्राह्मणत्वमे रहनेवाली सचाईका दुनियाको दर्शन कराने और वर्ण-धर्मके सच्चे स्वरूपका पुनरुद्धार करनेका यह एक ही रास्ता है। सब हिन्दुओके शूद्र माने जानेसे ज्ञान, शक्ति और सम्पत्ति मिट नही जायेगी, बल्कि वे सब एक सम्प्रदायकी सेवामें काम न आकर सचाई और मानव-जातिकी सेवामे काम आयेंगी। कुछ भी हो, अस्पृश्यताके खिलाफ लड़ाई चलानेमें और इस लड़ाईमे अपनेको होम देनेमे मेरी महत्त्वाकाक्षा सारे मनुष्य-समाजका नवजीवन देखनेकी है। यह निरा सपना हो सकता है, सीपमे चाँदी देखने-जैसा कोरा भ्रम भी हो सकता है। किन्तु जबतक यह सपना चल रहा है, तब तक मेरी दृष्टिमे वह खाली भ्रम नहीं है। और रोमाँ रोलाँके शब्दोमे कहूँ तो 'जीत ध्येय तक पहुँचनेमे नही, बल्कि उसके लिए अथक साधना करनेमें है।'

[अग्रेजीसे]
हरिजन, २५-३-१९३३

२१०. आदर्श हरिजन-शिक्षक

मुझसे समय-समयपर पूछा जाता है कि हरिजन-शिक्षकसे मेरी क्या अपेक्षाएँ है। मै स्वीकार करता हूँ कि मेरी कसौटी बहुत कडी है, पर अनुभवसे मालूम होगा कि स्वेच्छापूर्वक काम करनेवाले के लिए यह कसौटी उतनी कठिन नही है। इसके अतिरिक्त, यदि यह मान लिया जाये कि इस आन्दोलनके पीछे केवल धार्मिक भावना ही काम कर रही है, तो मेरी कसौटी ही असली कसौटी हो सकती है। मै यह भी बता दूँ कि कई वर्ष हुए, चम्पारनमे पूरी सफलताके साथ मैंने यह प्रयोग करके देखा था। मै चम्पारनमे कुछ ही समय तक ठहरा था[1], इसलिए यह प्रयोग जारी नही रखा जा सका और जिन स्वयसेवकोने इस कार्यके लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की थी उन्होने इसका प्रारम्भ-मात्र ही करनेका जिम्मा लिया था। इसके पीछे मूल आशय तो यह था कि हम जैसे चाहते है उस तरहके शिक्षक सम्बन्धित क्षेत्रोमे ही तैयार कर लिये जायें।

अब मै सक्षेपमें उन शिक्षकों और अपने प्रयोगका वर्णन कर दूँ।

शिक्षकोमें अवन्तिकाबाई गोखले, आनन्दीबाई, वैशम्पायन, कस्तूरबाई गाधी, मणिबहन पारिख, धरणीधर बाबू, नरहरि परीख, बाबा साहब सोमण, छोटेलाल जैन और देवदास गाधी थे।

वे सभी अपनी-अपनी जिम्मेवारी समझनेवाले लोग थे। इनमें से कुछ वकील और स्नातक भी थे। इनमें कोई भी प्रशिक्षण-प्राप्त शिक्षक न था। और ज्यादातर

१. देखिए खण्ड १३ और १४ तथा खण्ड ३९, पृष्ठ ३१७-९ भी।

तो, सिवा इसके कि टूटी-फूटी भाषासे अपना अभिप्राय दूसरोको समझा सके, हिन्दीसे अनभिज्ञ थे। कस्तूरबाई गाधी तो अपढ ही थी, पर उत्साहमे किसी शिक्षकसे पीछे न थी। चार-पाँच गाँवोमे ये सब शिक्षक फैले हुए थे। इस समय गाँवोकी ठीक-ठीक सख्या तो मै भूल गया हूँ। पढाईका प्रारम्भ उन्हे बच्चोसे करके अन्तमे प्रौढ स्त्री-पुरुषोको भी शिक्षा देनी थी। लिखना, पढना और हिसाब जोड़ना यह सब तो उस शिक्षाका एक अग-मात्र था। उनके स्वास्थ्य और चरित्रकी ओर भी उन्हे खास ध्यान रखना पडता था। शिक्षकगण किसी भी कारण उन्हे शारीरिक दण्ड नही दे सकते थे। उनसे खेल-कूदकी तरह मनोरजक ढगसे काम कराना था। बच्चोसे—बालको और बालिकाओ दोनोसे—इस तरह काम लेना मना था जिससे वे ऊब-थक जाये। प्रत्येक लडके-लडकीकी आँखे, कान, दाँत, बाल, नाखून आदि साफ है या नही, यह जाँच करना और आवश्यकतानुसार उन्हे साफ कर देना शिक्षकका यह प्रथम कर्तव्य था। बच्चोको सफाईसे रहना सिखाना और इस बातका ध्यान रखना कि वे एक-दूसरेके प्रति उचित व्यवहार करे और आपसमे गन्दी जबानका प्रयोग न करे, यह भी शिक्षकका कर्तव्य था।

यहाँ एक बात मै और बता देना चाहता हूँ कि हिन्दी न जाननेवाले शिक्षक बच्चोसे ही हिन्दी सीखते थे। वैसे उन्हे इतनी कम हिन्दी आती थी कि वे केवल इतना ही देख सकते थे कि बच्चे वर्णमाला ठीक-ठीक लिख रहे है या नहीं और यथाक्रम गिनती गिन रहे है या नही। असली बात तो यह थी कि पाठशालाके आसपास सस्कृतिका वातावरण उत्पन्न किया जाये।

घरेलू काम-काजके लिए शिक्षकोको नौकर नही दिये गये थे, रसोई बनाना, कपडे धोना आदि काम उन्हे स्वय करने पड़ते थे। जहाँ मकान न थे, वहाँ बाँसके झोपड़े बनानेमे उन्हे मदद करनी पड़ती थी। साफ खुली जगह पसन्द की जाती थी, और मेरी रायमे, सीधी-सादी ग्रामीण कलाका ही अधिक उपयोग किया जाता था। टीनकी चद्दरोके मकानो और गोबरके ढेरोसे तो हम दूर ही रहते थे। एक जगह अपनी पाठशालाके लिए हमे एक मन्दिर मिल गया था। हर जगह पाठशाला तो गाँववालो के लिए एक गौरवकी चीज और सस्कृतिका केन्द्र बन गई थी।

मगर वयस्क और प्रौढ़ स्त्री-पुरुषो पर भी पाठशालाको अपना प्रत्यक्ष प्रभाव डालना था। उन्हे चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता दी जाती थी और इस तरह उन्हे स्वच्छता और स्वास्थ्य आदिके पदार्थ-पाठ मिल जाते थे। शिक्षकोके रहनेके मकान, पाठशालाओके नजदीक ही होते थे—या कहीं-कही तो दोनो एक ही साथ होते थे—जो गाँवके दवाखानेका भी काम देते थे। वहाँ कुनैन, जुलाब के लिए अंडीका तेल और मरहम-पट्टीका सामान रखा रहता थे। बद्धकोष्ठ, मलेरिया और छोटे-छोटे घाव-फोड़ो का उन्हे उपचार करना पड़ता था। भारत-सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इडिया सोसाइटी)के स्वर्गीय डॉ० देवके प्रबन्धमे ये औषधालय खोले गये थे। सेवाके इस विभागका वे स्वयं निरीक्षण करते और गम्भीर रूपसे बीमार तमाम रोगियोको देखते थे। ग्रामीणोके घरोमे जा-जाकर स्वेच्छासे दी हुई सहायतासे उन्होने कुछ ही सप्ताहोमें

कूडे-करकट और गोबरके ढेरोसे भरे हुए छोटेसे भीतिहरवा गाँवको स्वच्छ और रमणीय गाँवमें परिणत कर दिया, और जहाँतक मुझे याद पड़ता है, इसमे एक पैसेका भी व्यय नही हुआ। डॉ० देव केवल इस कार्यके निरीक्षक ही नही थे, बल्कि खुद फावड़ा और कुदाली हाथमे लेकर काम करनेवाले श्रमिकोमें प्रमुख थे।

डॉ० देवने भीतिहरवामे जो-कुछ स्वय किया, थोडी-बहुत सफलताके साथ वही काम शिक्षकोने अन्य गाँवोमे किया। गाँवकी सडके और घर साफ किये गये। लोगो की सहमतिसे उनके झोपडोमें जा-जाकर पहले उनके छोटे-छोटे आँगनोको साफ किया गया। शिक्षकोको ग्रामीणोके साथ हिलमिल जाना था, उनके दु ख-दर्दका साथी बनना था और उन्हे — भारतके उस अज्ञात भागमें रहनेवाले लोगोको जो कभी जनक और सीताकी भूमि था किन्तु जो आज मलेरिया और अन्धविश्वासोसे जर्जर था — स्वास्थ्य और सुखका रास्ता दिखाना था। सभ्य ससारसे परे इस भीतिहरवा गाँवमें कस्तूरबाईको पता चला कि बहुत-सी स्त्रियोके पास अपना तन ढकनेके लिए सिवाय एक फटी-पुरानी साडीके और कोई कपडा नही है। जब एक गरीब, किन्तु गरिमापूर्ण महिलाको नम्रतापूर्वक नित्य नहानेकी सलाह दी गई, तो उसने तेज पडकर कहा — "पहले मेरे घरमे चलिए, और वहाँ देखिए कि मेरे पास बदलनेके लिए साडी है भी या नहीं, और उसके बाद कोई सलाह दीजिए। क्या किसी स्त्रीसे नग्न होकर नहाने की आप आशा रखती है?" इस विषयमे और कुछ कहा ही नही जा सकता था। जब मैंने इस दर्दनाक कहानीको सुना तो मै लज्जा और दु खमें डूब गया और मेरा हृदय रो उठा।

अब अधिक विवरण देनेकी आवश्यकता नही है। हरिजनोके भावी शिक्षक इस ब्योरेको स्वय सरलतासे पूरा कर सकते है।

भारतीय ग्रामोका यही मेरा प्रथम सजीव अनुभव था; अत गाँवकी पाठशालाओमे यही मेरा प्रथम प्रयोग भी हुआ। उस समयसे अबतक पन्द्रह वर्ष बीत गये है। मेरा अनुभव तबसे बहुत-कुछ बढ गया है। इन वर्षोंमे मैंने सैकडो गाँव देखे है। मेरा विचार है कि १९१७ की अपेक्षा अब मै उनकी आवश्यकताओको कही अधिक अच्छी तरह समझ सकता हूँ। अत हरिजनोकी आदर्श पाठशालामे मैं दस्तकारी भी जोडना चाहता हूँ और उसका प्रारम्भ कातने तथा रुईकी अन्य क्रियाओसे तो होगा ही। वयस्को और प्रौढो तथा बच्चोके लिए भी रात्रि-पाठशालाएँ खुलवाना मै पसन्द करूँगा। एकदमसे भारी सफलताकी मैं आशा नही करता और न आधी-तूफानके समान कार्य किये जानेका ही प्रयत्न मै करूँगा। इसके विपरीत, नम्रतापूर्वक और अपने उद्देश्यमे अनन्त श्रद्धा रखकर ही मैं काममे हाथ लगाऊँगा। बच्चो और माता-पिताओ पर शासन करनेका स्वप्न देखनेके पहले, मै अपने ऊपर उन्हें शासन करने दूंगा। मै अपनेको प्रेमपूर्वक उनका सेवक होनेके योग्य बनाऊँगा। और मनमे अटल विश्वास रखूंगा कि अन्तमे मै उनपर नही, बल्कि उनके हृदयो पर शासन करूँगा। दो सहयोगी कार्यकर्ताओके सामने, जिनमे एक हाईकोर्टके वकील है और दूसरी एक सुशिक्षित बहन है, मैंने इस योजनाका खाका खीच भी दिया है। दोनो ही जानना चाहते थे कि वे सेवा-कार्य तत्काल कैसे प्रारम्भ करे। मैंने उनको पूरे आधे-आधे घटेका समय देकर

आदर्श शिक्षक वननेको आमन्त्रित किया। अव मै इसी तरह प्रत्येक हरिजन-सेवकको, जिसे कार्यकी आवश्यकता हो, आमन्त्रित करता हूँ। मै कोई वेतन नही देना चाहता, पर जो लोग गाँवोका पता नही लगा सकते, उन्हे गाँव वता देनेका भार मै अपने ऊपर लेता हूँ। प्रत्येकको अपना व्यय स्वय उठाना पडेगा, और यदि वह अत्यन्त दरिद्र है, तो उसे अपने मित्रोसे भिक्षा माँगनी होगी। शिक्षकको हरिजनोके समान ही रहना होगा। अत· अधिक व्ययकी आवश्यकता ही नही होगी। हरिजनो द्वारा दिये गये किसी भी वरामदे या खुली जगहमे पाठशाला होगी। "जहाँ चाह वहाँ राह।"

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-३-१९३३

२११. औंध राज्य और अस्पृश्यता

औंध-निवासी प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पण्डित सातवलेकरसे मैने औध राज्यके अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनसे सम्वन्धित तथ्य वतानेका अनुरोध किया था और उसके सम्वन्धमे मुझे अखवारोमे भी खवरे देखनेको मिली थी। पण्डित सातवलेकरके पत्रमे पिछले दस वर्षोमें इस आन्दोलनकी प्रगतिका विवरण देते हुए यह भी वताया गया है कि सुधारकोके मार्गमे कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ है। नीचे उनके हिन्दी पत्रका (अंग्रेजी) अनुवाद सक्षिप्त रूपमे दे रहा हूँ·

> इस राज्यमे ७२ गाँव है। राजा प्रगतिशील विचारोवाले एक ब्राह्मण है, और वे अस्पृश्यताको मिटाना चाहते है। दस साल पूर्व उन्होने तथाकथित अस्पृश्योको निम्नलिखित तीन शर्तें पूरी करनेके लिए आमन्त्रित किया, ताकि वे यह घोषणा कर सके कि वे अन्य हिन्दुओके बराबरीके दर्जेके है और उन्हे मन्दिर-प्रवेशका अधिकार है:
>
> १. मरे पशुओका मास खाना छोडना,
> २ जूठन खाना वन्द करना,
> ३ प्रतिदिन स्नान करना।
>
> इन सीधी-सादी शर्तोंकी घोषणा सभी गाँवोमे की गई। मगर उसपर कोई उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया नही हुई। प्रत्येक गाँवसे प्राय यही उत्तर मिला:
>
> १ मरे हुए पशुओका मास खाना छोडना हमारे लिए कठिन है, क्योकि वह हमे मुफ्तमे मिलता है। अगर हमे मरे पशुओके मासके वदले स्वच्छ मास दिया जाये तो हम उसे छोड सकते है।
>
> २. जूठन खाना तो हम वडी खुशीसे छोड़ देगे, लेकिन वदलेमे स्वच्छ भोजन तो दीजिए।
>
> ३ नहाने-धोनेके लिए काफी पानी नही मिलता।
>
> ४ मन्दिर-प्रवेशके सम्वन्धमे हम उदासीन है।

सो वातको वही छोड दिया गया। और तव अस्पृश्यता-उन्मूलनके जवरदस्त हिमायती श्रीयुत वी० आर० शिन्दे आगे आये। वे उनके घरोमे जा-जाकर उनसे मिले और उन्होने उनसे राजा द्वारा रखे गये प्रस्तावका लाभ उठानेका अनुरोध किया। उन्होने उनसे हरिजनोके वीच वरती जानेवाली अस्पृश्यताको छोडनेका भी अनुरोध किया। किन्तु, उन्होने इसपर भी कान नही दिया।

इसके वाद मैंने गाँवकी सफाईका कार्यक्रम शुरू किया। हम प्रतिदिन सुवह गाते हुए प्रभात फेरीको निकलते और जो लोग सफाईके प्रति उदासीन थे उनके घरोके आँगन और आसपासके हिस्से साफ करनेके लिए अपनी सेवाएँ उनके सामने प्रस्तुत करते थे। परिणाम किसी हदतक उत्साहवर्धक रहा। भंगीका काम करनेवालो के सामने हम सावुन और नहाने-धोनेकी अन्य सुविधाएँ हाजिर करते थे। लेकिन उनका कहना था कि उन्हे तो एक गन्दे पेशेसे अपनी जीविका कमानी है, इसलिए उनसे इस तरह साफ रहनेकी अपेक्षा रखना ज्यादती है।

फिर हमने भजनो, कथाओ और विशेष मेलोका आयोजन करके प्रचार कार्य शुरू किया। हरिजनोको धर्मग्रन्थोसे परिचित करानेके लिए विशेष कक्षाएँ शुरू की गई। दो-दो शिक्षको — एक अस्पृश्य और एक स्पृश्य — को लेकर उन्हे पढना, लिखना और हिसाव जोडना सिखानेके लिए पाठशालाएँ खोली गईं। कोई भी वयस्क-प्रौढ व्यक्ति तो उनमे पढने नही आया, लेकिन बच्चे आये और अव भी आ रहे है।

आज क्या स्थिति है, उसका विवरण इस प्रकार है:

राज्यकी ओरसे चलाई जानेवाली पाठशालाओमे सभीको पढनेकी सुविधा है और हरिजन लोग इस सुविधाका लाभ भी उठा रहे है। हरिजनोको नहाकर मन्दिर जानेकी भी छूट है और वे इस तरह जाते भी है।

पिछले अक्तूवरमें एक स्वास्थ्य-दिवसका आयोजन किया गया था। हर हरिजन वस्तीमे स्वयसेवक रखे गये और राजाने उदारतापूर्वक यह घोषणा की कि जिनके घर और उनके आसपासके हिस्से स्वच्छताकी कसौटीपर खरे उतरेंगे उन्हे पुरस्कार दिया जायेगा। निश्चित दिवसके केवल महीने-भर पहलेसे लग-जुट कर काम किया गया तो सव-कुछ आश्चर्यजनक रूपसे वदल गया। हर गली और हर हरिजन वस्ती सफाईका नमूना वन गई। सच तो यह है कि औंधके वहुत-से हरिजनोके घर ब्राह्मणोके घरोसे भी साफ दिखने लगे। महाविभवने रानी साहिवाके साथ हर वस्तीका निरीक्षण किया और केवल औंधमे ही १०५ पुरस्कार दिये गये, जिनमे से आधे हरिजनोने जीते। रानी साहिवाने हर हरिजनके घरमे जा-जाकर उनके घरेलू इस्तेमालके सामान और जरूरतोके वारेमें पूछताछ की। हरिजन महिलाओने अपने हाथोसे उनके भालपर सौभाग्य-कुंकुम लगाकर उनको सम्मानित किया।

इससे आम तौरपर सारे राज्यमे जागृति आ गई। २६ अक्तूवरको भवानी मन्दिरमे पुरस्कार-वितरणके लिए एक सभाका आयोजन किया गया। उसमे वहुत-से स्पृश्य लोग भी शामिल हुए।

हरिजन लोग राजमहलमे वेरोक-टोक जा सकते है और रानी साहिवा तथा उनकी लडकियाँ अकसर हरिजनोके विवाहोत्सवोमे शरीक होती है। राजा साहवने एक हरिजन चमारको उच्च वर्णके लोगोकी एक वस्तीमे दुकान खोलनेकी इजाजत दी है। १४ जनवरीको, सक्रान्तिके शुभ दिनपर, रानी साहिवाने हरिजन महिलाओको राजमहलमे निमन्त्रित किया और उन्हे सक्रान्तिका उपहार दिया। एक प्रसिद्ध मन्दिरमे एक हरिजन कथाकारने प्रवचन किया। उसमे वहुत-से सवर्ण हिन्दू भी आये थे।

इसलिए जहाँतक औध राज्यका सम्बन्ध है, मै कह सकता हूँ कि यहाँ अस्पृश्यताको मान्यता नही दी जाती। लेकिन हरिजनो या सवर्ण हिन्दुओमे से किसीने भी इसका पूरा लाभ नही उठाया है। मै अपना मतलब स्पष्ट कर दूँ। इस सुधारके विरोधियोमे अधिकाश लोग ब्राह्मणेतर जातियोके ही है। खुद मेरे छापेखानेमे छ हरिजन मजदूर है। इनमे से जो महार जातिका है वह अपनेको शेष पाँचोसे, जो माग जातिके है, श्रेष्ठ मानता है। जव वे सब मेरे घर खानेको बैठते है तो एक पगतमे नही बैठते।

शहरोमे तो अस्पृश्यता मिट रही है, लेकिन गाँवोकी बात अव भी कठिन ही दिखाई देती है। इस प्रसगमे मुझे फिर मरे ढोरोका मास खानेके चलनकी चर्चा करनी पडेगी। उसका नतीजा वहुत बुरा हुआ है। यह हरिजनो तथा सवर्णोके बीच एक अभेद्य दीवारकी तरह खडा जान पडता है। इसके कारण अकसर झगडे हुए है और कभी खून-खराबी भी हो सकती है। वजह यह है है कि हरिजन लोग गायो, भैंसो और बैलोको जहर देते हिचकते नही है और इससे गरीब किसानोकी बडी तवाही होती है। वे सोचने लगते है कि इन गो-हत्यारोसे उनका सम्पर्क भला कैसे हो सकता है। पिछले साल चार महीनेके दौरान १२४ पशुओको जहर देनेकी वारदाते हुई, जिससे इस अपराधको रोकनेके लिए कानून मे विशेष धारा जोडनी पडी।

मेरा अनुरोध है कि आप भावी कार्यके सम्बन्धमे हमारा मार्ग-दर्शन करनेकी कृपा करे।

औध राज्यमे चल रहे अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका यह एक सच्चा विवरण है, जिससे वहुत-कुछ जाना-सीखा जा सकता है। पण्डित सातवलेकर अजस्र उत्साहसे काम करते जानेवाले एक पुराने, मौन सुधारक है। वे सस्कृतके बहुत वडे विद्वान् है और वेदोके प्रचार-प्रसारको उन्होने अपना जीवनोद्देश्य वनाया है। औधके राजा बडे उदारमना है और अपने राज्यसे अस्पृश्यताको मिटानेके लिए वे और रानी साहिबा बधाईके पात्र है। यद्यपि औधमे परिस्थितियाँ बहुत अनुकूल रही है, फिर भी सुधारकी गति वहुत धीमी रही है। प्रगति तो डगमगाती हुई धीमे-धीमे ही होती है और, वह सुधारकके धैर्यकी कडी परीक्षा लेती है। पण्डित सातवलेकरने सुझाव देनेको कहा है। वहाँ सारा कार्य इतने सम्यक् ढगसे किया गया है कि मै तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि श्रद्धाके साथ काममे लगे रहिए, सफलता निश्चय ही मिलेगी।

मुझे यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि पशुओको जहर देनेवाले हरिजनों पर मुझे तनिक भी क्रोध नही है, हमने जैसा बोया, अब वैसा ही काट रहे हैं। यह तो हो ही नही सकता कि हम समाजके किसी एक अंगकी उपेक्षा करे तो पूरे समाजकी क्षति न हो। हमने कर्मके महान् सिद्धान्तका सर्वथा गलत अर्थ लगाकर हरिजनोको लगभग उनके भाग्यके भरोसे छोड़ दिया है। उन्हे हमने अपर्याप्त पारिश्रमिकपर हमारे लिए मेहनत-मशक्कत करनेकी स्थितिमे डाल दिया है। और यह जाननेकी कभी चिन्ता ही नही की कि वे कैसे रहते-सहते हैं। आश्चर्य यही है कि वे, जैसा वर्णन किया गया है, उससे भी ज्यादा बुरे क्यो नही हो गये हैं।

उनको मरे ढोरोंका मांस खानसे विमुख करनेका मैंने एकमात्र अचूक उपाय सुझाया है। सभी मरे ढोरोको राज्यकी सम्पत्ति करार देना चाहिए और उनको ठिकाने लगानेकी सभी क्रियाएँ विश्वस्त अधिकारियोंकी देखरेखमे की जानी चाहिए। जो हरिजन उन पशुओकी खाल उतारने और उनके शरीरोके अलग-अलग हिस्सोको निर्देशानुसार हटानेको खुशी-खुशी तैयार हो, उन्हे उचित मजदूरी दी जानी चाहिए। फिर न कोई झगड़ा होगा, न ढोरोंको जहर दिया जायेगा, और न कोई मरे ढोरोका मांस ही खायेगा। मरे ढोरोकी खाल और शरीरके दूसरे हिस्सोसे होनेवाली सारी आमदनीको हरिजनोके लाभके लिए खर्च किये जानेके लिए अलग रख देना चाहिए। इस प्रकार राज्यपर भी ऐसी शका करनेकी गुंजाइश नही रह जायेगी कि वह लोगोका शोषण करता है।

अधिक मार्ग-दर्शनके इच्छुक लोगोको मेरा सुझाव यह है कि वे गत सप्ताहके 'हरिजन' मे प्रकाशित मेरा लेख "मरे ढोरोका निवटारा"[1] ध्यानसे पढ़ें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-३-१९३३

२१२. तार : जॉर्ज लैन्सबरीको

२५ मार्च, १९३३

सेवामे
परम माननीय लैंसबरी
वो, लन्दन

मेरी समवेदना।[2]

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग-४, पृ० २०१

१. देखिए "मरे ढोरोंका निबटारा", १२-३-१९३३।
२. लैन्सबरीकी पत्नीके निधनपर।

२१३. पत्र : बर्नार्डको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय बर्नार्ड,

अगर मैंने अपना हस्ताक्षर 'मो० क० गांधी' किया है तो मेरा खयाल है, निश्चय ही इस बातसे रौब खाकर किया गया होगा कि अब तो तुम जल्दी ही वकालत शुरू करने जा रहे हो।[1] जबतक तुम एक कतैया और बुनकर, बोतलोकी सफाई करनेवाले और दरबान बने रहते हो तबतक तो मैं अपनेको तुम्हारा 'बापू' कहनेकी जुर्रत कर सकता हूँ, लेकिन गाउन धारण करके वकालत करनेवाला वकील तो कुछ और ही चीज हो जाता है। मुझे इस बातकी खुशी है कि अगर सभी वकीलोका नही तो, कमसे-कम तुम्हारा सौभाग्य उत्पादकोके सौभाग्यसे जुडा हुआ है। उनके बीच झगडे भडकाकर और फिर आपसमे समझौता करानेका स्वांग रचकर तुम शौकसे उनके उत्पादनमे से एक समुचित अंशके भागीदार बनो। तुम उनके झगडो और गरीबीपर फूलो-फलो, इससे अच्छा तो यही है कि केवल उनके झगडोपर फूलो-फलो।

फ्लोरेसके[2] बारेमे तो तुमने बुरी खबर दी। अब समझ गया कि क्या कारण है कि उसने इधर कोई पत्र नही लिखा है। तो तुम पतिके रूपमे अपनी पहली परीक्षामे विफल हो गये हो। आशा करनी चाहिए कि अगली बार विफल न होगे और बेचारी फ्लोरेसको एक मच्छरदानी देनेमे आना-कानी नही करोगे।

उन्हे डाकुओने मार डाला — यह कैसी दारुण बात है। डॉ० विष्णुराम[3] कहाँ और कैसे मारे गये और उनकी हत्याका कारण क्या था?

मै तो इस विषयमे तुम्हारी तरह आश्वस्त नही हूँ कि अगर तुम्हारा कर्ज चुक गया तो तुम खुशी-खुशी मर सकोगे। कारण, मेरी निश्चित मान्यता है कि एक कर्जके उतरते ही दूसरा सिरपर चढ जायेगा, क्योकि क्या अन्तहीन कर्तव्योका ही दूसरा नाम जीवन नही है? और मुझे पूरा विश्वास है कि तुम उन कर्तव्योके समुचित निर्वाहके लिए जीना चाहोगे, हाँ, अगर तुम मेरी तरह, जैसा कि मेरे-कुछ आलोचक कहेगे, 'आमरण अनशन' का शौक लगा लो, तो दूसरी बात है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०७०६) से।

१. गांधीजी ने बर्नार्डको लिखे अपने पत्रमें मो० क० गांधी हस्ताक्षर किये थे, जिसपर उन्होंने गांधीजी से शिकायत की थी।

२. बर्नार्डकी पत्नी, जो इन दिनों ज्वरसे पीड़ित थीं।

३. फ्लोरेंसके 'अंकल'।

२१४. पत्र: सत्येन्द्रनाथ गांगुलीको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरी दृष्टिमें तो ईश्वर और सत्य दोनों एक ही हैं, और ईश्वरको हम जितने भी नामोंसे जानते हैं, उनमें से सत्य ही मुझे सदैव उसका सबसे उपयुक्त नाम प्रतीत हुआ है। और मेरे लिए निस्स्वार्थ सेवा ही ध्यान और समाधि है, जबकि तथाकथित समाधि एक प्रकारका भोग हो सकती है। मेरे लिए ईश्वर निराकार है और इसलिए ईश्वरकी मेरी कल्पनामें उसका कोई आकार नहीं है। अगर आप मेरी बातोंको ध्यानमें रखकर 'भगवद्गीता' का अध्ययन करें और उसकी मैंने जो व्याख्या आपके सामने प्रस्तुत करनेकी कोशिश की है उसके अनुसार आचरण करें, तो मेरा खयाल है कि मैं जो-कुछ कह रहा हूँ, उसके मर्मको आप समझ जायेंगे।

भारतमें तो कभी और कहीं भी शुद्ध जैतूनका तेल आपको शायद ही मिले। मुझे बताया गया है कि कश्मीरमें जैतूनके पेड हैं और वहाँ उसका तेल पेरा जाता है। मैंने कभी देखा नहीं है। जैतूनका तेल आम तौरपर दवा-फरोशोंके यहाँ मिलता है। मगर वह अकसर साल-साल भर पुराना होता है—छ महीनेसे कम पुराना तो कभी नहीं। इसलिए मैं अब ऐसा नहीं मानता कि वह दूधका विकल्प हो सकता है। सो आप स्वतन्त्र आहारके रूपमें जैतूनके तेलका खयाल अपने मनसे निकाल दें तो हर्ज नहीं। चिकित्सकोंका कहना है कि ताजा तिलका तेल, जो हमें भारतमें खूब मिल सकता है, जैतूनके तेलका अच्छा विकल्प है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सत्येन्द्रनाथ गांगुली
डाकघर—जमालपुर
मैमनसिंह

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७०७) से।

२१५. पत्र : अब्दुर्रहीमको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय प्रोफेसर,

आपके इसी १४ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। मैं आपकी यह बात पूरी तरह मानता हूँ कि सही चीज तो यह है कि स्पृश्यो और अस्पृश्योका भेद बिलकुल मिटा देना चाहिए और दोनोके लिए सामान्य नाम 'हिन्दू'का ही प्रयोग करना चाहिए। लेकिन जबतक अस्पृश्योको स्पृश्योसे अलग दिखाना है तबतक तो निश्चय ही बेहतर यही है कि-अस्पृश्योके लिए किसी बुरा लगनेवाले नामके बजाय ऐसे नामका प्रयोग किया जाये जिसमे बुरा लगनेकी कोई बात न हो। अपने कर्तव्यकी ओरसे विमुख या असस्कृत पुत्र अपनी माँको 'बापकी पत्नी' कहकर पुकार सकता है, किन्तु कर्तव्यनिष्ठ और सुसस्कृत पुत्र तो उसे आदरपूर्वक 'माँ' ही कहेगा।

मन्दिर-प्रवेशपर जरूरतसे ज्यादा जोर दिये जानेकी बातके सम्बन्धमे मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। लेकिन फिर आप मेरी इस बातसे सहमत होनेमे कोई हर्ज नही समझेगे कि अगर अस्पृश्योको हिन्दू समाजका अभिन्न अग और सवर्ण हिन्दुओको बराबरीका साझेदार बनना है तो उनके लिए मन्दिर-प्रवेश आवश्यक है।

अब आपके तीसरे प्रश्नके बारेमे। यो तो गैर-हिन्दुओ द्वारा जितनी भी सहायता मिले, सब स्वागत करने योग्य होगी, लेकिन प्रायश्चित्त तो उन्हीको करना है जिन्होने पाप किया है। हरिजनोको मन्दिर-प्रवेशका पवित्र अधिकार उन्ही लोगोको देना है जिन्होने उनसे उसे छीना है, किन्तु निश्चय ही मैं यह बात बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि धर्मकी स्वभाविक सीमा कहाँतक है। मैं इसमे किसी तरहके राजनीतिक मतभेद या राजनीतिक शोषणके प्रश्नको बिलकुल नही उठने दूंगा। मेरे लिए यह विशुद्ध रूपसे एक नैतिक और धार्मिक प्रश्न ही है।

हृदयसे आपका,

प्रो० अब्दुर्रहीम
डेल्टा हाउस, ७७/६०, बाँडेल रोड
बालीगज, कलकत्ता

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७०३) से।

२१६. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुम्हारे कई पत्र मिले — सब आज ही। पजाबमे विभिन्न सगठनोसे तुम्हे जो उत्तर मिले उन्हे मै जानना चाहूँगा। पहले चाहे जो हुआ हो, हमे 'पजाब एलिएनेशन अधिनियम' के सम्बन्धमे चुप नही बैठना है। लेकिन सबसे पहले तो हमें उसका पूरा पाठ मिलना चाहिए।

जहाँतक कोषकी रकम खर्च करनेका प्रश्न है, मैं यह चाहता हूँ कि 'हरिजन' मे इसके सम्बन्धमें चर्चा चलाऊँ और उसके बाद ही कोई निश्चित नीति तैयार की जाये। अगले रविवारके गुजराती सस्करणमे मेरा लेख[1] देखोगे और आशा करता हूँ कि अंग्रेजी संस्करणके लिए भी कुछ लिखूँगा।[2]

यरवडा-समझौतेको लेकर बगालमे शुरू हुए विवादके बारेमें मेरा अपना विचार यह है कि सतीश बाबूने चुनौती देकर जल्दबाजी की। उनको मैंने इस आशयका पत्र[3] भी लिख दिया है। 'हरिजन' मे उनका तार लापरवाहीके कारण छप गया। शास्त्रीको तार मुझको दिखानेका समय ही नही मिला, और जैसा कि उसे जल्दी ही पता चल गया, अपने विवेकका प्रयोग उसने समझदारीसे नही किया। मैंने सीधे सतीश बाबूको पत्र लिखकर अपना विचार बताया। ब्रिटिश भारतीय सघको भेजा मेरा उत्तर[4] तो आपने देखा ही होगा। उसकी एक नकल श्रीयुत घनश्यामदासको भेजी है। जब हमसे अपना विचार देनेको कहा जाये तो हमे लाग-लपेटसे काम नही लेना चाहिए, लेकिन जबतक विरोधी हमे सम्बोधित न करे तबतक उस ओर ध्यान देनेकी जरूरत भी नही है। यह समझौता गम्भीरतापूर्वक किया गया है और सभी पक्षोकी सहमति लिये बिना इसमे कोई परिवर्तन नही किया जा सकता।

जहाँतक तुम्हारी पुस्तिकाओका सम्बन्ध है, बेशक उनमें से सभीका विज्ञापन 'हरिजन' मे किया जा सकता है। तो तुम एक वर्णनात्मक विज्ञापन भेज दो।

साथमें डॉ० गोपीचन्दका लिखा एक रोचक पत्र[5] भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

सलग्न : १

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११७) से।

१. देखिए "प्रचार बनाम रचना", २६-३-१९३३।
२. देखिए "प्रचार बनाम रचना", १-४-१९३३।
३. देखिए "पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको", १८-३-१९३३।
४. देखिए "पत्र : ब्रिटिश भारतीय संघको", ९-३-१९३३।
५. यह उपलब्ध नहीं है।

२१७. पत्र : टी० टाइटसको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय टाइटस,[1]

मै चाहता हूँ कि आश्रममे लोग बिना उबाले दूधका ही उपयोग करें, इसलिए इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि स्वच्छतामे जरा भी कसर न रहने पाये और दूधको खुली हालतमे यथासम्भव कमसे-कम समयतक रहने दिया जाये। इसलिए निम्नलिखित प्रश्न पूछ रहा हूँ.

१ क्या सभी गाये नीरोग है?

२ उनके थनो और ऐनोमे किसी तरहके फोडे-फटन तो नही है न?

३ उन्हे दोहनेसे पहले क्या ऐनोको गरम पानीसे भली-भाँति धो दिया जाता है?

४. क्या दोहनेवालोके हाथ कुहनियोतक अच्छी तरहसे धुले होते है?

५ क्या बरतनोको इस तरह साफ कर दिया जाता है जिससे उनमे कीटाणु न रहे?

६ क्या छन्नियोको भी इसी तरह साफ कर दिया जाता है?

७ क्या दूधको तुरन्त दूध रखनेके ऐसे टिनोमे डाल दिया जाता है जिन्हे इस प्रकार साफ कर लिया गया हो कि उनमे कीटाणु न रहने पाये और जिनमे ऐसे ढक्कन लगे हो जिनसे होकर हवा भी न जा सके?

८ सुबह और शाम किस समय दोहन होता है?

९. क्या आपके यहाँ, जैसा मैंने बगलोर दुग्धशालामे देखा था, उस तरहका दोहनका कोई खास स्थान है, और अगर है तो क्या वह अच्छा, और जहाँ हवा और रोशनी काफी आती हो, ऐसा है?

१०. क्या गोशाला पूरी तरह साफ-सुथरी रखी जाती है?

११. क्या आप सारे गोबर और मूत्रको बचाकर खादके लिए उनका उपयोग करते है?

१२. प्रत्येक गाय प्रतिदिन औसतन कितना दूध देती है?

१३. प्रतिदिन कुल कितना दूध होता है और उसमें से कितना बेचा जाता है?

१४. क्या बछडोको उनके हिस्सेका दूध पीने दिया जाता है?

१५ आश्रमकी सबसे ज्यादा दूध देनेवाली गाय २४ घटेमे कितना दूध देती है, और सबसे कम देनेवाली कितना?

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७०४) से।

१. आश्रम दुग्धशालाके प्रबन्धक

२१८. पत्र : नारणदास गांधीको

२५ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ मै तुम्हे वे पत्र भेज रहा हूँ जो . . . ने[1] . . . को[2] लिखे थे और जो हमारे हाथ आ गये है। ये सब एक ही लिफाफेमे एक ही दिन आये थे। तुम उन्हे देखना चाहो तो देखना। के[3] देखनेके लिए भेज रहा हूँ। वह देख ले, उसके बाद उन्हे . . को[4] भेज देना। उनकी नकले मैंने अपने पास रख ली है। मै उन्हे . . को भेज देनेके लिए बँधा हुआ हूँ। इसीलिए उन्हे उसे भेज देना हमारा धर्म है। इन पत्रोपर उसका अधिकार है, ऐसी बात नही है। केवल मेरे वचन-पालनकी बात है।

इस घटनासे मुझे जो घाव लगा है वह अभी सूखा नहीं है। लेकिन ऐसा भी नही है कि मै उसीकी बात सोचता रहता हूँ। मनन तो इस समय अस्पृश्यता-निवारणके सिवा किसी और विषयका हो ही नही सकता। यह ऐसा प्रश्न है जिसे सोचते हुए मै अपने सब दु खोको भूल सकता हूँ। लेकिन जब भी के किस्सेका विचार करना जरूरी हो जाता है मेरा घाव ताजा हो जाता है और मुझे याद आ जाता है कि अभी वह मिटा नही है।

. . . ऐसे पत्र लिखते रहनेके बावजूद कहता है कि उसके मनमे . . . से विवाह करनेका कोई विचार नही था, उसका उद्देश्य की विवाह करनेकी इच्छाका निवारण करना था। पत्रोसे तो उलटी ही बात सिद्ध होती है, इसे वह स्वीकार करता है, और कहता है कि अपने भावी आचरणसे वह अपनी बात सिद्ध करेगा। मेरा विश्वास तो फिलहाल उसपर नही रहा, और यही बात मुझे सबसे ज्यादा दु ख दे रही है।

अब मैंने . . से कहा है कि तबीयत ठीक होते ही वह तुरन्त आश्रम पहुँचे और आश्रमके नियमोका सूक्ष्मतासे पालन करे। आजतक वह जिन रियायतोका लाभ लेता रहा है उनका लाभ तनिक भी न ले और नियमोके पालनमे सबसे आगे निकलनेका प्रयत्न करे। उसने ऐसा करनेका वचन दिया है। यदि वह अब वैसा नही करता है तो आश्रममें नही रह सकता। इस चीजपर निगाह रखनेमे तो तुम समर्थ हो ही। तो इसपर निगाह रखना। उसे तुम्हे जो ठीक लगे सो काम सौपना। वह आश्रमके भोजनालयमे ही खाये और किसी लडकीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखे।

यह तो मेरा अपना मत हुआ। . अपने व्यवहारसे आश्रममे रहनेके अयोग्य सिद्ध हुआ है। किन्तु उसकी शुद्धि और परीक्षा आश्रमके बाहर नही हो सकती।

१, २, ३ और ४. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

वह इसके लिए अवसर चाहता है। अत मै यह अवश्य चाहता हूँ कि उसे अवसर दिया जाये। किन्तु हो सकता है, तुम्हारा और अन्य सबका इस सम्बन्धमे भिन्न मत हो। इसमे . . . की[1] इच्छाका आदर करना मै धर्म समझता हूँ। उसका ऐसा खयाल है कि . . को आश्रममे रखनेमे भय है तो वह आश्रममे कदापि नही रह सकता। का यह खयाल हो तो उससे मुझे कोई दुख नही होगा। किन्तु वह मेरे विचारसे सहमत हो तो भी मण्डलकी राय अवश्य लेना। और यदि सब मेरी रायको धार्मिक दृष्टिसे सही माने तो उसे आश्रममे रखना। के[2] साथ पूरी बात हुई है। .ने कहा है कि वह . को अपने साथ ही ले जायेगा और आश्रम पहुँचेगा। वह बीमार हो तो भी वह उसे अन्यत्र कही नही ले जाना चाहता। वह मानता है कि आश्रममे जो इलाज किया जा सकता है उसीसे सन्तुष्ट रहना चाहिए। कहनेकी जरूरत नही कि मुझे यह विचार पसन्द है। आश्रमने गरीबीसे रहनेका व्रत अपनाया है, उसकी शोभाकी रक्षा इसी तरह हो सकती है। इसलिए मेरी ओरसे इस बातमे . को[3] पूरा प्रोत्साहन मिलेगा। किन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि . और . . . दोनो आश्रममे रहेगे। को[4] इसमे कोई आपत्ति नही है। मै भी इसमे डरका कोई कारण नही देखता। . . दुबारा भूल नही करेगा, ऐसा मै मानता हूँ। और इसके सिवा, अब तो सब लोग सावधान भी रहेगे न?

इस घटनासे सब लडके और लडकियाँ सावधान हो जाये। बडे भी सावधान हो जाये। यदि कोई किसीके प्रति विकारका भाव रखता हो अथवा किसी प्रकारका गुप्त सम्बन्ध रखता हो तो तुम्हे या तो कहकर बता दे या लिखकर सूचित कर दे। हम सबके पत्रोकी गोपनीयताकी रक्षा करते है। किन्तु आश्रम-धर्मके निर्वाहके लिए मै यह बात बहुत जरूरी मानता हूँ कि कोई किसीसे भी किसी प्रकारका गुप्त व्यवहार न रखे। मै तो वर्षोसे यह अनुभव करता आया हूँ कि गुप्त व्यवहार पवित्रताका विरोधी है। . . को[5] तो तुमने इस विषयसे सम्बन्धित मेरे सारे पत्र दिखाये ही होगे। किन्तु मै चाहता हूँ कि उन्हे दूसरे बडे लोग भी अवश्य पढ ले।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४१ से भी; सौजन्य . नारणदास गाधी

१, २, ३, ४ और ५. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

२१९. टिप्पणियाँ

स्वामीनारायण सम्प्रदाय और जैनोंमें अस्पृश्यता

एक भाई लिखते है:[1]

मुझे इस बातकी जानकारी नही थी। स्वामीनारायण सम्प्रदायमे अस्पृश्यता नही है, मेरी यह मान्यता बचपनसे ही चली आ रही है क्योकि पिछले बहुत वर्षोसे गाधी-परिवारका इस सम्प्रदायके अनुयायियोसे निकटका सम्बन्ध रहा है। किन्तु मैं इस सम्प्रदायका बहुत ही थोडा साहित्य देख पाया हूँ। और जैनोमे तो नामको भी अस्पृश्यता नही होनी चाहिए, यह मैंने जैन-साहित्य तथा जैन-मित्रोके परिचयसे जाना था। किन्तु जैनोको भी बुरी तरहसे अस्पृश्यताकी छूत लगी हुई है। कविश्री राजचन्द्र कहा करते थे कि जैन मतका प्रसार मुख्यत वणिक वर्गमे हुआ है अत जिनमे उत्कृष्ट वीरता होनी चाहिए थी उनमे भीरुता घर कर गई और जिनमे उत्तम ज्ञान होना चाहिए था उनमे शुष्कता आ गई तथा ज्ञानहीन तपका कोई प्रभाव ही नही रह गया। जैनोसे मेरा अच्छा परिचय होनेके कारण इस आरोपमे जो सत्य है, उसका मैं साक्षी हूँ और इसका मुझे हमेशा दुख रहा है। जैनोने अहिंसा धर्मपर अपना एकाधिपत्य माना है किन्तु उसका सच्चा स्वरूप सर्वथा ढक गया है। मनुष्येतर प्राणियोंके प्रति दयाने भी गलत रूप ले लिया है और बहुत-से जैन उसपर जबरदस्ती अमल कराते हुए, हिचकिचाते नही। यदि जैनोमे अपने शुद्ध रूपमे अहिंसा जीवित होती तो अस्पृश्यता उनमे नामको भी न होती और जैन-मात्र प्रेमकी मूर्ति नजर आता तथा उन्हीमे से ढेरो कार्यकर्ता और कार्यकर्त्रियाँ निकल आते।

ढेढ़ और भंगी

हरिजनोमे साक्षरताका प्रचार करनेवाले शिक्षकको किन मुश्किलोका सामना करना पडता है, उसे कितनी सावधानीसे काम लेना पडता है और उसे किस प्रकार बालकोंके साथ घुल-मिल जाना चाहिए, यह बतानेके लिए मैं नीचे एक हरिजन शिक्षकका पत्र दे रहा हूँ[2]

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २६-३-१९३३

१. अनुवाद यहाँ नही दिया गया है। पत्र-लेखकका कहना था कि सामान्यत: मोचियोंको अछूत माना जाता है किन्तु फिर भी स्वामीनारायण सम्प्रदायने उन्हें अपनाया और मन्दिरोंमें जानेकी छूट दी। इसके अतिरिक्त जैनोंमें एक अन्त्यज साधु हुए हैं जिसका नाम मेहतारज मुनि था और जो अपने समयमें बहुत प्रसिद्ध थे।

२. अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने इसमें बताया था कि ढेढ लोग भंगियोंको अपनेसे नीचा मानते हैं। भगी अपने बच्चोंको ढेढ़ बच्चोंके साथ पढानेको तैयार थे किन्तु बुजुर्ग ढेढोंने अपने बच्चोंके साथ भगियोंके बच्चोंको पढानेका विरोध किया जिससे भंगियोंके बच्चोंके लिए अलगसे कक्षाएँ चलानेकी व्यवस्था करनी पड़ी।

२२०. पत्र-लेखकोंको उत्तर

अटल नियम[1]

ऐसा लगता है कि आप बहुत अधीर हो उठे है। मैने जातपाँत और वर्ण-धर्ममे स्पष्ट भेद किया है। इस बातपर आप बार-बार ध्यान दे। अस्पृश्यता बहुत सारी जातियो और उपजातियोके कारण है। जब छुआछूत मिट जायेगी तो जातियोकी आपसी अस्पृश्यता भी अवश्य मिट जायेगी, और इसके साथ-साथ उपजातियाँ भी समाप्त हो जायेगी। किन्तु वर्णाश्रम धर्ममे तो अस्पृश्यताका नाम-निशान भी नही है अर्थात् वर्णाश्रम धर्मका मै जो अर्थ करता हूँ उसमे। यह तो भौतिक नियमोकी भाँति आध्यात्मिक नियम है और निरपवाद नियम है। हम इसे स्वीकार करे या न करे फिर भी इस नियमका पालन होता रहेगा। पानी ऑक्सीजन और हाइड्रोजनका मिश्रण है, यह जानकर एक व्यक्ति बैठ रहेगा, दूसरा व्यक्ति पानीके गुण और शक्तिकी खोज करेगा तथा नाना प्रकारसे उसका उपयोग करेगा। रेलके इजन आदिकी खोज करनेवाला ऐसा ही शोधक था। यही बात वर्णाश्रम धर्मके नियमोके रहस्यको जाननेवालेके बारेमे लागू होती है। यह कहते हुए मै कभी नही थकता कि वर्णाश्रम धर्मकी मेरी कल्पनामे ऊँच-नीचका भाव ही नही है। तो फिर अलगसे यह माँग करनेकी क्या जरूरत है कि उसमे से ऊँच-नीचका भाव निकालो। डॉ० अम्बेडकरको सवर्ण हिन्दुओ पर नाराज होनेका अधिकार है, क्योकि सवर्ण हिन्दुओको जितनी सीधी-सच्ची बात करनी चाहिए वैसी वे नही करते। किन्तु आपको तो यह समझना चाहिए कि वर्णाश्रम धर्मके विरुद्ध लडाई छेडना तो अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनको नुकसान पहुँचानेके समान है।

आज एक ही वर्ण है[2]

यदि हम आज वर्णके अनुसार सभी हिन्दुओका वर्गीकरण करना चाहे तो शूद्र-वर्णके अतिरिक्त अन्य कोई वर्ण नही है। और इस वस्तुस्थितिको स्वीकार कर लेना हिन्दू जातिके लिए श्रेयस्कर है। यदि हम इतना मान ले तो उच्च-नीच वर्णका भेद

१. पत्र-लेखकने पूछा था कि क्या डॉ० अम्बेडकरके विचारोंसे अन्य हरिजन सहमत नहीं होंगे? जब कि वास्तवमें इनकी आन्तरिक इच्छा यही होगी कि जात-पाँत और वर्ण-व्यवस्था आदि सबका नाश हो जानेपर ही उनकी गुलामी मिटेगी। क्या आपका भी अन्तिम लक्ष्य यही नहीं है कि सभी प्रकारकी असमानता मिट जाये और ऊँच-नीचकी भावना न रहे?

२. एक अन्य सहयोगी कार्यकर्ताने पूछा था कि आप वर्णाश्रम धर्मको बनाये रखना चाहते हैं तो फिर यह कैसे कह सकते हैं कि हम सभी एक ही शूद्र-वर्णके हैं? और फिर, आज तो हम शूद्र कहलाने लायक भी नहीं हैं।

अपने-आप मिट जायेगा। ऐसा नही कि इसके बाद कोई ब्रह्मविद्या या अन्य विद्या प्राप्त करनेका प्रयत्न नही करेगा बल्कि इतना तो सही ही है कि सभी अपने परिश्रमसे और शारीरिक श्रम करके अपनी रोटी कमायेगे तथा अपनी अन्य शक्तियोका उपयोग जन-समाजकी सेवाके लिए करेगे। यह ठीक है कि हमने इस प्रकारके वर्णाश्रम धर्मका पालन होते हुए नही देखा है। किन्तु मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही कि हिन्दू धर्ममे जिसे सत्ययुग कहा गया है उसमे इसपर अवश्य आचरण किया गया होगा।

केवल मन्दिर-प्रवेशसे क्या होगा?[1]

मैने तो इस बातको कभी स्वीकार ही नही किया कि केवल मन्दिर-प्रवेशसे अस्पृश्यताका प्रश्न हल हो जायेगा किन्तु मै यह अवश्य मानता हूँ कि हरिजनोको जबतक सवर्ण हिन्दुओकी तरह मन्दिरोमे प्रवेश करनेकी छूट नही मिल जाती तबतक छुआछूत कदापि नही मिट सकती। और मै यह भी मानता हूँ कि मन्दिरोके द्वार खुल जानेके बाद आर्थिक और शिक्षाके साधन उन्हे सहज ही प्राप्त हो जायेगे। मै यह अच्छी तरह जानता हूँ कि एक अत्यन्त शिक्षित और अच्छा कमानेवाला हरिजन भी एक सनातनी हिन्दूके घरमे नही घुस सकता। उसकी अस्पृश्यता तो उससे चिपटी ही हुई है। किन्तु उसके लिए मन्दिरोके खुलते ही अर्थात् धार्मिक एकता मिलते ही उसकी अस्पृश्यता मिट जायेगी। मैने यह कभी नही कहा कि मन्दिर-प्रवेशके पहले कोई रचनात्मक कार्य हो ही नही सकता, बल्कि रचनात्मक कार्य ही अस्पृश्यता-निवारण सघोका मुख्य कार्यक्रम है।

प्रतिज्ञा-पालनका मामला[2]

आप तो भटक गये है। सत्यके मार्गपर चलनेवाला क्या परिणामकी चिन्ता करता है? यरवडा-समझौतेके बाद २५ सितम्बरको हुई सभाके प्रस्तावमे हिन्दुओ द्वारा ली गई प्रतिज्ञामे निश्चय ही मन्दिर-प्रवेशका भी उल्लेख है। अन्त्यजोको भी मन्दिरमे प्रवेश करनेका अधिकार है, फिर भले पूरा समाज उसका विरोध क्यो न करे। किन्तु हमे प्रतिज्ञाके पालनका प्रयत्न करना चाहिए। सत्यार्थीके लिए यह बात दिनके प्रकाशकी भाँति स्पष्ट होनी चाहिए। समाजका विरोध क्षणिक है क्योकि हमने कही जबरदस्ती प्रवेश नही किया। अपनी जानकी बाजी लगाकर हमे कर्तव्यका पालन करना है। ऐसी स्थितिमे विरोध कहाँतक टिकेगा?

१. हरिजनोद्धार मण्डलके एक बैरिस्टर अध्यक्षका तर्क था कि सभी समस्याओंका हल मन्दिर-प्रवेश नहीं है तथा हरिजनोंके लिए सबसे पहले शिक्षा और आर्थिक उन्नतिके साधनोंकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

२. सनातनियों द्वारा अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके विरोधसे ऊबकर एक अन्य कार्यकर्ताने सुझाव दिया था कि फिलहाल इसे छोड़कर हमें कोई अन्य कार्यक्रम हाथमें लेना चाहिए ताकि सनातनियोंका क्रोध कुछ ठंडा पड़ जाये। इसके अतिरिक्त उसने यह भी जानना चाहा था कि मन्दिर-प्रवेशमें ऐसा क्या है जिसके लिए आप असहयोग-जैसे आन्दोलनको ताकपर रखकर एक विवादास्पद कदम उठा रहे हैं।

उक्त प्रस्तावमे की गई प्रतिज्ञामे कानून वनानेकी माँग करनेका भी उल्लेख है। इस प्रस्तावके द्वारा हिन्दू जातिने वचन दिया है कि जहाँतक हमारी चलेगी वहाँतक हम वर्तमान विधानसभाओ द्वारा इतना तो करा ही देगे। और यदि हम इसमे सफल न हुए तो फिर स्वराज्य कालकी विधानसभाका पहला काम यही होगा। क्या इससे अधिक स्पष्ट प्रतिज्ञा और कोई हो सकती है? मुझे इस वातका आश्चर्य है कि आप यह नही देखते कि सहयोग माँगने और सहयोग देने, इन दोनोमे वहुत अन्तर है। यदि मै आपको व्यभिचारके अड्डेपर ले जाना चाहूँ तो आप उसमे मुझे सहयोग नही देगे। तो क्या इसका यह मतलब है कि यदि मै आपको पूजा-गृह ले जाना चाहूँ तो आप मेरा सहयोग नही लेगे और न माँगेगे? अत इस विलके लिए लोगोका सहयोग माँगना हमारा कर्तव्य था और आज भी है।

एक ही वृक्षकी शाखाएँ[1]

एक ही वृक्षकी शाखाएँ, पत्ते और फल अलग होनेके वावजूद एक-दूसरेके लिए अस्पृश्य नही है वल्कि वे एक-दूसरेसे एकाकार होकर रहते है। मानव-जातिको भी इसी प्रकार रहना होगा। यदि हम किसी शाखाको अस्पृश्य मानकर काटकर फेक दे तो वह सूख जाती है और उस हदतक वृक्ष कमजोर हो जाता है। यही हिन्दू समाजके वारेमे भी हुआ है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २६-३-१९३३

२२१. स्त्रियोंका धर्म

ज्यो-ज्यो समय वीतता जाता है त्यो-त्यो अनुभव होता जाता है कि हरिजन-सेवाके कार्यमे स्त्रियोको वहुत वडा योग देना पडेगा। समस्त ससारका अनुभव है कि धर्मकी सच्ची रक्षा स्त्री-जातिके ही हाथो होती है। कारण यह है कि स्त्रियोके स्वभावमे ही सग्रह-भावना होती है। स्त्री जिस प्रकार मिथ्या विश्वासोका सग्रह करती है, वैसे ही व्रतोका भी करती है। सहन-शक्ति और धैर्यके विना धर्मकी रक्षा नही हो सकती। स्त्री सहन-शक्ति और धैर्यकी साक्षात् मूर्ति है। श्रद्धाके विना एक क्षणके लिए भी धर्मका निभाव नही हो सकता। स्त्रीकी श्रद्धाके साथ पुरुषकी श्रद्धाकी कोई तुलना नही हो सकती। सही वात तो भाषाशास्त्री ही जाने किन्तु सस्कृत तथा सस्कृतसे उत्पन्न देशी भाषाओमे वहुत-से गुणवाचक नाम 'स्त्रीलिंग' के ही दिखाई देते है। श्री, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा, अहिंसा, पवित्रता, शान्ति, दया, नम्रता इत्यादि नाम स्त्रीलिंग है। इनमे से अधिकाश गुण सर्वत्र प्राय स्त्रियोमे ही अधिक पाये जाते है। हाँ, मै ऐसे महात्माओको जानता हूँ जो यह कहकर वातको उडा देना चाहते है कि स्त्री निरक्षर है अतः इन गुणोका उसमे आभास-मात्र ही है। किन्तु समस्त विश्वका

१. एक पत्र-लेखकने अस्पृश्यता-आन्दोलनको वेरी और आमके वृक्षको एक करने-जैसा निरर्थक प्रयास बताया था।

अनुभव कुल मिलाकर मेरे उपर्युक्त कथनका समर्थन करता है। इन गुणोंका अक्षर-ज्ञानके साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो धर्मके साथ है। धर्मकी रक्षा यदि पढ़े-लिखे ही कर सकते होते तो धर्मका लोप कभीका हो गया होता। मुद्रण-कलाका आविष्कार हुए अभी बहुत शताब्दियाँ नहीं हुई हैं, परन्तु धर्म तो अनादि कालसे चला आता है। जगत्के महान धर्म-प्रचारक अपनी साक्षरताके कारण प्रसिद्ध नहीं हुए। इन धर्म-प्रचारकोंके अनुयायियोंने तो अभिमानके साथ कहा है कि उनका अक्षरज्ञान तो एक प्रकारसे नहीं के बराबर था। उन्हें जो बुद्धि मिली थी वह ईश्वरदत्त थी। उनकी वाणीमें जो संस्कार दीखता है वह उनके पुस्तकीय ज्ञानका नहीं किन्तु उनके तपोबल और सत्यपरायणताका सुफल था।

यह सब सत्य हो या असत्य, मेरा तो यह पुराना विश्वास है, और भ्रम होते हुए भी जबतक वह दूर नहीं हो जाता तबतक मेरे लिए वह मिथ्या नहीं, शुद्ध सत्य ही है। इसीलिए मैं यह आशा किये बैठा हूँ कि अस्पृश्यता-निवारण रूपी इस विशुद्ध धार्मिक आन्दोलनमें स्त्रियाँ महान् योग देंगी। बिना इनकी इच्छा और सहायताके यह कार्य सिद्ध होना असम्भव है। अत: कटकसे प्राप्त एक बहनके पत्रमें से मैं एक अंश यहाँ देता हूँ:[1]

गुजराती बहनें यह न कहें कि आपने उत्कलका उदाहरण दिया तो इसका कहीं यह अर्थ तो नहीं कि हम कुछ काम नहीं करतीं। गुजराती बहनें एकाएक ऐसा इलजाम शायद मुझपर नहीं लगायेंगी। लेकिन वे यह न समझ बैठें कि सिर्फ गुजराती बहनें ही ऐसा काम कर रही हैं और अन्य बहनें नहीं करतीं। यदि किसीके मनमें ऐसा भ्रम हो तो उसे दूर करनेके लिए ही मैंने उपर्युक्त पत्र प्रकाशित किया है। उत्कलकी बहनोंमें और शायद भाइयोंमें भी अपेक्षाकृत कम जागृति दिखाई देती है। किन्तु उत्कलमें भी बहनें काम कर रही हैं। इससे शायद गुजराती बहनोंको नये सिरेसे प्रोत्साहन मिले। मैं नहीं जानता कि गुजरातमें भी कटककी बहनोंकी तरह गुजराती बहनें काम करती हैं। यदि वे करती हों तो मेरे पास अपने कार्यका विवरण भेज दें और न करती हों तो अब करना आरम्भ कर दें।

बहनों और उसी प्रकार भाइयोंको भी दो प्रकारसे काम करना है: एक तो हरिजनोंमें और दूसरा सवर्ण हिन्दुओंमें। सवर्ण स्त्री-पुरुषोंको धैर्यपूर्वक यह समझाना कि अस्पृश्यता एक महान् पाप है और उनमें से नये कार्यकर्ता और कार्यकर्त्रियाँ पैदा करना। क्षेत्र इतना विशाल है और अस्पृश्यताका मैल इतनी बुरी तरहसे जम गया है कि जबतक बहुत-से भाई-बहन कमर कसकर निकल नहीं पड़ेंगे तबतक उस राक्षसको मिटाया नहीं जा सकता। अगर सौभाग्यसे सच्ची जागृति आ गई हो तो जितने लोगोंमें जागृति आ गई होगी वे सब यह सेवा आसानीसे कर सकेंगे।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २६-३-१९३३

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है; इसके सारांशके लिए देखिए "टिप्पणियाँ", २५-३-१९३३ के अन्तर्गत उप-शीर्षक "हरिजन-सेवामें कटककी महिलाओंका योगदान"

२२२. प्रचार बनाम रचना

एक प्रान्तके हरिजनने उस प्रान्तके हरिजन सेवक सघोके कामकी कडी टीका मेरे पास भेजी थी। मैने उसका साराश 'हरिजन' मे छाप दिया था, जिसका अच्छा असर पड रहा है। कार्यकर्ता जाग्रत हो रहे है, लेकिन साथ ही वे उलझनमे पड गये है। हरिजनकी जेबमे पैसे पहुँचानेका मतलब क्या रचनात्मक काम करना — अर्थात् कुछ बालकोको पढाना, कुछ कुएँ खुदवाना, कुछ मन्दिर खुलवाना है? लेकिन यह तो सदियोका काम है। प्रचारका अर्थ है — बडे पैमानेपर लोगोमे भाषणो द्वारा, पत्रिकाओ द्वारा और प्रीतिभोजो द्वारा अस्पृश्यताके प्रति अरुचि पैदा करना। (पाठक प्रीतिभोज और सहभोजका अन्तर समझ ले। प्रीतिभोजका अर्थ है किसी सम्मेलनमे एक पक्तिमे बैठकर अपनी-अपनी तश्तरी या पत्तलमे वे चीजे खाना जो हम खा सकते है। सहभोजका अर्थ है, एक-दूसरेका पकाया हुआ, एक-दूसरेके घर खाना। जातपाँतकी रूढियोको माननेवाले ब्राह्मण, वैश्य प्रीतिभोजमे सम्मिलित होगे, सहभोजमे नही।) कहाँ चीटीकी चालसे चलनेवाला रचनात्मक कार्य और कहाँ वायु-वेगसे दौडनेवाला प्रचार-कार्य। कार्यकर्ताओके सामने यही उलझन है।

प्रचार-कार्यकी आवश्यकता तो है। किन्तु अकेले प्रचार-कार्यका पानीके बुलबुलेकी तरह क्षणजीवी सिद्ध होनेका डर है। सच पूछा जाये तो शुद्ध रचनामे पूर्ण प्रचार छिपा हुआ है। लेकिन शुद्ध रचना असम्भव-सी है, इसलिए अपूर्ण रचनाकी पूर्तिके रूपमे प्रचारकी आवश्यकता रहती है। शुद्ध रचना अर्थात् केवल धर्मवृत्तिसे प्रेरित, शुद्ध चरित्रवाले, पूर्ण श्रद्धायुक्त योग्य सेवको और सेविकाओका रचनात्मक कार्य। किन्तु हम तो अपूर्ण है। इसलिए शुद्ध भावना रखते हुए यथाशक्ति रचनात्मक कार्य करे और साथ ही प्रचार भी करते रहे।

यहाँ तो मै सिर्फ खर्चकी दृष्टिसे इस विषयपर विचार करना चाहता हूँ। यह तो स्वयसिद्ध-सी बात है कि जितने रुपये हरिजनोकी जेबमे उचित रीतिसे पहुँचे, उनका सौ फीसदी बदला मिल गया माना जायेगा। लेकिन जो रुपये प्रचार-कार्यमें खर्च होगे, वे तबतक बीमा माने जायेगे जबतक उनका कोई फल नही निकलता।

इसलिए सभी सघोको मेरी यह सलाह है कि प्राप्त दानका मुख्य उपयोग रचनात्मक कार्यमें किया जाये। इस तरह खर्च किये गये पैसोके लिए हमे कभी पछताना नही पडेगा। यदि हमे सवर्ण हिन्दुओमे से काफी सख्यामे अवैतनिक या कम वेतनपर काम करनेवाले शिक्षक, लुहार, बढई आदि मिल जाये तो हमारा रचनात्मक कार्य इतनी तेजीके साथ होने लगेगा कि प्रचार-कार्यकी कमसे-कम आवश्यकता रह जायेगी। अर्थात् सवर्ण हिन्दू शिक्षक या कारीगरको पारिश्रमिक देनेमे जो खर्च होगा उसके सिवा बाकी सब रुपया हरिजनोके पास पहुँच जाएगा। इस तरह चलनेवाली शाला या

कुएँके खर्चको मै हरिजनोकी जेवमे जानेवाला पैसा मानूंगा। आदर्श बात तो यही हो सकती है कि हरिजनोके लिए बने हुए सार्वजनिक कुएँ या पाठशालामे जो मजूरी देनी पडे, वह सारी हरिजनोको ही मिले। जबतक हम इस आदर्शतक न पहुँच सके तबतक नम्रतापूर्वक इससे घटिया वस्तुसे ही सन्तुष्ट रहना होगा। प्रत्येक हरिजन-सस्थाको ऐसे रचनात्मक कार्यका हिसाब अलग रखना चाहिए।

प्रचार-कार्य स्वावलम्वी होना चाहिए। पुस्तिकाएँ मुफ्त न बाँटी जाये। परोपकारी छापेखाने मुफ्तमे या कम दामोमे ऐसी पुस्तिकाएँ छाप दिया करे। उनका लागत मूल्य लोगोसे वसूल किया जाये। या तो कोई एक सज्जन अपने जान-पहचानवालो में पुस्तिका बँटवानेके लिए दाम देकर इकट्ठी पुस्तिकाएँ खरीद ले, या जनतामे जो सेवार्थी हो वे खुद पुस्तिका खरीदे। मुफ्तमे मिली हुई पुस्तिकाएँ अकसर व्यर्थ जाती है। ऐसा धन्धा तो सट्टा करनेवाला व्यापारी ही करता है। वह भी अपना खर्च बिकाऊ चीजकी कीमतमे जोड देता है। हरिजन सेवा सघ-जैसी धार्मिक सस्था ऐसा सट्टा कर ही नही सकती। वह इस तरहका खर्च किसके माथे मढे? 'एक करोड पुस्तिकाएँ बाँटी गईं' ऐसी रिपोर्टसे हमे अस्पृश्यता-निवारणका क्या पता लग सकता है? उसके कारण कितनोने अस्पृश्यताका कलक धो डाला, यह कौन कह सकता है? यह भी कौन जानता है कि कितनोने वे पुस्तिकाएँ पढी? लेकिन यदि पढनेवाले ने पुस्तिकाके लिए एक पाई भी खर्च की हो तो हम अनुमान कर सकते है कि उसने उसमे से कुछ तो पढा होगा।

इस रीतिसे प्रचार-कार्य किया जाये तो वह न केवल स्वावलम्वी होगा, बल्कि यदि लोकप्रिय हो तो उससे रचनात्मक कार्य भी हो सकेगा। यदि 'हरिजन' पत्र लोकप्रिय हुए तो उनमे से रचनात्मक कार्यके लिए धन पानेकी लोभ-भरी आशा मै अभीसे लगाये हुए हूँ। पाठक यह ध्यानमे रखे कि 'हरिजन'का बहुत-कुछ काम तो स्वयसेवको द्वारा होता है, और जहाँ दाम खर्च करने पडते है, वहाँ भी बाजार-भावसे कम ही दिया जाता है। इसका उल्लेख करनेका हेतु यही है कि 'हरिजन' पत्र प्रचार-कार्यका एक रूप है, और स्वावलम्वनके आधारपर चलाये जाते है। अग्रेजी, बगला, तमिल, गुजराती और हिन्दीमे हरिजन-पत्र निकल रहे है। गुजराती स्वावलम्बी बननेको है। हिन्दी अभी स्वावलम्वी नही बना। 'हरिजन' पत्रोकी तरह हरिजन-पुस्तिकाओ, पुस्तको आदिके भी नियम होने चाहिए।

अब रहा प्रचारकोका वेतन और सफर-खर्च। प्रचारक मुख्यत सवर्ण ही होते है। लेकिन वे कभी वेतन-भोगी नही होते। वेतन लेकर भाषण करनेवाले की बातका भला क्या मूल्य होगा? प्रचारकोके सफर-खर्चका बोझ सस्थाओपर नही पडना चाहिए, बल्कि जनतापर डाला जा सकता है। अर्थात् जहाँसे उन्हे निमन्त्रण मिले वहाँकी स्वागत-समिति उस खर्चको बरदाश्त करे। स्थायी सस्था सुविधाएँ दे दे, पर स्वय खर्च न दे। अब रहा दफ्तर, हिसाब रखनेवाला, मन्त्रीका सफर-खर्च, मकान-किराया इत्यादि। यह खर्च भी दस प्रतिशतसे अधिक कदापि नही होना चाहिए। जिस संस्थाका प्रबन्ध-खर्च दस प्रतिशतसे अधिक हो उस सस्थाको आत्मघाती और निरर्थक समझना

चाहिए। हरिजन-सेवाकी सस्था, जिसका जन्म ही धर्म-शुद्धिके लिए हुआ है और जो उसीके लिए जीती है, मेरा निश्चित मत है कि वह और किसी रीतिसे नही चल सकती। यदि मै अपने विचारको स्पष्ट कर सका होऊँ तो पाठकोके मनमे इतनी बात जम जानी चाहिए कि उसमे –

(१) प्रचण्ड रचनाका समावेश है,
(२) प्रचण्ड प्रचारके लिए बहुत अधिक अवकाश है,
(३) लोगोकी श्रद्धाकी कसौटी और उसका सिचन है,

अन्तमे, यह बता देनेकी आवश्यकता है कि आजकल कार्य-क्षेत्रमे न रहते हुए भी मै ये बुद्धिमानीकी बाते कर रहा हूँ। अतएव मेरे विचार भ्रामक होना सम्भव है। इसलिए यदि ये बाते कार्यकर्ताओको न पटे तो वे ठुकरा देने लायक है। यदि ये ठीक मालूम हो तो भी इन्हे अमलमे लाने और उनपर अमल करवानेका अधिकार मुझे नही, किन्तु प्रधान सघ और उसकी शाखाओको ही है।

मेरा धर्म तो सम्मति देकर चुप रह जानेका है। सब सस्थाएँ इस लेखपर विचार करे, और अपनी राय ठक्कर बापाके पास भेजे, और फिर वहाँसे जो सूचना मिले, तदनुसार सब सस्थाएँ काम करे।

[गुजरातीसे]
हरिजनबंधु, २६-३-१९३३

२२३. पत्र : एफ० मेरी बारको

[२६ मार्च, १९३३][1]

चि० मेरी,

तुम दोनोके नाम लिखे अपने पत्रमे[2] मैने अपने विचार ही प्रकट किये है। जरूरी नही कि तुम उन्हे स्वीकार ही करो। तुम्हे तो वही करना है जो तुमको ठीक लगे। मैने वह पत्र इसलिए लिखा था कि उससे तुम्हे विचार करनेमें सहायता मिले। तुम अधिकसे-अधिक तभी पा सकती हो और तभी दे सकती हो जब जो तुम्हे उचित लगे, तुम वही करो। तुम दोनो तो चीजोको अपनी आँखोसे देखने-परखने आये हो, न कि आश्रमके बँधे-बँधाये मार्गपर चलनेके लिए।

मै जानता हूँ कि तुमने तो नही कहा, लेकिन मेरा आशय यह अवश्य था कि बहुत-से आश्रमवासी अनजाने ही आश्रमकी दिनचर्याका पालन यन्त्रवत् कर रहे है और इसलिए आश्रमसे अधिकसे-अधिक ग्रहण नही कर रहे है और फिर, बहुत-से लोग तो अपने चरित्र-निर्माणके लिए और अपनेको किसी योग्य बनानेके लिए आये है। तुम्हारा उद्देश्य इससे भिन्न है। वे बिना सोचे-समझे वहाँकी दिनचर्याका पालन कर सकते है और इससे उनका कोई नुकसान भी नही होता, लेकिन तुम्हे तो ऐसा

१. **महादेवभाईनी डायरी**, भाग-३, पृष्ठ २०२ से।
२. देखिए "पत्र: एफ० मेरी बार और डकन ग्रीनलीजको", ८-३-१९३३।

नही ही करना है। यदि तुम दिनचर्याका पालन भी करो तो सोच-समझकर और मनके पूरा साथ देनेपर ही करो। इसलिए वहाँकी दिनचर्यामें से तुम उतना ही स्वीकार करो जितना तुमको ठीक रास आये।

तुम्हे मलेरियासे बचना चाहिए। तुमको सहज भावसे रहना-सहना चाहिए। पेट ठीक रखना चाहिए। बहुत अधिक नही खा लेना चाहिए। जबतक जरा भी कमजोर हो, ठडे पानीसे स्नान मत करो। दाल नही खानी है। थोडी डबलरोटी, दूध और हरी सब्जियाँ तथा फल यही तुम्हारा आहार होना चाहिए। शरीरका जितना हिस्सा ढँका न रहता हो उतनेपर थोडा पैराफिन तेल लगाया करो। उससे या उसकी गधसे घबराओ मत। उससे कुछ गन्दा नही होता। पैराफिनसे मच्छर दूर रहते है। तनावमें मत रहो। यह तो मनकी एक अवस्था है। 'किसी बातकी चिन्ता मत करो'—यह एक आध्यात्मिक सिद्धान्त भी है और शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे भी अपनाने योग्य सिद्धान्त है।

जीवनकी कठोर वास्तविकताओके बावजूद 'पच' तो अपनी जगह ठीक ही है, लेकिन उन वास्तविकताओसे भी कठोरतम वास्तविकता यह है कि 'हरिजन' के सम्पादन तथा ऐसे ही अन्य कार्योंमे व्यस्त रहनेके कारण किसी और चीजके लिए न तो मुझे और न महादेवको ही मिनट-भरकी भी फुरसत मिलती है। इसलिए हम तो अपने अजस्र कार्यके धागोसे ही "पच और जूडी"[1] के तमाशेका आयोजन करते रहते है। और सच मानो, इसमे जो मजा है वह वास्तविक "पच और जूडी" के तमाशेमे भी नही है। चाहो तो यह पत्र अपनी बुआ [या चाची]को भी पढनेको देना।

तुम्हारे अलावा और लोगोने भी मुझसे ईसामसीह पर लिखनेको कहा है। अगर ईश्वरको मुझसे वह काम कराना होगा तो वही उसके लिए समय भी सुलभ करा देगा।

सस्नेह,

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९८) से। सी० डब्ल्यू० ३३२३ से भी, सौजन्य एफ० मेरी बार

२२४. पत्र : डंकन ग्रीनलीजको

२६ मार्च, १९३३

तुम इसे प्रलोभन ही समझो। तुम आये तबसे मेरी निगाह तुमपर जमी है। मुझे तो तुम्हे कोई शुद्ध हरिजन पाठशाला सौपनी है, जिसके द्वारा तुम माँ-बाप और बच्चोको भी पढा सको।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृ० २०२

१. इग्लैंडमें प्रचलित कठपुतलीका एक खेल।

२२५. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२६ मार्च, १९३३

वालको और वालिकाओ,

तुम्हारा पत्र मिला। आशा है तुमने . . के[1] वारेमे सुना होगा। इस घटनासे तुम सबको चेत जाना चाहिए। यदि तुम अच्छे बनना चाहते हो, सत्यका पालन करना चाहते हो तो निम्न नियमोका पालन करना.

१ किसीको कोई वात छिपानी नही चाहिए और न किसीके साथ गुप्त रूपसे वातचीत करनी चाहिए।

२ किसीको किसीके साथ एकान्तमे नही मिलना चाहिए।

३ लडकोको लडकियोसे मित्रता नही करनी चाहिए क्योकि यह स्वाभाविक नहीं है। लडकीको लडकीके साथ मित्रता करनेके बजाय लडकेके साथ मित्रताकी इच्छा क्यो करनी चाहिए।

४. आश्रममे रहनेवाले लडके-लडकियाँ सगे भाई-वहनोके समान है। जिस प्रकार भाई-वहनोमे विवाह नही हो सकता उसी प्रकारसे जो लोग एक ही समय आश्रममे साथ रहते है उनमे आपसमे विवाह नहीं हो सकता। भाई-बहनका आपसी सम्बन्ध दोस्तीका नही है। यह तो एक निर्मल सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध सारी दुनियाके साथ रखा जा सकता है। भाई-बहन एकान्त कभी नही चाहते। भाई-बहनके बीच कुछ भी गुप्त नही होता।

५. किसी भी वालक या वालिकाके मनमे जरा भी विकार आ जाये तो उसे तुरन्त अपने गुरुजनोसे कह देना चाहिए।

मै चाहता हूँ कि तुम स्वेच्छासे उपर्युक्त नियमोका पालन करो।

वापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. नाम छोड दिया गया है।

२२६. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

२६ मार्च, १९३३

चि० जानकीमैया,

वाह! मेरे पत्रका जवावतक नही दिया। मेरा इतना डर है क्या? हरिजनोको धन देते हुए दुःख हो तो मुझे लिखो। मुझे सतरे भेजते हुए थैलीका मुँह खुल जाता है, परन्तु हरिजनोके लिए वन्द रहती है क्या?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च .]

जमनालाल कल वम्बई गये है। वहाँ डॉक्टर मोदी उनकी जाँच करेगे। स्वास्थ्य तो अच्छा ही है, तुम्हारे और अपने सन्तोपके लिए ही गये है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९११) से।

२२७. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक मिली।

. . .के[2] विपयमे कल[1] लिख चुका हूँ। उसके पत्र भी भेज दिये है। नरहरिके विपयमें तुम्हारी वात मै समझा।

परचुरे शास्त्रीको यात्रा-खर्च दिया और उनके कुटुम्बके लिए ३० रु० भेजना तय हुआ, यह ठीक हुआ। सस्कृत सीखना चाहनेवालो के लिए कक्षाएँ चलानेकी व्यवस्था करना, इसी तरह यह भी देखना कि वे मराठी सिखानेके लिए कितना समय दे सकते है। उनके सम्वन्धमे अपना अनुभव मुझे वताना। शांतारामके[4] विपयमें लिखना। उसकीबुद्धिका विकास हो तो वहुत अच्छा हो।

टाइटसके नाम अपने पत्रमे[5] मैंने उसे दूधके वारेमे लिखा है। उसे पढ लेना। परचुरे शास्त्री कितनी वार दूध लेते है? उनके लिए दूध प्रतिदिन एक साफ वोतलमें

१. डेविड योजनाके लिए; देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", १६-३-१९३३।

२. नाम छोड़ दिया गया है।

३. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", २५-३-१९३३।

४. परचुरे शास्त्रीके पुत्र।

५. देखिए "पत्र: टी० टाइटसको", २५-३-१९३३।

रखा जाये और उस बोतलको दोहरे या चौहरे भीगे कपड़ेमें लपेट दिया जाये तो वह बर्फ जैसा ठंडा रहेगा और वह कच्चा पिया जा सकेगा। दूध कच्चा ही पिया जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। बोतल और उसका कार्क रोज उबलते हुए पानीसे धोया जाना चाहिए। कार्क मजबूत होना चाहिए। बोतल पूरी भरनी चाहिए जिससे कि उसमें हवा न रह जाये। मेरा खयाल है कि जो लोग दूधका प्रयोग करते हो वे उसे कच्चा ही पियें तो वह ज्यादा लाभकारी होगा। मैं तो पिछले छह सप्ताहसे कच्चा दूध ही ले रहा हूँ। पुरुषोत्तमको मेरी यह राय बताना। उसकी राय अन्तिम मानी जाये। कुसुमको अभी बुखार आ रहा है तथापि वह पहलेसे अच्छी है। मैं यह नही कहना चाहता कि ऐसा हो ही नही सकता। यदि बुखार धीरे-धीरे उतर रहा हो तो जरूर वह अच्छी कही जा सकती है।

बापू

[पुनश्च]

सोनीरामजी, डंकन, मेरी, परचुरे और टाइटस [के नाम लिखे पत्रोंके साथ]।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४२ से भी; सौजन्य नारणदास गांधी

२२८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२६ मार्च, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा सुन्दर पत्र मिला। मेरी कामना है कि यह भावना तुझमें स्थिर हो। सूत तो मैंने तेरे लिए रखनेको कहा है न? वह रखूँगा। उसका तिरस्कार करनेकी भी जरूरत नहीं। मुझसे कुछ भी माँगनेका तुझे जरूर अधिकार है। सूतकी माँग निर्मल है। जिस ढंगसे तूने माँग की उसमें दोष था। उसे तूने सुधार लिया, इस-लिए अब कहनेको कुछ नही रहता।

तू देखती है कि मेरी आशाएँ राख होती जा रही हैं . . .[1] और . . .[2] के बारेमें तो क्या कहूँ? उनके बारेमें मुझे शंका हो ही नहीं सकती थी। उन पर मैंने आशाओंका पहाड़ चुना था, परन्तु वह रेतकी बुनियादपर खड़ा था। आश्रमके आदर्शतक कैसे पहुँचा जाये? कोई किसीकी स्पर्धा किये बिना स्वतन्त्र प्रयत्न करे तो ही पहुँचा जा सकता है। तू ऐसा प्रयत्न कर रही है? ब्रह्मचर्यकी मेरी व्याख्या तू जानती है न? उस व्याख्यातक तू पहुँचेगी? उसमें राग और रोषके लिए बिलकुल अवकाश नही है। मुझे तेरी आलोचना नहीं करनी है। तुझे शिक्षा नहीं देनी है। मैं तो भिक्षा माँगता हूँ। जबतक यह भिक्षापात्र नहीं भरता, तबतक आश्रम आश्रम नहीं हो सकता।

१ और २. नाम छोड़ दिये गये हैं।

अपनी तबीयतके बारेमे तूने समाचार दिये यह ठीक किया। कच्ची गोभीको पीसकर खाया जाये तो शायद नुकसान न हो, परन्तु उसे उबालकर खानेमे कोई आपत्ति नही है। शाक कच्चा ही खाना जरूरी नहीं है। थोडा भी कच्चा खाया जाये तो काफी है। परन्तु मुख्य बात यह है कि तुझे बोलना कमसे-कम कर देना चाहिए। इस नियमका पालन करनेमे जो ढिलाई होती है, वह चिन्ताजनक इस तरह बन जाती है कि बादमे किया हुआ संयम निरर्थक सिद्ध होता है। हर चीज अपने समयपर होनी चाहिए। गलेकी हालत जिस समय नाजुक हो, उसी समय उसे आरामकी जरूरत होती है।

मारुतिके साथ बातचीतका अवसर मिला, यह बहुत अच्छा हुआ। उनके साथ पत्र-व्यवहार जारी रखना। लक्ष्मीको आश्रमकी सहेली चाहिए? कोई भेजने लायक है? यह भी लक्ष्मीदाससे जान लेना कि वहाँ जाकर वह रह सकती है या नही।

जमनालालजी कहते थे कि वहाँ उनकी भेजी हुई बहुत-सी महाराष्ट्रीय बहनें है। उनमे से किसी-न-किसीको उनके महिला आश्रमके लिए तुझे तैयार करना चाहिए, ऐसा जमनालालजीने तेरे लिए सन्देशा भेजा है। ऐसी कोई बहन है क्या? वह प्रौढ़ और अनुभवी होनी चाहिए। मुझे लिखना। नारणदासके लिए भी यही सन्देश है। उसे यह बात अलगसे नही लिखूंगा। उसके पत्रमे उतना ही लिखूंगा जो यहाँ नही लिखा जा सका है।

श्वेत पत्रके[1] बारेमे मैं कुछ भी नही लिख सकता। जबतक मै यहाँ हूँ तबतक मेरा वह क्षेत्र भी नही है, इसलिए मैंने उसे पढा भी नही।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३१)से। सी० डब्ल्यू० ६७७१ से भी; सौजन्य प्रेमाबहन कटक

२२९. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ मार्च १९३३

चि० नारणदास,

प्रेमाके पत्रमें[2] जमनालालके जिस संदेशकी चर्चा हुई है यह उसकी पूर्ति है। आश्रमकी बडी बहनोसे हम (लडाईके बाद) कोई काम नही ले सके, उसका एक कारण आश्रमकी यानी मेरी योग्यताकी अपूर्णता है। जमनालालने जब मुझसे नयी बहनोंकी बात कही तब मुझे उनकी बात तीरकी तरह चुभी। उन्हे भी उसे कहते हुए दु.ख तो हुआ था। लेकिन वे क्या करते? उन्होने [स्त्री-कार्यकर्ताओकी] माँग इसके पहले भी कई बार की थी किन्तु उस समय मैं कुछ कर नही सका। मुझे लगता है कि अब उसके लिए ठीक अवसर है। मेरी नजर पहले लक्ष्मीबहन[3] पर गयी

१. जिसमें भारतमें संवैधानिक सुधारोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारके प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये थे।
२. देखिए पिछला शीर्षक।
३. नारायण मोरेश्वर खरेकी पत्नी।

और फिर दुर्गा[1] पर। महाराष्ट्रमें महिला आश्रम है और वह भी वर्धामें। विनोबाका सहवास और उनकी देखरेखका लाभ तो है ही। वहाँ जानकीबहन भी है। प्रश्न यह है कि लक्ष्मीबहन पंडितजीके बिना वहाँ रहना चाहेगी? पंडितजीको यह अच्छा लगेगा? नही, तो क्यो नही? मथुरी[2] लक्ष्मीबहनके साथ रहेगी ही। वहाँ उसे जो तालीम मिलेगी वह भी आश्रमकी ही तालीम है। यदि लक्ष्मीबहन न जाये या न जा सके तो दुर्गा क्यो न जाये? फिलहाल दुर्गाको [पतिका] वियोग तो सहना ही है और वह शायद कुछ वर्षोंतक। दुर्गाको वहाँ शारीरिक परिश्रम नही करना है, देखरेख करनेका काम है। उसका शरीर इस बोझको तो उठा सकता है। वह निर्मला[3] को अपने साथ ले जाना चाहे तो जरूर ले जाये। नारायणस्वामी[4] भी जाना चाहे तो जा सकता है। मेरे मनमें काशी[5] का नाम भी आया था। किन्तु वह तो बिलकुल अपंग है इसलिए उसका खयाल छोड दिया। संतोकको[6] भेजनेकी बात अभी नही सोच सकता। जमना[7] कितना-क्या कर सकती है, इसकी मुझे ठीक जानकारी नही है। लक्ष्मीबहन या दुर्गाको मैं इस कार्यके लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त मानता हूँ। मणिबहनको[8] भी मैं जाने लायक मानता हूँ। चम्पारनमें उसने इस तरह का काम किया है। यहाँ मैंने महादेवके साथ इसकी चर्चा नही की है। दूसरी बडी बहनें मुझे इस कार्यके लिए समर्थ नही मालूम होती। अब इस सम्बन्धमें निर्णय करनेके लिए मैं तुम्हे काफी सामग्री दे चुका। कोई बहन तैयार हो तो मुझे बताना। और महाराष्ट्रकी जो बहनें आश्रममें अभी नयी-नयी आयी है उनमें से कोई जानेके लिए तैयार हो जाये तो वही चली जाये। उनकी जरूरत तो होगी ही। किन्तु प्रमुख का पद सँभालनेके लिए कोई ऐसी अनुभवी बहन अवश्य चाहिए जो सब बहनोको अपनी लडकियो-जैसा मानकर उनकी सार-सँभाल करे और आश्रमका संचालन करे। इस कार्यके लिए अनुभवकी प्रौढता, चरित्रकी पवित्रता और सामान्य समझकी जरूरत है। बाकी जो-कुछ करना है वह तो इतना होनेपर हो ही जायेगा।

मोहन[9] अब बिलकुल स्वस्थ हो गया होगा।

धरासनावाले रावजीभाईके बारेमें लिख चुका हूँ इसलिए यहाँ दुबारा नही लिखता। मुझे नही लगता कि उन्हे [आश्रममें] लेना और रखना हमारा कर्तव्य है। मेरा मतलब यह है कि यह हमारी शक्तिके बाहर है।

१. महादेव देसाईकी पत्नी।
२. नारायण मोरेश्वर खरेकी पुत्री।
३. महादेव देसाईकी बहन।
४. सम्भवतः नारायण देसाई।
५. छगनलाल गांधीकी पत्नी।
६. मगनलाल गांधीकी पत्नी।
७. नारणदास गांधीकी पत्नी।
८. नरहरि परीखकी पत्नी।
९. नरहरि परीखका पुत्र।

भैंसके [मासके] बारेमें लिख चुका हूँ। सीतलासहायके पत्र आते रहते हैं। किन्तु मैं तो उन्हें यही लिख देता हूँ कि वे अपनी बातकी यथार्थताकी प्रतीति तुम्हें करायें। क्या महावीरके पत्र आते हैं? मुझे उसने कोई पत्र नहीं लिखा है। गंगाबहनने महावीरको २५ रु० की नौकरी[1] दिला दी है और वे लिखती हैं कि कृष्णमैयादेवीको भी कोई काम दिला देंगी। मैत्री और दुर्गाका कैसा चल रहा है? . का[2] कोई पत्र नहीं है। इससे मेरे मनमें सन्देह पैदा होता है — कहीं फिर न फिसल गयी हो।

बापू

[पुनश्च]

प्रवचनोंकी[3] पुस्तक प्रभावतीको नहीं मिली। भेज देना। आजकी, यानी ता० २५ की डाक मिली। अमीनाके पत्रका जवाब इसके साथ ही अलगसे भेज रहा हूँ। मोहनकी बीमारीका डाक्टरने क्या निदान किया है? जमनाका पत्र आया है। उसे इतना ही कहना है 'पुरुषोत्तमपर विश्वास रखकर प्रयोग करती जाये।'[4] उससे उसकी तबीयत अच्छी होनी ही चाहिए।

बापू

[पुनश्च]

पुस्तकोंकी सूची और तारोंका चार्ट अलग हैं। १९ पत्र एक साथ बँधे हुए हैं, अमीनाका अलग है।[5]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू ८३४३ से भी; सौजन्य नारणदास गांधी

२३०. पत्र: पुरुषोत्तम गांधीको

२६ मार्च, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,

तेरा पत्र मिला। पुस्तकोंकी सूची लौटा रहा हूँ। जिनमें मैंने चिह्न लगाये हैं वे फुरसतमें पढ़ जाने योग्य हैं। जो शब्द समझमें न आयें उन्हें डॉ० तलवलकर या डॉ० हरिप्रसादसे समझ लेना। सच्ची बात तो यह कि शरीर-रचना और शरीर-

१. देखिए "पत्र: गंगाबहन वैद्यको", २४-३-१९३३।

२. नाम छोड़ दिया गया है।

३. गांधीजीने इसे १९३० में यरवडा जेलमें आश्रमवासियोंके लिए लिखा था; देखिए खण्ड ४४। ये प्रवचन मंगलप्रभात शीर्षकके अंतर्गत अलग-अलग छपे थे।

४. देखिए "पत्र: पुरुषोत्तम गांधीको", १२-३-१९३३।

५. साधन-सूत्रके अनुसार, इसमें पत्रोंकी सूची दी हुई थी।

विज्ञानपर छोटी-मोटी पुस्तकें पढ जाओ तो बहुत अच्छा रहेगा। तब जो चीजें तुझे अभी समझमे नही आ रही हैं, वे समझमे आ जायेगी। तुझमे धीरज है इसलिए तू इस विषयपर अधिकार कर लेगा। कच्चे दूधका प्रयोग करने योग्य है। गौरी-शंकरसे पूछना। क्या तुझे कब्ज रहता है? चमनलाल और जमनाके प्रयोगके परिणामकी सूचना मुझे देते रहना।

बापू

[पुनश्च]

तेरा पत्र मिला। उलटी बन्द करनेके लिए २० ग्रेन सोडा पानीमे मिलाकर बूंद-बूंद करके एनिमा लेना चाहिए। इसे बूंद-बूंद करके लेनेमे आधा घंटा लगता है। बूंद-बूंद गिरानेके लिए एक विशेष साधन आता है, उसे लगानेपर पानी बूंद-बूंद ही उतरता है। मिसेज लाजरस बतायेंगी।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९१०)से, सौजन्य : नारणदास गांधी

२३१. पत्र : भगवानजी पु० पंड्याको

२६ मार्च, १९३३

चि० भगवानजी,

मुझे तुम्हारा विवरण मिला। गीताको शीतला निकली थी, तब तुमने बिना किसी घिनके जिस प्रेमसे उसकी सेवा की थी, यदि वैसा ही प्रेम तुम इन लोगो पर बरसाओगे तो तुम्हे उनकी इस गदगीमे से भी सुगन्ध आयेगी। रोगियोके लिए तुम दवाई ले जाते होगे। यदि तुम मेरुके समान धीरजके काम लोगे तो तुम्हे निराशा नही होगी। जो काम कर रहे हो इसमें तुम अकेले ही नही हो। देशके दूसरे भागोमे अन्य लोग भी यह कार्य कर रहे हैं। मैंने उनके बारेमें अभीतक लिखा नही है पर कार्य चल रहा है। हमारे लिए यह कार्य सामान्य हो जाना चाहिए।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५४)से, सौजन्य भगवानजी पु० पण्ड्या

२३२. पत्र : मीठूबहन पेटिटको

२६ मार्च, १९३३

चि० मीठूबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने अपने सिरपर बहुत बड़ा काम उठा लिया है। जिन बहनोंके हस्ताक्षर तुमने भेजे हैं, वे बराबर काम करनेवाली हों, अन्ततक तुम्हारा साथ देनवाली हों, धार्मिक भावना रखनेवाली हों और तपस्विनी हों तो ही यह कार्य सफलतापूर्वक पूरा हो सकता है। शक्तिसे अधिक भाग-दौड़ मत करना। यदि तुममें शक्ति है तो तुम्हारी विजय होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७०८)से।

२३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२६ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास,

दो तीन बात अभी लिखता हूँ, बाकी पीछे।

हिन्दी 'हरिजन'में पढ़नेके लायक हम एक ही चीज पाते हैं, वह तुम्हारे लेख। तुम्हारी भाषा मीठी और तेजस्विनी है। लेकिन इतने ही से मुझे संतोष नहीं हो सकता है। जबतक वहाँ अच्छा प्रबन्ध नहीं हुआ है तबतक ज्यादातर यहींसे लेख भेजे जायेंगे। महादेव और मैं अनुवाद करेंगे, वियोगीजी हम लोगोंकी हिन्दीको दुरुस्त कर लेवें। उसके उपरांत संघकी तरफसे नोटिस, सूचना, प्रान्तीय खबरें इत्यादि आनी चाहिए। तब तो हिन्दी 'हरिजन' की हजारों कापियां बिकनी चाहिए। सेवा संघका यह मुख्य गजट बन जाना चाहिए। रामदासजी को और किसीको अनुवादके लिए यहांसे लेख भेजनेका मैंने इनकार किया है। ऐसे 'हरिजन' चल नहीं सकता है। हिन्दीमें अनुवाद न मिले, या वियोगीजी खुद न कर सकें और कोई दूसरा प्रबन्ध न हो सके तो हिं० स० बन्द करना आवश्यक समझता हूं।

कलकत्तेकी बस्तीके बारेमें कुछ ज्यादा कार्य होनेकी आवश्यकता देखता हूँ।

डेविड योजनाके बारेमें मैं समझता हूँ कि इसका चिन्तन किया जाय। मैं अधिक लिखूंगा। परीक्षक बोर्ड बनाओ।

बापूके आशीर्वाद

हिन्दीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९३४)से, सौजन्य घनश्यामदास बिड़ला

२३४. पत्र : सुलोचनाको

२६ मार्च, १९३३

चि० सुलोचना,

तुमारा पत्र मिला है। लग्नके बारेमे पिताजी से तुमारे यह कहना चाहिए। अब तो तुमारा अभ्यासकाल है। अभ्यास पूर्ण होनेके बाद अगर तुमारी इच्छा लग्नकी हुई तो पिताजी से कह देगी। सब लडकीयो के लिये लग्न आवश्यक तो हो नहि सकता है। जगतमे अनेक स्त्रीया हैं जिन्होने कभी लग्न नहि किये है।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१३३)से।

२३५. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२७ मार्च, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

डाक्टरी जाँचके लिए सेठ जमनालालजी के आर्थर रोड जेलमे तबादलेके सम्बन्ध मे क्या आप सरकारसे यह मालूम करेगे कि चूंकि उनके यहाँ रहते हुए मुझे उनसे प्रतिदिन मिलनेकी अनुमति प्राप्त थी, इसलिए अब क्या मै उनको बिना किसी प्रतिबन्ध के पत्र लिख सकता हूँ और उनके पत्र बेरुकावट पा सकता हूँ? कहनेकी जरूरत नही कि उन पत्रोमे केवल उनके स्वास्थ्य और अस्पृश्यताकी ही बाते रहेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८४)से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल न० ८०० (४०) (३), भाग-४, पृ० २६१ से भी

२३६. पत्र : भाईलालको

२७ मार्च, १९३३

भाई भाईलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जो जानकारी दी है उसका उपयोग करनेका मेरा इरादा है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२९९) से।

२३७. पत्र : नानालाल का० जसानीको

२७ मार्च, १९३३

भाई नानालाल,[1]

मगनलालका[2] पत्र और तार मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। मैंने जो उत्तर दिया है वह भी तुम तारके फार्मपर लिखा पाओगे।

मुझे लगता है कि अब तो बँटवारा कर ही देना पड़ेगा। इस सम्बन्धमें भी सभीके दस्तखत कराने पड़ेंगे। इसलिए मैं मगनलालको यहाँ बुला रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि बँटवारेके लिए तो छगनलाल[3] भी तैयार ही होगा। और लगता है कि चम्पा[4] भी यही चाहती है। यदि ऐसी ही बात हो तो शायद तुम मगनलालका यहाँ आना आवश्यक ही न समझो। यदि ऐसा हो तो तुम वहाँसे उसे न आनेका तार दे देना। किन्तु मेरे साथ यदि तुम भी यही सोचते हो कि यहाँ तीनों भाइयोंकी उपस्थिति आवश्यक है तो मगनलालको आनेके लिए तार दे देना।

चम्पा और रतिलालकी[5] मुझे चिन्ता है। चम्पा तो स्वभावत वही करेगी जो उसके पिता कहेंगे और आजकल रतिलाल चम्पाके कहेमें चलता जान पड़ता है। प्रभाशंकर[6] पर मेरा तनिक भी विश्वास नहीं रह गया है। उसकी मनोवृत्ति मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगती। उस दिन उसने सच-झूठ, विनय-अविनयमें भेद नहीं किया। मुझे ऐसा लगा कि वह पैसेकी खातिर अपनी बेटी और दामादके हितोंको हानि पहुँचानेके लिए तैयार था। ऐसी स्थितिमें मैं उसके पक्षमें राय नहीं दूँगा अर्थात्

१. डॉ० प्राणजीवन मेहताकी रंगून स्थित पेढ़ीके भागीदार और मुनीम।

२, ३, और ५. डॉ० प्राणजीवन मेहताके पुत्र।

४. डॉ० प्राणजीवन मेहताकी पुत्रवधू; रतिलालकी पत्नी।

६. चम्पाके पिता।

उसे सरक्षक वनानेमे मै अपनी सहमति नही दूंगा। किन्तु मै यह कदापि नही मानता कि डाक्टरका एकमात्र हितेच्छु मै हूँ। तुम्हे और रतुभाईको[1] भी मै उतना ही हितेच्छु मानता हूँ। अत यदि तुम प्रभाशकरको सरक्षक बनाना चाहो तो अवश्य बना सकते हो। सरदार मुझसे सहमत है। मैने यह पत्र उन्हे दिखाया है। जो निर्णय होगा उसमे मै आडे नही आऊँगा। यह तो तुम समझ ही जाओगे कि मैने अपनी भावना व्यक्त की है। यदि तुम्हारे मनपर इसकी कोई प्रतिक्रिया नही होती तो तुम इसे अनदेखा कर देना। मैने अपना हृदय साफ रखनेकी दृष्टिसे यह लिखा है। यह पत्र प्रभाशकरको दिखानेमे मुझे कोई आपत्ति नही है वल्कि मै तो यह चाहता हूँ कि तुम उन्हे भी पढवाओ। मुझे तो यही उचित जान पडता है कि जो-कुछ मेरे मनमे है उसे वे भी जान ले। चम्पा-रतिलालको यह सब लिखनेकी मेरी इच्छा नही होती। उन्हे बताना कर्तव्य भी नही है। जिस प्रकार प्रभाशकरके बारेमे उनके मनमे बुरे भाव पैदा करनेमे मुझे दु ख होता है उसी प्रकार यदि तुम्हे अपने विचार न बताऊँ तो यह द्रोह होगा।

यह काम लटका हुआ है और उलझता जाता है, यह अच्छा नही लगता। तुमसे जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४०) से।

२३८. पत्र : लक्ष्मी जेराजाणीको

२७ मार्च, १९३३

चि० लक्ष्मी[2],

आखिर तेरा पत्र मिल ही गया। मैने तो तुझे पत्र लिखा था। आशा है, तेरा स्वास्थ्य ठीक होगा। आजकल तेरा दैनिक कार्यक्रम क्या है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

क्या मै ऐसा मान लूं कि काका अब बिलकुल ठीक है?

चि० लक्ष्मी जेराजाणी
खादी भण्डार
कालबादेवी[3], बम्बई

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८१४)से, सौजन्य . पुरुषोत्तम डी० सरैया, बम्बई

१. छगनलालके ससुर।
२. बम्बईके एक खादी-कार्यकर्ता विट्ठलदास जेराजाणीकी भतीजी।
३. साधन-सूत्रमें "काल्का देवी" है।

२३९. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

२७ मार्च, १९३३

भाई परीक्षितलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। गुजराती 'हरिजन' मे लेख पढनेके बाद जो पूछना चाहो सो पूछना। अग्रेजी 'हरिजन'के लिए भी वैसा ही लिखा है। वह जल्दी ही प्रकाशित होगा। तुम्हे मासिक खर्चके लिए कुछ मिल जाता है, यह मैं जानता हूँ। इसमे कोई दोष नही है। यदि यह मूल खातेमें से निकाला जाये तो इसमे कोई तात्त्विक दोष नही दिखता। यदि मूल खाता यह भार सहन न कर सके तो इस खातेसे निकालनेमे भी मुझे कोई आपत्ति नही है। इस गरीब देशमे हमें जो भी सेवक मिलेगे वे सब अवैतनिक होगे, इसे मैं सभव नही मानता। किन्तु तुम्हारे-जैसा सेवक किसी सस्थाके लिए भार रूप नही होगा।

बापूके आशीर्वाद

श्री परीक्षितलाल मजमूदार
अस्पृश्यता निवारण सघ
ऐलिसब्रिज
अहमदाबाद
बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९९५)से।

२४०. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

२७ मार्च, १९३३

चि० नर्मदा,

तेरा पत्र मिला। तूने वह मास अपने हाथो मिट्टीमे गाड दिया, वह बहुत अच्छा किया। उसे तूने उन लोगोसे उन्हें कुछ बुरा-भला कहकर तो नही लिया था? यह याद रख कि किसीसे जबरदस्ती कुछ नही कराना है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७७५)से, सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

२४१. पत्र : प्रभावतीको

२७ मार्च, १९३३

चि० प्रभावती,

तुमको मैं तो बराबर खत लिखता रहता हू। तुमको न मिले उसका मैं क्या उपाय कर सकता हू। तुमने लिखा था इस परसे मैंने गुजरातीमे खत लिखा था। तुमको क्यो नहिं मिला? यह खत था भी लबा। तुम्हारे [सभी प्र][1]श्नोका उत्तर दिया था।

. . . [प] हरेदारी इ० नहिं लिखा सो . . . हुआ।

[खत] नियमित नहि मिलते हैं, नियमित कोई मिलनेके लिये नहिं आते हैं उस कारण तुमारे दोनो बध करनेकी कोई आवश्यकता नहि है। कोई न आवे खत न मिले तो भी तुमारे खुश रहनेकी कला सीख लेनी चाहिये। आवे तो अच्छी बात है, न आवे तो भी अच्छी बात समजो। न आवे तो इतना समय कुछ उद्यमके लिये बचाया मानो। मेरे खतके लिये विश्वास रखो कि मैं कितना भी काम होगा तो भी तुमको खत लिखनेका समय अवश्य बचाऊगा।

प्रवचनके[2] बारेमे नारणदासको लिखुगा।

मेरा वजन १०४ रतल है। अच्छा है। एक रतल दूध (कच्चा गरम नहिं) प[पीता] नारगी और खजूर लेता हूँ। . . है। दो बार लेता हू। प्रात. . . . उठता हू। सारा दिन हरिज[न] [कार्यमे] जाता है ऐसा कहा जाय।

कांता जानती है ना कि मै जान[बूझ] कर उसको खत नहिं लिखता हू जिससे वह दूसरे खत पा सके। चिन्ता सब छोडो।

लक्ष्मीके लग्न मारुतीके साथ किये।[3] करीब सो हरिजन अहमदाबादसे आशीर्वाद देनेको आये थे। सबको फलाहार करवाया। मारुती लक्ष्मीदासके साथ बारडोली मे रहता है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३३०५)से।

१. कागज जगह-जगहपर फटा हुआ है।

२. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", २६-३-१९३३।

३. देखिए "सन्देश: लक्ष्मी और मारुतिके विवाह पर", ८-३-१९३३।

२४२. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२७ मार्च, १९३३

अब हरिजनोके लिए सभी निजी मन्दिरोके द्वार खुलवानेके लिए ऐसी जोरदार कोशिश करनी चाहिए जैसी पहले कभी नही की गई।

यह पूछनेपर कि क्या विधान-सभामें विधेयकको राय जाननेके लिए परिचालित करनेका प्रस्ताव पास न हो सकनेसे मन्दिर-प्रवेशका प्रश्न ठप्प हो गया है, उन्होंने नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा :

नही, इसका यह मतलब नही है कि मन्दिर-प्रवेशका प्रश्न ठप्प हो जायेगा, लेकिन यह तो है ही कि गत सितम्बर महीनेमे दिये गये वचनकी दृष्टिसे हरिजनोको जो-कुछ देना चाहिए था वह नही दिया गया है और इसलिए उस वचनको पूरा करनेके लिए हरचन्द कोशिश करनी चाहिए। इस बीच लोकमत तैयार करने और हरिजनोको मन्दिरोमे प्रवेश दिलानेके जो और उपाय है उन्हे आजमा कर देखना चाहिए। और इस सम्बन्धमे मुझे स्वभावतः जो एक बात सूझती है वह यह है कि सभी निजी मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खोल दिये जायें।

निजी मन्दिरोके सम्बन्धमे ऐसी कोई प्रथा प्रचलित नही है जिसकी आड़ लेकर कोई तीसरा पक्ष हरिजनोको उनमे प्रवेश करनेसे रोक सके। इसलिए उनके द्वार तो हरिजनोके लिए खोल ही दिये जाने चाहिए और जिनके पास ऐसे मन्दिर नही है उन्हे सामान्य रूपसे सभी हिन्दुओके लिए मन्दिर बनवाने चाहिए। इन मन्दिरोका प्रवन्ध आदर्श ढगसे होगा और इनमे आदर्श पुजारी काम करेंगे और इस प्रकार ये आदर्श मन्दिर हिन्दू धर्मकी सच्ची अभिव्यक्ति होगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २८-३-१९३३

२४३. पत्र : वेरियर एलविनको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय वेरियर,

यद्यपि मैने अक्सर पाया है कि सत्य चाहे जितना कुरूप दिखे, वास्तवमे वह कल्याण ही करता है, तथापि मै मानता हूँ कि ए०[1] तुम दोनोके अधिक निकट आ गई थी। सच तो यह है कि अगर एक पक्ष भी शुद्ध हो तो दूसरे सभी पक्ष शुद्धताकी ओर प्रवृत्त हो जाते है। लेकिन जब दूसरे भी उसी दिशामे चलनेकी कोशिश कर रहे हो, तब एककी सफलता दूसरोकी सफलताकी लगभग निश्चित गारटी होती है।

मैने उससे यह नही कहा कि तुम अनजाने ही अपने-आपको छल रहे हो। उसका कहना है कि उसका मशा यह नही था कि तुम उसकी बातका ऐसा मतलब लगाओ। मेरे पास इस बातका कोई प्रमाण नही था कि तुम खुद अपने द्वारा छले जा रहे हो। मैने जो बात सचमुच कही थी वह यह है कि हम सबके खुद अपने द्वारा छले जानेकी सम्भावना रहती है, लेकिन तुम जान-बूझकर झूठ नही बोल सकते और इसलिए अगर तुमने कभी वादा किया होगा तो तुम वैसा तुरत स्वीकार कर लोगे।

इसमे कोई सन्देह नही कि वह तुम दोनोको प्यार करती है और तुम्हारे साथ काम करना चाहती है। वह अभी हरिजन-सेवाका कुछ काम कर रही है। मैने उससे कहा है कि अभी तो असम्भव ही है, लेकिन अगर सबकुछ ठीकठाक चला तो कोई कारण नही कि वह आगे चलकर तुम्हारे साथ काम न कर सके।

अब मेरी[2] के सम्बन्धमे। मुझे तो यह आवश्यक लगता है कि कुछ समयके लिए तुम दोनोको अलग होकर देखना चाहिए कि तुम लोगोकी मन स्थिति कैसी रहती है। मेरी या तुम अल्मोड़ा या साबरमती अथवा वर्धा या जहाँ ठीक समझो वहाँ जाकर अस्थायी ढगका कोई हरिजन-सेवाका कार्य कर सकते हो। अगर तुमने एकान्त प्रेम बिलकुल त्याग दिया हो, तो तुम जितने सुखी सयोगमे रहोगे उतने ही वियोगमे भी होगे, और अभी तो वियोगमे निश्चित आनन्दका अनुभव होना चाहिए। इस तरहके सभी मामलोमे — और ऐसे अनेक मामले हुए है — यह चीज मैने नितान्त आवश्यक पाई है। तुम्हे इसपर विचार करना चाहिए और अगर इसमे कुछ सार नजर आये तो इसपर तत्काल आचरण करना चाहिए।

और अब तुम्हारे स्वास्थ्यके विषयमे।

१. अल्ला; देखिए "पत्र : वेरियर एलविनको", ११-३-१९३३।

२. मेरी जिलेट।

सुबहके ३-४५ बजे है और अब मुझे तुमको ईश्वरकी हिफाजतमे छोड़ना पडेगा। उसका संरक्षण ही सच्ची हिफाजत है। मनुष्य अपनी जो हिफाजत करता है वह उसी हदतक कारगर रहती है जिस हदतक वह ईश्वरके हिफाजत करनेसे मेल खाती है। इसलिए तुम मेरे सुझावोमें से केवल उतना ही अश स्वीकार करना जितना तुम्हारे मनको ठीक जँचे। मै तो क्षण-क्षण विनीत ही होता जाता हूँ और हर क्षण इस परम तथ्यका मुझे अधिकाधिक बोध होता जाता है कि मनुष्यका सच्चा प्रयत्न तो ईश्वरकी, जो सत्य ही है, इच्छा जाननेमे निहित है।

तुम्हे अपने सभी साथियोका प्रेम प्राप्त है।

हार्दिक स्नेह-सहित,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२७) से।

२४४. पत्र : आभाको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके प्रश्न बडे विचित्र है। यदि मै जान पाता कि सचमुच मै कौन हूँ तो यह बहुत ही बडी उपलब्धि होती। मेरा लक्ष्य तो सबकी सेवा करना है।

राधा और कृष्ण-विषयक आख्यानको मै अलौकिक मानता हूँ।

मै आपको सलाह दूंगा कि आप मुझको नही, बल्कि ईश्वरको समझनेका प्रयास करे, क्यो कि सत्यरूप वही है।

हृदयसे आपका,

श्रीमती आभा,
१८-बी, हर्तकीबागान लेन
डाकघर—बीडन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२८) से।

२४५. पत्र : अमूल्यकुमार बसुको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आप जिसे अपना कर्तव्य समझते है उसे करने पर आपको क्षमा माँगनेकी बिलकुल जरूरत नही है। अपने उद्देश्यके विषयमे जिस प्रामाणिकताका दावा मै अपने लिए करता हूँ उसी प्रामाणिकताका श्रेय मै दूसरोको भी देता हूँ। इसलिए मै आपसे केवल इतनी ही अपेक्षा करूँगा कि आप सत्यसे कभी विचलित न हो, जिस लक्ष्यको आप वाछनीय मानते हो उसकी सिद्धिके लिए भी नही। तब अगर आप मेरा विरोध करेंगे तो उसपर आपको मेरी ओरसे बधाई मिलेगी, और कौन जानता है कि तब शायद आप ही, अगर मै अन्धकारमे होऊँ तो, मुझे प्रकाशके दर्शन करायें। इसलिए मै आपके पत्र[1] के प्रति मैत्रीपूर्ण भावना रखूँगा, और अगर मुझे उसमे कही भी असत्य, अनौचित्य या कटुता दिखाई दी तो मै आपका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट करूँगा, और मै चाहूँगा कि अगर आपको 'हरिजन' मे कोई असत्य या अतिरजना अथवा मुझसे भिन्न विचार रखनेवालो के प्रति कोई अशिष्टता दिखाई दे तो आप भी उस ओर मेरा ध्यान दिलायें। मै अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका सबसे बडा अभिशाप मानता हूँ — चाहे मेरा ऐसा मानना सही हो या गलत। इसलिए उस अभिशापसे मुक्ति पानेके लिए मैं कुछ भी उठा नहीं रख रहा हूँ। लेकिन अगर यह वरदान है और कोई मुझे यह समझा सके कि यह वास्तवमे वरदान है, तो उसे मै अपना मुक्ति-दूत मानूँगा, क्योकि वैसा करके वह मुझे ऐसी भूलसे बचा लेगा जिसे मै लगभग पिछले पचास वर्षोंसे अपने मनमे पोसता आया हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमूल्यकुमार वसु
५, अक्षयकुमार वसु लेन
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३१)से।

१. सनातनी, एक अंग्रेजी साप्ताहिक।

२४६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२८ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदासजी,

मैंने परसो, २६ तारीखको हिन्दीमे जो पत्र[1] लिखा था, आशा है, वह तुम्हे मिल गया होगा। हमे कलकत्तेकी बस्तियोकी समस्याको सामूहिक रूपसे हल करनेका उपाय ढूंढना होगा, एक-एक, दो-दो बस्तियाँ करके नही। इसलिए अब जब कलकत्ता जाओ तो वहाँ कारपोरेशनके प्रमुख कौसिलरोकी एक अनौपचारिक बैठक बुलवाकर उनसे मिलना। इस समस्याके साथ कुछ व्यक्तियोके स्वार्थ जुड गये हो तो उससे क्या? हमें इन स्वार्थोपर प्रहार करना होगा और समस्याको हल करना ही होगा। तुमने मुझे जो-कुछ लिखा है उससे मै तो यही समझता हूँ कि सबसे सस्ता उपाय बस्तियोको तोड देना है। पाखाना सफाईकी ज्यादा मानवतापूर्ण पद्धति जारी करनेका विरोध मुझे बिलकुल ही व्यर्थ मालूम होता है। उन्नत साधनोके उपयोगसे आरम्भमे तो अधिक खर्च होता है, पर अन्तमे वे मितव्ययितापूर्ण सिद्ध होते हैं। इस समस्याको हल करनेमे जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है उनके पीछे सामान्यत. उन लोगोकी उदासीनता छिपी होती है, जो मुँहसे तो सुधारकी आवश्यकता बताते है, पर उसके लिए किसी प्रकारका त्याग करनेको तैयार नही होते है, तुम्हे इस उदासीनताको सक्रिय सहानुभूतिमे परिणत करना है और तब मार्ग अपने-आप निकल आयेगा।

हिन्दी 'हरिजन' के सम्बन्धमे मै तुम्हे परसो लिख चुका हूँ कि पहले लेखको छोडकर यदि कोई लेख पढने योग्य थे तो वे तुम्हारे लेख थे। तुम्हारी शैली मनोहर, सीधी-सादी और मुहावरेदार है। विषयका तुम्हारा विवेचन सरल, सीधा और सुबोध होता है। मेरे लेखोका अनुवाद दोषपूर्ण अवश्य था, पर अब यह कठिनाई नही रहेगी क्योकि अनुवाद यहीसे भेजे जायेगे। हाँ, उनकी हिन्दी वहाँ परिष्कृत करनी होगी। इससे खर्च भी कम होगा और पत्रका स्तर भी ऊँचा होगा।

डेविड-योजनाकी चिन्ता मत करो। उसके सम्बन्धमे मुझे क्यो लिखना पडा, यह तो मै तुम्हें बता ही चुका हूँ। पर तुम्हारी कठिनाईको मै समझता हूँ। यदि जरूरत हुई तो केन्द्रीय कोषका सहारा तो लेना ही पडेगा। परन्तु पहले देख ले कि पूरी रकम देनेवाले आधे दर्जन दाता भी मिलते हैं या नही। मै निराश नही हुआ हूँ, पर सुन्दर पत्र तैयार करनेका समय ही नही मिलता है। पर इधर मै समय निकालूंगा। जहाँ एक-दो नाम मिले कि उनके साथ तुम्हारे नामकी भी घोषणा कर दूंगा।[2]

१. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", २६-३-१९३३।

२. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", १६-३-१९३३।

तुम्हारे इस योजनाको उत्साहपूर्वक उठा लेनेसे हमारे कामको नुकसान पहुँचनेका तो सवाल ही नही था।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :][1]

रामानंद सन्यासीके बारेमे तुमारे साथ जो बातें हुई थी वह याद होगा। इस परसे मैंने उनको लिखा था कि उनके चारित्र्यके लिए मैंने शिकायत सुनी थी। इसका जो उत्तर आया वह इसके साथ रखता हूँ। अब उनका खत आया है कि उनको उर्दू 'हरीजन' निकालनेको तुमने कहा है।

बापु

अंग्रेजीकी प्रति (सी० डब्ल्यू० ७९३५) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला। जी० एन० २०७३२ से भी

२४७. पत्र : अविनाशचन्द्र दासको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं उन कठिनाइयोको जानता हूँ, जो आपको झेलनी पड रही है। मैं आशा करता हूँ कि अस्पृश्यता अब अधिक दिन चलनेवाली नही है और ईश्वरसे यही प्रार्थना करता रहता हूँ। जो भी हो, ऐसे बहुत-से सवर्ण हिन्दू है जो अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका अभिन्न अग नही मानते और इसके उन्मूलनके लिए अपना जीवन उत्सर्ग करनेको तैयार है। मैं आशा करता हूँ कि तथाकथित अस्पृश्योके बीच भेद-भावकी दीवारे खडी करके आप उस गलतीको नही दोहरायेंगे जो सवर्ण हिन्दुओने की है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अविनाशचन्द्र दास
बंगीय झल्ल मल्ल खत्रिय सभा
१४, नरेन्द्रसेन स्क्वेयर
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३०) से।

१. यह अंश हिन्दीमें है।

२४८. पत्र : गिरधारीलालको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

मैं डॉ० त्रिपाठीको नही जानता और न अन्य तीनोमे से ही कोई जानता है। आप उनको पत्र तो नही लिखवाना चाहते न?

यदि डाक्टर आपको कूने स्नानकी, जिसे कटिस्नान भी कहते है, अनुमति दे तो अम्हौरियाँ आसानीसे ठीक हो सकती हैं। कटि-स्नानमे कटि-प्रदेश पानीके अन्दर और पैर बाहर रखे जाते है। शायद आप इसे जानते भी हों।

हृदयसे आपका,

लाला गिरधारीलाल
१०९–ए, महेन्द्र मैंशन
एस्प्लेनेड रोड, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२९)से।

२४९. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

२८ मार्च, १९३३

बम्बई सरकारके सचिव
गृह विभाग

प्रिय महोदय,

इसी २३ तारीखके अपने पत्रके सिलसिलेमे मैं साथमे 'बॉम्बे-क्रॉनिकल' की एक कतरन भेज रहा हूँ, जिसमे सेठ पूनमचन्दके उपवासकी खबर छपी है। इस खबरको ध्यानमे रखते हुए मैं सादर अनुरोध करूँगा कि कल शामतक उत्तर भेज दिया जाये। यद्यपि मैं कैदी हूँ, फिर भी मैं सरकारसे यह अनुरोध करूँगा कि वह मेरी भावनाओको समझे। एक कैदीकी हैसियतसे अधिकारियोकी आज्ञाका पूर्ण पालन करते हुए अपने मनकी शान्ति प्राप्त करनेकी अपनी समस्त इच्छाके बावजूद, मैं अपने अन्दरके मानवतावादीको दबा नही सकता; अपने जीवनके उद्देश्यका परित्याग नही कर सकता। मैं सरकारसे यह समझनेका भी अनुरोध करूँगा कि मैं — यदि यथोचित विनयके साथ कह सकूँ तो कहूँगा — सैकड़ो पुरुषो और स्त्रियोके लिए पितृ-तुल्य हूँ। वे मुझसे ऐसी अपेक्षा नही कर सकते कि यदि मुझसे बने तो सेठ पूनमचन्दको बचानेकी कोशिश न करूँ और उन्हे यों ही मर जाने दूँ।

मैं कर्नल डॉयलसे इस पत्रका मजमून आपको तार या टेलीफोनसे सूचित करनेको कह रहा हूँ[1]।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

सलग्न पत्र – १

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८०० (४०) (३) ए, पृष्ठ ८७

२५०. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको[2]

२८ मार्च, १९३३

इस मामलेमें इतनी जल्दी कारंवाई करनेकी जरूरत है कि मेरे लिए इन्तजार करना अत्यन्त कठिन है। अभी तो जो स्थिति है उसमें मेरा मन भारी यन्त्रणा सह रहा है। अगर सेठ पूनमचन्दको कुछ हो गया तो मुझे सारी जिन्दगी इस बातका मलाल रहेगा कि मैं सरकारसे समयपर उनसे सम्पर्क स्थापित करनेकी अनुमति नहीं पा सका। इसलिए मेरे सामने तत्काल उत्तर देनेका अनुरोध करनेके अलावा कोई चारा नहीं है।[3] मेरा सुझाव यह है कि बम्बई सरकार अपनी ही जिम्मेदारीपर मुझे मध्य प्रान्तके गृह-सदस्यकी मार्फत सेठ पूनमचन्दसे सम्पर्क करनेकी अनुमति दे दे[4]।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) ए, पृ० ९१

१. कर्नल डॉयलने बम्बई सरकारको टेलीफोनपर पूरी स्थितिसे अवगत कराया। उत्तरमें कहा गया: "हम भारत सरकारसे सम्पर्क कर रहे हैं। क्या गांधी परसोंतक इन्तजार नहीं कर सकते?"

२. यह बम्बई सरकार द्वारा दिये गये पिछले पत्रके उत्तरपर लिखा हुआ था।

३. यह ३० मार्च, १९३३ को प्राप्त हुआ था; देखिए महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ २०६।

४. गांधीजीने जेल-अधिकारियोंसे अनुरोध किया था कि इसका मजमून भी टेलीफोनपर सूचित किया जाये।

२५१. पत्र : रा० को

२८ मार्च, १९३३

प्रिय रा०,

तुम्हारे दो पत्रोके लिए धन्यवाद, लेकिन साथ ही यह अवश्य कहूँगा कि उनसे मुझे कोई सन्तोष नही मिला। मैंने जल्दबाजीमे नही लिखा[1] था। मैंने तो जो-कुछ नी० देवीने मुझे बताया और बादमे लिखा भी था, उसीके आधारपर तुम्हे लिखा था। तुम्हारे पत्रसे भी मेरा यह सन्देह पुष्ट होता है कि तुम्हारी प्रवृत्तियोमे कही प्रच्छन्न भावुकतापूर्ण प्रेम मौजूद है। यह प्रेम अवाछनीय है और अपवित्र प्रेमकी सीमाका स्पर्श करने लगता है। इस बातको मै इससे ज्यादा नरम ढगसे नही कह सकता था। और तुम्हारे वे गुरु यदि वही सज्जन है जिनके बारेमे नी० देवीने मुझे बताया है तो उनके बारेमे भी मै सन्तुष्ट नही हूँ। यहाँ मेरी स्थिति जरा नाजुक है, क्योकि मै उनके बारेमे कुछ नही जानता और हो सकता है, यह सब कहकर, मै उनके साथ बहुत बडा अन्याय कर रहा होऊँ। अपने साथियोकी जिम्मेदारी लेनेसे तुम इनकार नहीं कर सकते। तुम सब एक साथ काम कर रहे थे और सबका आकर्षण-केन्द्र नी० देवी थी, जो तब कोई पवित्रताकी स्रोत नही थी। उस अवधिमें जो-कुछ हुआ, उसके दायित्वसे तुम अपनेको बचा नही सकते। इसलिए मै चाहूँगा कि अबतक तुमने जितना किया है उससे कुछ अधिक आत्मचिन्तन करके देखो और मुझे बताओ कि क्या भगीका काम जिस तरह शुरू हुआ था उसी तरह बिना रुके चल रहा है और अगर चल रहा है तो कार्यकर्ता कौन-कौन है, वह कैसे किया जा रहा है, नेता कौन है और अब तकका परिणाम क्या सामने आया है। काम अगर बन्द हो गया है तो बताना कि क्यो।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३५) से।

१. देखिए "पत्र : रा० को", १८-३-१९३३।

२५२. पत्र : नी० को

२८ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारे २३ और २४ तारीखके पत्र मिले। मैं समझता हूँ कि तुम अपने इरादेके मुताबिक रविवारको गाँवके लिए रवाना हो गई होगी। मेरी यही कामना है कि वहाँ सत्यनारायण तुम्हारी रक्षा करें!

मैं निजी अनुभवसे यह जानता हूँ कि अगर काफी पानी न हो तो मोटी खादी धोना कितना मुश्किल है। आम तौर पर धुलाई सिलाईसे पहले ही की जाती है, लेकिन अगर एक ही कपडेको धोनेकी भी जरूरत हो और सीनेकी भी तो निस्सन्देह पहले सिलाई ही की जाती है, क्योकि इससे समय बचता है। धोनेसे जहाँ मरम्मत की जरूरत हो वहाँ कपडा ज्यादा फटता है, इसलिए अगर धुलाईके बाद सिलाई की जाती है तो उसपर ज्यादा समय देना पडता है। जब तुम अपनी पोशाकके सजावटवाले हिस्सेको बिलकुल छोड दोगी और उसे ऐसी बना दोगी कि वह सिर्फ तुम्हारे शरीरकी रक्षा कर सके और आसपासके चलनसे मेल खाती हो तो खुद तुम्हारी पोशाकमे ही कुछ परिवर्तनकी जरूरत पड सकती है। गिनतीमे बहुत कमकी जरूरत है और वहाँ जो चलन है वह तो गरीबसे-गरीब लोगोवाला चलन ही है।

सर टॉड हटरका पत्र तुम्हे मिला, यह जानकर खुशी हुई।

रा० के पत्रोसे मैं तनिक भी सन्तुष्ट नही हूँ। पुराना मोह कही अब भी छिपा हुआ है और पत्र पढते हुए उनमे अतीतका औचित्य सिद्ध करनेकी प्रवृत्ति दिखाई देती है। मैंने उसको पत्र[1] लिखा है और उसमे हलकेसे उसके पत्रोकी कमी की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया है। दुर्गादासका पत्र तो मुझे और भी कम रुचा। सम्बोधनका ढग अक्षम्य है। वह तुम्हारा मार्ग-दर्शक, मित्र या भाई नही बन सकता। जैसा कि उसने खुद ही बताया है, वह जानता था कि तुम एक पतित स्त्री थी, फिर भी अपनी बहनका उद्धार करनेकी उसने जरा भी कोशिश नही की। तुम्हारी ओरसे पत्र-व्यवहार फिर शुरू करनेका कोई प्रश्न ही नही उठता। अभी तो तुम्हारा सारा सम्पर्क सीधे तुम्हारे और सत्य-रूप ईश्वरके बीच ही होना चाहिए। तुम्हारे और उसके बीच और किसीको, किसी भी चीजको नही आना चाहिए। मैं बीचमे इसलिए आता हूँ कि तुमने अपने स्रष्टाको जो वचन दिया है उसका मैं साक्षी हूँ और फिर इसलिए कि मैं तुम्हे, मेरे विचारसे, ससारके सबसे अधिक दलित जनसमुदाय — हरिजनो — की सेवाके कार्यमे अपनी स्थायी सहयोगिनी कह सकना चाहता हूँ, किन्तु

१. देखिए पिछला शीर्षक।

मेरे खयालसे हम — मैं या तुम — तबतक इस सेवाकार्यके योग्य नही बन सकते जबतक सत्यके साथ हमारा ऐसा प्रत्यक्ष सम्पर्क पूर्णत. स्थापित नहीं हो जाता और हमपर एक धुन-जैसी सवार नही हो जाती कि मनुष्यके लिए जितना शक्य है उतने अधिकसे-अधिक पवित्र बनकर ही हम दम लेगें।

तुम्हे ठंडसे सावधान रहना चाहिए।

अगर तुम्हें चोकर समेत गेहूँका आटा मिले तो तुमको चावल बिलकुल नही लेना चाहिए। तुम्हे चपाती बनाना सीख लेना चाहिए। यह बेहद सरल काम है। चार औंस साफ गेहूँका आटा लो, उसमें पानी मिलाकर उसे ठीकसे गूंधो, फिर उसे बेलनसे — साफ-सुथरे रूलरसे भी काम चल जायेगा — लकड़ी या पत्थरके चिकने चकले पर गत्तेसे जरा पतला बेल लो और तवेपर उलट-पलटकर सेक लो। चार औंस आटेसे तुम छ·-छः इच व्यासकी छ· चपातियाँ बना सकती हो। ये बिलकुल सुपाच्य होगी। लेकिन मुझे यकीन है कि तुम घर या झोपडी जहाँ भी रहती होगी, उसकी माल-किनको यह सीधा-सादा काम जरूर आता होगा। दाल बिलकुल नही लेनी चाहिए। कच्चा नारियल, अगर वह खूब कच्चा हो तो, हर रोज एक ले सकती हो और कहनेकी जरूरत नही कि उसके सारे पानीका भी उपयोग करो। तुम्हे कुछ फल और सब्जियाँ, आलू वगैरह नही, बल्कि साग, लौकी, ककड़ी, कद्दू वगैरह लेना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३३) से।

२५३. पत्र : रामचन्द्रन्‌को

२८ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्रन्,

इतने महीनोंके बाद तुम्हारे हस्ताक्षर देखकर खुशी हुई। लेकिन, तुम कहाँ क्या करते रहे हो, इससे मैंने अपनेको अवगत रखा है।

नारायण अय्यरको मैं उनकी 'परमानेंट हिस्ट्री ऑफ भारतवर्ष' के कारण अच्छी तरहसे जानता हूँ और, जहाँतक मेरा विचार है, मैं उनसे त्रिवेन्द्रम्‌में मिला भी हूँ। वे विद्वान् है, बहुत सुलझे हुए पर विचारक नही। उनकी पुस्तक 'परमानेन्ट हिस्ट्री' से मेरे मनपर यही छाप पड़ी है। लेकिन वे उत्साही व्यक्ति है। फिर भी, मैं उनकी पुस्तिकाएँ पढनेकी कोशिश करूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३४) से।

२५४. पत्र : मोतीलाल रायको[1]

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

मुझे आपके दो पत्र मिले, जिनमें से एकके साथ श्री पचानन तर्करत्नके पत्रका अनुवाद भी था। आपने अपने पत्रमें जिन प्रश्नोंकी चर्चा करनेका इरादा जाहिर किया है, उनके बारेमें आप अपने समय और सुविधाके अनुसार लिखें। मैं धैर्य रखूँगा। समय मिलते ही, मैं आपका भेजा हुआ न्यासपत्र पढ़कर, उसके विषयमें कोई टीका-टिप्पणी करनी हुई तो वह आपको लिख भेजूँगा।

आपकी आँखोंको क्या हुआ है? कृपया मुझे ठीक-ठीक बताइए कि क्या खराबी है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२५) से।

२५५. पत्र : डी० वलीसिन्हाको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपकी पत्रिकाकी एक प्रति मिली।

कैदी होनेके कारण, अस्पृश्यताके सिवा और किसी विषयपर मेरे सन्देश भेजनेपर पाबन्दी लगी हुई है। इसलिए आपको मैं जो सन्देश भेज सकता हूँ, वह यदि आपके किसी कामका हो तो इस प्रकार है: जिन चीजोंके कारण गौतम बुद्धके जीवनमें मेरी श्रद्धा है, उनमें से एक यह है कि उन्होंने अस्पृश्यता अर्थात् ऊँच-नीचके भेद-भावको पूर्ण रूपसे मिटा दिया था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वलीसिन्हा
प्रबन्ध सम्पादक, 'महाबोधि'
होली इसीपट्टन, सारनाथ
बनारस

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३६)से।

१. चन्द्रनगर स्थित प्रवर्तक-संघसे सम्बद्ध।

२५६. पत्र : भाऊ पानसेको

२८ मार्च, १९३३

चि० भाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। अभी तो तुम्हे वही रहना है। लोगोमे घुलना-मिलना सीख लेना चाहिए किन्तु इसके बावजूद अलिप्त रहना चाहिए। वहाँ पाखानोकी सफाई आदि करनेका जो काम सामान्यत· अन्य लोग नही करते वह तुम्हे प्रसन्नता-पूर्वक करना चाहिए। अपने मनमे आश्रम[1] लौटनेकी इच्छा बनाये रखना, ऐसा करनेसे नियमबद्ध रह सकोगे। किन्तु फिलहाल इस इच्छाको दबाये रखना और वहाँ रहते हुए अपने शरीरको खूब स्वस्थ बना लेना। हमे तो जहाँ रहना है वही सेवा करनी है। वहाँ भी तुम्हे सेवा करनेका अवसर तो मिला ही है। यह बहुत ही अच्छी बात है कि तुम्हे मजदूरोके सम्पर्कमें आना पडा।

मुझे नियमित रूपसे लिखते रहना। तुम्हे सप्ताहका कोई दिन निश्चित कर लेना चाहिए और उस दिन पत्र अवश्य लिखना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७५२)से। सी० डब्ल्यू० ४४९५ से भी, सौजन्य : भाऊ पानसे

२५७. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

२८ मार्च, १९३३

. . शुक्रवार कुटम्बके मेल-मिलापका दिन होगा। [2] आना चाहते है। यदि तू भी आना चाहे तो उस दिन आ जाना। दिलीपको[3] हरिजनोके विषयमें सिखाना। उसे तुम्हारे साथकी जरूरत है। तारामतीको[4] शिक्षिका बनना चाहिए।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२२

१. भाऊ पानसे उन दिनों राजकोटमें थे; देखिए "पत्र: भाऊ पानसेको", २०-३-१९३३।
२. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिया गया।
३ मथुरादास त्रिकमजी के पुत्र।
४. मथुरादास त्रिकमजी की पत्नी।

२५८. पत्र : बाबूलालको

२८ मार्च, १९३३

भाई बाबुलाल,

(१) माताका विरोध होते हुए भी अस्पृश्यता निवारणको धर्म मानते हो तो जहाँतक सभवित है वहातक माताको राजी रख कर धर्मका पालन करना कर्तव्य है।

(२) हरिजनोके लिए साफ पानीका प्रबध नहि है। ऐसी जगह प्रथम कर्त्तव्य पानीका प्रबध करनेका है। इसलिए उन लोगोके लिये अच्छा कुआ बनाया जाय जिसका उपयोग सब लोग कर सके। लेकिन ऐसी जगहपर हो जहा उनको सुविधा हो और उस पर स्पष्ट लिखा जाय कि यह कुआ स्पृश्य-अस्पृश्य दोनोके लिये है। पहेले हक्क अस्पृश्योका है।

(३) इसीके साथ २ दूसरे कुअेके उपयोगके बारेमे आदोलन चलते रहना चाहिये।

हिन्दीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३७) से।

२५९. पत्र : नागरिक मंडल, वाराणसीके मंत्रीको

२८ मार्च, १९३३

मंत्री महोदय,
नागरिक मडल
बनारस

हरिजन बालकोको कपड़े और मिठाई बांटनेमे कोई बडा दोष न हो सही लेकिन उसका कोई असर मेरे दिलपर नही पड़ता है। उनको इन चीजो कि आवश्यकता थी? अगर थी तो तो बटाई भले हुई। अगर नही थी तो मुझे सदेह है। इससे अस्पृश्यता नहि निकलेगी। इससे आत्मवचना हो सकती है। ऐसा दान करके हम अपना सच्चा कर्त्तव्य है उसको भूल तो नहि जाते है? ऐसे प्रश्न मेरे मनमे उपस्थित होते है। लेकिन मै आपके कार्यका काजी बनना नहि चाहता हू। और जिस चीजमे पू० मालवीयजी खूद शामेल थे उसके बारेमें टीका करनेका मुझको अधिकार नहि है। ऐसा बहुत बार होता है। मेरा मतलब आप समजे होगे।

हिन्दीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२४)से।

२६०. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२८ मार्च, १९३३

यरवडा जेलमें श्री गांधीके उपयोगके लिए जो आँगन है उसमें दो बड़े-बड़े दूर-वीक्षण यन्त्र[1] रखे हुए थे। जेलके परिवेशकी कड़ी सादगीके बीच वे एक असाधारण दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। . . .

[श्री गांधीने कहा :]

ये मेरे लिए है।

उन्होंने बताया कि खगोल-विज्ञानमें मेरी रुचि सदासे रही है, लेकिन इस बार जेल आनेके बादसे मैं इसमें और अधिक रुचिके साथ लगा हुआ हूँ। उन्होंने आगे कहा :

अब तो मुझे इसकी धुन सवार हो गई है। मैं अपने अवकाशके एक-एक क्षणका उपयोग इसीमे करता हूँ। यह विषय बड़ा रोचक है और ईश्वरकी रहस्य-मयता तथा उसकी सृष्टिकी भव्यताका जितना बोध मुझे यह कराता है उतना और कोई विषय नही। तारो-भरी रातमें खुले आकाशके नीचे पीठके बल लेटे-लेटे उसकी एकके-बाद-एक सृष्टिके अपरिमेय विस्तारका अवलोकन करते हुए आप ईश्वरके पुजारी बने बिना नही रह सकते, ऐसा करते हुए मेरा मन तो हर्षसे कुलाँचे भरने लगता है। आहा, कितना भव्य है यह सब।

श्री गांधीने आगे कहा कि इसके लिए उच्चतर गणितके अध्ययनकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि खगोल-विज्ञानमें मेरी रुचि किसी पेशेवर खगोल-शास्त्रीकी-सी नहीं है। मैं इस विषयपर बहुत-सी पुस्तकें पढ़ता रहा हूँ। और इन संयन्त्रोंकी मददसे मैं अपनी आँखोंसे उन सृष्टियोंकी और अधिक झाँकी देख सकूँगा। इनका प्रयोग मैं आसानीसे समझ गया, क्योंकि इनको ठीक-ठीक जमानेमें बारीकी तो है, फिर भी वह है बहुत सरल।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ३-४-१९३३

१. रिपोर्टके अनुसार ये यन्त्र गांधीजी को पूना निवासिनी लेडी प्रेमलीला ठाकरसीने दिये थे।

२६१. पत्र : पी० आर० लेलेको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय लेले,

आपने एक स्कूलके उद्घाटन-समारोहके सम्बन्धमे 'फ्री प्रेस' से एक कतरन मुझे भेजी है। मै तो चाहूँगा कि आप मुझे उद्धृत करनेके लिए अखबारकी कतरने भेजनेके बजाय खुद अपनी ओरसे एक प्रामाणिक विवरण भेज दें, जिसे मै प्रान्तीय बोर्डकी ओरसे उसके नामसे प्रकाशित कर सकूँ। श्रीयुत मजारियाको अन्धेरीमें स्कूलके उद्घाटनका ऐसा विवरण आपको दे सकना चाहिए था।

इस विवरणमे कहा गया है कि सभामें मुख्यतः हरिजन पुरुष और बालक शामिल थे। क्या यह सच हो सकता है? प्रामाणिक विवरणमे यह भी बताया जाना चाहिए कि स्कूल चलानेमे कितना खर्च बैठनेकी सम्भावना है और उसके लिए कितना चन्दा जमा किया जा चुका है, इमारतका भी कुछ वर्णन होना चाहिए। फिर, किसी अकेली घटनाका विवरण छापना पडे तो ठीक नही लगता। विवरणमे एक अवधि विशेषके दौरान स्वयं बोर्डकी अथवा उसके अधीन चलनेवाली प्रवृत्तियोका सिलसिलेवार वर्णन होना चाहिए।[1] क्या आप ऐसा नही मानते?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७४३) से।

१. इसके उत्तरमें पी० आर० लेले ने गांधीजी को आश्वस्त करते हुए अपने १-४-३३ के पत्र (एस० एन० २०७९८) में लिखा कि फ्री प्रेसकी रिपोर्टमें "अखबारोंको भेजे प्रामाणिक विवरणको ठीक-ठीक उद्धृत किया गया है"।

२६२. पत्र : नी० को

२९ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारा इसी २६ तारीखका पत्र मिला। तुम्हारा कहना ठीक है। बेशक, मै यही चाहता हूँ कि मेरे लिखे हरएक शब्दसे सत्य और प्रेमकी आभा छिटके, और अगर ऐसा नही होता तो उसका कारण यह नही है कि मैं पूरी कोशिश नही करता। इसलिए तुम्हे इस तरहकी कोई आशका रखनेकी जरूरत नही कि रा० को मैं जान-बूझकर बुरी लगनेवाली बाते लिखूँगा। कल उसको एक पत्र[1] लिखा है, जिसमे मैंने वैसी ही बाते कही है जैसी कि तुमने अपने इस पत्रमे कही है। उसने एक लिफाफेमे मुझे दो पत्र भेजे, लेकिन दोनो असन्तोषजनक थे। उन परसे मैं देख सकता था कि अबतक उसे सत्यका बोध नही हुआ है।

अपनी नई परिस्थितिका — अर्थात् अपने परिवेश, पडोसियो, गाँवकी आबादी, गाँवमें खरीदी जा सकनेवाली चीजो, मैसूर या बगलोर अथवा किसी बडी जगहसे उसकी दूरी, निकटतम रेलवे स्टेशनसे उसकी दूरी, पानी मुहैया करनेके इन्तजाम, वहाँकी आबादीके जाति-धर्म आदि सब कुछका — वर्णन जितने विस्तारसे कर सको करना। यह भी बताना कि वहाँ तुम्हे अच्छा दूध मिल सकता है या नही। गाँवमें कौन-से पशु पाले जाते है? अगर तुम्हे गायका अच्छा दूध न मिले और वहाँ बकरियाँ हो तो सि० के[2] लिए बकरीका दूध लेनेमे सकोच न करना। तुम्हे खुद ही बकरी दोहना सीख लेना चाहिए और बकरीको अपने यहाँ मँगवाना चाहिए ताकि तुम आश्वस्त हो सको कि जो दूध मिले, शुद्ध हो; और अगर वहाँ गाये हो तो गाय दोहना भी सीख लो। अगर तुम्हे कमजोरी महसूस हो या यह लगे कि पाचन-यन्त्र जैसा चाहिए वैसा ठीक नही रहता है, तो मै चाहूँगा कि तुम फिरसे दूध और मक्खन लेना शुरू कर दो, लेकिन मक्खन उतना नही जितना कि दूध लो। मुझे तो तुमने बिना उबाला दूध लेते देखा ही था। उसी तरह तुम भी बिना उबाला दूध लो। फिर तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमे मुझे कोई चिन्ता नही रह जायेगी।

मै यह तो जरूर चाहता हूँ कि तुम गरीबसे-गरीब हरिजनका जीवन व्यतीत करो, लेकिन यह नही चाहता कि जो असम्भव हो वह करो, और इसलिए तुम्हारे स्वास्थ्यके लिए जो चीजे बहुत जरूरी हो, वे अगर माँगनेसे मिल जाये तो तुमको अवश्य लेनी चाहिए। अगर तुम्हे वे चीजें सम्मानजनक ढगसे न मिल सकें, तो फिर ईश्वर तुम्हे अभावजनित कष्ट और कठिनाई सहनेकी भी शक्ति देगा, लेकिन तब भी तुम स्वास्थ्यको अनुकूल न पडनेवाली ऐसी-वैसी चीजे न लेना। जो आहार पचे

१. देखिए "पत्र: रा० को", २८-३-१९३३।

२. नी० के पुत्र।

नही या जो शक्ति न दे वैसा आहार लेनेसे अच्छा तो उपवास करना है। वैसी जरूरत पडनेपर कुछ थोडे-से सुखे खजूर या मुनक्के अथवा अजीर अच्छी तरहसे धोकर लेनेसे तुम्हारा, वल्कि सि० का भी काम चल सकता है। लेकिन मुझे पूरा भरोसा है कि यदि सत्यमे तुम्हारी जीवन्त श्रद्धा है तो वह तुम्हारी इतनी कठिन परीक्षा नही लेगा जिसे तुम सह न सको।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७५१) से।

२६३. पत्र : आर० एफ० पाइपरको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपसे न मिल सका, इसका खेद है। आपके प्रश्नोके[1] उत्तर ये रहे :

१ मशीनसे आपका तात्पर्य निस्सन्देह कृत्रिम शक्ति-चालित मशीनसे है। भारत की करोडोंकी आबादीकी दृष्टिसे विचार करे, तो ऐसी मशीने उनकी भौतिक समृद्धि के लिए अनिवार्य नही है।

२. मानव-समाजने धर्मको किसी-न-किसी रूपमे अपने अस्तित्वके लिए अपरिहार्य पाया है। इसलिए ऐसा मानना उचित ही होगा कि मानव-समाजको धर्मकी आवश्यकता पड़ती रहेगी और मै तो धर्मके बिना मानव-समाजके नैतिक विकासकी कल्पना ही नही कर पाता।

३ ईसाई धर्म, या यो कहिए कि खुद अपने धर्मके अतिरिक्त किसी भी धर्म के बारेमे कोई फतवा देना मेरी अनधिकार चेष्टा होगी।

४. सतत और प्रार्थनापूर्ण प्रयत्न द्वारा।

५ मै तो ऐसा कोई तरीका नही जानता जिससे मनुष्यको नेक बनाया जा सकता हो, लेकिन अगर किसी हदतक उसे नेक बनाना सम्भव भी है तो वह व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत करके ही किया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० एफ० पाइपर
दर्शनशास्त्रके आचार्य
सिराक्यूज विश्वविद्यालय
सिराक्यूज, न्यूयॉर्क

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०७५०) से।

१. प्रश्न इस प्रकार थे :
(१) क्या मशीन भारतके भौतिक विकासके लिए आवश्यक नहीं है? (२) मानवकी प्रगतिमें धर्म क्या योग दे सकता है? (३) ईसाई धर्ममें क्या दोष हैं और क्या गुण? (४) आप किस प्रकार अपनी बुनियादी खोजें करते है या अन्तर्दृष्टि प्राप्त करते है? (५) मनुष्यको नेक कैसे बनाया जा सकता है?" (एस० एन० २०६६७)

२६४. पत्र : पंचानन तर्करत्नको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय पण्डितजी,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मोतीबाबूने मेरे लिए उसका अनुवाद कर दिया है।

देखता हूँ, एक ओर तो आप अस्पृश्यताको अतीन्द्रिय वस्तु मानते हैं और दूसरी ओर उसपर केवल लौकिक परिस्थितियोंको ही लागू कर रहे हैं। खुद मैं तो अस्पृश्यताको अतीन्द्रिय वस्तु नही मानता। जिसे इन्द्रियोसे सिद्ध किया जा सकता हो, ऐसी किसी भी वस्तुको मैं अतीन्द्रिय नही मानता। उदाहरणके लिए ईश्वरके अस्तित्वके प्रश्नको तो मैं अतीन्द्रिय मानूँगा, लेकिन पृथ्वीके रूपाकारको नही, और जैसा कि हमारे शास्त्रोकी सीख है, भौतिक पदार्थोंके तत्त्वोंका पता लगाने या उनको सिद्ध करनेके लिए आध्यात्मिक प्रतिभाका प्रयोग करना उसका दुरुपयोग ही है। शास्त्रोमें अस्पृश्यताका जैसा वर्णन किया गया है, उसकी दृष्टिसे तो वह विशुद्ध रूपसे भौतिक है। उसमे अतीन्द्रिय कुछ भी नही है। इसलिए यदि मैं सामान्य वस्तुओकी जाँच-पड़तालपर लागू होनेवाले आम नियमोको इसपर लागू कर रहा हूँ, तो शास्त्रोके साथ कोई अन्याय नहीं कर रहा हूँ।

इस तरह विचार करें तो शास्त्रोमे चाहे जो कहा गया हो, वशानुगत अस्पृश्यताका कोई आधार नही है और अगर कोई तथाकथित चाण्डाल अपने जन्मके बारेमें न बताये तो ऐसी कोई कसौटी नही है जिससे उसे अन्य लोगोसे भिन्न बताया जा सके। जो बात उसपर लागू होती है वह उसके वशजोपर और भी ज्यादा लागू होती है।

मुझे ऐसी आशंका है कि आपने रेड इडियनो, आस्ट्रेलियाई इडियनो तथा ऐसी ही अन्य जातियोके जो उदाहरण दिये हैं वे भारतीय परिस्थितियोपर लागू नही होते और यह कहना कि भारतमें जातियोका सम्मिश्रण हुआ ही नहीं, ऐतिहासिक दृष्टिसे झूठ है। इसके विपरीत, इस बातके अकाट्य प्रमाण उपलब्ध है कि मनुष्यको जबसे अतीतकी जानकारी है तभीसे भारतमें जातीय सम्मिश्रण बराबर चलता रहा है।

जहाँतक उन पण्डितोका सम्बन्ध है जिनके प्रमाण मैंने दिये हैं, उनमें से मेरी व्याख्याकी पुष्टि करनेवाले कई ऐसे लोग हैं जिनको जाननेका भी सौभाग्य मुझे नही मिला है। उन्होने भी उसी प्रमाणको स्वीकार किया है जिसको आप उद्धृत कर रहे है। फर्क इतना ही है कि उन्होने उसकी व्याख्या भिन्न प्रकारसे की है।

यथोचित विनयके साथ मैं यह दावा करता हूँ कि यद्यपि मैं संस्कृतके ज्ञानका दम नही भरता, किन्तु मैं इतनी संस्कृत अवश्य जानता हूँ और मैंने धर्मग्रन्थोको इतना अवश्य पढा है कि मेरे सन्मुख प्रस्तुत की गई शास्त्रोकी परस्पर-विरोधी व्याख्याओके सम्बन्धमे मैं अपना एक मत स्थिर कर सकूँ।

जहाँतक आपके लड़केका सवाल है, मुझे साफ याद है कि वे आपके प्रतिनिधि की हैसियतसे मुझसे कोई धार्मिक शास्त्रार्थ करने नही, बल्कि ऐसी चर्चा करनेके लिए आनेवाले थे जिससे वे आपका दृष्टिकोण मेरे सम्मुख प्रस्तुत कर सके और मै उसे समझ सकूँ, ताकि अगर सम्भव हो तो हममे दृष्टि-साम्य स्थापित हो सके।[1]

निश्चय ही वह उद्देश्य परस्पर-विरोधी विचारधाराओके माननेवालो के बीच एक निश्चित विवाद-गोष्ठीमे, जिसका नियमन करनेके लिए विशेष निर्णायकोकी व्यवस्था रही हो, भाग लेनेके लिए आनेवाले पण्डितोके उद्देश्यसे भिन्न था। आपके लडकेके ऐसे शास्त्रार्थीके रूपमे आनेमे और उन पण्डितोको जिन नियमोके अधीन विवाद करना था उन नियमोसे मुक्त आपके प्रतिनिधिके रूपमे आनेमे अन्तर था। वे उन पण्डितोमे से एक थे, यह बेशक कोई गलत चीज नही थी, लेकिन उस तरहसे आपका वादा तो पूरा नही हो सकता। अगर उन्हे मुझसे मैत्रीपूर्ण और व्यक्तिगत ढगसे चर्चा करनी थी तो वे उसके बाद भी वैसा कर सकते थे। अगर वे कभी आ सकें तो मै उनसे सहर्ष मिलूँगा और उन्हे जो-कुछ भी कहना हो उसे धैर्य और प्रसन्नताके साथ सुनूँगा। मै आपको यह भरोसा दिला सकता हूँ कि आधुनिक अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका अभिन्न अग माननेवाले पक्षकी ओरसे अब भी जो-कुछ कहना हो उसे सुननेको मै तैयार हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७४४)से।

२६५. पत्र : मोतीलाल रायको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय मोतीबाबू,

पण्डित पंचानन तर्करत्नको अपना जवाब[2] साथमें भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १

श्रीयुत मोतीलाल राय
प्रवर्त्तक संघ
चन्द्रनगर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७४४) से।

१. देखिए "पत्र : पंचानन तर्करत्नको", ९-३-१९३३।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

२६६. पत्र : केदारनाथ तिवारीको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय तिवारी,

आपका पत्र मिला। मुझे अच्छी तरह याद है कि आपसे और आपकी पत्नीसे दिल्लीकी छोटी लाइनकी गाडीमें मेरी मुलाकात हुई थी।

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आपने हरिजनों-सहित सभी लोगोंको एक कुएँके उपयोगकी छूट दे दी है। मैं आशा करता हूँ कि हरिजनोंके साथ-साथ आम जनता भी उसका उपयोग कर रही होगी।

आप दोनोंको स्नेहाभिवादन,

हृदयसे आपका,

पण्डित केदारनाथ तिवारी
द्वारा आर० एस० जगीराम भाटिया
गवर्नमेंट प्रेसके पीछे
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७४९) से।

२६७. पत्र : अमीना जी० कुरैशीको

२९ मार्च, १९३३

चि० अमीना,

आशा है कुरैशीकी गिरफ्तारीसे दुःखी नहीं हुई होगी। ऐसा लगता है कि तूने अपनी पढाई फिर छोड दी है। क्या वहीदका[1] बुखार उतर गया? मुझे तो पत्र लिखती ही रहा कर।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६६४) से।

१. अमीना कुरैशीके पुत्र।

२६८. एक पत्र

२९ मार्च, १९३३

आश्रममे रहकर आश्रम-जीवनके बजाय किसी अन्य प्रकारका जीवन-यापन करना भी क्या सत्य ही है? मै चाहता हूँ कि तू इससे छूट जाये। मेरे साथ रहते हुए असत्यका पालन करनेवाले की अपेक्षा मुझसे करोडो कोस दूर रहकर सत्यका पालन करनेवाला मुझे अत्यधिक प्रिय है। जैसे तेरी परीक्षा करनेमे एक बार मै अनुत्तीर्ण हुआ, उसी तरह सम्भव है तेरा अविश्वास करनेमे भी अनुत्तीर्ण हो जाऊँ। ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि मै अनुत्तीर्ण हो जाऊँ। यदि ऐसा हो जाये तो पहलेकी असफलता भी मिट ही जायेगी न? अभी तो मुझे लगता है कि तू मुझे धोखा ही दे रहा है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ २०५

२६९. पत्र : नारणदास गांधीको

२९ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी भेजी भारी डाक आज मिली। पुरुषोत्तमको विस्तारपूर्वक सुझाव देते हुए मैंने एक पत्र लिखा है, जो इसके साथ है। रमाबहनका ऑपरेशन बहुत जल्दी नहीं कराया जा सकता। उसे हरिभाईको[1] अवश्य दिखाना। मेरा खयाल है कि यह ऑपरेशन आसान नही होगा। उसकी आवश्यकताके बारेमे भी मुझे सन्देह है। हाथ इतने वर्षोतक लुंज नही हुए तो अब क्यों हो जायेंगे। मुझे तो यह डर एकाएक नही लग सकता।

कनु[2] के बारेमे सावधानीसे विचार कर लेना चाहिए। हरिभाई उसे फिर देख ले। मुझे लिखना, वे क्या करते है। हाथका दर्द बहुत समयतक चला माना जायेगा। हो सकता है कि मालिश अच्छी तरह न की जाती हो। हाथके उस हिस्सेको धूपसे सेकनेसे भी लाभ हो सकता है। धूप लाल काँचके द्वारा दी जाये तो ज्यादा लाभ होगा, इस सम्बन्धमे मुझे कोई अनुभव नही है। हनुमतरायका अनुभव ही मेरा अनुभव है। डॉ० शर्माकी पुस्तक वहाँ है; पुरुषोत्तम उसे पढ डाले और उसमे

१. डॉ० हरिलाल देसाई।
२. नारणदास गांधीके पुत्र।

वर्णित प्रयोगोको कर देखे। उससे नुकसान होनेकी सभावना नही है और हो सकता है कि फायदा हो जाये।

नरहरिके पत्रके विषयमे तुमने जो लिखा है वह मै समझ गया। तुम्हे जो [सुझाव] ठीक लगते हो उनके सम्बन्धमें नरहरिके साथ तथा अन्य जिम्मेदार आश्रम-वासियोके साथ चर्चा करना और मुझे लिखना। मै ऐसा मानता हूँ कि अधिकाश सुझाव तो पसन्द करने लायक लगे होगे। तुम नरहरिको सन्तोष दे सकोगे, यह भी तो एक बडी बात है।

मोहन अब बीमारीसे मुक्त हो गया होगा। उसकी बीमारी काफी लम्बी चली।

'यीशुचरित'[1] पर केवल विद्वानोकी टीका चाहिए, ऐसी बात नही है; पुस्तक तुमने पढी हो तो तुम्हारी भी चाहिए। बहनोने उसे पढा हो तो उनकी भी चाहिए। पुस्तक सामान्य पाठकोको ध्यानमें रखकर लिखी गई है, इसलिए वालजी सबका मत जाननेके लिए उत्सुक है फिर चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल।

परचुरे शास्त्रीका उपयोग करना शुरू करना। क्याउनके लड़केको कोई काम दे दिया गया? क्या उसे कुछ आता है? क्या अनुशासन मानता है?

शान्ताके बारेमे तुम्हारे दूसरे पत्रकी राह देखूँगा।

केशूके बारेमे सतोकको लिख चुका हूँ। तुम्हे वहाँसे लिखनेकी जरूरत नही है। संतोक और दामोदरदास कल मिलनेके लिए आ रहे है। केशूका एक पत्र कल आया है; वह लिखता है कि अब शायद वह वहाँ नही आयेगा।

धीरू[2] यदि सेवाभावसे स्वयं चित्रकला सीखना चाहे तो शान्तिनिकेतनमें जाकर [आश्रमके] व्रतोका पालन करे, वहाँ आदर्श विद्यार्थीकी तरह रहे, और जो-कुछ सीखा जा सकता हो उसे सीखे तो वह उत्तम प्रकारकी सेवा कर सकता है। चित्रकला भी दिव्य और आसुरी, सात्विक और राजसिक तथा नैतिक और अनैतिक हो सकती है। धीरूने जो-कुछ लिखा है उसे मैंने अक्षरशः सत्य मान लिया है। यदि चित्रकलाके प्रति उसे इतना अनुराग है तो हमे उसे प्रोत्साहन देना चाहिए। जिस तरह पण्डितजी ने अपनी कला सेवार्थ अर्पण की है और लोगोको उसका लाभ मिलता है तथा भविष्यमें और ज्यादा मिलेगा वैसा ही चित्रकलाका भी है। चित्रकला मूक सगीत है। विषय-वासनाको प्रेरणा देनेवाले चित्रोके अपने अनुभवसे हमारे ध्यानमें यह बात आती है कि यदि कोई विषय-वासनाको दूर करनेवाले चित्र बनाये तो उसका प्रभाव जगलीसे-जंगली मनुष्यपर भी पडे बिना नहीं रह सकता। ऐसे अनेक प्रसिद्ध चित्र है जो इस दृष्टिसे चित्रित किये गये है। ऐसे कलाकार बहुत कम होते है। आश्रममे से ऐसा कोई कलाकार निकले, तो हम स्वागत ही करेगे। तुम्हें शायद ज्ञात न हो कि बालकृष्णको[3] इसी दृष्टिसे शिल्पकारकी तालीम देना शुरू किया गया था। उसने कुछ मूर्तियाँ बनाना शुरू भी किया था। अपनी इच्छासे उसने इसे छोड दिया। इस सप्ताहके अपने पत्रमें उसने इसका कारण भी बताया है। चित्रकला सीखते हुए धीरू

१. देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ २७५-७७।
२. व्रजलाल गांधीके पुत्र।
३. बालकृष्ण भावे, विनोबाके भाई।

का भी यही हाल हो तो कोई परवाह नहीं। शान्तिनिकेतनमें चित्रकला किस तरह सिखाते है, यह मैं नही जानता। किन्तु भारतमें इस समय यह कला सीखनेके लिए इससे ज्यादा अच्छा कोई दूसरा स्थान नही है। साथ ही यह भी है कि धीरूके उदाहरणका अनुसरण करते हुए कोई दूसरा भी ऐसा ही करना चाहे तो हम इसके लिए बहुत जल्दी राजी नही हो सकते। धीरूका इस कलाके प्रति कई वर्षोंका अनुराग है, उसका मन निर्मल है, दूसरी तरह भी योग्य मालूम होता है, उसमें आश्रमके नियमोंका पालन करनेकी शक्ति और इच्छा है, फिर वह आश्रममें कई वर्षोसे है। यह और ऐसा ही बहुत-कुछ उसके पक्षमे कहा जा सकता है। उसके विषयमे यदि मेरी यह धारणा गलत हो तो उसे नहीं भेजा जा सकता और उसके चरित्रके विषयमें यदि थोडी भी शंका हो तो उसे नही भेजा जा सकता। उसे तभी भेजा जा सकता है जब वह यह सब समझता हो, उसके नाम अपने पत्रमे मैंने जो शर्तें रखी हैं उन्हे ज्ञानपूर्वक स्वीकार करता हो और तुम सब लोगोको उसकी प्रतिज्ञा पर विश्वास हो। उस स्थितिमें फिर उसे भेजना हमारा धर्म भी होगा, ऐसा मुझे लगता है। अब इस दृष्टिसे तुम सब इस विषयपर विचार करना और निर्णय करना। इस चर्चामे नरहरिको अपने साथ रखना। . . .की[1] घटनाके बाद हमे सावधान रहना है। भयभीत व्यक्तिको हर जगह भयका कारण दिखाई देता है। यदि धीरू मनमे विषय-वासनाओंका सेवन करता होगा, यदि वह विकारोका शिकार है तो शायद चित्रकला उसके लिए भयकर वस्तु साबित होगी। ये कलाएँ मोहक तो होती ही है। जगत् ही मोहक है। मोहक जगत्की कला मोहक हो, इसमे आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। किन्तु जिस प्रकार जगत् मोहक होते हुए भी मनुष्यको मोक्ष-प्राप्ति का अवसर देता है और ईश्वरकी महिमाके प्रदर्शनके लिए क्षेत्र प्रस्तुत करता है उसी प्रकार कला भी ऐसा कर सकती हैं। हजार कलाकारोमें से कोई एक भक्त भी निकल आता है। नौ सौ निन्यानवे भोगी निकले है, यह तो मैं जानता हूँ। यदि धीरूके बारेमे तुम लोगोका ऐसा विश्वास हो कि वह हजारमे एककी कोटिका है तो उसे अपने आशीर्वाद देना और भेज देना। फिर तो बात आश्रमके और उसके भाग्यके हाथमे है। उसे भजनेका अपना कार्य भी कृष्णार्पण करके सन्तोष मान लेगे।

यह पत्र मैंने प्रात कालकी प्रार्थनाके पहले शुरू किया था। अब चार बज रहे है और मैं उसे पूरा करता हूँ। अभी प्रार्थनाके लिए दस मिनट बाकी है।

बापू

[पुनश्च ·]

आनन्दी अब चलने-फिरने लगी है। दो दिनसे मुझसे मिलने चली आती है।

तुम्हे लिखे इस पत्रके साथ कुल नौ पत्र है।

गुजरातीकी माइक्रोफिलम (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३४४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. यहाँ नाम छोड दिया गया है।

२७०. तार : बच्छराजको[1]

३० मार्च, १९३३

बच्छराज
वर्धा

पूनमचन्दकी हालतका पूरा ब्योरा दें। यदि जाजूजी अथवा पूनमचन्द की पत्नी उससे मिल सकें तो वे उसे समझायें कि यदि उपवास वर्गीकरणके विरुद्ध है तो सर्वथा अनुचित है।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, बम्बई सरकार, आई० जी० पी० फाइल नं० २०-१०।

२७१. पत्र : मीराबहनको

३० मार्च, १९३३

चि० मीरा,

आज मैं प्रार्थनाके उपरान्त आश्रमको वहाँ बीमार पड़े लोगोंके बारेमें — जिनमें से तीन पुरुषोत्तमकी देख-रेखमें उपवासोपचार कर रहे हैं — कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र लिखनेके बाद तुमको पत्र लिखने बैठा हूँ। इसलिए इसे केवल आधा घंटा ही दे सकूँ, तो बुरा न मानना।

तुम्हारा पत्र कल ही आ पहुँचा। मतलब कि जब भी तुम किसी एक स्थानसे दूसरे स्थानको गई हो तब तुम्हारे पत्र प्राय. जितने समयमें आते रहे हैं, उसकी तुलनामें इस बार सबसे जल्दी आया।

बेचारे बच्चोंके प्रति तुम्हारा रुख बहुत सख्त है!! तुम भूल ही जाती हो कि कभी तुम भी बच्ची थी और मैं सोचता हूँ कि बचपनकी अवस्थाको सकुशल पार कर सकनेके लिए शायद तुम ईश्वरकी कृतज्ञ भी होगी। जो लोग ब्रह्मचर्यके मर्मको समझते हैं और उसका पालन करते हैं उनके लिए यह बहुत श्रेष्ठ वस्तु है। लेकिन यह तो स्वीकार करना ही होगा कि देहधारियोंके लिए यह एक सर्वथा असाधारण

१. महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृ० २०६ के अनुसार गांधीजी को सरकारसे आदेश मिला कि वे जाजूजी को तार भेजें न कि सीधे पूनमचन्दको; देखिए "पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", २८-३-१९३३ के दो पत्र।

चीज है। वे दम्पतियोके रूपमे रहते है और सदा इसी रूपमे रहते रहेगे। इसलिए विवाहावस्था और उसके परिणामोके प्रति असहिष्णुता शायद अनुचित है। आखिर गौतम बुद्ध, ईसा, जरथुस्त्र, मुहम्मद, राम, कृष्ण, सन्त फ्रान्सिस तथा इनके जैसे अन्य असख्य नर-नारियाँ इसी विवाहावस्थाकी ही तो देन है। धर्मका मर्म केवल हम समझते है, ऐसा तो नही कह सकते न। हम ईश्वरकी लीलाका पार नही पा सकते। इसलिए हमे हर कदमपर उदारतासे काम लेनेकी आवश्यकता है। खुद हमे भी हर क्षण दूसरोकी उदारताकी जरूरत रहती है। करोडो लोगोके लिए वासना और दु:खके जीवनसे मुक्तिका मार्ग विवाह ही है। वेरियर और मेरीने विवाहका विचार त्याग कर अच्छा किया है, लेकिन अगर उन्होने विवाह कर भी लिया होता तो मै उन पर फतवा देने नही बैठता। उन दोनोके लिए जितना करना सम्भव है उतनेकी वे पूरी कोशिश कर रहे है। दोनो बहादुर और सच्चे है। किसीसे भी अधिकसे-अधिक जितना बन सकता है उससे ज्यादाकी अपेक्षा नही की जाती। स्वधर्मका (अर्थात् सम्बन्धित व्यक्तिको धर्माधर्मका जो भी सर्वोत्कृष्ट बोध हो तदनुसार उसका) पालन करना पर-धर्मका पालन करनेकी (व्यर्थ) चेष्टासे कही अच्छा है। अपने कर्तव्यका पालन करनेवाला भगी उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है जो अपने धर्मके साथ खिलवाड कर रहा है। पता नहीं, यह सब स्पष्ट हो पाया या नहीं। मै तुम्हे यह उपदेश नही पिलाना चाहता था। लेकिन तुमने वेरियर और उन बेचारे मृत जुड़वाँ बच्चोका जो उल्लेख किया वह मुझे रुचा नही और मैने सोचा कि तुम्हे कुछ चेतावनी दे ही दूँ। इसको लेकर बहुत सोच न करना। ये बाते तुममे क्षणिक रूपसे ही आती है। तुम्हारी नीव काफी ठोस है और उसपर हवा-बतासका कोई असर नही हो सकता। तुमने यह अच्छा किया कि तुम्हारी बातोकी मुझपर क्या प्रतिक्रिया होगी, इस सकल्प-विकल्पमे पडे बिना तुमने अपने गुह्यतम विचार मुझपर साफ-साफ प्रकट कर दिये। मै तो तुम्हे उसी रूपमे जानना चाहता हूँ जैसी कि तुम वास्तवमे हो। और अब यह ५-३० का बिगुल बज चुका है। आज तो तुमको बस इतना ही। शेष बा की चिट्ठीसे जान लेना।

हम सबका स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६८) से; सौजन्य · मीरबहन। जी० एन० ९७३४ से भी

२७२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

३० मार्च, १९३३

प्रिय सतीशवाबू,

आपका इसी २३ तारीखका पत्र मिला। आपका आशय मै समझ गया। हाँ, बंगालकी अस्पृश्यताका वर्णन एक अधिक बड़े अभिशापके रूपमे करनेके बाद आपने जो वाक्य लिखे, उन्हे भी मैंने देखा ही। उस वर्णनमे और फिर आपने जो बात कही उसमे कोई तर्कसम्मत तारतम्य नही था। उसका वर्णन एक बड़े अभिशापके रूपमें करके, आपने पाठकोको इस बातका संकेत दे दिया कि वहाँकी अस्पृश्यता अधिक भयंकर है, लेकिन संख्याकी दृष्टिसे अस्पृश्यताके विस्तारके बारेमे इससे उनको कोई सकेत नही मिलता। फिर, मेरा खयाल है, आपको इस बातका एहसास नही है कि अगर अस्पृश्यताके बंगालवाले वर्णनके अर्थमे देखा जाये तो मद्रासकी कुल हिन्दू आबादी के ९० प्रतिशत लोग अस्पृश्य ही होगे। कारण, बगालकी अस्पृश्यताके अर्थमें देखनेसे तो वहाँका हर अब्राह्मण ब्राह्मणोंकी दृष्टिमें लगभग अस्पृश्य ही है। क्या आपको यह मालूम है कि अगर कोई अब्राह्मण किसी ब्राह्मणके भोजनको देख भर लेता है तो वह अपवित्र हुआ माना जाता है? इसीलिए मै इस बात पर इतना आग्रह रखता हूँ कि हम अपने-आपको अपने विरोधीकी स्थितिमें रखकर, उसके तर्क पर उसके दृष्टिकोणसे विचार करे। मेरे खयालसे बगालकी यह दलील निश्चय ही कुछ मतलब रखती है कि वहाँ बहुत ही मामूली ढंगकी अस्पृश्यता है और असली अस्पृश्यता केवल भंगियो, मेहतरो आदितक ही सीमित है, जो आखिरकार बाहरसे ही आये है। यह सच है कि हमे अस्पृश्यताके हर पक्षसे निपटना है, लेकिन उससे हम निपट तभी सकते है जब हम जो भी बात कहे, वह बिलकुल संतुलित हो, और यह सतुलन तभी आ सकता है जब हम अपने विरोधियोकी दलीलोको जितना उचित है उससे ज्यादा महत्त्व देनेको भी तैयार रहे। अहिंसाकी देवीकी कसौटी बड़ी सख्त है। वह अपने हाथमें अत्यन्त सवेदनशील तराजू लेकर बैठती है और अगर हिंसा या अनुदारताका परमाणु-भर वजन भी पलड़ेपर आ जाता है तो वह उसकी नजरोसे बच नही पाता। हमारी स्थिति बिलकुल निरापद है। इसलिए हमें उनसे लड़नेकी जल्दी करनेकी जरूरत नही है। इसका उपयुक्त समय तो तब होगा जब वे हमारी सीमा पर आ जायेंगे। उनका पक्ष चाहे जितना सुदृढ़ हो, जो वे गलत रास्ते चल कर कमजोर पड़ते जा रहे है, मगर इसमे हम उनके लिए कर भी क्या सकते है। उन्हे खुद ही अपनी गलती देखनी होगी।

पता नही, मैं अपनी बात साफ-साफ समझा पाया हूँ या नही। न समझा पाया होऊँ, तो आप मुझसे इसकी चर्चा तबतक जारी रखे जबतक या तो मैं आपकी बात न समझ लूं या आप मेरी न समझ ले।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७५६) से।

२७३. पत्र : के० केलप्पनको

३० मार्च, १९३३

प्रिय केलप्पन,

आपके पत्रकी राह म बहुत दिनोसे देख रहा था। अब जाकर मिला। आपको मुझसे इतना इन्तजार तो नही करवाना चाहिए। यह मत समझिए कि गुरुवायूरका मामला समाप्त हो गया। जबतक गुरुवायूर ही नही, बल्कि हरएक सार्वजनिक मन्दिर के द्वार हरिजनोके लिए नही खुल जाते तबतक वह समाप्त नही होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि मैं आपसे, जिसे गुरुवायूरका मन्दिर-प्रवेश आन्दोलनका केन्द्र बनानेका मुख्य श्रेय प्राप्त है, सम्पर्क बनाये रखूं। इसलिए आपके समस्त कार्य-कलापकी पृष्ठभूमि गुरुवायूर मन्दिरमें हरिजनोका प्रवेश होना चाहिए। लोकमत तैयार किया जाना चाहिए। सनातनियोका हृदय-परिवर्तन करना चाहिए। हम उनके विरोधके बावजूद मन्दिरके द्वार खुलवाना नही चाहते; हम चाहते है कि उनका हृदय-परिवर्तन किया जाये। यह तभी हो सकता है जब हम शुद्ध और एकनिष्ठ हो, उनके प्रति हमारा व्यवहार विनम्र और शिष्टतापूर्ण हो और उन्हे यह दिखा सके कि धर्मको अपने लिए जितना मूल्यवान माननेका दावा वे करते है, उतना ही मूल्यवान वह हमारे लिए भी है।

सम्मेलनका हाल मालूम हुआ। अब अखिल भारतीय बोर्डके निर्देशका इन्तजार मत कीजिए, बल्कि आप उनकी समितिके सदस्योके रूपमे जो नाम सुझाते हो उनकी एक सूची बनाकर अखिल भारतीय बोर्डको भेज दीजिए और एक प्रति मुझको भी। समितिके प्रत्येक सदस्यके सम्बन्धमें थोड़ी-थोडी जानकारी दे दीजिए।

आश्चर्य है कि आपको 'हरिजन' की प्रति नही मिल रही है। मैं ऐसी व्यवस्था करवाऊँगा जिससे आपको मिलती रहे। अभी आपको श्रद्धानन्द आश्रम, पय्योलिके पतेपर भेजी जाती है। अब पता बदल दिया जायेगा। लेकिन आप उक्त पतेपर पूछ अवश्य ले।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० केलप्पन
पक्कनारपुरम्, पय्योलि (उ० मलाबार)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७५४) से।

२७४. पत्र : विट्ठल एस० पण्डितको

३० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका २६ तारीखका दिलचस्प पत्र मिला, जिसमें अस्पृश्यता-निवारणके लिए किये गये आपके कार्योंका विवरण है। आप समय-समयपर प्रगतिके बारेमें मुझे सूचित करते रहिए। आपका विशेष मार्गदर्शन करूँ, इसकी आवश्यकता नहीं है, लेकिन मैं ऐसा मानता हूँ कि आप 'हरिजन' के स्तम्भोंका अध्ययन मनोयोगपूर्वक करते होंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विट्ठल एस० पण्डित
अवैतनिक मन्त्री
आर० डी० हरिजन सेवा संघ
कुडाल (जि० रत्नागिरि)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७५५) से।

२७५. पत्र : एम० एम० अनन्तरावको

३० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे क्षमा करें। जाहिर है कि आपका प्रश्न मेरे ध्यानसे उतर गया था। आप हम दोनोंके बीच हुए पत्र-व्यवहारको जिसको भी चाहें, दिखा सकते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत एम० एम० अनन्तराव
सनातन धर्म कार्यालय
४०, ईश्वरदास लाला स्ट्रीट
ट्रिप्लिकेन, मद्रास

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९५७९) से।

२७६. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

३० मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुमने तो मुझे 'हरिजन' के लिए बड़े मार्केकी कहानी[1] दी है। इस सप्ताह वह छप रही है। इससे यह भासित नही होता कि तुम भावुक हो, बल्कि ईश्वरकी कृपा है कि इससे यही प्रकट होता है कि तुममे भावना है। जिसमे भावना हो, ऐसा हर व्यक्ति भावुक ही नही होता। हमे ऐसी ही आशा करनी चाहिए कि इसके प्रकाशनसे उसकी नौकरी नही छूट जायेगी। हमे यह भी आशा रखनी चाहिए कि इस उदाहरणसे लोग प्रभावित हुए बिना नही रहेगे।

बेचारे शास्त्री और उनकी पत्नीपर तो इधर बुरी गुजरी। दोनो मलेरियामें पडे हुए थे और शास्त्रीकी सासका भी स्वास्थ्य ठीक नही है। लेकिन अब वे काफी बेहतर है।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११८) से।

२७७. पत्र : अब्बास तैयबजीको

३० मार्च, १९३३

प्रिय भर्र्र्,

आपका पत्र मिला। काठियावाड़मे अब गर्मी पड़ने लगी होगी, लेकिन आशा है, वह आपके लिए बर्दाश्तसे बाहर नही रही होगी। चन्दा उगाहनेमे आप इस बार पहलेसे अधिक भाग्यशाली रहे। अगर ऐसा न हुआ होता तो आपकी सफेद दाढीको काला रँगना ही पडता। यह सच है कि उससे आप अपनी उम्रसे काफी कम दिखने लगते, लेकिन मीठा-मीठा गप करके कडवा-कड़वा थू भी तो नही किया जा सकता न। मगर खुशीकी बात है कि अब ऐसे किसी परिवर्तनकी जरूरत नही, और अब अपनी चाँदी-जैसी सफेद दाढीको बहुत सारे चाँदीके सिक्के बनाते रहने दीजिए।

१. यह ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके एक स्नातककी कहानी थी। वह बंगाली युवक दिल्ली नगरपालिकामें स्थायी तौरपर भंगीका काम करता था। कहानी १-४-१९३३ के हरिजनमें "स्वीपर बाई चायस" (स्वेच्छासे भंगी) शीर्षकसे छपी थी।

हाँ, रेहाना मुझसे मिलने आई थी और उसने मुझे एक हरिजन गीत भी सुनाया। उसके लिए जबतक सम्भव हो, उसे यहाँ रहने दीजिए। उसे शान्त वातावरण और ठंडी हवाकी जरूरत है। वहाँ तो उसकी सलाह चाहनेवाले नौजवानोंसे वह घिरी ही रहेगी। लेकिन इतनी खस्ता सेहत लेकर उसे दादीपना नहीं करना है। कमालमियाँको बेहतर बनना चाहिए, और उसे इस बीचवाली स्थितिसे बाहर निकलना ही चाहिए। बेगम हामिद अलीसे मेरा स्नेह कहिए। मैं चाहूँगा कि बने तो वे मईसे पहले आपको मसूरी ले जायें। देवचन्द पारेख लोभी है। आप चन्दा उगाहने आफ्रिका नहीं जा सकते और सिद्धान्ततः भी यह चीज गलत है। बाहरसे पैसा लेकर अस्पृश्यता-विरोधी कार्य चलाना उचित नहीं है। स्थानीय कार्यका खर्च तो स्थानीय उगाही से ही चलना चाहिए। अगर काठियावाडकी इतनी बडी आबादी अस्पृश्यता निवारण-कार्यके लिए पर्याप्त पैसा न जुटा सके, तो यह काम न करना ही बेहतर है। और फिर पैसा तो बुनियादी चीज है भी नहीं। बुनियादी चीज तो चरित्र और लगन है। पैसेसे सनातनियोंके हृदय नहीं बदले जा सकते। अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन खुदाकी खिदमत है। उस खिदमतके लिए आप शैतानकी मदद तो नहीं ले सकते न। इसलिए जहाँतक काठियावाडके कामका सवाल है, आपको पैसेके लिए काठियावाडपर ही निर्भर रहना है।

आप सबको हम सबका प्यार।

आपका,
भरर्र्र्

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५८४) से।

२७८. पत्र : पी० एन० राजभोजको

३० मार्च, १९३३

प्रिय राजभोज,

आखिरकार तुम आश्रम आ ही गये। अब मैं चाहता हूँ कि तुम आश्रमके बन जाओ। इसलिए तुम मौन परिश्रमसे काम शुरू करो और हरएकके साथ अपनापन महसूस करो।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७८२) से।

२७९. पत्र : नारणदास गांधीको

३० मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

राजभोजके विषयमें लिखना भूल गया था। राजभोजका खयाल रखना। उससे उसकी जरूरतोंके बारेमें पूछ लेना। उसे आश्रमके सब नियमोंका पालन करना है, सब कार्योंमें भाग लेना है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४५ से भी, सौजन्य : नारणदास गांधी

२८०. पत्र : अमीना जी० कुरैशीको

३० मार्च, १९३३

चि० अमीना,

सभी लिखते हैं कि तू तो बहुत बहादुरी और धीरज दिखा रही है। इमाम साहबकी कन्या, जिसका पालन-पोषण फीनिक्स और आश्रममें हुआ हो यदि वह ऐसी नहीं निकलेगी तो और कौन निकलेगा? यदि अन्ततक तेरा धीरज बना रहा तो तू तो जीतेगी ही मैं भी जीत जाऊँगा। मैं सदा तेरे सुन्दर स्वास्थ्यकी कामना करता रहा हूँ और तेरे लिए संयम और परहेजगारी माँगता रहा हूँ। तू यह जानती है न कि संयमका अर्थ ही परहेजगारी है? परहेजगारीके बिना खुदापरस्ती नहीं आती। परहेजगारीकी साधनाके लिए ही इमाम साहब मेरे जीवनसाथी बने थे। उनकी इच्छा तुझे परहेजगार देखनेकी ही थी। और ऐसा लगता है कि तू उनकी इच्छा पूरी करेगी।

आशा है, बच्चे सानन्द होंगे।

मैंने तेरे उपचारके बारेमें पुरुषोत्तमको लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६६५) से।

२८१. एक पत्र[1]

३० मार्च, १९३३

यह मैं यहीं समझ पाया कि मणिको सुघड़ता सरदारसे उत्तराधिकारमें मिली है। मणिकी सुघड़ता देखकर मोतीलालजी चकित हो गये थे। आश्रममें जब मैंने उसकी कोठरी मोतीलालजी को दी तो वे बोल उठे, "ऐसी सुघड़ता तो मैंने आनन्द भवनमें भी नहीं देखी।" इसलिए यह तो तू उससे अच्छी तरह सीख लेना। जिसे वह चाहे उसे अपनी सेवासे आप्लावित कर देनेकी उसमें आश्चर्यजनक शक्ति है। निडरतामें तुम लोगोंमें से कुछ बालाएँ उससे स्पर्धा कर सकती हैं इसलिए इस ओर ध्यान नहीं खींच रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–४ : मणिबहेन पटेलने, पृ० ९८

२८२. पत्र : गोपीकान्त चौधरीको

[३१ मार्च, १९३३ के पूर्व][2]

प्रिय भाई गोपीकान्त,

आपका पत्र मिला। कुओंके उपयोगकी छूट सबको दिलवाएँ। मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें जनमत तैयार किया जाये। रोटी-व्यवहार अस्पृश्यता-निवारणका अभिन्न अंग नहीं है। हरिजनोंका छुआ पानी पीनेमें पाप नहीं है—यह मेरा निजी सिद्धान्त-वाक्य है। जब हम अस्पृश्यताको मिटा देना चाहते हैं तो अस्पृश्योंका छुआ पानी पीनेमें कोई पाप नहीं।

वैसे उनका छुआ पानी पीना या न पीना अपनी-अपनी मर्जीकी बात है। अगर जरूरत पड़े तो आप मुझसे शौकसे मिलिए, आपका सदा स्वागत है।

बापूके आशीर्वाद

एक अंग्रेजी समाचार-पत्रकी कतरन (एस० एन० २०७८५) से।

१. साधन-सूत्रमें बताया गया है कि यह पत्र बेलगाँव जेलमें मणिबहन पटेलकी एक संगिनीको लिखा गया था।

२. समाचार-पत्रकी रिपोर्ट ३१ मार्च, १९३३ की है।

२८३. पत्र : होरेस जी० अलेक्जेंडरको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय होरेस,

तुम्हारा पत्र पाकर बेहद खुशी हुई। फिर कभी मनमे उमग आये तो यही कुछ कर गुजरना।

तुम देखोगे कि 'हरिजन'के इस अकमे मैने तुम्हारे पत्रके एक महत्त्वपूर्ण अश का उपयोग किया है।[1] दूसरा महत्त्वपूर्ण अश 'हरिजन'मे डॉ० अम्वेडकर और सनातनियोके विचारोके प्रकाशनसे सम्बन्धित है। ऐसा करना बराबर सम्भव नही होता। इसपर मैंने बहुत सोचा। पत्रको स्वावलम्बी बनाना, उसमे कोई विज्ञापन न देना, इस आन्दोलनके प्रवर्त्तककी हैसियतसे हरिजनोसे सम्बन्धित ताजी घटनाओके बारेमे अपने विचार यथासम्भव अधिकसे-अधिक विस्तारसे देना — इन सबका निर्वाह एक अखबारमे कर पाना लगभग असम्भव हो जाता है। और फिर सनातनियो और अम्वेडकर विचारधाराके लोगोके विचारोका प्रकाशन अधिकाश पाठकोकी दृष्टिसे अनावश्यक था, क्योकि वे इस प्रश्नके सभी पहलुओसे परिचित थे और ये सब दैनिक अखबारोमे प्रकाशित हो चुके थे। तो इस हालतमे वह विदेशी पाठकोके लिए ही उपयोगी हो सकता था, मगर ऐसे पाठक तो स्वभावत गिने-चुने ही है। वे थोडे हो या बहुत, उनकी उपेक्षा नही की जा सकती थी, और मै जानता था कि 'हरिजन'मे जितनी सामग्री दी जा सकती है उसके अतिरिक्त भी उन्हे काफी साहित्य दिया जा रहा है। और यह अतिरिक्त अध्ययन तो उन्हे करना ही है, चाहे वे 'हरिजन'के माध्यमसे करे या मूल स्रोतोसे। सो मै इस निष्कर्षपर पहुँचा कि उन्हे मूल स्रोतोसे ही विभिन्न दृष्टिकोणोकी जानकारी प्राप्त करने देना चाहिए। और मैंने ऐसा किया, इसीलिए 'हरिजन'को स्वावलम्बी बनाना, यहाँतक कि लगभग आरम्भसे ही, सम्भव हो सका है। जब-कभी दूसरे पक्षोके विचार देना जरूरी हुआ है, मैंने इस बातका बहुत ज्यादा खयाल रखा है कि उन्हे किसी तरहका रग-मुलम्मा चढाकर पेश न किया जाये। इससे ज्यादा मै कुछ नही कह सकता।

इसलिए यद्यपि मै तुम्हारे पत्रके इस अशके मुताबिक कार्रवाई करनेकी तुम्हारी ख्वाहिश पूरी नही कर रहा हूँ, लेकिन तुम यह तो जानते ही हो कि तुम जो भी कहोगे उसका असर अदृश्य रूपसे मेरे मनपर अवश्य होगा, और इसलिए तुम्हे जो भी बात मुझसे कहने लायक लगे, निस्सकोच कहो। तुम-जैसे मित्र और सहयोगी जितनी ही मुक्त और पूर्ण आलोचना करेगे, मेरा काम उतना ही हलका और अच्छा

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ३१-३-१९३३ के अन्तर्गत उप-शीर्षक "शब्द-जाल नहीं, कोरे तथ्य"।

हो जायेगा, और ऐसी आलोचना अपने-आपमे हरिजन-कार्यमे तुम्हारा एक महत्त्वपूर्ण योग होगा।

यह पत्र सी० एफ० एन्ड्रयूज, जैक हॉयलैंड तथा अन्य लोगोको भी पढ़नेको देना।

आशा है, अब तुम इतने अच्छे हो गये होगे कि तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमे कुछ पूछनेकी भी जरूरत नही रह गई है।

तुम सबको हम सबका स्नेह।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४२०) से।

२८४. पत्र : एलिजाबेथ एफ० हॉवर्डको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

आपके पत्रने मेरे मनको छू लिया। इटारसीमे आश्रम खोलनेके सम्बन्धमे आपकी दी गई जानकारी शिक्षाप्रद है। मुझे उम्मीद है कि संस्थापकगण जब सचमुच वहाँ आ जायेंगे तो मुझसे सम्पर्क बनाये रखेंगे।

अगर आप दक्षिण आफ्रिकामें कोई अन्तर्जातीय बस्ती बसानेका काम शुरू कर सकें तो बड़ा ही अच्छा हो। मैं जानता हूँ कि यह काम कितना कठिन है, लेकिन हम दुर्बल मानव प्राणियोके लिए जो बात कठिन है वही ईश्वर जब करना चाहता है तो उसके लिए कठिन नही रह जाता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

कुमारी एलिजाबेथ हॉवर्ड
आर्डमूर
बकहर्स्ट हिल
एसेक्स

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६६) से।

२८५. पत्र : जॉन एस० हॉयलैंडको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय हॉयलैंड,

तुम्हारा पत्र मिला। जिस विन्दुपर होरेस अलेक्जैंडरको लिखा पत्र समाप्त किया है, वहीसे इसे लिख रहा हूँ।

तुमने पूछा है कि हर शुक्रवारको हम जो मूक प्रार्थना करते हैं, उसके लिए क्या आप हरिजनोके हितकी दृष्टिसे कोई प्रार्थना सुझा सकते है। यह पत्र लिखवाते हुए मुझे जो सूझा है, वह इस प्रकार है·

ससारके सबसे अधिक असहाय जनोकी सेवामे लगे लोग कभी भी सत्यसे रच-मात्र विचलित न हो और वे जो-कुछ करे वह विनय-भावसे करे, यही तुमसे प्रार्थना है। और तुम उन्हे सब-कुछ तुमको अर्पित करके करनेकी सुबुद्धि दो।

हम सबका स्नेह।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

श्रीयुत जॉन एस० हॉयलैंड
हॉलैंड हाउस
वुडब्रुक
सेली ओक
बर्मिघम

अग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४५०९) से; सौजन्य . वुड ब्रुक कॉलिज, बर्मिघम, और जेसी हॉयलैंड। एस० एन० २०७६५ से भी

२८६. पत्र : कमलादेवीको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय कमलादेवी,

आपका पत्र मिला। १० अप्रैलको आकर मिल लीजिए। उस दिन लगभग २ बजे आपकी प्रतीक्षा करूँगा। मुझे उस समय सुविधा होगी।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७८६) से।

२८७. पत्र : गर्ट्रूड एस० केलर-चिंगको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

तुम्हारा लम्बा पत्र मिला और यह जानकर खुशी हुई कि तुम उस सभामे गई थी जिसमे श्री एरिवेजका भाषण हुआ था।

तुम्हारे पत्रमे एक बात ऐसी है जो मुझे ठीक नही लगती और इसलिए उसके सम्बन्धमे मै सही बात कहना चाहूँगा। तुमने कहा है. "मेरी जिन्दगी बहुत भाग-दौडकी जिन्दगी है और इसलिए मुझे प्रार्थना और मननके लिए काफी समय नही मिलता।" लोग अकसर ऐसा कहते तो है, लेकिन बात सही नही है, मेरा खयाल है, लैटिनकी यह कहावत अक्षरश सत्य है कि "श्रम ही प्रार्थना है।" और अगर तुम जो श्रम करो, केवल ईश्वरके लिए करो, उसीको अर्पित कर दो, तो किसी भी काममें भाग-दौड या जल्दबाजी जैसी कोई चीज नही रह जायेगी। उस हालतमे तो हमें केवल इतना ही करना होता है कि हम अधिकसे-अधिक जितना कर सके उतना करके निश्चिन्त हो जाये। फिर, बहुत ज्यादा थकावट महसूस नहीं होती। और जब सारा जीवन ही समर्पित हो जाता है तो वह सतत प्रार्थना और मननका जीवन बन जाता है। मननके लिए किसी खास समयकी जरूरत नही है। सच्चा मनन तो वही है जो हमारे प्रत्येक कार्यके साथ गुंथा हुआ हो। इसके मर्मको आजमाकर खुद ही देख लो।

तुमने मेरे स्वास्थ्यके बारेमें पूछा है। तदर्थ धन्यवाद। मै सचमुच बहुत ठीक हूँ।

श्रीमती गाधी और मीराबाई एक ही जेलमे हैं। वे स्वस्थ और सानन्द हैं।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीमती गर्ट्रूड एस० केलर-चिंग
विला लैवोसियर
लै सिगनल

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०७७९) से।

२८८. पत्र : नी० को

३१ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

रामचन्द्रने मुझे बताया है कि उसने किस तरह तुम्हे अपने गाँवके लिए विदा किया, किस प्रकार रुद्रमणिने इतनी देर कर दी कि उसे ट्रेन न मिल सकी और किस तरह रामचन्द्रको १० रुपये देने पडे। रेल-भाडा किसको देना था? क्या रुद्रमणिको? मुझे उसके सम्बन्धमे उसकी उम्र, शिक्षा, धन्धे आदिके बारेमे पूरी जानकारी भेजना और उससे मुझे पत्र लिखनेको कहना।

तुम्हे यह पत्र रामचन्द्रके दिये पतेपर भेज रहा हूँ।

फिर, रामचन्द्रने यह भी बताया है: "मैने उससे विशेष रूपसे कहा कि वह लिबासमे आजकी अपेक्षा कही अधिक शालीनता बरते और बिलकुल ग्रामीण महिलाकी तरह रहे।" उसका कहना बिलकुल ठीक है। ऐसा कैसे किया जा सकता है, यह तो तुम जानती ही हो। यह सही है कि अलग-अलग देशो और अलग-अलग जन-समुदायोकी शालीनताकी कल्पना एक-दूसरेसे भिन्न है और अगर हम अपने परिवेशको छोडकर दूसरोके परिवेशको अपना लेते हैं तो जब हम अपने परिवेशके अनुकूल होना और वहाँके लोगोके साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहते है, जैसा कि तुम हरिजनोके साथ करना चाहती हो, तो हमे उस परिवेशकी अपेक्षाओको पूरा करना पडता है। मै जानता हूँ कि यहाँ खर्चका सवाल उठता है। तुम्हारा क्या इरादा है, यह मुझे साफ-साफ और पूरी तरहसे बताना। तुम जो वक्तव्य प्रकाशित करानेवाली थी उसकी एक प्रति मुझे भेजना।

रामचन्द्रने इससे आगे कहा है "कृपया उसे बराबर पत्र लिखते रहकर सम्भव हो तो समझाइए कि वह प्रतिदिन कुछ घण्टे मौन रखे और बातचीत कर-करके दु:खी न हो उठे।" इसका मतलब यह हुआ कि तुम बाते करनेमे खूब समय बर्बाद करती रही हो और अगर ऐसा हो तो रामचन्द्रकी चेतावनी फिर सही ही है। इसमे कोई हर्ज नही है कि तुम प्रतिदिन कुछ घण्टे मौन रखो। इस बातकी कोशिश करो कि जबतक बिलकुल जरूरी न हो जाये तबतक तुम बाते न करोगी। अपने सेवा-कार्यको ही लोगोको दिया गया उपदेश, अपनी बातचीत और अपना आनन्द समझो।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७७७) से।

२८९. पत्र : रामचन्द्रको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। मैं नी० देवीको पत्र लिख रहा हूँ। रुद्रमणिके बारेमें और जानकारी दो। वह कौन है, उसकी शिक्षा कितनी है, उसका व्यवसाय क्या है? क्या उसने तुम्हें १० रुपये वापस कर दिये? किरायेके पैसे वह देनेवाला था या नहीं? क्या उसके पास पर्याप्त साधन है?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७७८) से।

२९०. पत्र : एडा वेस्टको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय देवी,

मुझे खुशी है कि तुम्हें ऐसी जगह रखा गया है, जहाँ तुम्हें सर्दी लगनेकी सम्भावना कम है। म्यूरियलने मुझे बताया है कि किंग्सले हॉलमें तुमने कितना उपयोगी काम किया। तुमसे अन्यथा अपेक्षित भी नहीं है, भले तुम कहीं भी रहो। मुझे आश्चर्य तो तब होता जब उसने इससे भिन्न बात बताई होती। अगले सप्ताह मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा। तभी मैं जान पाऊँगा कि नई जगहमें तुम्हें कैसा लगा।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी देवी वेस्ट
द्वारा – कुमारी ए० पामर
२१८, व्हिपेनडेल रोड
वॉटफोर्ड, हर्ट्स

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०७७५) से।

२९१. पत्र : रमाबहन जोशीको

३१ मार्च, १९३३

चि० रमा,

तू अब भी अपनी बातका हठ करती जान पडती है। करती है तो भले कर।

तुमने अमीनाको अपने पास रखकर बहुत अच्छा किया। वह वहाँ खुश रहेगी। उसके बच्चोको अपने ही बच्चोके समान मानना।

पढाई तो अच्छी तरह चल रही है न? हाथमे लिया हुआ काम छूटना नही चाहिए। बहुत अधिक काम होने पर थोडा ही सही किन्तु तुम्हे प्रतिदिन थोडा लिखने-पढने और बोलनेका अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

हमे हाथके बारेमे उतावली नही करनी चाहिए। मैंने नारणदासको लिखा है। सरदार यहाँसे डॉ० पटेलसे पुछवायेगे। उनसे कुछ विस्तारसे जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। ऑपरेशनकी बात सुनकर तुम्हे घबराहट तो नही हुई न? क्या आनन्दीका ऑपरेशन देखते-देखते नही हो गया था? पूरी जानकारी मिल जानेके बाद मैं तुम्हारे बारेमे भी तुरन्त निर्णय कर लूँगा। चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नही।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४६) से।

२९२. पत्र : श्री० दा० सातवलेकरको

३१ मार्च, १९३३

भाई सातवलेकर,

आपका पत्र मिला। मुझको तो गोमास बारेमे जो उत्तर दिया है वह अच्छा लगता है।[1] राजेद्रलाल मित्र बहुत बडे विद्वान थे। उनका मृत्यु बहुत वर्षोके पहले हुआ। मुझको तो किसी सज्जनने पुस्तिका[2] ऐसे ही भेज दी।

१. सातवलेकरजी ने अपने पत्रमें लिखा था कि शास्त्रोंमें जहाँ गो-भक्षणका जिक्र किया गया है, वहाँ 'गो' शब्दका अर्थ गोरस, घी आदिसे है।

२. इस पुस्तकका नाम बीफ इन ऐंशेंट इंडिया था; गांधीजी ने सातवलेकरके पास इस पुस्तकको टिप्पणीके लिए भेजा था।

यद्यपि कोई अखबार मराठीमें न निकले तो भी प्रचार कार्यका सर्वथा त्याग भी नहि होना चाहिये। सकालादि अखवारमे अस्पृश्यता निवारणका समर्थन तो होता ही है न?

आपका,
मोहनदास

पं० सातवलेकर
स्वाध्याय मंडल
औंध
जिला सतारा

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७७४) से; सौजन्य: श्री० दा० सातवलेकर

२९३. टिप्पणियाँ

बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक

मद्रासके एक स्नातकने मुझे 'हिन्द स्वराज्य' से निम्नलिखित उद्धरण भेजा है:

> बहुसंख्यक जिसे कहें, अल्पसंख्यक उसे मान ही लें, यह तो अधर्म है, अन्ध श्रद्धा है। ऐसे हजारों उदाहरण मिल जायेंगे जिनमें अधिकांश लोगोंका कहा हुआ गलत निकला और जो थोड़ोंने कहा, वही सही निकला। सभी सुधार बहुमतके विरुद्ध खड़े होकर थोड़े-से लोगोंने ही दाखिल कराये हैं। ठगोंकी बस्तीमें ज्यादातर लोग यही कहेंगे कि ठग-विद्या सीखनी ही चाहिए, तो क्या वहाँ रहनेवाला कोई साधु पुरुष भी ठग बन जायेगा? नहीं, नहीं। जब तक यह भ्रम दूर नहीं होता कि अन्यायपूर्ण कानूनको भी मान लेना चाहिए, तबतक हमारी गुलामी दूर नहीं होगी और ऐसे भ्रमको केवल सत्याग्रही व्यक्ति ही दूर कर सकता है।[1]

इसके बाद वे खुद लिखते हैं:

> आपके 'हिन्द स्वराज्य' से उद्धृत उपर्युक्त अंशकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। इससे हमें यह मालूम होता है कि किसी समय आपका ऐसा विचार था। लेकिन मन्दिर-प्रवेश समस्याके सिलसिले में तो उसे बिलकुल ताकपर रख दिया गया है। क्या हम यह मानें कि आजकी स्थिति उससे भिन्न है जो आपने तब अपना रखी थी? स्पष्ट ही आपने जो स्थिति अपना रखी है वह असंगत है। आशा है, आप इस विषयमें हमारी शंकाका समाधान करेंगे।

१. देखिए खण्ड, पृष्ठ ४९।

किसी लेखकके लेखोके अशोको सन्दर्भसे अलग करके उद्धृत करना उसके साथ अन्याय करना है। इसके अलावा असगत दिखनेवाली बातोके लिए कोई सफाई देनेकी भी फिक्र मुझे नही करनी चाहिए। इसे तो खुद पाठकोके ही निर्णयपर छोड देना चाहिए। इस प्रसगमे यह उद्धरण मुझे एक ऐसे सत्यका प्रतिपादन करता प्रतीत होता है जिसकी लोग प्राय उपेक्षा कर देते है। खैर, मै तो इसके एक-एक शब्दमे विश्वास करता हूँ। मन्दिर-प्रवेश विधेयकोसे नियम भग नही होता। उनमे अल्पसख्यकोपर कोई बन्धन नही डाला गया है, उन्हे किसी बातके लिए मजबूर नही किया गया है। लेकिन अगर बहुसख्यक हिस्सा अल्पसख्यकोसे जबरन अपनी बात नही मनवा सकता, तो अल्पसख्यक लोग भी बहुसख्यकोको अपनी इच्छा स्वीकार करनेको बाध्य नही कर सकते। किन्तु स्वाभाविक चीज यही है कि जहाँ-कही बहुसख्यको और अल्प-सख्यकोके बीच कोई विवाद हो वहाँ अल्पसख्यक लोग बहुसख्यकोके आचरणके औचित्य को स्वीकार किये बिना उन्हे अपनी राह चलने दे, और अगर वे उन्हे गलत मानते हो तो उनके साथ सहयोग न करे। मन्दिर-प्रवेश विधेयकोमे से एकमे यही किया गया है — इससे अधिक कुछ नही। लेकिन मुझे तो खुद ही अल्पसख्यकोके अधिकारो और इच्छाओकी बहुत अधिक चिन्ता है — कारण भले ही केवल इतना हो कि मै सदा — कमसे-कम शुरूमे — अल्पसख्यकोमे ही शामिल रहा हूँ। इसलिए, जैसा कि पाठकोको मालूम होना चाहिए, मैने एक ऐसा रास्ता सुझाया जिससे अल्पसख्यक लोग भी अपनी इच्छाओको पूरा करवा सके। दूसरे विधेयकमे किसीसे कोई अधिकार छीना नही गया है। वह तो अस्पृश्यताके प्रश्नको दीवानी कानूनके क्षेत्रसे अलग-भर कर देता है। वह किसीकी अन्तरात्मा या अपने धार्मिक विधि-विधानोके पालनके आडे नही आता। सच तो यह है कि इन विधेयकोमे सभीके विचारोको सरक्षण देनेका खयाल रखा गया है और एकमे यह व्यवस्था की गई है कि मतभेद होनेकी स्थितिमे क्या करना चाहिए। यहाँ मुझे 'हिन्द स्वराज्य'से उद्धृत अशमे प्रतिपादित नियमके भग होनेकी कोई बात दिखाई नही देती। उसमे यह दिखाया गया है कि अल्पसख्यक लोग अपनी रक्षा कैसे कर सकते है।

शब्द-जाल नहीं, कोरे तथ्य

मैने एक अग्रेज मित्रसे[1] 'हरिजन'मे सुधारके लिए सुझाव माँगे थे। उन्होने एक लम्बा और ज्ञानवर्धक पत्र लिखा है। अस्पृश्यता-विरोधी कार्यकर्ताओके मार्ग-दर्शनके लिए उसका एक अश मै नीचे दे रहा हूँ

> **जो काम किये गये, जितनी प्रगति हुई, उसका सप्ताह प्रति-सप्ताह विवरण दिया जाना मुझे बहुत महत्त्वपूर्ण लगता है। इसमें केवल मोटी रूपरेखा देनेके बजाय कभी-कभी इसे विस्तृत ढंगसे प्रस्तुत किया जा सकता तो कितना अच्छा होता। . . . मेरे मनमें यह विचार आता रहा है कि क्या नई संस्था यत्र-तत्र स्थानीय तौर पर सर्वेक्षण करके उनके परिणाम प्रकाशित करेगी। विवरणमें**

१. सम्भवतः होरेस जी० अलेक्जैंडर, देखिए "पत्र: होरेस जी० अलेक्जैंडरको", ३१-३-१९३३।

मैं तो इस तरहकी बातें पढ़ना चाहूँगा: ... तालुकेमें पिछले पखवाड़े इस संस्थाके एक सदस्य द्वारा किये गये सर्वेक्षणके अनुसार गाँवोंके २५ कुओंका उपयोग सभी जातियोंके लोग बिना किसी भेद-भावके कर रहे हैं। इनमें से १२ के उपयोगकी सुविधा तो हरिजनोंको पिछले सितम्बर महीनेसे मिली है। लेकिन अब भी गाँवोंमें १८ कुएँ ऐसे हैं जिनका उपयोग हरिजनोंको नहीं करने दिया जाता। मन्दिरोंसे सम्बन्धित आँकड़े ... हैं आदि, आदि।

बेशक मुझे यह मालूम नहीं है कि अभी आपके पास ऐसे कामके लिए पर्याप्त स्वयंसेवक हैं या नहीं। स्वभावतः वे सर्वेक्षणके साथ-साथ प्रचार-कार्य भी करेंगे। आप तो जानते ही हैं कि हम ब्रिटेनवाले शब्द-जालके बजाय कोरे तथ्योंको पसन्द करते हैं, या कमसे-कम अपने बारेमें हमारा खयाल ऐसा ही है।

मैं ऐसा सोचनेकी धृष्टता करता हूँ कि केवल ब्रिटेनवालोके साथ ही ऐसी बात नही है कि वे शब्द-जालके बजाय कोरे तथ्योंको अर्थात् कथनीके बजाय करनीको पसन्द करते है। हरएक यही देखना चाहता है कि क्या-क्या काम किये गये है। कभी-कभी कामके बाद उसे समझानेके लिए शब्दोंकी भी जरूरत पड सकती है। कितने और क्या-क्या काम किये गये है और सनातनियो तथा हरिजनो, दोनोके साथ पेश आनेमे क्या-क्या कठिनाइयाँ सामने आईं, इसकी जितनी ही अधिक जानकारी प्राप्त होगी, 'हरिजन' उतना ही उपयोगी बनता जायेगा। पत्र-लेखक द्वारा सुझाये गये ढगके सर्वेक्षण करनेमे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। हमे किसीसे कुछ छिपाना नही है। अगर हम यह देखे कि किसी खास इलाकेमें एक सौ कुएँ है और हरिजनोको उनमे से केवल एकके ही उपयोगकी सुविधा मिली है, तो हमे इस तथ्यको स्वीकार करनेमे शर्म महसूस नही करनी चाहिए। शर्मका विषय तो यह है कि ऐसी स्थिति कायम है। उसे स्वीकार करनेका मतलब उस स्थितिके अन्तका आरम्भ होगा। कठिनाइयोको जब हम भली-भाँति जानेंगे, तभी हम उनसे निपट सकते है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

२९४. प्रचार बनाम रचना[1]

कुछ दिन पहले हमने हरिजनोद्धारक सगठनोकी एक हरिजन द्वारा की गई तीव्र आलोचना[1] प्रकाशित की थी। उसको लेकर अब बहुत-सारे दिलचस्प पत्र आ रहे हैं। उस आलोचना और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप आये पत्रोको ध्यानमे रखते हुए प्रचार और रचनाके पक्ष-विपक्षपर विचार करना तथा यह जान लेना आवश्यक है कि रचनाका ठीक-ठीक अर्थ क्या है।

अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके सिलसिलेमे प्रचारके लिए सवर्णोंके बीच इस विषयपर लिखे साहित्यका तत्परतासे वितरण किया जाता रहा है, अस्पृश्यता-सम्बन्धी

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०१-३।

जानकारी दी जाती रही है और उनके बीच सभाएँ भी की जाती रही है। गुरुवायूरका जनमत-सग्रह तत्त्वत इसी प्रकारका प्रचार था। प्रचारका एक और तरीका यह रहा है कि हरिजनोके सम्मेलन आदि करके उन्हे यह बताया जाता रहा है कि सवर्ण हिन्दू क्या कर रहे है और आन्तरिक सुधारके लिए — जैसे कि सफाईके नियमोके पालन तथा मृत पशुओके मास-भक्षण और अन्य अहिन्दू आचरणोके त्यागके लिए — स्वय उनसे क्या अपेक्षाएँ की जाती है।

ऐसा प्रचार, निस्सन्देह, आवश्यक है। हम किसी प्रकारका विद्वेष पैदा किये बिना और झगडा खडा किये बिना ऐसा प्रचार जितना करे उतना ही अच्छा है। उधर सनातनी लोग अपनेको सगठित कर रहे हैं और ऐसा मान रहे है कि सुधारको की प्रवृत्तियोसे हिन्दू धर्म खतरेमे पड गया है अत· सुधारकोको सावधानीसे काम लेना चाहिए। हम सनातनियोको नाराज नही करना चाहते। इसलिए जहाँ-कही वे लोग बहुत क्षुब्ध अवस्थामे हो वहाँ सुधारक लोग अपनी सभाएँ न करे तो अच्छा। हर तरहके झूठ और अतिशयोक्तिका प्रतिवाद करना उनका कर्तव्य है और खुद उन्हे इस विषयमे अत्यन्त सावधान रहना है कि वे क्या बोलते, लिखते या करते हैं। झूठ किसी उद्देश्यकी सिद्धिमे कभी सहायक नही होगा और धर्मकी सिद्धिमे तो निश्चय ही नही।

ऐसे स्वच्छ प्रचारको स्वावलम्बी भी होना चाहिए। यदि हम इसे स्वावलम्बी बनानेका आग्रह रखेंगे तो यह पवित्र और मर्यादित रहेगा तथा अधिकसे-अधिक प्रभावकारी हो सकेगा। पर्चों तथा अन्य साहित्यकी कीमत मिलनी ही चाहिए और इतनी मिलनी चाहिए जिससे उसीमे से यात्रा वगैरहका भी खर्च निकल आये। पाठक यह न समझे कि मै बिना किसी अनुभवके यह सब लिख रहा हूँ। इसके विपरीत, मै जो-कुछ कह रहा हूँ वह उस समयके मेरे व्यापक अनुभवपर आधारित है जब मै 'महात्मा' नही बना था और आज जिस परिवेशमे ईश्वरने मुझे रख दिया है उसके लिए मै परिचित भी नही था। समय और पैसे (जो एक ही चीज हैं) के सम्बन्धमे मितव्ययितासे काम लेना मेरा सहज स्वभाव था। जिसका अपने उद्देश्यकी सचाईमे विश्वास है उसे सत्यमय प्रचारके इस सुनहले नियमको लागू करना बहुत आसान लगेगा।

मगर इसका मतलब यह नही कि पाठकोको बराबर पर्चे वगैरह खरीदकर ही पढने चाहिए। यह तो आदर्श स्थिति होगी। लेकिन, इसका मतलब यह नही कि केन्द्रीय सस्था कोई खर्च उठाती ही नही। जिन स्थानीय सस्थाओको पर्चोकी जरूरत हो उन्हे उनके लिए केन्द्रीय सस्थाको कीमत देनी चाहिए। उधर इन एजेंसियो को भी अपना खर्च निकाल लेनेकी फिक्र करनी चाहिए — कुछ तो पाठकोसे और कुछ ऐसे पर्चोके वितरणमे रुचि रखनेवाले धनाढ्य लोगोसे। इस तरह प्रचारके खर्चका समुचित वितरण हो जायेगा और वह किसी एक ही के सिर जाकर भारस्वरूप न हो जायेगा। खर्चेमे इस तरह हाथ बँटाया जाना प्रचारकी शक्ति और लोकप्रियताका एक यथेष्ट सूचक होगा। 'हरिजन' के विभिन्न सस्करणोका उद्देश्य निश्चय ही प्रचार ही है। या तो उन्हे स्वावलम्बी होना है या फिर बन्द हो जाना है। अग्रेजी और

वगला सस्करण तो स्वावलम्बी हो भी चुके है। हिन्दी सस्करण अव भी इस दिशामे प्रयत्नशील है। तमिल सस्करणका प्रकाशन श्रीयुत गणेशन करते है और उसके लिए प्रान्तीय सगठनको कुछ खर्च नही करना पड़ता। इन सस्करणोके फलस्वरूप स्थानीय सस्थाओके लिए यह आसान हो गया है कि वे अधिक या थोडे-बहुत खर्चेके विना भी अपना प्रचार-कार्य चला सके। 'हरिजन' के विभिन्न सस्करणोमे सभी रोचक और शिक्षात्मक जानकारी उन्हे मिल सकती है। यह उनका मुखपत्र है।

अव रहा यहाँ-वहाँ जाकर भाषण देनेके सिलसिलेमे होनेवाला यात्रा-व्यय। कहनेकी जरूरत नही कि ऐसा काम करनेवाले सभी लोगोको स्वयसेवक होना चाहिए। अगर वे पैसेवाले होते है तो अपना यात्रा-व्यय स्वय उठाते है। जहाँ ऐसा न हो सके वहाँ यह खर्च भाषणकर्त्ताओको आमन्त्रित करनेवाली सस्थाओको उठाना चाहिए। सामान्य नियम तो यह है कि इस प्रयोजनके लिए गठित स्वागत-समितियाँ विशेष चन्दा एकत्र करे और सारा खर्च वहीका-वही चुका दे। इस प्रकार स्थायी सगठन, चाहे वे केन्द्रीय हो या स्थानीय, केवल व्याख्यान सुलभ कराते है, मार्ग-दर्शन करते है और अपने नाम तथा प्रभावका लाभ उठानेकी सुविधा देते है, लेकिन आम तौरपर वे कोई खर्च नही उठाते।

इस तरहसे देखे तो प्रवन्ध-व्ययमे सिर्फ कर्मचारियोका खर्च, मकान-किराया, लिखनेका सामान और मन्त्रीका यात्रा-व्यय ही वच रहता है। मुख्य पदाधिकारी तो प्राय अवैतनिक ही होते है या फिर ऐसे स्वयसेवक होते है जो केवल निर्वाहखर्च लेते है और बरावर अपने बाजार-भावसे कम पर ही काम करते है। और अगर आम कर्मचारियोमे से सबके-सब या जहाँ तक सम्भव हो, हरिजन ही हो तव तो सवर्ण हिन्दुओकी जेबोमे बहुत कम पैसा जायेगा, निश्चय ही वह सम्वन्धित सस्थाओ द्वारा उगाही गई राशियोके दस प्रतिशत तक भी नही पहुँच पायेगा। इस प्रकार, पजाब प्रान्तीय शाखाके लाला मोहनलाल कहते है

> प्रबन्ध-व्ययके बारेमें मुझे संक्षेपमें यह कहना है कि चपरासी और क्लर्कपर होनेवाले ५० रुपये मासिक खर्चके अलावा पंजाब बोर्डको स्थायी अथवा अस्थायी ढंगका भी कोई खर्च नहीं उठाना पड़ा है। मैं इस संस्थाका महामन्त्री हूँ, लेकिन मुझे अपने भत्ते लोक सेवक मण्डलसे मिलते है, जिसका मैं आजीवन सदस्य हूँ, मेरा खयाल है, प्रान्तीय संगठनोंको चलानेके लिए कमसे-कम इतने ही कर्मचारियोंकी आवश्यकता है।

ऊपर सुझाई योजनाके अनुसार चन्देकी अधिकाश राशियाँ रचनात्मक कार्योके लिए — जैसे कि हरिजनोके लिए प्रारम्भिक पाठशालाएँ चलाने, छात्रवृत्तियाँ देने, उन्हे कुओ आदिके उपयोगकी सुविधा दिलानेके लिए — उपलब्ध रहेगी। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि वैतनिक कर्मचारियोमें से अधिकाश हरिजन ही हो या फिर ऐसे सवर्ण हिन्दू स्वयसेवक हो जिन्होने अपनी सेवाएँ मुफ्त या वाजार-भावसे कम पर अर्पित की हो। लेकिन हमारा लक्ष्य यह अवश्य होना चाहिए कि हम सभी सवर्ण हिन्दू कर्मचारियोके स्थानपर हरिजनोको भरती करें। फिर इस वातकी पूरी सम्भावना

रहेगी कि चन्देकी राशियोके दस प्रतिशतके अलावा और सारा पैसा हरिजनोके हाथोमे चला जाये। और इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि यह हरिजनो और सवर्ण हिन्दुओ, दोनोके लिए सबसे अच्छा और सबसे प्रभावकारी प्रचार होगा? सवर्ण हिन्दू स्वयसेवको द्वारा किये गये मूक, प्रभावकारी और गरिमामय कार्य सवर्ण हिन्दुओके हृदयोको प्रभावित किये बिना नही रहेगे और फलत समाजमे हरिजनोका दर्जा ऊपर उठेगा। और कोई कारण नही कि सवर्ण हिन्दुओमे से इस तरहके हजारो युवा-युवतियाँ आगे आकर उन लोगोके बीच उदात्त सेवा-कार्य करे जिनकी हमारा समाज अनेक पीढियोसे निष्ठुरतापूर्वक उपेक्षा करता आया है। क्या हमारे बीच ऐसे दृढव्रती, त्यागवीर है? इन पृष्ठोमे मै पहले ही बता चुका हूँ कि इसके लिए कोई बहुत अधिक पढे-लिखे लोगोकी जरूरत नही है। हमे तो ऐसे साहसी, दृढ आस्थावान और चरित्रबलवाले पुरुप और स्त्रियाँ चाहिए जिन्हे दुनियाका कोई भी प्रलोभन डिगा न सके।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-४-१९३३

२९५. विद्यार्थी और छुट्टियाँ

देहरादूनसे एक विद्यार्थीका हिन्दीमे लिखा पत्र मिला है। उसका सार इस प्रकार है:

> हमारे कालेजके छात्रावासमे अबतक भगी हमारी जूठन खाते रहे है। परन्तु जबसे जागृति हुई है हमने यह रिवाज बन्द कर दिया है और हम उन्हे स्वच्छ चपातियाँ और दाल देते है। इससे हरिजन असन्तुष्ट है। जूठनमे उन्हे कुछ घी और व्यजन मिल जाते थे। विद्यार्थी ये चीजे हरिजनोके लिए अलग नही रख सकते थे। और यह कठिनाई भी है कि हमने जो नया रिवाज अपनाया है उसपर हम दृढ रह सकते है, मगर हरिजन जाति-भोजो वगैराकी जूठन लेना जारी रखेगे। अब क्या किया जाये? और जब आप इस प्रश्नका उत्तर दे तो साथ ही मै आपसे यह भी जानना चाहूँगा कि हमारी छुट्टियाँ जो जल्दी ही आनेवाली है, उनका हम उत्तम उपयोग कैसे करे?

पत्र-लेखकने जो कठिनाई बताई है वह वास्तविक है। हरिजनोको जूठनकी ऐसी आदत पड गई है कि वे न केवल उसमे कोई असम्मान नही मानते, बल्कि उसकी आशा लगाये रहते है। उन्हे जूठन न मिले तो इसे वे निश्चित हानि समझेगे। परन्तु इस दुखद सत्यसे यही प्रकट होता है कि हरिजन और स्वर्ण हिन्दू दोनोका कितना पतन हो गया है। विद्यार्थियोको इस बातकी चिन्ता करनेकी जरूरत नही कि दूसरे स्थानोपर क्या होता है। उनके लिए पहली चीज सही रास्तेपर होना है और मै उन्हे सुझाव दूँगा कि उनके लिए जो खाना आम तौरपर बनता है उसमे से एक जुदा भाग वे निश्चयपूर्वक मेहतरोके लिए अलग रख दिया करे। देहरादूनके विद्यार्थियोने

खर्चका प्रश्न उठाया है। मुझे भारत-भरके छात्रावास-जीवनका कुछ ज्ञान है। मेरा दृढ विश्वास है कि विद्यार्थी आम तौरपर व्यजनों और विलासकी वस्तुओपर जितना चाहिए उससे कही अधिक व्यय करते है। मुझे यह भी मालूम है कि वहुत-से विद्यार्थी अपनी थालीमे वहुत-सी जूठन न छोड़ना शानके खिलाफ समझते है। मेरा उनसे यह कहना है कि अपनी थालीमें कुछ भी जूठन छोड़ना ही शानके खिलाफ वात है और गरीवोकी अवहेलनाका चिह्न है। किसीको भी — खास तौरपर विद्यार्थियोंको — यह हक नही है कि वे जितना आसानीसे खाया जा सके उससे ज्यादा थालीमे ले। एक विद्यार्थीका यह काम नही है कि वह व्यजनो और विलासकी वस्तुओकी सख्या वढ़ाये। विद्यार्थी-जीवन हर वातमे सयमका अभ्यास करनेके लिए है और यदि वे सयमका तरीका अपनाये और अपनी थालियोमें कुछ जूठन न छोड़नेकी स्वच्छ आदत डाल ले, तो वे देखेंगे कि अपने लिए वने हुए मामूली खानेमे से अपने मेहतरोंके लिए उदारता-पूर्वक एक भाग अलग रख देनेके वावजूद उनके खर्चमें कुछ वचत ही हो जायेगी।

और फिर इतना करनेके वाद मैं उनसे आशा रखूँगा कि वे हरिजनोके साथ अपने सगे भाइयो-जैसा वरताव रखे, उनसे प्रेमपूर्वक वोले और वताये कि दूसरोकी थालीकी जूठन खानेकी गन्दी आदत छोड़ देना और अपने जीवनमे दूसरे सुधार करना उनके लिए क्यो जरूरी है। रही वात विद्यार्थियोके छुट्टियोका उपयोग करनेकी, सो यदि वे उत्साहसे काम हाथमें ले तो वेशक वहुत-से काम कर सकते है। उनमे से कुछ मैं गिना देता हूँ:

१ छुट्टियोतक के लिए छोटा-सा सुकल्पित शिक्षा-क्रम वनाकर रात और दिनकी पाठशालाएँ चलाना।

२. हरिजन-मुहल्लोमें जाकर उनकी सफाई करना और हरिजन लोग मदद दे तो ले लेना।

३. हरिजन-वालकोंको सैरके लिए ले जाना उन्हे अपने गाँवोंके नजदीकके दृश्य दिखाना, उन्हे प्रकृतिका अध्ययन करना सिखाना, आसपासकी चीजोमे आम तौरपर उनकी दिलचस्पी पैदा करना और वातों-ही-वातोमे उन्हे भूगोल-इतिहासकी कामचलाऊ जानकारी देना।

४ उन्हे 'रामायण' और 'महाभारत' की सरल कथाएँ पढ़कर सुनाना।

५. सरल भजन सिखाना।

६. हरिजन लडकोके शरीरपर जहाँ भी मैल पाया जाये वह सव साफ कर देना और वडो तथा वच्चों, दोनोको स्वास्थ्य-विज्ञानके सरल पाठ सिखाना।

७ चुने हुए क्षेत्रोंमे हरिजनोंकी जनगणना करना और उनकी स्थितिकी विस्तृत जानकारी इकट्ठी करना।

८. वीमार हरिजनोको डॉक्टरी सहायता पहुँचाना।

हरिजनोमे क्या-क्या किया जा सकता है, उसका यह एक नमूना है। यह जल्दी-जल्दीमें वनाई हुई सूची है, परन्तु मुझे सन्देह नहीं कि विचारशील विद्यार्थी इसमे वहुत-सी वाते वढ़ा लेगा।

मैंने अभीतक अपना ध्यान हरिजनोकी सेवा तक सीमित रखा है, परन्तु सवर्णोकी भी एक सेवा करनी है, जो कम जरूरी नही है। सवर्ण कैसे भी हो, इसकी परवाह न करके विद्यार्थी अकसर अत्यन्त कोमल ढगसे उनमे अस्पृश्यता-निवारणका सन्देश पहुँचा सकते है। इतना अधिक अज्ञान फैला हुआ है जिसे प्रामाणिक सत्साहित्य विवेकपूर्वक वितरित करके आसानीसे दूर किया जा सकता है। विद्यार्थी अछूतपन मिटाने और न मिटानेवालो की सूची तैयार कर सकते हैं और उसे तैयार करते समय वे ऐसे कुओ, पाठशालाओ, ताल-तलैयो और मन्दिरोको दर्ज कर सकते हैं, जो हरिजनोके लिए खुले हैं और जो नही खुले हैं।

यदि ये सब काम वे ढगसे और लगातार करेंगे, तो उन्हे आश्चर्यजनक परिणाम दिखाई देंगे। हरएक विद्यार्थीको एक नोटबुक रखनी चाहिए, जिसमे उसे अपना काम ब्योरेवार दर्ज करना चाहिए। और छुट्टियोके अन्तमे अपने कामकी एक सर्वग्राही किन्तु सक्षिप्त रिपोर्ट तैयार करके प्रान्तीय हरिजन सेवक सघको भेजी जा सकती है। यहाँ दिये गये सुझावोमे से कुछ या तमामको दूसरे विद्यार्थी ग्रहण करे या न करे, मै अपने पत्र-लेखकसे यह आशा रखूंगा कि जो-कुछ उसने और उसके साथियोने किया हो उसकी रिपोर्ट मुझे भेज दे।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

२९६. 'यह संघर्ष आवश्यक है'

बॉयड टकरके एक पत्रके उत्तरमे धर्माचरणके लिए मन्दिरो, गिरजो और मसजिदोके महत्त्वपर मैंने एक पत्र[1] लिखा था। उसे पढ़कर गुरुदेवने मुझे जो ज्ञानवर्धक पत्र लिखा है, मै मानता हूँ कि पाठकोको भी वह बहुत पसन्द आयेगा। पत्र निम्न प्रकार है·

प्रिय महात्माजी,

कहनेकी जरूरत नहीं कि किसी एक वर्गको शोषणकी सुविधा प्रदान करनेके विशेष उद्देश्यसे ईश्वरको ईंट और गारेकी दीवारोंमें कैद करके रखने का विचार मुझे तनिक भी पसन्द नहीं है। मेरा यह प्रबल विश्वास है कि निश्छल-हृदय लोग समस्त कृत्रिम व्यवधानोंसे रहित, उन्मुक्त परिवेशमें खुले आकाशके नीचे भी ईश्वरकी उपस्थितिका अनुभव कर सकते हैं। बंगालमें हम ऐसे एक सम्प्रदायको जानते हैं। उसके अनुयायी अशिक्षित हैं, उनपर ब्राह्मण-परम्पराओका कोई प्रभाव नहीं है, उन्हे चाहे जैसे उपासना करनेकी स्वतन्त्रता है और उनका उपासनाका ढंग अत्यन्त सार्वभौमिक है। उनके लिए

१. गांधीजी के इस पत्रके पाठके लिए देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०९-१०। देखिए "पत्र : बॉयड टकरको" २३-३-१९३३ भी।

मन्दिर-प्रवेश निषिद्ध रहा है, इसीलिए उन्हें भगवत्-उपासनाकी ऐसी विशुद्ध प्रणाली हाथ लगी।

ईश्वरकी पारम्परिक कल्पना और रूढ़िगत उपासनाविधियोंमें धार्मिक रीति-रिवाजोंके नैतिक महत्त्वपर कोई जोर नहीं दिया जाता। उनका असली महत्त्व इस बातमें निहित है कि उनके कारण उपासक प्रचलित रीति-परम्पराका अनुसरण करते है, जिससे उन्हे एक तरहकी कल्पित पवित्रता और शास्त्रानुमोदित कर्म करनेके सन्तोषका बोध होता है। जब हम न्याय और मानवताके नामपर उनसे तर्क करते है तो इसकी बिलकुल उपेक्षा कर दी जाती है; क्योंकि, जैसा मै कह चुका हूँ, इस चीजका नैतिक पक्ष उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता और आप तो जानते ही है कि हमारे बहुत-से साम्प्रदायिक विधि-विधानोंसे ऐसे रीति-रिवाज और उपाख्यान जुड़े हुए है जो बहुत ही निकृष्ट और बुद्धि-विरुद्ध है।

मन्दिरोंमें जाकर पूजा-उपासना करनेकी एक धार्मिक परम्परा रही है और ऐसी परम्पराएँ नैतिक दृष्टिसे भले ही गलत और हानिकर हों किन्तु उनकी एकदम उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। यहाँ सवाल उनको बदलनेका, उनकी व्याप्ति और स्वरूपको विस्तृत करनेका उठता है। कौनसे तरीके अपनाये जायें, इसपर मतभेद हो सकता है। परम्पराओंके अभिरक्षकोंके दृष्टिकोणसे देखें तो वे उन्हे यथावत् सुरक्षित रखने और मन्दिरोंमें मूर्ति-पूजाके अधिकारको कुछ विशेष लोगोंके एक वर्गतक ही सीमित रखनेमें अपनी सम्पत्तिकी रक्षाकी सहज भावनासे काम कर रहे है। वे न केवल ईसाइयों तथा मुसलमानों को, बल्कि अपने ही सहधर्मियोंके कुछ हिस्सोंको भी पूजाका यह अधिकार देनेको तैयार नहीं है। उन्होंने उसे फौलादी सन्दूकचीमें बन्द कर रखा है। उनका यह आचरण उस परम्परागत धर्मके अनुसार ही है जो उन्हे ऐसी स्वतन्त्रता देता है, बल्कि एक तरहसे उनके लिए ऐसा करनेका विधान करता है। इन नैतिक दृष्टिसे गलत परम्पराओंसे निपटनेके लिए कोई सुधारक बल-प्रयोग तो नहीं कर सकता, फिर भी दूसरी गलत और हानिप्रद प्रथाओंकी तरह इनके खिलाफ लड़नेमें भी उसे नैतिक शक्तिका प्रयोग और इन्हें निरन्तर सुधारनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। यह संघर्ष आवश्यक है। मै नहीं समझता कि टकरने इस बातको स्पष्ट किया है।

जहाँतक शान्तिनिकेतनके प्रार्थना-भवनका सम्बन्ध है, उसमें सभी धर्मोंके अनुयायी प्रवेश कर सकते है। जिस प्रकार इसके दरवाजे किसीके लिए भी बन्द नहीं है, उसी प्रकार यहाँ पूजाका जो सरल-सीधा स्वरूप है उसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसमें विभिन्न धर्मोंके अनुयायी शामिल न हो सकें। हमारी धर्म-चर्चा पेड़ोंकी छायामें भी मजेमें चल सकती थी। इससे उसकी महत्ता

और पवित्रतामें कोई कमी नहीं आती, बल्कि ऐसे प्राकृतिक परिवेशमें उनमें वृद्धि ही होती। मगर आबोहवा और मौसमकी अड़चनें इसके आड़े आती हैं। अन्यथा मैं नहीं समझता कि प्रार्थना और ईश्वरोपासनाके लिए पृथक् भवन सचमुच आवश्यक है।

मैंने 'हरिजन' के लिए अपनी हालकी एक बंगला कविताका[1] [अंग्रेजी] अनुवाद भेजा है। मुझे आशा है कि इसकी भावना 'हरिजन' के आदर्शोंसे मेल खाती होगी। 'हरिजन' को मैं बड़े आनन्द और रुचिके साथ पढ़ता हूँ। भारतके लिए इससे अधिक आशामय भविष्यका संकेत और क्या हो सकता है कि उस महान् उपवासके परिणामस्वरूप यहाँकी दलित मानवतामें जागृति आ रही है।

स्नेहाभिवादन-सहित,

हृदयसे आपका,
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

२९७. काबुली जुल्म[2]

हरिजनोको बर्दाश्त करनेकी शिक्षा देना ही काफी नही है। इसमे एक और तरहसे भी भारी योग देना जरूरी है, अर्थात् धर्मिष्ठ और प्रभावशाली मुसलमानोसे यह कहा जाये कि वे काबुलियोसे मिलकर उन्हे समझाये कि ब्याजकी इतनी कडी दरे रखना और उसे वसूल करनेके लिए बल-प्रयोग करना कानून, नैतिकता और इस्लामके खिलाफ है, और इसलिए उन्हे साधारण ब्याज ही लेना चाहिए और अगर अदायगी न हो तो कानूनका ही सहारा लेना चाहिए। ऐसा ही शिक्षाप्रद प्रचार उन बनिया महाजनोके बीच भी करना है जो अपने काबुली भाइयोकी ही तरह गैरवाजिब दरसे ब्याज लेते है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

१. 'पुनीत स्पर्श' (द सैक्रेड टच), यह कविता २५ मार्च, १९३३ के हरिजनमें छपी थी।

२. बंगला हरिजनमें इस शीर्षकसे छपे लेखका अंग्रेजी रूपान्तर गांधीजी की टिप्पणीके साथ हरिजनमें छपा था। यहाँ वह लेख, जिसमें काबुलियों और बनिया महाजनोंसे कर्ज लेनेवाले हरिजनोंकी दुर्दशाका वर्णन किया गया था, नहीं दिया जा रहा है।

२९८. बिहारमें अस्पृश्यता-निवारण

मार्च महीनेके मध्यतक बिहारमे किये गये कामके सम्बन्धमे निम्नलिखित विवरण मिला है[1]

स्थानीय समितिके लिए केवल इतना बता देना काफी नही है कि कुछ कुओके उपयोगकी सुविधा हरिजनोको दिलाई गई थी, किन्तु वह फिर छिन गई है। यह बताना आवश्यक है कि स्थितिके सुधारके लिए क्या-क्या किया गया है। जहाँतक शुद्ध जलकी आपूर्तिका सम्बन्ध है, मुझे लगता है कि जल-आपूर्तिकी अवस्थाका तेजीसे सर्वेक्षण करना और जहाँ आपूर्ति सर्वथा अपर्याप्त हो वहाँ हरिजनोकी कठिनाइयाँ दूर करनेके लिए आवश्यक कदम उठाना प्रत्येक समितिका पहला कर्तव्य है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

२९९. रक्षात्मक परिधान

इग्लैडके गृह-मन्त्रालय (होम ऑफिस) ने "कारखानो और कठालो" मे काम करनेवाली स्त्रियो और लडकियोके लिए रक्षात्मक परिधान[2] शीर्षकसे एक पुस्तिका प्रकाशित की है। यह बड़ी सावधानीसे तैयार की गई है और अधिकारी वर्गके इस्तेमालके लिए है। इस पुस्तिकाके लिए मैं मेहनती और उत्साही, श्रीयुत हीरालाल शाहका आभारी हूँ। इसमे अनेक प्रकारके कामोके दौरान, पहननेके लिए अलग-अलग ढगके परिधान सुझाये गये है और यह कहा गया है कि काम करनेवाली स्त्रियो और लड़कियोको दुर्घटना या स्वास्थ्य-हानिसे बचाने, या उन्हे काममे सुविधा प्रदान करने, या उनकी सामान्य पोशाकोको, वे जो काम करती है, उनके लिए प्रयोगकी जानेवाली सामग्री, मशीन आदिसे नुकसान पहुँचनेसे बचानेके लिए रक्षात्मक परिधान रखना अत्यत आवश्यक पाया गया है। आगे बताया गया है कि रक्षात्मक परिधानकी आवश्यकता अधिकाशत निम्नलिखित कारणोमे से ही किसी-न-किसीसे उत्पन्न होती है

१ धूल-भरे या गन्दे काम,
२ मशीनोके पास काम करना,
३ सीढियो आदिपर चढना,

१. विवरण यहाँ नहीं दिया जा रहा है, उसमें बिहारमें अस्पृश्यता-निवारण कार्यके विभिन्न पहलुओंका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया था और यह भी बताया गया था कि हरिजनोंको कितने मन्दिरों और कुओंके उपयोगका अधिकार दिलाया गया है, कितने हरिजन बच्चे स्कूलोंमें दाखिल किये गये हैं, कितनोंको छात्रवृत्तियाँ दी गई हैं और कितनी मद्य-निषेध सभाएँ आयोजित की गई हैं।

२. प्रोटेक्टिव क्लोदिंग फॉर विमेन ऐण्ड गर्ल वर्कर्स एम्प्लायड इन फैक्टरीज़ ऐण्ड वर्कशाप्स।

४ एसिडो और कास्टिक द्रवोका उपयोग,
५. जिन कामोमे भीगने, नमी रहनेकी सम्भावना हो,
६. बहुत ज्यादा गर्मी,
७ बहुत ज्यादा सर्दी, गर्मी वगैरह लगनेकी सम्भावना, आदि।

इसके बाद बहुत-कुछ सुझाये गये परिधानोमे से प्रत्येकका अलग-अलग अच्छी तरह समझाते हुए सक्षेपमे वर्णन किया गया है। ऊपर मैने जो वर्गीकरण दिया है, उसके अन्तर्गत आनेवाले ३१ प्रकारके धन्धोमे अपेक्षित कामोके लिए सात तरहके परिधान तैयार किये गये है। पुस्तिकामे काफी चित्र भी दिये गये है।

इस सबका जिक्र मै केवल यह दिखानेके लिए कर रहा हूँ कि इग्लैडमे सरकार कर्मचारियोके जीवनकी सुरक्षाका कितना खयाल रखती है, और साथ ही मेरा एक उद्देश्य इस सत्यको भी भली-भाँति समझाना है कि सिर्फ गन्दे और नुकसानदेह काम करनेवाले कर्मचारियोकी रक्षाके लिए ही नही, आम लोगोकी सुरक्षाके उपाय करनेमे भी वहाँ इतनी अधिक सावधानी बरती जाती है। फिर हमारे यहाँकी आबोहवामे गर्द और गन्दगीके बीच काम करनेवाले तथाकथित अस्पृश्योकी रक्षाके लिए और गर्द तथा गन्दगी ढोनेके जीते-जागते वाहन बन जानेवाले उन लोगोसे फैलनेवाली छूतसे, जो ऐसे काम करते है, आम जनताको बचानेके लिए कितनी अधिक सावधानी बरतने की जरूरत है। उनके अस्पृश्य बने रहनेसे समाजकी किसी भी तरहसे रक्षा नही हो पाती। इसके विपरीत, सुरक्षाकी एक झूठी भावनाके कारण छूतका खतरा और भी बढ़ जाता है और इस कारणसे तो यह खतरा और ज्यादा बढ़ जाता है कि समाज द्वारा उपेक्षित होनेके कारण ऐसे काम करनेवाले लोग खुद भी गन्दगीके इतने आदी हो जाते है कि जहाँ वे रहते है वे इलाके निश्चित रूपसे गन्दगी और बीमारी पैदा करनेवाले कारखाने बन जाते है। इसलिए श्री हीरालाल शाहने जिस अत्यन्त सरल सुधारकी सिफारिश की है उसे तत्काल लागू करना आवश्यक है। अगर अस्पृश्यताके विषयमे हमारा दृष्टिकोण ऐसा विकृत नही होता तो हम अस्पृश्योकी बस्तियोमे जाते। उनकी अवस्थाका अध्ययन करनेके लिए सबसे पहली चीज तो यह है कि हम अपने-अपने शौचालयोमे आँखे खूब खुली रखकर जाये और देखे कि उनकी क्या हालत है। फिर तो समाजको यह सुधार शुरू और सम्पन्न करनेमे चाहे जितना खर्च करना पड़े, वह उसे महँगा नही मानेगा और निश्चय ही हर कीमतपर न केवल अपने-अपने शौचालयोकी सफाईके लिए, बल्कि जिन इलाकोमे हरिजन रहते है उनकी सफाईके लिए भी आवश्यक कार्रवाई करेगा और उन्हे रक्षात्मक परिधान तथा नहाने-धोने और कपडे बदलनेकी सुविधा प्रदान करेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

३००. पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

गत मासकी २८ तारीखका आपका पत्र[1] मिला, तदर्थ धन्यवाद। मैंने हरदयाल बाबूका पत्र[2] पढ लिया है और आपके द्वारा रेखांकित भागोको ध्यानपूर्वक देख लिया है। क्या आप बेमतलब भावुक नही है? इस पत्रको मैं बुरा लगनेवाला नही मानता। इसका जो सार है, वह दुर्भाग्यवश सच ही है। वर्गत तो ब्राह्मण लोग अपने श्रेष्ठतम गुणोका परिचय नही देते। आशा है, आपने 'हरिजन' मे इस बारेमें मेरा लेख[3] पढा होगा। मै चाहूँगा कि आपकी जो चीज मुझे झूठी भावुकता-सी लगती है उसको आप यदि छोड सके तो छोड़कर हिन्दू धर्मकी शुद्धिके लिए सुधारकोकी पक्तिमें शामिल हो जाये।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७९६) से।

३०१. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

१ अप्रैल, १९३३

बम्बई सरकारके सचिव
गृह-विभाग

प्रिय महोदय,

मध्य प्रान्तके कैदी सेठ पूनमचन्द राँकाके बारेमें, जिनके विषयमे यह खबर है कि वे सिवनी जेलमे उपवास कर रहे है, मेरे निवेदनका उत्तर सरकारकी ओरसे यथासमय मिल गया, इसके लिए मै आभारी हूँ। मुझे उम्मीद है कि जिस उद्देश्यसे अनुमति ली गई है, उसके लिए यह पर्याप्त होगी।

लेकिन इस अनुमतिसे उस और बडे प्रश्नका समाधान नही होता जिसकी चर्चा मैंने अपने २३ मार्चके पत्रमे की थी। सरकारके उत्तरमे जो एक बडा सवाल उठाया गया है उससे तो वह सारी व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो जाती है जिसके अन्तर्गत मै एकके बाद एक कई अधीक्षकोके अधीन रह चुका हूँ। इसलिए मै यह

१. सम्भवतः गांधीजी द्वारा आर० आर० चक्रवर्तीको लिखे पत्रके उत्तरमें; देखिए "पत्र: आर० आर० चक्रवर्तीको", २१-३-१९३३।

२. यह उनकी ब्राह्मण-विरोधी आन्दोलन की शिकायतके प्रमाण-स्वरूप भेजा गया था।

३. देखिए "ब्राह्मणोंके खिलाफ निन्दात्मक प्रचार", २५-३-१९३३।

जानना चाहूँगा कि मेरी प्रार्थनापर सरकारने क्या निर्णय किया। सेठ पूनमचन्दके साथ सम्पर्क स्थापित करनेमे विलम्ब होनेसे मुझे जो मनोव्यथा सहनी पडी है उसे दोबारा सहनेकी मेरी इच्छा नही है।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८५) से, बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल न० ८००(४०)(३) ए, पृष्ठ १०९ से भी

३०२. पत्र : वी० बी० कीर्तिकरको

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

पिछले महीनेकी १५ तारीखके पत्रके[2] लिए धन्यवाद। आपकी दलीलको पढनेके लिए मैं इतने दिनोसे इसे अपने साथ रखे रहा। यह निर्देशात्मक है, लेकिन विश्वासोत्पादक नही। वर्ण-धर्म मानव-रचित नियम नही है। यह तो आत्माका नियमन करनेवाला नियम है। मनुष्य चाहे जितनी बार इसे तोड सकता है, बल्कि तोड रहा है, किन्तु उसे इसका दण्ड भरना पडता है। इसका पालन करनेसे आत्माको विकसित करनेके लिए मनुष्यके पास काफी शक्ति बच रहती है, किन्तु इसकी उपेक्षा करनेसे इतनी अधिक शक्ति व्यय करनी पडती है कि उससे प्राप्त होनेवाला परिणाम उसके सामने कुछ भी नही है। हमे खुद वर्ण-धर्मको नही, बल्कि उसके विपर्यस्त रूपको मिटाना है। ऐसा करनेमे मैं आपके साथ हूँ, लेकिन मैंने यह दिखानेकी कोशिश की है कि सच्चा वर्ण-धर्म हिन्दू धर्मकी एक बहुत बडी खोज है। उसे मिटानेके प्रयत्नमे मैं शामिल नही हो सकता, क्योकि हम इसे जिस रूपमे आज देख रहे हैं वह..[3] है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० बी० कीर्तिकर
काशि निवास
४०, जुहू रोड
सान्ताक्रुज
[बम्बई]

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७९७) से।

१. गृह-सचिवने भारत सरकारको भेजे एक खरीतेमें इस पत्रका मजमून बताते हुए लिखा कि इस पर विचार किया जा रहा है। उन्होंने सरकारको यह भी सूचित किया था कि विदेशी अखबारोंके दो संवाददाताओंने गांधीजी से मुलाकात करनेकी जो अनुमति माँगी थी, उसे अस्वीकृत कर दिया गया था।

२. इसमें कीर्तिकरने चारों वर्णोंको मिटाकर सभी जातियों तथा उपजातियोंके स्वस्थ मिश्रणको प्रश्रय देनेका सुझाव दिया था।

३ मूलमें इससे आगे 'सीरियस' शब्द आता है, जिसका वाक्यसे कोई मेल नहीं बैठता।

३०३. पत्र : मोहनलालको

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मोहनलाल,

आपका पत्र और साथमे न्यायमूर्ति शादीलाल द्वारा रचित 'पंजाब भूमि विक्रय अधिनियम' तथा आपके लेख भी मिले। मुझे विश्वास है कि इनको पढ़नेसे इस अधिनियमके फलितार्थोको समझनेमे मुझे सहायता मिलेगी।[1]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७९९)से।

३०४. पत्र : पद्मजा नायडूको

१ अप्रैल, १९३३

दुःख है कि तुमको उस तरह अचानक ही चल देना पड़ा, लेकिन आशा करता हूँ कि पिताजी कोई खास अस्वस्थ नहीं होगे। यह आशा भी करता हूँ कि वहाँ तुम अच्छी तरहसे रहोगी, और यहाँ तुम्हारा जो हाल था उसे और नही बिगड़ने दोगी।

किसी खास भाग-दौड़के बिना तुम हरिजनोकी जो भी सेवा कर सको उसका विवरण मुझे भेजना।

पद्मजा नायडू

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८०५)से।

१. गांधीजी ने अपने २५-३-१९३३ के पत्रमें अमृतलाल वि० ठक्करसे उक्त अधिनियमका पाठ भेजनेको कहा था। अमृतलाल वि० ठक्करने शायद यह काम पंजाबके प्रसिद्ध कार्यकर्ता मोहनलालको सौंप दिया था; देखिए "पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको", २५-३-१९३३।

३०५. पत्र : वी० एस० आर० शास्त्रीको

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिल गया था। इतने दिनोसे इसकी प्राप्तिकी सूचना इसलिए नही दी कि आपने इसे बडी सावधानीसे लिखा है और मैं नही चाहता था कि इसे पढे बिना ही जवाब दे दूं। इस कामपर आपने जितनी मेहनत की है, उसके लिए मै आपको धन्यवाद दिये बिना नही रह सकता। आपने जो वचन उद्धृत किये है उनसे मै अपरिचित नही हूँ और न उन अर्थोसे ही जो आपने लगाये है। मतभेद प्रयोगके सम्बन्धमे खडा होता है। एक क्षणको अपने-जैसे साधारण व्यक्तिको आप जैसे विद्वानकी बराबरीमे खडा करनेकी धृष्टता करते हुए मै कहूँगा कि मै देखता हूँ, आपके और मेरे बीच बुनियादी मतभेद है। यह मतभेद शास्त्रोकी व्याख्याके सम्बन्धमे है। मै शास्त्रोको एक सजीव और अविभाज्य इकाईके रूपमे देखता हूँ। आप कुछ छुटपुट वचनोको उद्धृत करके अपनी बात सिद्ध करते है। यह तरीका तो तभीसे चला आ रहा है जबसे मानव-जातिका अस्तित्व कायम हुआ, किन्तु मैंने इसे सर्वथा गलत माना है। इसने असख्य सम्प्रदायो और परस्पर विरोधी समुदायोको जन्म दिया है और इनके फलस्वरूप हम ईश्वर या सत्यके कुछ अधिक निकट आये हो, सो बात भी नही है। इसलिए फिर कभी कोई प्रश्न भेजकर तो मैं आपको परेशान नही करूँगा, अलबत्ता अगर आपको कुछ कहना हो तो उसे सहर्ष सुनूंगा।

आपने अहिंसा और सत्यके बारेमे जो-कुछ कहा है, उसपर भी मेरा ध्यान गया है। यहाँ भी मेरे सामने वही कठिनाई है। आपने जो स्थिति अपनाई है, उससे सहमत होते हुए भी मैं, बिना किसी कठिनाईके और उन्ही शास्त्रोके आधारपर जिनसे कि निस्सन्देह आप परिचित हैं, अपनी स्थितिको सही साबित कर सकता हूँ। क्या यह सम्भव नही हो सकता कि जिन्हे शास्त्र और उनके प्रत्येक वचनकी विभिन्न व्याख्याएँ बिलकुल कठ है वे मूल भावनाको ही न पकड पाये और जिन लोगोको न वे कठ है और न जो विभिन्न वचनोका अर्थ समझते हैं, हो सकता है, वे उस मूल सत्यका अनुभव करते हो?

हृदयसे आपका,

पण्डित वी० एस० आर० शास्त्री
२५/एन० सुब्बराया मुदाली स्ट्रीट
मइलापुर, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८००)से।

१. ११ मार्चका।

३०६. पत्र : शंकर विट्ठल सोनवनेको[1]

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय सोनवने,

आपका पत्र मिला। श्री जाजूजी ने भी लिखा है। क्या मेरा यह अनुमान सही है कि आप सारा पाठ्यक्रम बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमे ही पूरा करेगे? अगर ऐसा है तो क्या पाठ्यक्रम और नियमावली आपके पास है? अगर नही है तो आप उसकी तैयारी कीजिए, क्योकि मुझे उम्मीद है कि आपको आवश्यक छात्रवृत्ति मिल जायेगी। अलवत्ता यह जरूरी होगा कि छात्रवृत्ति देनेवालो को आपके बारेमें विश्वविद्यालयसे समय-समयपर सन्तोषजनक प्रमाणपत्र मिलता रहे।

आपने अपने माता-पिताके गुजारेके लिए १० रुपयेकी माँग की है। यह सहायता आप क्यो चाहते है? क्या आजकल उनके लिए इतने पैसेकी व्यवस्था आप कर रहे है? अगर नही करते तो अबतक उनका काम कैसे चलता रहा है? मुझे मालूम हुआ है कि आपकी वयस्क बहन या बहने भी है। क्या उन्हे कुछ कमाना नही चाहिए? क्या उन्होने कुछ शिक्षा पाई है? अगर वे काम करनेको तैयार हो तो उन्हे काम तो ढूँढकर दिलाया ही जा सकता है। लेकिन मुझे इस सबके बारेमें कुछ मालूम नही है। मुझे अपने घरका ठीक-ठीक हाल बताइए।

साथमे एक फार्म भेज रहा हूँ। अगर यह आपको ठीक लगे तो मेरा विचार यह है कि आप इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए। अगर ठीक न लगे तो बताएँ कि इसमे आप क्या-क्या परिवर्तन चाहते है।

हृदयसे आपका,

[सलग्न]

. . . से बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमे अपना अध्ययन सम्पन्न करनेके लिए मुझे जो रु० २००० (दो हजार रुपये मात्र) की छात्रवृत्ति प्राप्त हो सकती है उसके सम्बन्धमे मै यह वचन देता हूँ कि अपना पाठ्यक्रम पूरा होनेपर मै अपनी सारी सेवाओका उपयोग हरिजन-कल्याणके लिए करूँगा, और मै इस छात्रवृत्तिकी रकमको

१. यह शंकर विट्ठल सोनवनेकी एक अर्जीके उत्तरमें लिखा गया था। अर्जीमें हरिजन-विद्यार्थियोंको दी जानेवाली छात्रवृत्तिके रूपमें आर्थिक सहायता माँगी गई थी। शंकर विट्ठल सोनवनेकी आकांक्षा अगले पाँच वर्षोंतक सिविल इंजीनियरिंग पढ़नेकी थी।

वरावर अपने ऊपर एक ऐसा ऋण समझूँगा जिसे, यदि मेरी आय साधारण स्तरसे देखनेपर मेरी जरूरतोसे ज्यादा हो तो, उसमे से चुका देना मेरा कर्तव्य है।

स्थान . . . . . .

तिथि . . . . . .

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८०१) से।

३०७. एक पत्र

१ अप्रैल, १९३३

आरम्भमे मिली कानूनी रायमे किया गया परिवर्धन मैने देख लिया है। मै उसे फिलहाल प्रकाशित करना जरूरी नही समझता। उससे अनावश्यक वहस उठ खडी होगी। अधिक उपयोगी तो शायद यह होगा कि बिलकुल ही दूसरे प्रश्नोके आधार पर एक दूसरी राय ली जाये, ऐसी जो काफी सोची-समझी राय हो। मै ऐसे प्रश्न तैयार कर सकता हूँ, लेकिन मेरे पास उतना समय नही है। यदि श्री वहादुरजीको कोई मौलिक और विशिष्ट वात सूझ पडे, तो वहुत अच्छा। वे यदि आपके साथ अपना नाम न जोडना चाहे तो भी मुझे कोई आपत्ति नही, लेकिन मै चाहता हूँ कि वात काफी ठोस और बिलकुल ही निष्पक्ष हो, और विधेयकोका एक ऐसा अध्ययन हो जो अपनी ओर लोगोका ध्यान वरवस आकर्षित कर सके और यह सिद्ध कर सके, जो मै समझता हूँ। विधेयकोसे सिद्ध होता है कि आम धारणाके विपरीत दोमे से किसी भी विधेयकमे किसीपर भी कोई विवशता नही थोपी जा रही है।

मै साथमे गुलामबहनके लिए एक पत्र[1] रख रहा हूँ।

सलग्न पत्र – १

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७९५) से।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

३०८. पत्र : नारणदास गांधीको

१ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

. . . का[1] किस्सा तो बहुत दुखदायी होता जा रहा है। इसके सिलसिलेमे और कई चीजे प्रगट हुई है। मुझे अभी दिशा नही सूझी है किन्तु आश्रमके एक नियमकी ओर मै तुम्हारा ध्यान खीचता हूँ।

आश्रममे कोई किसीसे व्यक्तिगत भेट स्वीकार नही कर सकता। जो भी मिले वह सब आश्रमका ही माना जायेगा। किसीके पास उसका अपना कुछ नही है। अपरिग्रहमे यह नियम गर्भित ही है। हाँ, मै मानता हूँ कि इस नियमके कुछ अपवाद अवश्य है। तुम लोग विचार करना कि ये अपवाद क्या हो सकते है और उन्हे लिख डालना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३४६ से भी, सौजन्य : नारणदास गांधी

३०९. पत्र : मानशंकर जे० त्रिवेदीको

१ अप्रैल, १९३३

चि० मनु,

पिताजी को लिखे तेरे पत्र मैंने पढे। उनके हर शब्दसे तेरे हृदयकी निर्मलता टपकती है। किन्तु तू भटक गया है क्योकि अपने कर्तव्य-पालनमे चूक गया है। जिस व्यक्तिको जिस कामके लिए नियुक्त किया गया हो यदि वह उसे छोड़कर अन्य काममे लग जाये तो यह विश्वासघात माना जायेगा। जिस व्यक्तिको सब्जी लानेको कहा गया है उसे पन्ना लानेका हक नही है। हालांकि पन्ना भाजीकी अपेक्षा बहुत कीमती होता है। सब्जीकी जरूरत पन्नेसे पूरी नही हो सकती। एलिजाबेथ रम्भा-सी रूपवती और सावित्री-सी सती क्यो न हो किन्तु उससे तेरा विवाह नही हो सकता, क्योकि तू विद्यार्थी जो है तथा विद्याभ्यासके लिए ही वहाँ गया है। इस अवधिमे प्रणय अधर्म माना जायेगा। यदि तू अपने इस कर्तव्यको समझता हो तो इस मूर्च्छा से जागना। किन्तु यदि मूर्च्छाको ही तू धर्म समझे तो मै लाचार हूँ।

१. यहाँ नाम नहीं दिया गया है।

और सब तो मैंने पिताजी को लिखा है।

भगवान् तुझे सही मार्ग दिखाये और तेरा कल्याण करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २२६२२)से।

३१०. एक हरिजन-शिक्षकके अनुभव

एक हरिजन-शिक्षकके कुछ अनुभव मैं दे चुका हूँ।[1] उनके अन्य पत्रोसे कुछ और भी अनुभव मैं नीचे दे रहा हूँ।[2]

इस शिक्षककी उत्साहपूर्ण भाषाको देखकर पाठक चौंक न उठे। वे भावुक शिक्षक है और उनका अनुभव भी नया-नया है। हमें आशा रखनी चाहिए कि नई झाड़वाली अग्रेजी कहावत[3] इस शिक्षकपर लागू नही होगी और दिन-दिन उनका उत्साह बढ़ता ही जायेगा। यदि उनके मनमे श्रद्धा होगी तो ऐसा ही होगा। श्रद्धा का सूर्य वर्फके पर्वतको पिघला सकता है। रोगसे पीड़ित अपने बालकके प्रति माताके मनमे जो प्रेम होता है यदि वैसा ही प्रेम-भाव इस शिक्षकमे हरिजन बालकोके प्रति होगा तो वह उनकी गन्दगीसे घृणा न कर उन्हे अन्य सुसस्कृत बालकोकी तरह साफ-सुथरा और सुघड़ बना देगे। इस शिक्षकने अपने लिए जो शर्तें मजूर की है वह उन्हे पूरा करे या न करे किन्तु यह सही है कि इन शर्तोको पूरा किये बिना हरिजनोका आदर्श शिक्षक नही बना जा सकता।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २-४-१९३३

३११. कोडिनार ताल्लुकेमें

अमरेलीके प्रसिद्ध वकील श्री हरिलाल गोविन्दजी कोडिनार ताल्लुकेके कार्यकर्ताओकी यात्राके बारेमे लिखते है :[4]

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २६-३-१९३३।

२. उक्त अंशका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। गांधीजी द्वारा किये गये इसके स्वतन्त्र अनुवादके पाठके लिए देखिए "इस सबका अर्थ", ८-४-१९३३।

३. 'ए न्यू ब्रूम स्वीप्स क्लीन' अर्थात् नया मुल्ला अल्ला ही अल्ला पुकारे।

४. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने वहाँका समाचार देते हुए लिखा था कि स्वय उन्होंने तथा अन्य हरिजन कार्यकर्ताओंने कोशिश करके अस्पृश्यताको मिटानेके लिए जो वातावरण तैयार किया था उसका सनातनियों तथा हरिजनोंने बहुत अनुकूल उत्तर दिया था।

मै यह जानता हूँ कि काठियावाड़मे हरिजन-सेवाका कार्य धीमी गतिसे चल रहा है। इसके बावजूद यदि कार्यकर्ता हिम्मत न हारे, धीरज न छोडे और दृढ श्रद्धा रखते हुए प्रेमसे काम ले तो काठियावाड़से भी अस्पृश्यताका समूल नाश हो जायेगा। परिणामका ध्यान करते रहना यह बहुत खराब आदत है। जिसपर हमारा बहुत ही थोडा अधिकार है और जिसकी सफलता अन्य बहुत-सी चीजोसे जुडी हुई है, ऐसे कार्यका समुचित परिणाम न निकलनेपर जो व्यक्ति निराश हो जाता है, वह वीर योद्धा नही बल्कि कायर है। ऐसे कायरोको सफलता कभी नही मिलती। जो व्यक्ति परिणामकी ओरसे निश्चिन्त होकर अपने कर्तव्य-पालनमें ही लगा रहता है वही सफल परिणाम लानेमे साधनभूत बनता है और उसे हारका मुँह तो कभी देखना ही नही पड़ता। क्योकि उसकी विजय कर्तव्य-परायणतामे निहित होती है, परिणाममे कदापि नही। वह कर्तव्यका स्वामी है, परिणामका स्वामी तो परमात्मा ही है। अत मुझे आशा है कि इस पत्रमे जो सकल्प व्यक्त किया गया है, श्री हरिलाल भाई और उनके सहयोगी आजीवन उसपर डटे रहेगे।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २-४-१९३३

३१२. 'अजमेरका' का 'आज मरा' न हो जाये!

श्री हीरालाल शाहकी योजनाके बारेमे मैंने जो-कुछ लिखा था[1] उस सम्बन्धमें उन्होने निम्न चेतावनी दी है :[2]

यह चेतावनी सही है। जिसकी जैसी योजना हो यदि वह उसी रूपमें सामने न रखी जाये तो उसका भयकर परिणाम निकलता है। और जिसने अपने विचार यथारीति सामने रखे हो उनका अनुवाद यदि कोई व्यक्ति कुछ अलग ढगसे करे तो इससे न केवल उसे आघात पहुँचेगा बल्कि कभी-कभी उलटा ही परिणाम निकलता है और 'अजमेर' का 'आज मरा' हो जाता है।

मैंने अपने लेखको इस तरहके खतरेसे बचानेकी कोशिश की है क्योकि उसमें मैंने यह माना है कि पाठक श्री हीरालालकी योजनासे परिचित हैं। मैंने पूरी योजना को ज्योका-त्यो पाठकोके सामने रखनेका तो प्रयत्न भी नही किया। मैंने उसका सार दिया है। मैंने यह भी कहा है कि उक्त योजना विचारणीय है। फिलहाल मेरा कार्य सीमित है। मै बहुत-सी चीजे पाठकोके सामने रखता हूँ किन्तु उसपर अमल करना, न करना पुरुष और महिला कार्यकर्ताओंके हाथमे है। अन्य व्यक्तियो

१. देखिए "एक विचारणीय योजना", १९-३-१९३३।

२. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि यदि कोई योजना ढगसे पेश नहीं की जाती तो उसका अवाछित परिणाम निकलता है। लेखकने वर्धाका उदाहरण देते हुए आगे कहा था कि यदि इसके प्रयोगमें सावधानी न बरती गई तो यह अस्पृश्यता-निवारणके बजाय उसका एक स्थायी प्रतीक बन जायेगी।

द्वारा बनाई गई जिन योजनाओका मै थोडा-बहुत परिचय देता हूँ उनकी देखरेख करनेका काम आयोजकोका है। इससे अधिक फिलहाल मुझसे और कुछ नही हो सकता।

श्री हीरालालके पत्रमे तो और भी बहुत-कुछ था। जिसमे से आवश्यक अश ही मैने दिया है। जिन लोगोको यह योजना पसन्द आई हो वे श्री हीरालालसे पत्र-व्यवहार करके उसके बारेमे पूरी जानकारी प्राप्त कर सकते है और फिर उन्हे उसपर यथासाध्य अमल करना चाहिए।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २-४-१९३३

३१३. पत्र-लेखकोंको उत्तर

हरिजनोंका रोष[1]

आपके रोषको किस प्रकार शान्त किया जा सकता है? मै यह नही समझ पाया कि आखिर आप चाहते क्या है। हरिजन सेवक सघमे प्रमुख कार्यकर्ता सवर्ण हिन्दू है क्योकि इन्हीको अपने पापका प्रायश्चित करना है। हरिजन भाई अपनी सस्था अवश्य बनाये और वे बना भी रहे है। सवर्ण हिन्दुओ द्वारा परिचालित सस्थाओको वे सही रास्ता दिखानेका प्रयत्न करे। आखिरकार तो सवर्णोको हरिजनो द्वारा ली जानेवाली परीक्षामे उत्तीर्ण होना है। यह तो भगवान् ही जाने कि वे उत्तीर्ण हो सकते है या नही। सवर्णोके पापोका ढेर इतना विपुल है कि वे बच ही न सकते हो तो फिर उन्हे कौन बचा सकता है? यदि उनका पाप इतना बढ गया होगा तो निश्चय है कि सवर्ण हिन्दुओका सर्वनाश हो जायेगा। किन्तु आप मुझे यह बताये कि सवर्ण हिन्दू हरिजनोको अपने समान माननेके सिवा और क्या कर सकते है? और जो हरिजन स्वयको हिन्दू ही नही मानते उनके लिए किस प्रकार प्रायश्चित्त किया जाये और क्या प्रायश्चित किया जाये?

क्या हरिजनोंपर असहयोग लागू नहीं होता?[2]

आपका पत्र मिला। उक्त मित्रसे यह कहना इसमे कोई आश्चर्यकी बात नही है कि तगड़े आदमीका जठर जिस खुराकको स्वीकार कर लेता है उसे नाजुक आदमी

१. हरिजनोका एक छोटा-सा वर्ग मन्दिर-प्रवेश बिल, हिन्दू सुधारकों द्वारा किये जानेवाले सेवा-कार्य और यरवडा समझौतेसे भी सन्तुष्ट नहीं था। उनकी माँग थी कि हरिजन-सेवाका कार्य करनेवाली सभी सस्थाओंकी व्यवस्था केवल हरिजनों द्वारा की जानी चाहिए।

२. पत्र-लेखक श्री नृसिंहप्रसाद भट्टने पूछा था, यह कैसी विचित्र बात है कि असहयोग आन्दोलनमें भाग लेनेवाले लोगोंसे उन हरिजन विद्यार्थियोंकी सहायता करनेको कहा जाता है जो सरकारी पाठशालाओं और विश्वविद्यालयोंमें पढते है। (एस० एन० २०७१४)

का जठर स्वीकार नही करता। जो महान् नियम समझदारपर लागू होता है उसे सर्वथा अशिक्षितपर लागू करना नासमझी है। नियम मात्र सभी समय, सभी स्थानो और सभीपर लागू नही होते। ऐसे नियम इतने भी नही है कि उन्हे अँगुलियोकी पोरो पर गिना जा सके। अन्य बहुत-से नियमोमें समय, स्थान और व्यक्तिके भेदसे परिवर्तन करना आवश्यक होता है। सामाजिक हितकी दृष्टिसे विचार करनेपर जान पडेगा कि जो नियम हमने अपनेपर लागू किये है उन्हे हरिजन-बालको या हरिजनो पर लागू करनेसे जबरदस्त अन्याय होनेकी सम्भावना है। इस भाईको अपने स्थान पर डटे रहना चाहिए और हरिजन-बालकोको छात्रवृत्ति आदि देनेमें दृढ़तापूर्वक भाग लेना चाहिए।

नया नाम क्यों?[1]

आपका यह कहना उचित है कि स्पृश्य-अस्पृश्य सभी हिन्दुओको हिन्दू ही कहना चाहिए। किन्तु जबतक अस्पृश्यता दूर नही हो जाती तब तक 'अस्पृश्य' माने जानेवाले भाइयोको कटु नामसे पुकारनेके बजाय मधुर नामसे क्यो न पुकारा जाये? नालायक लडका अपनी माँको 'बापकी औरत' कहेगा, जबकि आज्ञाकारी बेटा उसे 'मातुश्री' कहेगा।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २-४-१९३३

३१४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। लिखा सो ठीक किया। आज ब्योरेवार नही लिख सकता। पत्र अच्छा है, फिर भी उसमें ब्रह्मचारिणीको शोभा न देनेवाला अभिमान है। नारदकी कथा याद कर। नारदने ब्रह्मचर्यका अभिमान किया कि तुरन्त उनका पतन हो गया। ब्रह्मचारीका आधार ठेठ ईश्वरपर रहता है। इसलिए वह नम्र होता है। वह अपना भरोसा नही करता। जो जन्मसे निर्विकार है वह मनुष्य नही। वह या तो परमेश्वर है अथवा पुरुष अथवा स्त्रीकी शक्तिसे रहित है। यानी, अपूर्ण है, रोगी है। परमेश्वरको अभिमान किस चीजका? पत्थरको पत्थरपनका अभिमान हो सकता है? रोगीको रोगका अभिमान नही हो सकता। स्त्री-पुरुष अपने विकारोको वशमे रखनेकी शक्ति पैदा कर सकते है और इसके फलस्वरूप सगृहीत हुई शक्तिका सदुपयोग कर सकते हैं। परन्तु जिसे इस शक्तिका अभिमान होता है, उसकी इस

१. एक सज्जनने लिखा था कि हरिजन कहकर आप अन्त्यज, अस्पृश्य जैसे नामोंको नया जीवन दे रहे है किन्तु अस्पृश्यता तो बनी ही रहेगी।

शक्तिका उसी क्षण नाश हो जाता है। तुझमें जो ब्रह्मचर्य होगा उसका कितना क्षय हो रहा है, इसका क्या तुझे ज्ञान है? तेरे ब्रह्मचर्यमें न्यूनता तो है ही। तेरे लिए स्वाभाविक क्या है? तू विकारको जानती ही न हो तो क्या तू कोई देवी है? देवीके लक्षण भिन्न होते हैं। तू देवी नही है। तुझे रोग हो ऐसा मैं जानता नही, क्योंकि तुझे मासिक धर्म होता है। जाँच करके देखना और मुझे लिखना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३२) से। सी० डब्ल्यू० ६७७२ से भी; सौजन्य प्रेमाबहन कटक

३१५. पत्र : नारणदास गांधीको

२ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

घडीने अभी तीन बजाये हैं और मैं दातुन करके लिखने बैठा हूँ।

तुम कुछ हारे हुए मालूम हुए, यह कैसे चलेगा? मेरे सब पत्रोंमे तुम देखते होगे, मैं हरएकसे यही कहता हूँ कि कोई भी बात हो, जबतक वह तुम्हारे गले न उतर जाये तबतक यत्रवत् न की जाये। या तो वह बात हमारे हृदयको जँचनी चाहिए या बुद्धिको। हृदयको जँचती है श्रद्धाके द्वारा। लेकिन दोनो स्थितियोमे मनुष्य सन्तोष और उल्लासका अनुभव करता है। जहाँ किसी निर्णयको बुद्धि समझ नही पाती और हृदय स्वीकार नही करता वहाँ असन्तोषका अनुभव होता है। और असन्तोषका अनुभव हो तो मनुष्य थक जाता है। वह अपना काम लगातार मेहनतसे करता है फिर भी काम चमकता नही है और करनेवाला क्षीण होता जाता है, बीमार पड जाता है। काम श्रद्धापूर्वक किया जाये तो उसका यह परिणाम नही होता। 'क्या करूँ? मैं तो समझ रहा हूँ कि यह सब ठीक नही हो रहा है, किन्तु बडोकी खातिर करना पडता है।'—यह श्रद्धा नही है, यह अनुचित विनयशीलता है। सत्यकी हमारी व्याख्याके अनुसार यह असत्य भी है। तुम्हारे [३१ तारीखके] पत्रमे यह ध्वनि है। तुम्हें कोई भी चीज इसलिए नही करनी है कि नरहरि कहता है या मैं कहता हूँ। करनी है तो इसीलिए कि वह तुम्हे करने योग्य प्रतीत हुई है। नरहरिके सभी सुझावोको रद्द करनेका तुम्हे पूरा अधिकार है। कारण, अन्तिम जिम्मेदारी तुम्हारी है। नरहरिके अनेक सुझाव मुझे अच्छे लगे हैं, यानी कागजपर तो वे अच्छे ही मालूम हुए हैं। किन्तु यदि तुम्हे ऐसा लगे कि उनका अमल तो हो ही रहा है अथवा उनमे से कुछ ऐसे हैं जिन्हे कार्यान्वित करना ठीक नही है तो तुम्हे उन्हे कार्यान्वित करनेकी जरूरत नही है। उस हालतमे तुम्हे नरहरिको समझाना चाहिए और जहाँ वह न समझे वहाँ धीरज रखना चाहिए और विश्वास करना चाहिए कि तुम्हारा सत्य वह अन्तमे समझ जायेगा या कि अन्तमे तुम अपनी

ही भूल देख सकोगे। इस बीच आपसमें मनोमालिन्य न होने दो। एक-दूसरेके विषयमें अपने मनमें ऐसा भ्रम न आने दो कि दूसरा तुमसे द्वेष करता है। कुछ मामलोंमें सब-कुछ हमारी काम करनेकी रीतिपर निर्भर होता है। नरहरि जो-कुछ कहता है उसका तात्पर्य समझ लेना जरूरी है। उसका आग्रह केवल दो वस्तुओंके लिए है। उसका मन साफ है। वह परिश्रमी है और समझदार है। हाँ, उसे गुस्सा आ जाता है और जिन बातोंको वह नहीं समझ पाता उन्हें अन्त तक समझ ही नहीं पाता। उनके सम्बन्धमें वह चिन्ता भी नहीं करता। वह भोला है और अपने मनमें कुछ नहीं रखता। उसे तो हमें समझाते-बुझाते ही रहना होगा। इसलिए वह जो कहता है उसे धीरजसे समझने और समझानेका प्रयत्न करना। विचलित न होना और अपनी शान्ति मत खोना।

परचुरे शास्त्रीको मैंने जो पत्र लिखा है उसे पढ़ना। उसमें मैंने उनके आहार के बारेमें लिखा है। अब उन्हें काम करने लगना चाहिए।

जीवराजको[1] कल ही तार कर दिया। आज पत्र लिख रहा हूँ। जो हो उसे सहन करें। अभी तो मैं मनके कुष्ठरोगसे जूझ रहा हूँ इसलिए शारीरिक कुष्ठरोगका आघात मुझे अधिक नहीं लगता।

उमेदराम संगीत सीखना चाहता है। उसके लिए आवश्यक व्यवस्था कर देना और बाकी कार्यक्रम तदनुसार बनाना।

मेरीबहनको दुबारा आनेका न्योता देना।

कुसुमकी तबीयत सुधर रही है, ऐसा मुझे तो नहीं लगता। तलवलकरको मैंने जो पत्र लिखा था वह उसे दे दिया था। क्षयरोगकी उनकी चिकित्सा-पद्धतिपर मुझे विश्वास नहीं है। शर्मा आये तो मैं उसकी चिकित्सा आजमाना चाहूँगा। इस समय तो पुरुषोत्तम ही अपना शर्मा है। लेकिन जबतक उसका अपना स्वास्थ्य पूरी तरह सुधार नहीं लेता तबतक मैं उसपर ज्यादा बोझ नहीं लादना चाहता। अपनी साधना पूरी करनेके बाद ही अपने ऊपर वह ज्यादा जिम्मेदारी ले, यही अच्छा है। यदि ऐसा न हुआ तो उसका स्वास्थ्य चौपट होनेका डर है। जबतक तलवलकरका जवाब मेरे पास नहीं आ जाता तबतक हम कोई परिवर्तन न करें। कुसुमका मन अशान्त हो जाये, ऐसा कुछ न करें। तलवलकर सज्जन है, अनुभवी डाक्टर तो वह है ही। अनेक बीमार श्रद्धापूर्वक अन्ततक उसका इलाज कराते भी हैं। कई मर जाते हैं; कुछ अच्छे भी हो जाते हैं। ऐसा ही दूसरोंके विषयमें भी है। इसलिए यदि उसका इलाज कराते हुए हम किसीको खो बैठें तो इसमें हम उसे दोष नहीं दे सकते। मैं तो इतना ही कह रहा हूँ कि उसकी पद्धतिमें मेरा विश्वास नहीं है। मेरा विश्वास तो नैसर्गिक चिकित्सापर ही है। जहाँ शल्य-क्रिया करानेकी जरूरत है वहाँ डाक्टरोंकी आवश्यकता है। लेकिन ऐसे मामले कम ही होते हैं। तुमने इस सम्बन्धमें कुछ ज्यादा विचार किया हो तो लिखना। तलवलकरका उत्तर जल्दी प्राप्त करना।

१. डॉ० जीवराज मेहता।

पुरुषोत्तमपर चार बीमारोंसे ज्यादाकी जिम्मेदारी मत डालना।

. [1]अभी निकट-भविष्यमें तो आता नहीं दिखता। तथापि उसके सम्बन्धमें मैं क्या सोचता हूँ उसका ज्यादा विवरण तुम . [2]के नाम लिखे पत्रमें पाओगे।

अब और ज्यादा नहीं लिखता।

बापू

[पुनश्च :]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।[3]

. . [4]के पत्र यदि वहाँ पढे जा चुके हो तो उन्हें [5]को भेज देना। . . . के[6] नाम लिखा मेरा पत्र भी भेज देना। सब पत्र पढनेके बाद ही देना। इसे मिलाकर कुल ग्यारह पत्र हैं।

उमेदराम, जीवराज, अमीना, पुरुषोत्तम, मेरी, परचुरे शास्त्री, कुसुम, नरहरि, लक्ष्मीदास, प्रेमा।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४७ से भी; सौजन्य नारणदास गाधी

३१६. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२ अप्रैल, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हें जो हड्डियाँ मिलती हैं यदि उन्हें इकट्ठा कर लो तो अच्छा हो। उन्हें उपयोगमें लानेका उपाय मैं खोज निकालूँगा। हड्डियोंको पीसकर खाद तो बनाई ही जा सकती है किन्तु उन्हें कैसे पीसा जाये तथा उनका इससे भी बेहतर ढंगसे उपयोग किया जा सकता है या नहीं, यह मुझे अभी खोजना है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१, २, ४, ५, और ६. यहाँ नाम नहीं दिये गये हैं।
३. भगवद्गीता, अध्याय ९, श्लोक २२।

३१७. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२ अप्रैल, १९३३

चि० जमना,

पुरुषोत्तमको लिखता ही रहता हूँ इसलिए तुम्हे अलगसे लिखनेकी जरूरत नही होती। जबतक पुरुषोत्तम थक न जाये तबतक तुम उसका इलाज करती रहना। सादे उपचारोसे तुम्हारी बीमारी मिट जानी चाहिए। धीरज और श्रद्धाकी आवश्यकता है। कनुका[1] क्या हाल है। यह खबर मुझे अबतक नही मिली। मै कुसुमके बारेमे सोचता रहता हूँ। तुममे बुद्धि तो है ही और लिखनेकी शक्ति भी है। इसका उपयोग करो और मुझे दिल खोलकर लिखो।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७४) से, सौजन्य नारणदास गाधी

३१८. पत्र : जमनादास गांधीको

२ अप्रैल, १९३३

चि० जमनादास,

तेरा पत्र मिला। मुझे ऐसा नही लगता कि मन्दिर बन सकेगा। फिर भी तू ऐसा प्रयत्न करना जिससे मन्दिर बन सके। किसी दिन असफलतामे से ही सफलता मिलेगी।

इसके साथ मै रणजीत पण्डितके लिए पत्र भेज रहा हूँ। वे वहाँ गये है। यदि वे वहाँ हो और तेरी इच्छा हो तो यह उन्हे दे देना।

राणा कौन है? उनके सुझाव बहुत खराब जान पडते है और तेरी आलोचना बिलकुल ठीक है। उसपर अडिग रहना और अडिग रहते हुए यदि बात टूटनेकी नौबत आ जाये तो भले टूटने देना। यदि सुधारकोसे भी धन इकट्ठा किया जा सके तो मन्दिर खडा करनेमे मुझे कोई बुराई नजर नही आती। ऐसा मन्दिर बने और धार्मिक रीतिसे मर्यादापूर्वक उसका सचालन हो तो वह एक बडा केन्द्र बन सकता है। मन्दिरका स्थान सुन्दर होना चाहिए और उसका सचालक अच्छा होना चाहिए। हमें कुछ आदर्श मन्दिरोकी आवश्यकता तो है ही।

१. जमनाबहन गांधीका छोटा पुत्र।

सरूपबहनने राजकोटकी भंगियोकी बस्तीका बुरा हाल लिखा है। क्या वास्तवमे उसका इतना बुरा हाल है? और नगरपालिका कुछ नही करती?

अपने स्वास्थ्यके बारेमे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४८) से; सौजन्य: नारणदास गाधी

३१९. पत्र: प्रेमाबहन कंटकको

२ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

आज सुबह एक पत्र[1] तो तुझे लिखा ही है। वह शायद इससे पहले ही मिल जायेगा। . . .[2] और . . .[3] के विषयमे तू जो लिखती है वह अर्ध-सत्य है। भूल सब करते है। उसका दु ख नही मानना चाहिए। परन्तु भूलको कोई छिपाकर रखे, भूल करनेवाले की अनिच्छा होते हुए भी वह प्रकट हो जाये और बादमे वह भूलका अनुचित बचाव करे, तब दु ख होना ही चाहिए। यदि न हो तो ऐसी घटनाओको रोकनेका उपाय ही हमे नही मिलेगा। अगर यह मान ले कि ऐसी घटनाएँ होती ही रहेगी, इसलिए उन्हे रोकनेका उपाय ही नही किया जाना चाहिए, तो समाजका नाश हो जायेगा। इसलिए उन्हे रोकनेके उपाय तो करने ही चाहिए। हृदयको आघात पहुँचनेपर ही वे उपाय किये जा सकते है। यह कहा जा सकता है कि जो मिथ्या दु ख करते है, क्रोध करते है वे ठीक नही करते। और मेरे खयालसे तू भी इतना ही कहना चाहती है। इससे अधिक कहना चाहती हो तो वह भूल है, इस बारेमे मुझे शका नही। दु ख, आघात आदि शब्दोके बजाय दूसरा कोई शब्द मिले, तो मै जरूर उसे स्वीकार कर लूँ। परन्तु तेरे पत्रमे कही-न-कही मोह छिपा हुआ है। मोह शब्दका उचित उपयोग हुआ है या नहीं, यह मै नही कह सकता। मेरा आशय तू समझ गई हो तो काफी है।

मुझसे जो भूल हुई है वह तो मैने मान ही ली है।

मै तुझसे सरलता, मृदुता, नम्रता, धीरज, सहनशीलता और उदारता की अपेक्षा करता हूँ। यह तो मुझे तब मिले जब तू आकाशसे नीचे उतरे। तू कुछ भी नही है, यह तू कब मानेगी? रोज धरती-माताकी वन्दना करना और रोज उसे लात मारना, यह क्या है? यदि सचमुच हमारी इस प्रार्थनामें सत्य हो तो हमें रजकण बन जाना चाहिए और दुनियाकी लात सहन करने लगना चाहिए। तब धरती-माताको हमारे चरणोका स्पर्श नही होगा, क्योकि तब हम जीते-जी राख बन गये होगे। 'दुईकी धूल उडाता जा।'

१. देखिए "पत्र: प्रेमाबहन कंटकको", २-४-१९३३।
२ व ३. नाम छोड दिये गये हैं।

तेरी पूनियाँ अभी चल रही है। उनमे गाँठें आईं यह तेरा दोष नही है। वह कुछ पीजनका दोष है और कुछ कपासका। अधिक धुननेसे रेशे कमजोर हो जाते है। दूसरी पूनियाँ बहुत बारीक सूत नहीं देती, परन्तु उनमें गाँठे कम है।

परचुरे शास्त्रीके लड़केको तूने हाथमे ले लिया, यह बहुत ठीक किया।

शान्तासे तूने ठीक कहा। अब उसे जो अच्छा लगे वही करे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३३) से। सी० डब्ल्यू० ६७७३ से भी, सौजन्य प्रेमाबहन कंटक

३२०. पत्र: नारायण मोरेश्वर खरेको

२ अप्रैल, १९३३

चि० पडितजी,

तुम्हारा पत्र मिला।

तुम्हारे पास आनेसे पहले यदि दत्तात्रेय मुझसे मिल जाये तो अच्छा होगा। वह कितना वेतन चाहता है? उसे किस-किस भाषाका ज्ञान है? सम्भवत हम उसे कोई काम दे सके।

उमेदरामने सगीतमें निपुणता प्राप्त कर ली है। उसके लिए जो बन सके, करो।

छारा लोग[1] है या चले गये? यदि है तो क्या अब भी कुछ [उत्पात] करते रहते है क्या?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २४५) से, सौजन्य . लक्ष्मीबहन ना० खरे

१. मध्य गुजरातकी एक जरायमपेशा जाति।

३२१. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

२ अप्रैल, १९३३

चि० परसराम,

राजभोजको[1] बराबर पढाते रहना। मेरीबहन और डकनभाईको तुम्हारे बिना अच्छा नही लगता, ऐसा कहा जा सकता है।

तुम्हारे मनमे जो भी हो, वह कितना भी निरर्थक या मूर्खतापूर्ण हो, मुझे लिखनेमे सकोच न करो। तुम्हारी तैयारी हो तो मैं तुमसे बहुत-सारा काम लेनेकी आशा करता हूँ। और इसके लिए तुम्हारे मनको पूरी तरह जाननेकी आवश्यकता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५१३) से। सी० डब्ल्यू० ४९९०से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

३२२. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

२ अप्रैल, १९३३

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला।

मैं आज्ञा नही दे सकता, मुझे वैसा करनेका अधिकार भी नही है। आप जितना करेगे मैं अन्तमे उतनेसे ही सन्तोष कर लूँगा। किन्तु मैं अपनी अर्जी तो आपके दरबारमे पहुँचाता ही रहूँगा। जिससे आप सहमत हैं [विधेयकका प्रारूप] वह मैं इसके साथ भेज रहा हूँ।[2] आपकी इच्छा अथवा अनुमतिके बिना आपके नामसे मैं कुछ भी प्रकाशित करनेवाला नही हूँ, और जो-कुछ भी करूँगा वह आपका गुण-गान करनेके लिए नही बल्कि हरिजनोकी सेवा करनेके विचारसे करूँगा।

नया मन्दिर बनवाकर उसे खोल देनेकी बात नही है बल्कि जो चार पुराने मन्दिर हैं उनमे से एकमे हरिजनोको प्रवेशकी छूट देनेकी बात है।[3] मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि यदि आप कर सके तो इतना करे। इसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि पाठशालाओ आदिके बारेमे भावनगरके दरबार किसी प्रकारका भेदभाव नही बरतते,

१. पी० एन० राजभोज, एक हरिजन नेता। वे कुछ समयके लिए आश्रममें रहनेके लिए गये थे; देखिए "पत्र: पी० एन० राजभोजको," ३०-३-१९३३।

२ व ३. देखिए "पत्र: प्रभाशंकर पट्टणीको", २३-३-१९३३।

यह बात भी राजपत्रमे प्रकाशित होनी चाहिए। इस प्रकारका कोई कानून तो आपकी रियासतमे है ही। यदि यह सिद्धान्त उसमे आ जाये तो इतना ही काफी होगा। इस पर उसी हदतक अमल किया जा सकता है जहाँतक जनता साथ देनेको तैयार हो। मै यह नही चाहता कि आप जोर-जबरदस्तीसे कुछ कराये। दरबारकी नीतिसे जनता को परिचित होना चाहिए और सो भी मौखिक रूपसे नही बल्कि कानूनी तौरपर। किन्तु मै सोनेका अण्डा देनेवाली मुर्गीको मारना नही चाहता क्योकि मुझे तो अण्डोसे कोई मतलब नही। मै दुधारू बकरीके दूधसे सन्तुष्ट हो जाऊँगा और यदि वह कभी सीग मारेगी तो उसे सहन कर लूँगा।

अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९२८) से। सी० डब्ल्यू० ३२४४ से भी; सौजन्य महेश प्र० पट्टणी

३२३. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

२ अप्रैल, १९३३

भाई हरिभाऊ,

तुमने जिस स्थितिका वर्णन किया है उसमे निश्चय ही प्रायोपवेशनके लिए स्थान है। किन्तु उसके लिए बहुत योग्यताकी आवश्यकता है। यदि इस तरहके हजार व्यक्ति भी मिल जाये तो काफी होगे। जो-कुछ भगवान् चाहेगा वही होगा।

गौरीशंकरके बारेमे तुमने जो लिखा है वह सही है। अपने बारेमे मुझे खबर देते रहना। तुम्हारे बिलकुल चंगे हो जानेपर ही यह कहा जा सकता है कि तुम्हे अनुभव प्राप्त हुआ। मोदी क्या कहते है? अभीतक मुझे उनका कोई समाचार नही मिला है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७७) से, सौजन्य हरिभाऊ उपाध्याय

३२४. पत्र : रामनारायण चौधरीको

२ अप्रैल, १९३३

भाई रामनारायण,

तुमारे खतका मैंने 'हरिजन-सेवक'[1] मे उपयोग किया है — देख लेना। दी० व० [दीवान बहादुर हरविलास शारदा] और तुमारे धनिकोके पास जा कर कुओके लिए दान लेना चाहिये — नकशा बनाना चाहिये और कहा-कहा कुओकी आवश्यकता है बताना चाहिये। कितने हरिजन है, वे क्या करते है इ० खबरका सग्रह प्रकट करना चाहिये। कुओका क्या खर्च होता है इ० खोज करो।

अजनादेवीको[2] आशीर्वाद।

बापुके आशीर्वाद

बापू — मैंने क्या देखा १ क्या समझा ?, पृ० ११२

३२५. पत्र : कमलकिशोर मेहरोत्राको

२ अप्रैल, १९३३

चि० कमलकिशोर उर्फे हनुमान[3],

तुमने परिचय अच्छा दिया। अब भी हनुमान रहो। हनुमान जब छोटे थे तो दोडमदोड़ करते थे लेकिन बड़े होकर उन्होने अपने ब्रह्मचर्यका तेज बताया और रामजीके श्रेष्ठ भक्त रहे यहा तक की जब रामजी की स्तुती होती है तब उनका नाम पहले लिया जाता है। ऐसे ही तुमारे बनना चाहिये और हनुमान नाम सुशोभित बनाना चाहिये। देखे क्या करता है।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ४९९२) से, सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा। जी० एन० ७५१५ से भी

१. देखिए "पानीसे भी वंचित", १४-४-१९३३।

२. रामनारायण चौधरीकी पत्नी।

३. परशुराम मेहरोत्राका ११ वर्षीय पुत्र जो प्रार्थनाके समय स्थान बदलता रहता था और इस प्रकार प्रार्थनामें बाधा डालता था।

३२६. पत्र : अमरनाथ टंडनको

२ अप्रैल, १९३३

भाई अमरनाथ,

अछूतोको उसी शर्तपर पुस्तक मिलने चाहिये जो दूसरोके लिए हो। उनके पास फी न ली जाय।

मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

पुस्तकालयकी वृद्धिके लिए धन्यवाद।

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २२९) से।

३२७. पत्र : अमतुस्सलामको

२ अप्रैल, १९३३

प्यारी बेटी अमतुस्सलाम,

तुम्हारा खत मिला। मैं ठीक लिखता हूँ। अब तुम्हारे डाक्टर शर्माके उपचार पर भरोसा रखकर रहना। खुदाको जो करना होगा वह करेगा। हजारो रुपया खर्चनेवाले भी सब तो अच्छे नही होते हैं। इसलिए जिसपर हमारा एतबार जमा है उसपर कायम रहे। डाक्टरका लडका अच्छा हो गया होगा। दिल चाहे तब आश्रम जा सकते हैं।

बापूकी दुआ

[पुनश्च·]

तुमको पता है अमीना दुबली होनेके लिए फाका कर रही है? पुरुषोत्तम इलाज करता है।

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २८१) से।

३२८. पत्र : पी० आर० लेलेको

३ अप्रैल, १९३३

प्रिय लेले,

आपका पत्र[1] मिला। उसके लिए आपको धन्यवाद। मैं तो यह चाहता हूँ कि आप सप्ताह-भरकी प्रवृत्तियोंका विवरण मुझे भेज दें और उसे प्रकाशित करने या न करनेकी बात मुझपर छोड़ दें। मैं 'हरिजन' को एक ऐसा पत्र बनाना चाहता हूँ जिसमें अन्य बातोंके साथ-साथ, विभिन्न संस्थाओंके ठोस कामका एक सच्चा विवरण रहे। मैं जानता हूँ कि आप मेरी बातका ठीक-ठीक अर्थ समझते हैं। हम कामका दिखावा नहीं करना चाहते और यदि कोई ठोस काम न हो सके तो हमें विनम्रताके साथ वैसा स्वीकार करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
मार्फत — हरिजन सेवक संघ
जहाँगीर वाडिया बिल्डिंग
एस्प्लेनेड रोड, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८१८) से।

३२९. पत्र : बाजी कृष्ण रावको[2]

३ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपकी घोषणा पढ़कर दुःख हुआ, लेकिन मुझे कहना पड़ेगा कि आपका उपवास नितान्त अनावश्यक और अज्ञानपूर्ण था। यही आशा करता हूँ कि उसके फलस्वरूप आप शारीरिक रूपसे बहुत दुर्बल नहीं हुए होंगे।

१. पी० आर० लेलेने अपने १-४-१९३३ के पत्रमें पूछा था कि क्या साप्ताहिक विवरणोंके बजाय मासिक विवरण भेजना ठीक रहेगा (एस० एन० २०७९८)।

२. बाजी कृष्ण राव एक सामाजिक कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने अपने १-४-१९३३ के पत्रमें गांधीजी को सूचित किया था कि वे चुनावमें दलितवर्गके नेता देवरुखकरकी हारके प्रायश्चित्त स्वरूप १ से ३ अप्रैल, तक उपवास करेंगे।

आपके उपवासकी तरह अविवेकपूर्ण ढगसे सकल्पित उपवाससे कोई आध्यात्मिक लाभ तो हो ही नही सकता। निश्चय ही, आपके पास ऐसे कोई भी तथ्य नही थे, जिनके आधारपर आप यह निष्कर्ष निकाल ले कि श्रीयुत देवरुखकरकी पराजय सवर्ण हिन्दुओ द्वारा किये गये पापके कारण ही हुई थी। मै उनकी पराजयके कारण नही जानता, लेकिन मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपको भी उनकी जानकारी नही हो सकती। और फिर आप बिलकुल यह क्यो मान बैठे है कि चुनावमे खडे होनेवाले हर योग्य और अयोग्य हरिजन उम्मीदवार को जीतना ही चाहिए। खुले चुनावोमे यदि कोई हरिजन उम्मीदवार भी खडा हो तो सवर्ण हिन्दुओको हर बार उसीको चुनना चाहिए—ऐसी अपेक्षा करना तो सवर्ण हिन्दुओके लिए एक अत्यन्त ही कठिन कसौटी रखना होगा। इसलिए मेरी रायमें तो आपके लिए जरूरी यह है कि आप अपने किये उस अनौचित्यपूर्ण प्रायश्चित्तके लिए अब एक सच्चा प्रायश्चित्त करे और वह यह कि आप कभी भी कोई भी कार्य अविवेकपूर्ण ढगसे न करनेका सकल्प कर ले।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बाजी कृष्ण राव
फर्स्ट चेतमी बाजार
सिकन्दराबाद, दकन

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८१९) से।

३३०. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

३ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र मिला और मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आखिर तुम आश्रम मे आ रहे हो। अपने बच्चेको अवश्य लाना और मुझे प्रसन्नता होगी यदि आश्रम तुम दोनोको अनुकूल सिद्ध होगा।

नारणदासने मुझे सूचना दी है कि प्रमुख रोगी आश्रमसे अभी-अभी चले गये है। मुझे इसकी कुछ परवाह नही है। तुम्हारे लिए वहाँ प्राकृतिक चिकित्साकी दृष्टिसे देखने-भालने और परखनेके लिए बहुत-सी चीजे है। और कब्जकी तो वहाँ आम शिकायत है जिसपर तुम्हे ध्यान देना होगा।

मुझे प्रसन्नता है कि तुमने अम्तुस्सलामका वह वहम निकाल दिया है कि उसको क्षयरोग है। उसकी कल्पनाशक्ति बडी तीव्र है और जहाँ डरकी कोई बात नही होती वहाँ उसे अनिष्ट दिखने लगता है।

आश्रममे तुम्हारी उपस्थितिसे मैं केवल इन गिने-चुने रोगियोका इलाज ही नही, कुछ और भी चाहता हूँ। मै स्वय प्राकृतिक चिकित्सामें दृढ विश्वास रखता

हूँ। अत मैं तुममे अनुसन्धानकी अनन्य निष्ठा रखनेवाला एक समानधर्मी साथी पाना चाहूँगा। और यदि मुझे ऐसा साथी मिल जाये जिसमे इन गुणोके साथ-साथ आश्रमके उद्देश्योमे विश्वास भी हो तो मै बड़ी बात समझूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम भी इसी विचारसे आश्रम आ रहे हो। अतएव आश्रममे घर की ही तरह बिलकुल आश्वस्त भावसे रहना और बारीकीसे निरीक्षण करना। मेरा तो विश्वास है कि प्राकृतिक चिकित्सा जाननेवाले को जलवायुकी बाधाओपर विजय पा सकनी चाहिए। अगर हर तरहके जलवायुको अपने अनुकूल बनानेका रहस्य समझ लिया जाये तो लाखो आदमी किसी भी जलवायुमे रहते हुए स्वस्थ जीवन बिता सकते है। उनको स्थान-परिवर्तनके वे साधन तो प्राप्त नही हो सकते जो धनिकोको प्राप्त होते है। और मै ऐसी कल्पना नही कर सकता कि प्रकृति इतनी निर्दय हो सकती है कि धनिकोका पक्ष ले और निर्धनोकी उपेक्षा करे। इसके विपरीत मुझे तो 'बाइबिल'की इस कहावतमे विश्वास है कि 'एक ऊँट सुईके नकुएमे से निकल सकता है परन्तु धनवानको स्वर्गमें प्रवेश नही मिल सकता।' 'बाइबिल'का एक और वाक्य है कि 'स्वर्ग हमारे अन्दर ही है।' इसलिए मेरा तो सदैव यही विचार रहा है कि प्रकृतिके नियम सरल, सीधे-साधे और इस योग्य होते है कि सामान्य जन उनका अनुसरण आसानीसे कर सके।

अतएव मैं तुमसे कहूँगा कि तुम साधारण भारतीय जलवायुमे स्वास्थ्य बनाये रखने और खोये हुए स्वास्थ्यको पुन प्राप्त करनेके साधनोकी खोज करनेके निश्चित उद्देश्यसे आश्रममे जाओ।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ २२-३

३३१. पत्र : नारणदास गांधीको

३ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

सुबहकी डाक चली गई, उसके बाद तुम्हारा पत्र मिला।

डाक्टर शर्माको मैंने जो पत्र लिखा है उसकी नकल इसके साथ भेज रहा हूँ। उससे तुम्हे मेरे विचार मालूम हो जायेगे। इसी पत्रमे तुम्हे अपने प्रश्नोका जवाब भी मिल जायेगा। इसलिए ज्यादा नही लिखता। परचुरे शास्त्रीके बारेमे तुमने ठीक प्रश्न पूछा। उनमे और रावजीभाईमे भेद यह है कि परचुरे शास्त्री आश्रमके ही व्यक्ति है। वे आश्रममे ही रहनेके लिए आये थे। कमसे-कम तीन वर्षतक रहनेवाले थे। किन्तु उन्हे कारणवश जाना पडा। इसलिए मुझे ऐसा लगा कि उन्हे रखना

हमारा कर्तव्य है। रावजीभाई-जैसे तो अनेक लोग आश्रममें रहना चाहेंगे। किन्तु इन सबको हम नही रख सकते। यदि आश्रममे केवल हम और तुम होते तो हम मनचाहे खेल कर सकते थे।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३४८ से भी, सौजन्य नारणदास गांधी

३३२. पत्र : बेगम मुहम्मद आलमको[1]

३ अप्रैल, १९३३

प्यारी बहन,

आपका खत मिला। मैं लम्बा खत तो नही लिख सकता। डाक्टर साहबको बहुत काम करनेसे रोकियो।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२)से।

३३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

३/४ अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपके दो पत्र मिले। 'हरिजन सेवक' की प्रगतिपर मेरी नजर है। निश्चय ही उसमें धीरे-धीरे सुधार हो रहा है। लेखोंके बारेमे चुनाव तो करना ही पड़ेगा —मेरे लेखोंके बारेमे भी। मैं अंग्रेजी 'हरिजन' के लिए जितना लिखता हूँ, वह सब तो हिन्दी संस्करणके उपयुक्त नही होगा; और मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि हिन्दी संस्करणमे जितना भी दिया जाये उसमे हिन्दीपन हो, वह मक्खी पर-मक्खी बैठाने जैसा शाब्दिक अनुवाद न हो। मैं आपकी बातोका ध्यान रखूंगा और यहाँसे अनुवाद नही भेजूंगा। मैं सचमुच चाहता हूँ कि वियोगी हरि यह काम करे। फिलहाल वे इतना सब कर नही पा रहे थे इसलिए मैंने काशिनाथ और रामदास गौड़के पास लेख भेजनेके बजाय यही अनुवाद शुरू कर दिया था। मैं आपकी इस

१. लाहौरके डॉ० शेख मोहम्मद आलमकी पत्नी।

बातसे भी बिलकुल सहमत हूँ कि संस्कृत और अन्य साहित्यसे कुछ कथाएँ दी जानी चाहिए और कविताएँ भी बशर्ते कि वे मौलिक और उच्चकोटिकी हो। मुझे पूरी तसल्ली रहेगी, अगर आप, जैसा कि इधर कुछ दिनोसे कर रहे है, हर हफ्ते 'हरिजन सेवक' पर नजर डालते रहे।

अब मेरी समझमे आ गया कि कोष आपको हस्तान्तरित करनेके सिलसिलेमें क्या किया जाना चाहिए। छापेखानेमे जितना रुपया-पैसा मौजूद है, उसके अतिरिक्त आज मुझे पाँच-सौ रुपयेकी रकमका एक गुमनाम दान मिला है, जिसका उपयोग मेरे ऊपर छोड दिया गया है।[1] वह भी मै दानकी शर्तके मुताबिक काममे लानेके लिए बोर्डको हस्तान्तरित कर रहा हूँ।

मुझे खुशी है कि आपने अब ऑपरेशन करानेका पक्का फैसला कर लिया है। जब आप मुझे उसकी निश्चित तिथि लिखेगे तब मुझे और ज्यादा खुशी होगी।

बगालमे चल रहे विवादके बारेमे आपने जो लिखा, मै समझता हूँ।

आपने परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयके लिए 'हरिजन' की एक प्रति बगाल सचिवालयको भेजनेके लिए मुझे लिखा है। इसमे मुझे बडा सकोच हो रहा है। क्योकि मै उनको व्यक्तिगत तौरपर नही जानता। इसलिए यदि मै उनको एक प्रति भेजता हूँ, तो फिर सभी सचिवालयोको भेजनी चाहिए। परन्तु ऐसा तो आप चाहते नही और मुझे लगता है कि ऐसा जरूरी भी नही है। मेरा खयाल है, मैने आपको बतलाया था कि लॉर्ड रीडिग और लेडी रीडिग विशेष तौर पर 'यग इडिया' के ग्राहक बने हुए थे। ये बडे-बडे अफसर अपनी जरूरते बतलानेमे कोई सकोच नही करते और इसलिए जबतक वे खुद न कहे, अपनी ओरसे यह मानकर कि उनको इसकी जरूरत होगी ही, उनको इसकी प्रतियाँ भेजना अनावश्यक उत्साह दिखाने-जैसा लगेगा। पर आप तो बगालके गवर्नरको जानते है और फिर 'हरिजन' केन्द्रीय बोर्डकी देख-रेखमे प्रकाशित हो रहा है। इसलिए यह सर्वथा उपयुक्त होगा कि आप स्वय ही अध्यक्षकी हैसियतसे अपने परिचित बडे-बडे लोगोको एक-एक प्रति भेज दिया करे।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०८१४) से।

१. दाता थे डॉ० बहरामजी खम्भाता।

३३४. पत्र : प्रेमनाथ भार्गवको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय प्रेमनाथ,

आपके २७ फरवरीके पत्रकी एक प्रति मुझे मिली। मैं जो रास्ता सुझाऊँगा वह यह कि आप अपने दृष्टिकोणमे काफी बडा परिवर्तन कीजिए।[1] मैं यही चाहूँगा कि आप मरे ढोरोके निबटारेके सम्बन्धमे 'हरिजन'मे प्रकाशित मेरे लेखमें[2] बतलाई गई सभी अपेक्षाएँ पूरी करे। आपने यदि उसे न पढा हो तो एक प्रति कहीसे लेकर पढ जाइए। उससे आपको पूरे कामकी प्रारम्भिक जानकारी मिल जायेगी। आपको काम वही शुरू कर देना होगा जहाँ मरा हुआ ढोर मिले और उसके सम्बन्धमे प्रारम्भिक क्रियाएँ बडे कारखानेमे नही, पासके ही गाँवमें इस पूरी जानकारीके साथ की जानी चाहिए कि मरे ढोरके अलग-अलग अवयवोका क्या करना है और वह कैसे करना है। इतना कर लेनेके बाद दूसरा कदम होगा उसके चमडेको अपने कब्जेमे लेना। उस चमडेकी प्रारम्भिक सफाईका काम तो तब हो ही चुका होगा। लेकिन इस कार्यक्रमके लिए आपके पास तैयारी नही है। यदि है, तो आप निश्चय ही मेरे कार्यकर्ता बन सकेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्रेमनाथ भार्गव
बाग रामसहाय
आगरा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२४)से।

१. प्रेमनाथ भार्गवकी योजना यह थी कि कारखानेका एक आदमी तैनात कर दिया जाये, जो मरा हुआ ढोर मिलनेपर उसी स्थानपर चमड़ा निकालने और उसकी सफाईका काम शुरू कर दे फिर उसे चर्मालयमें पूरी तरहसे पकाया जाये।

२. देखिए "मरे ढोरोंका निबटारा" ११-३-१९३३।

३३५. पत्र : पी० एच० गद्रेको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका सकलन[1] मै पढ गया हूँ। आपने उसपर काफी मेहनत की है और वहुत अच्छे ढगसे की है।

साराका-सारा चुनाव वहुत अच्छा है, पर मैंने कुछ पदोको छोड दिया है। हालाँकि वे अपने-आपमें वडे सुन्दर हैं, पर समस्यासे सीधे सम्वन्धित नही है।

अव मै चाहता हूँ कि आपको यदि ज्ञानदेव और महाराष्ट्रके अन्य सन्तोके इसी प्रकारके पद मिल सके तो आप उनका भी सकलन कर दे।

नासिकके मेहतरो और महारोके वारेमे भी यथासमय जानकारी मिलनेकी मै प्रतीक्षा करूँगा।

हृदयसे आपका,

गद्रे

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२५) से।

३३६. पत्र : गिरधारीलालको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

आपका पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप फिर प्रगतिके पथ पर हैं।

मेरा खयाल है, डॉ० अग्रवालको अनुमति नही मिलेगी।[2] यदि मिल जाये, तो मुझे भरोसा है कि सरदार उनको समय देनेके लिए तैयार हो जायेंगे, मै भी हो जाऊँगा। लेकिन यदि वे अनुमतिके लिए लिखते भी है, तो उनको हम लोगोके नाम इस्तेमाल नही करने चाहिए। यदि मैं अपनेमे साहस वटोर पाया तो मै स्वय ही अनुमति माँग लूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२३) से।

१. यह अस्पृश्यतासे सम्बन्धित तुकारामकी कविताओंका एक सकलन था। इसका संक्षिप्त रूप हरिजनमें ८-४-१९३३ को प्रकाशित किया गया था; देखिए "तुकाराम और अस्पृश्यता", ८-४-१९३३।

२. गांधीजी का चश्मा छुड़वानेके लिए आँखोंका व्यायाम सिखानेको जेलमें उनसे मुलाकातकी अनुमति

३३७. पत्र : डी० जी० कालेको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पोस्टकार्ड मिला, जिसमे आपने वामन पंडितका एक पद उद्धृत किया है। उसमे 'हरिजन' शब्दका प्रयोग जिस प्रकार हुआ है उसका अर्थ निश्चित रूपसे 'अस्पृश्य' ही हो, ऐसा नही है। यदि हो, तो आपको उसके साथवाला भी भेजना चाहिए, या फिर ऐसा अन्य प्रमाण भेजिए जिसके आधारपर आपने उस उद्धृत पदमे प्रयुक्त 'हरिजन' शब्दका अर्थ 'अस्पृश्य' लगाया है।

हृदयसे आपका,

काले
असोद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२८) से।

३३८. पत्र : पी० आर० लेलेको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय लेले,

एक बंगला समाचार-पत्रमे[1] निम्न उद्धरण प्रकाशित हुआ है

> हमें मालूम है कि बम्बईके एक प्रसिद्ध मन्दिरमें हरिजनोंको प्रवेशका अधिकार मिल जानेसे अब कोई भी ब्राह्मण उसमें नहीं जाता; मात्र सुधारकों को मूर्ति-पूजाका कोई चाव नहीं है। फलस्वरूप यह मन्दिर अब परित्यक्त पड़ा है। . . .

क्या आपको ऐसे किसी मन्दिरके बारेमें जानकारी है? यदि न हो तो आपसे बने तो कृपया पता लगाकर बतलाइए कि इस कथनमे कितनी सचाई है। यदि कथनकी सचाई सिद्ध हो सके तो मुझे मन्दिरका नाम भी बतलानेकी कृपा करे।[2]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२७)से।

१. प्रवर्तक।
२. देखिए "पत्र: मोतीलाल रायको", ४-४-१९३३।

३३९. पत्र : नी० को

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारे दो पत्र मिले। देखता हूँ कि तुम्हारा सघर्ष अब भी चल रहा है। जबतक तुम इस द्वन्द्वसे बिना किसी क्षतिके उबर जाती हो, मुझे उसकी परवाह नही है। आशा है, मेरा वह पत्र तुम्हे मिल गया होगा जो तुम्हारे नये पतेपर भेजा था। उसमे मैंने तुम्हे दो चेतावनियाँ दी थी। आशा है, तुमने उन्हे अपने मनमे बैठा लिया होगा। तुम्हारे छोटे-मोटे खर्च कौन चलाता है? उदाहरणके लिए, डाक-टिकटोका खर्च, कागज-स्याहीका खर्च और यदा-कदा तारका भी। तुम मुझे अपने जीवनके जितने ब्योरे बताओ उतना ही अच्छा। इन असख्य ब्योरोमे से सत्यकी झाँकी मिलती है, जबकि मोटे तौरपर पूरी तसवीर पेश करके हम खुद अपनेसे और देखनेवालो से भी सत्यको छिपा सकते है। मतलब यह कि जो असत्य है उसे सामान्य कथनकी आडमे छिपाया जा सकता है। यदि मै सामान्य रूपसे यह कह दूँ कि 'मै ठीक हूँ' तो यह सत्य तो होगा ही, किन्तु इसमे एक असत्य निहित है — यह कि मैंने अपनी कोहनीकी खराबीके बारेमे नही बताया। यह तथ्य तो तभी प्रकट होगा, जब कोई मुझसे बारीकीसे पूछताछ करेगा। हाँ, अगर मै यह कह दूँ कि कोहनीकी खराबीके अलावा और तरहसे मै ठीक ही हूँ, तो यह बात और होगी। सबसे प्राचीन तथा सरल और मेरे खयालसे जो सबसे छोटा भी है, उस उपनिषद्मे एक बहुत ही तत्त्वपूर्ण अश है। उसका अनुवाद है 'सत्यके मुखमण्डल पर एक स्वर्णावरण चढा हुआ है।' अन्तमे साधक प्रार्थना करता है, 'प्रभो! इस आवरणको हटाओ ताकि मै यथार्थमे सत्यके दर्शन कर सकूँ।'[1] अब तुम समझ गई होगी कि स्वर्णावरणसे मेरा तात्पर्य क्या है।

आशा है, तुम और सि० शरीर और मन दोनोसे स्वस्थ होगे।

तुम्हारा पूरा पता क्या 'चीतलदुर्ग' ही है?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३१)से।

१. ईशोपनिषद्, १५।

३४०. पत्र : जे० नरसिंहम्‌को

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र तथा साथमें भेजे अपने सेवा-सदनके संक्षिप्त वृत्तान्तके लिए धन्यवाद। मैं देखूँगा कि उसका क्या किया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जे० नरसिंहम्
मछलीपट्टम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३२)से।

३४१. पत्र : पी० एन० राजभोजको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय राजभोज,

तुम्हारे आश्रम पहुँचनेकी खबर मिलते ही मैंने तुमको पत्र[1] लिखा था। आशा है, वह मिल गया होगा। अब मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है। उम्मीद है कि कुछ ही दिनोंमें तुम मुझे हिन्दीमें पत्र लिखने लगोगे क्योंकि मराठी. हिन्दी और गुजरातीमें कोई बड़ा अन्तर नहीं है। ये सब भगिनी भाषाएँ हैं; इनका शब्द-भण्डार अधिकांशतः एक-सा ही है और इनके व्याकरणकी समानता भी आसानीसे दिख जाती है।

तुम अभी कुछ देनेके प्रलोभनमें मत पड़ो। मैं कहूँगा कि जल्दबाजीसे काम न लो। तुम आश्रममें ग्रहण करने गये हो, इसलिए आश्रमके पास तुमको देनेके लिए जितना कुछ है उसे शान्तचित्त होकर लगातार ग्रहण करते, अपनाते जाओ और यह कर चुकनेके बाद, निस्सन्देह तुम आश्रमको अपनी ओरसे देना शुरू करो। इस तरह चलनेपर तुम देखोगे कि तुम अपनी आशासे कहीं अधिक ग्रहण कर सकते हो। फिलहाल अपना योग देना और आश्रमके जीवनसे कुछ ग्रहण करना — ये दोनों काम एक साथ मत करो. बल्कि ऐसा विश्वास लेकर चलो कि उचित ढंगसे ग्रहण करनेके प्रक्रममें तुम अचेतन रूपसे आश्रममें कुछ अपना योग दिये बिना रह ही नहीं सकते। मेरी तो उत्कट इच्छा यही है कि कमसे-कम अभी कुछ समयके लिए तुम अपने आपको आश्रममें गर्क कर दो और जब तुम आश्रमके वातावरण और दृष्टिकोणको या तो भलीभाँति अपनेमें समाहित कर लो, उसे पचा लो या फिर उसे अनुपयुक्त या अपाच्य मानकर ग्रहण करनेसे इनकार ही कर दो, तब इसके बाद ही अगली मंजिल

१. देखिए "पत्र : पी० एन० राजभोजको", ३०-३-१९३३।

की ओर कदम रखो। और इधर आश्रमवासके कालमे तुम अपने सभी कार्योमे निश्चित तौर पर नारणदाससे मार्ग-दर्शन हासिल करते रहो — यही मै चाहूँगा। मै तो समझता हूँ कि किसी भी सस्थासे अधिकसे-अधिक ग्रहण करने, सीखनेका यही सबसे अच्छा तरीका है।

डॉ० अम्बेडकरके बयानके तुम्हारे उत्तरका असशोधित मसौदा मैंने पढ लिया था। उसमे कोई अधिक सार नही था और उसे प्रकाशित तो मै किसी भी हालतमे न करता, क्योकि 'हरिजन' मे डॉ० अम्बेडकरका बयान तो प्रकाशित हुआ नही था। मसौदा इतनी सरसरी तौर पर तैयार किया गया था कि मुझे सूझा ही नही कि तुम उसे वापस माँगोगे। मेरा खयाल है कि मैंने पढनेके बाद उसे नष्ट कर दिया था।

सिन्धके बारेमे तुमने जो लिखा, उसपर मुझे आश्चर्य हुआ, क्योकि वहाँ बडे कर्मठ कार्यकर्ता मौजूद है। अकेले जमशेद मेहता ही कईके बराबर है। नारायणदास बेचरने अपना सारा जीवन हरिजन कार्यके लिए अर्पित कर दिया है और अनेक अन्य कार्यकर्ता भी है। अन्य सभी स्थानोकी अपेक्षा, कराचीमे हरिजनोके पास रहनेके लिए ज्यादा अच्छे मकान है और उनको अधिक सुविधाएँ भी प्राप्त है। हाँ, सुधारकी गुजाइश तो है, लेकिन वह तो हमेशा ही रहेगी। फिर भी यदि तुम कुछ ठोस सुझाव रखो तो मै उनको जमशेद महेताके पास भेज दूँगा। तुम्हे शुरूमें कुछ सिर-दर्द रहता था, आशा है, अब तुम्हे उससे पूरी तरह छुटकारा मिल गया होगा।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९१) से। एस० एन० २०८२६ से भी

३४२. पत्र : मोतीलाल रायको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

मै 'सनातनी' के १२ मार्चके अककी एक कतरन साथमे भेज रहा हूँ। पता नही, इस कतरनमे व्यक्त किये गये विचार आपके विचारोका प्रतिनिधित्व करते है या नही। यदि करते हो, तो वे मेरे विचारोके कितने ही विरुद्ध क्यो न पड़ते हो, आप उनको निर्भयतापूर्वक व्यक्त करनेके लिए बाध्य है। मै भली-भाँति समझता हूँ कि एक-दूसरेके प्रति आदरकी भावना रखनेका अर्थ कदापि यह नही होता कि हमारे विचार भी सदा एक-दूसरेसे मिलते ही हो। इसलिए यदि मुझे पता चले कि आपके विचार मेरे विचारोसे भिन्न है, तो इससे मेरे मनमे आपके प्रति मौजूद आदरकी भावनामे कोई अन्तर नही पडेगा। हम दोनोको परस्पर जोडनेवाली कड़ी तो हर कीमतपर सत्यकी सतत साधना, उसकी खोज है।

क्या आप जानते है कि बम्बईके किस मन्दिरसे तात्पर्य है?[1] मैं जाँच करना चाहूँगा। मै जानता हूँ कि उपवासके दौरान अनेक मन्दिरोके कपाट हरिजनोके लिए

१. देखिए "पत्र : पी० आर० लेलेको", ४-४-१९३३।

खोल दिये गये थे, लेकिन फिर उनको बन्द कर दिया गया है, लेकिन मुझे बम्बई या अन्य किसी भी स्थानके ऐसे किसी भी मन्दिरकी जानकारी नही जिसे हरिजन-प्रवेशके कारण ब्राह्मणोने त्याग दिया हो। हाँ, ऐसी धमकियाँ अवश्य दी गई थी, पर उनपर अमल नही हुआ था, कुछ व्यक्तियोने कही व्यक्तिगत रूपमें अमल किया हो, तो किया हो। कमसे-कम मुझे तो यही मालूम है लेकिन हमें तो बस यह जान लेना है कि सचाई क्या है और तदनुसार काम करना है। इसलिए मन्दिरका नाम मालूम हो जानेपर मैं अधिक विस्तारसे छानबीन करना चाहूँगा। फिलहाल तो स्थिति यह है कि मैंने बम्बई बोर्डके मन्त्रीसे पूछा है कि क्या बगला 'प्रवर्तक'के लेखमे उल्लिखित ऐसे किसी मन्दिरकी उनको कोई जानकारी है।

दूसरे भी कुछ कथन है जिन पर शका की जा सकती है, लेकिन उनको अपनी-अपनी रायकी बात माना जा सकता है। इसलिए मैंने उनके बारेमें अपनी राय व्यक्त नही की। हाँ आपका ध्यान आकर्षित करनेके लिए मैंने उन अशोको रेखाकित कर दिया है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२९) से।

३४३. पत्र : नारणदास गांधीको

४ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

आज सवेरे तुम्हे जो डाक मैंने भेजी है वह कुछ ज्यादा थी। उसकी तुलनामें यह कुछ कम है। सवेरे इसलिए भेजी कि वे पत्र जरूरी थे।

तुमने धनवती राकाका पत्र भेजनेकी बात लिखी है, लेकिन यह पत्र मुझे मिला नही है।

नरहरिका पत्र वापस भेज रहा हूँ।

मेहमानोके बारेमे मेरी दृष्टि यह है। मेहमानोके सम्बन्धमे आश्रमके नियमोकी नकल उन्हे दे दी गई हो तब भी उन्हे जिम्मेदार आश्रमवासियोके पास ही बिठाना चाहिए। उसकी थाली साफ करनेके लिए उसके पास बैठे हुए इस आश्रमवासीको ले लेनी चाहिए और उसके बैठनेकी जगह भी उक्त आश्रमवासीको ही साफ कर देनी चाहिए। मेहमान जब ये दोनो काम स्वय करने लगे तभी ये उसे सौंपे जाने चाहिए। भोजनके सम्बन्धमे इस पडोसीको ही उसे पहलेसे यह समझा देना चाहिए कि आश्रमके सामान्य भोजनमे भात नही है। विशेष भोजनमे भात दिया जाता है और उसकी इच्छा हो तो वह उसकी माँग कर सकता है। यदि भात लेनेवाला कोई एक ही हो तो पूछनेकी जरूरत नही रह जाती। ज्यो ही कोई मेहमान आये त्यो ही उससे उसकी विशेष जरूरते जान लेनी चाहिए और उनमे से जिन्हे पूरा किया जा सकता हो उन्हे पूरा करना चाहिए।

साग-भाजीमे आलू और रतालूको बहुत ही कम स्थान दिया जाना चाहिए। मै तो उन्हे रोटी और भातकी जगह देना चाहूँगा। उनमें मुख्यत स्टार्च ही होता है। सागमे स्टार्च-रहित हरी भाजियोकी ही गिनती होनी चाहिए। यदि लोग राजी हो तो भात मै केवल बीमारोके लिए ही रखूँ। दालका प्रमाण बहुत कम होना चाहिए। भातकी बिलकुल जरूरत नही है। जिसे दूध मिलता है उसे दाल जितनी कम दी जाये उतना अच्छा। हमारे भोजनमें स्टार्चकी मात्रा नि सन्देह अधिक है। शरीरको स्टार्चकी जरूरत कम है, यह दिनोदिन सिद्ध होता जा रहा है। किन्तु ये सुधार जबरदस्ती नही कराये जा सकते और इसके सिवा जब वे कराये जाये तो उनके परिणामोपर हमारा ध्यान अवश्य होना चाहिए।

नाश्तेमे कोई बाजारकी चीज आये, यह तो बिलकुल असह्य है। किन्तु इसके लिए आश्रममे बसे हुए कुटम्बोके सहयोगकी आवश्यकता है। बाजारमे ये चीजे किस तरह तैयार की जाती है, इसे यदि वे स्वय जाकर देख आये तो फिर वे उन्हे खानेकी इच्छा नही करेगे।

बालकोको आग्रहपूर्वक आठ घटे सुलाना चाहिए।

मै मानता हूँ कि सजा देनेके लिए किसीका खाना बन्द नही किया जाना चाहिए, यद्यपि मैने स्वय इस किस्मकी सजा देनेका अपराध किया है। मेरा यह विश्वास भी अधिकाधिक दृढ होता जा रहा है कि शारीरिक दण्ड भी नही दिया जाना चाहिए। मुझे इसमे कोई शका नही है कि सजा देनेकी आवश्यकता हमारी ही न्यूनता सूचित करती है। हमे सजाके बिना ही शिक्षा दे सकनेकी कला हस्तगत करनी चाहिए। और वह तो हमारे हाथ तभी आ सकती है जब हम आवश्यकता होनेपर भी सजा देनेसे बचे।

कोश-सम्बन्धी सुझाव तुरन्त कार्यान्वित करने योग्य है। कोश केवल वाचनालयमे ही नही दफ्तरमे भी होना चाहिए। आश्रममे प्रत्येक व्यक्तिको उसका उपयोग करनेकी आदत डालनी चाहिए। इसमे थोड़ा खर्च तो होगा। किन्तु वह करने योग्य है।

बापू

[पुनश्च]

नारणदास,

टाइटससे कहना कि उसके पत्रका उत्तर मै बादमे दूँगा।[1]

धीरूके[2] विषयमे क्या निर्णय हुआ, इसकी सूचना मिलना बाकी है।

बहनोके सम्बन्धमे मेरा सुझाव कायम है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४९ से भी, सौजन्य नारणदास गाधी

१. देखिए "पत्र: टी० टाइटसको", ४-४-१९३३।

२. उसे शान्तिनिकेतन जानेकी इजाजत देनेके सम्बन्धमें; देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", २९-३-१९३३।

३४४. पत्र : नानालाल के० जसानीको

४ अप्रैल, १९३३

भाई नानालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मगनलालको मै भी तार दूंगा। किन्तु वह जो करे सो ठीक। भाई प्रभाशकरने मुझे पत्र लिखा है। उसमे प्रत्युत्तर देने-जैसा कुछ नही है। तुम उनसे अवश्य मिलते रहना। मुझे तो जो उचित जान पडा सो मैंने कह दिया। छगनलालका पत्र भी मुझे मिला है। वह बँटवारेसे सहमत है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६३०)से।

३४५. पत्र : मणिबहन पटेलको

४ अप्रैल, १९३३

चि० मणि,

पत्रोकी तेरी शिकायत समझमे नही आती। तुझे पत्र नियमित रूपसे लिखे ही जाते है। क्यो नही मिलते इसकी अब जाँच हो रही है। पिताजी लिखते थे इसलिए मै लिखे बिना काम चला लेता था। परन्तु कुछ-न-कुछ तो नीचे लिखाता ही था। सम्भव है किसी समय यह भी न हुआ हो। इसलिए कुछ पता नही चलता। हममे से कोई तुझे पत्र न लिखे तो तुझे दु:खी होनेका जरूर अधिकार है और गुस्सा भी आयेगा। परन्तु तुझे यह मान ही लेना चाहिए कि कुछ भी कारण हो तो भी यह नही हो सकता कि तुझे पत्र न लिखा जाये। कोई आकस्मिक बात हो गई होगी, यह सबसे सीधा अनुमान है।

यहाँ सब मजेमे है। पिताजी की संस्कृत की पढाई फिर शुरू हो गई है। यह तो नही कहूँगा कि धडल्लेसे चल रही है, मगर काफी अच्छी चल रही है। जितना सीखा उतना तो याद रखनेका सतत प्रयत्न करते है। डाह्याभाई लगभग हर सप्ताह मिल जाते है।

मेरे हाथका तो जैसा था वैसा ही हाल है। परन्तु कोई बाधा नही पड़ती है। महादेवका स्वास्थ्य अच्छा है। छगनलाल जोशीका भी अच्छा है। तुझे अच्छी पूनियाँ चाहिए तो यहाँसे भेजी जा सकती है। बहुत आती रहती है। तेरे विषयमे समाचार मृदुलाकी तरफसे मिले थे। कमलादेवीकी तरफसे भी और लीलावतीकी तरफसे भी। मालूम होता है सभीपर तूने अच्छी छाप डाली है। बा और मीराबहन मजेमें हैं। मीराबहन हर हफ्ते पत्र लिखती है। काकासाहब आजकल यही है और

हरिजन-पत्रोके काममे सहायता देते है। पत्रोके गुजराती, बगला और हिन्दी सस्करण निकल रहे है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो-४: मणिबहेन पटेलने, पृष्ठ ९८-९

३४६. पत्र : करसनदास विट्ठलदासको

४ अप्रैल, १९३३

भाई करसनदास,

आपने जो अध्याय भेजे, वे बहुत अच्छे है। उपयोग करनेके बाद मै उन्हे वापस भेज दूंगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री करसनदास विट्ठलदास
हरगोवन देसाईकी चाल
तीसरी मजिल, पोर्चुगीज कम्पाउड वालके पीछे
भूलेश्वर, बम्बई २

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से]।

३४७. पत्र : रमादेवी चौधरीको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय भगिनी,

तुमारा खत मिला। मैंने सुधारणा कर दी है।[1] जितनी सेविका तुमारे साथ है उनका नाम और परिचय भेजो। तुमारा परिचय भी भेजो। काम नित्य नियमबद्ध होता होगा। एक रोजका कार्यक्रम[2] देनेसे मुझको ज्यादा ख्याल आ सकेगा।

मोहनदास गांधी

श्री रमादेवी
एन्टी अनटचेबिलीटी लीग
कटक, उडीसा

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २७८७)से।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-३-१९३३के अन्तर्गत उप-शीर्षक "हरिजन-सेवामें कटककी महिलाओंका योगदान" और "टिप्पणियाँ", ८-४-१९३३के अन्तर्गत उपशीर्षक "दो संशोधन"।
२. रमादेवी चौधरीने ११ अप्रैलको गांधीजी को पत्र लिखकर इसे स्वीकार किया था।

३४८. पत्र : टी० टाइटसको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय टाइटस,

आपका पत्र विस्तृत और बहुत ही सुन्दर है। आपका विवरण मैं बड़े चावसे पढ़ूँगा। आप उसे मेरे पास रजिस्टर्ड डाकसे भेज सकते हैं। मैं उसे पढ़कर लौटा दूँगा। इससे समय और मेहनत, दोनोंकी बचत होगी।

आपने बिना उबाले दूधके गुणोंके बारेमें साहित्य देखा होगा। आपने पढ़ा होगा कि ऐसा दूध कितनी देरतक ऐसी अवस्थामें रहता है कि उसे बिना उबाले पिया जा सके। मैंने तो बस यह सुझाव दिया है कि दूधको ऐसी बोतलों या पात्रोंमें रखा जाये जिनमें वायु प्रवेश न कर सके और उनको गीले कपड़ेमें लपेटकर रख दिया जाये। यह मैंने इस विश्वासके कारण कहा कि इस तरह सहेजा हुआ दूध बारह घंटों या कुछ इतने ही समयतक ज्योंका-त्यों बना रहता है, उसके गुणोंमें कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि आपने जो-कुछ पढ़ा है, उससे भी मेरे इस विश्वासकी पुष्टि होती हो तो आपको आश्रममें बिना उबाले हुए दूधका प्रयोग लोकप्रिय बनाना चाहिए और मैंने जो तरीका बतलाया है उसी तरह दूधको सहेजना शुरू कर देना चाहिए। आप दूध दोहनेका काम बहुत सवेरे कर देते हैं। उसमें से कुछ तो साढ़े दस या ग्यारह बजेतक इस्तेमाल नहीं किया जाता। इसलिए यदि ऐसे दूधको बिना उबाले हुए ही इस्तेमाल करना हो तो उसे इस प्रकार सहेजना चाहिए कि वायुमंडलीय परिवर्तनोंका उसपर कोई प्रभाव न पड़ सके। और मेरा खयाल है कि ग्वालों और ग्वालिनोंपर बराबर नजर रखनी चाहिए और उन्हें थनोंको ठीकसे धोना आदि सिखाना चाहिए।

बंगलोर डेरीकी एक बात मुझे याद है कि दोहनके लिए पशुओंको खुली हवामें एक निश्चित स्थानपर लाया जाता था। ठीक है न? मुझे कुछ ऐसा याद पड़ता है कि कर्नल स्मिथने मुझसे कहा था कि पशुओंको दोहनके लिए एक खुले हवादार स्थान पर ले जाना ज्यादा अच्छा रहता है। यदि यह तरीका अच्छा हो, मेरे खयालमें अच्छा है भी, तो हमें इसे अपना लेना चाहिए। लेकिन आप इसके बारेमें ज्यादा जानते हैं। जितना बिलकुल ही जरूरी हो, उससे ज्यादा काम मैं आपको नहीं देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि हमारी दुग्धशाला अपने ढंगकी एक आदर्श दुग्धशाला बन जाये। हम ज्यादा खर्चीले तरीके तो नहीं अपना सकते, पर हमें ऐसे सभी तरीके अपना लेने चाहिए जो ढंगसे परिश्रम करने और पूरी सावधानी रखनेपर दूधकी शुद्धता तथा स्वच्छता सुनिश्चित बना सके। एक गायको कमसे-कम कितना दूध देना चाहिए कि उसपर होनेवाला खर्च पूरा निकल आये? और लागत कितनी बैठेगी?

अव होमियोपैथीकी वात। मुझे स्वीकार करना पडेगा कि मेरे पास कोई स्पष्ट कारण न होते हुए भी मै उसके वारेमे कोई अच्छी राय नही वना पाया हूँ, हालाँकि मेरे कुछ मित्रोने अकसर मुझसे उसकी सिफारिश की है। मैंने यह भी देखा है कि मेरे वे मित्र खुद भी रोगीकी हालत वहुत विगडनेपर होमियोपैथीको छोडकर एलोपैथीकी शरण गये है। हालॉकि मै चाहता हूँ कि मै ऐसा विश्वास न करूँ, पर मुझे यही निष्कर्ष निकालनेपर विवश होना पडता है कि एलोपैथीकी अपनी सीमाओ और उसमे प्रचलित वहुत सारे अन्धविश्वासोके वावजूद आज वही सर्वाधिक सार्वदेशिक और उचित ही सर्वाधिक लोकप्रिय चिकित्सा पद्धति है। एलोपैथीके पास प्राथमिक औपधियाँ, विभिन्न प्रकारके फोडे-फुन्सियोके लिए मरहम और तरह-तरहके उपयोगोके लिए कीटाणु-नाशक दवाएँ मौजूद है और शल्य-चिकित्साकी वहुत ही आश्चर्यजनक पद्धति उसमे शामिल है। वह अन्य सभी पद्धतियोसे ग्रहण कर सकती है। उसमे होमियोपैथी, जीव-रसायन और आधुनिकतम प्राकृतिक चिकित्सा भी शामिल की जा सकती है। इसलिए यदि ऐलोपैथी पैसे वनानेके चक्करसे, जिसमे आज मनुष्यकी सारी प्रवृत्तियाँ कैद हो गई है, अपनेको छुडा ले और जीवित प्राणियोपर परीक्षणात्मक चीर-फाड करने जैसी उन प्रथाओको छोड दे जिनको मै अशोभनीय मानता हूँ, और साधारण लोगो द्वारा खोजे गये नये-नये तरीकोका निस्सकोच भावसे लाभ उठाने लगे, तो वह सवसे कम-खर्चीली और सभीके लिए पूर्णत सन्तोपप्रद पद्धति वन सकती है।

इतना सब कहनेके वाद भी मै इस वातके लिए तैयार हूँ कि यदि आपको होमियोपैथीका बिलकुल ठीक-ठीक ज्ञान हो और आप आसानीसे समय निकाल सकते हो, तो नारणदास और आश्रमके अन्य जिम्मेदार व्यक्तियोके परामर्शसे आश्रममे उसका व्यवहार शुरू कर सकते है। हमे आश्रममे वाहरसे चिकित्सीय सहायता न लेनी पडे या चिकित्सक मित्रोको कभी-कभी ही कष्ट देना पडे, तो इससे मुझे सचमुच खुशी होगी। मेरा आदर्श तो यह है कि हमे जिस उपचारकी भी जरूरत हो, वह आश्रममे ही मिल जाये। जव किसीको उपचारके लिए वाहर जाना पडता है या वाहरसे चिकित्सक वुलाना पडता है तो मुझे वहुत दु ख होता है। हो सकता है, वैसी आदर्श स्थिति कभी भी न वन पाये, लेकिन हम इसके जितना भी करीव पहुँच सके उतना ही अच्छा। इसलिए मुझे खुशी होगी यदि आप वाहरसे चिकित्सकीय सहायता लेनेके अवसर कम भी कर सके। लिखिए कि कुसुम, जमना, चिमनलाल और परचुरे शास्त्रीका भी, जो किसी कदर कम महत्त्वपूर्ण नही, आप क्या इलाज करेगे। इन सवकी वीमारियाँ अपने-अपने ढगसे विशेप है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३०) से।

३४९. पत्र : नरहरि परीखको

[४ अप्रैल, १९३३ के आसपास][१]

चि० नरहरि,

मोहनको क्या हो गया है? उसके हाथको क्या हुआ है? हाथ बेकार हो जानेका डाक्टर क्या कारण बताता है? मैंने यह मानकर कि यह सामान्य ज्वर है उसकी कोई चिन्ता नही की, किन्तु अब मैं कुछ परेशानीमे पड गया हूँ और भली-भाँति यह समझ लेना चाहता हूँ कि हाथको क्या हुआ है।

नारणदासको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने पढा। तुम्हारे कुछ सुझाव मुझे अच्छे लगे हैं। इस सम्बन्धमे तुम नारणदाससे विचार-विमर्श कर लेना। सभा आयोजित की गई थी यह बहुत ठीक हुआ, किन्तु जिससे अमल कराना है उसे उन सब बातोको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि यदि सम्भव हो तो तुम दोनोका मन मिल जाये। अभी मुझे ऐसा हुआ नही दिखता। अपनी तरफसे पूरी कोशिश करना। निराश होकर कोशिश करना मत छोड़ देना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०५९) से।

३५०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

५ अप्रैल, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

इस महीनेकी १ ली तारीखका आपका पत्र मिला, साथमें १९ मार्चके आपके पत्रकी[२] एक प्रति भी।

'सनातनी' मुझे नियमित रूपसे मिलता रहा है। इसलिए आपको वह मेरे पास भेजनेकी जरूरत नही। सम्पादक कौन है? उन्होंने मुझे लिखा था कि वे मुझसे पहले मिल चुके हैं। मुझे उनका चेहरा-मोहरा याद नही पडता। वे क्या काम करते थे या आजकल क्या करते हैं?

१. प्रापक द्वारा नारणदास गांधीको लिखे गये पत्रके उल्लेखसे, देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ४-४-१९३३।

२. इस पत्रमें पूना समझौतेके विरुद्ध होनेवाले आन्दोलनके कारणभूत तथ्योंका विवरण दिया गया था। उनमें एक शिकायत यह थी कि पूना समझौतेके अन्तर्गत हरिजनों, नामशूद्रों और राजवंशियोंको अत्यधिक संख्यामें कौंसिलकी सीटें देकर सवर्ण हिन्दुओं और राष्ट्रीय प्रगतिके साथ ज्यादती की गई है।

रामानन्द बाबूकी टिप्पणी सचमुच दिलचस्प है; लेकिन वह जब किसी चीजसे नाराज होते हैं तब उनकी यही शैली रहती है।[1]

समझौतेसे सम्बन्धित हमारे कर्तव्यके बारेमें मैं अपने विचार आपको विस्तारसे बतला चुका हूँ।[2] अब आप ठीक वही कीजिए जो आप स्थानीय परिस्थितियोंको देखते हुए जरूरी समझें। बंगालके बारेमें मेरे पास बंगाल सरकार द्वारा तैयार की गई अनुसूची है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३९) से।

३५१. पत्र : वी० आर० दिघेको

५ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

जंजीरा राज्यमें भैंसेकी बलिका विवरण देते हुए आपने जो पत्र भेजा है, उसके लिए आपका आभार मानता हूँ। देखूंगा कि मैं इस मामलेमें क्या-कुछ कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० आर० दिघे
खादी भण्डार
दादर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३६) से।

३५२. पत्र : दिवाकरसिंहको

५ अप्रैल, १९३३

प्रिय दिवाकर,

आपका पत्र मिला। मैं आपके बारेमें कोई राय तो नहीं दे सकता, लेकिन यदि गहराईसे आत्म-विवेचन करनेपर आपको लगा हो कि आपने सेवाका जो यह दूसरा तरीका निकाला है वह पहलेके उस तरीकेसे कहीं बेहतर है जिसे आपने शुरू किया था तो आपको इसपर कायम रहना चाहिए।[3] आपने मेरी बात समझ ली, मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३७) से।

१. रामानन्द चटर्जी बंगला प्रवासी तथा मॉडर्न रिव्यूके सम्पादक थे। उन्होंने पूना-समझौतेके विरोधियोंके समर्थनमें 'हरिजन विद्यार्थियोंकी सहायता' शीर्षकसे एक आलोचनापूर्ण सम्पादकीय लिखा था।

२. देखिए "पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको", १८-३-१९३३।

३. दिवाकरसिंहने लिखा था कि उन्होंने सड़कोंकी सफाई करना छोड़ दिया है और अपना पाखाना तथा अवसर पड़नेपर छात्रावासके अन्य पाखानोंकी भी सफाई करने लगे हैं।

३५३. पत्र : अमूल्यधन रायको

५ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

मेरी स्थिति तो बिलकुल स्पष्ट है। यरवडा समझौता एक पवित्र प्रलेख[1] है। उसमे कोई भी परिवर्तन तभी किया जा सकता है जब उससे सम्बन्धित सभी पक्ष उसपर सहमत हो।

जहाँतक मेरी बात है, मुझे तो ऐसा कोई कारण नही दिखता कि मुझे अपनी राय बदलनी चाहिए।

यदि आपकी इच्छा हो तो आप मेरा उत्तर प्रकाशित करनेके लिए सर्वथा स्वतन्त्र है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमूल्यधन राय
गिरीश घोष लेन
घुसुरी
डाकघर-बेलूरमठ (हावडा)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३८) से।

३५४. पत्र : नारणदास गांधीको

५/६ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ आश्रमके मजदूरोकी ओरसे आया हुआ एक पत्र भेजता हूँ। पत्र पर नाम मालीडोशीका है। तुमने शायद उसे नही देखा है। उसमे जो-कुछ कहा गया है उसकी जाँच करना और लिखना कि क्या मामला है।

माधवजीके भाई चतुर्भुजने लिखा है कि माधवजीके जो दो लडके कलकत्तेमें है उनकी वहाँ ठीक देखरेख नही की जा सकती। मैंने उन्हे लिखा है कि इन लडको की काकी उन्हे आश्रममे रख जाये। बच्चे यहाँ रम जाये, उसके बाद काकी चली

१. अमूल्यधन राय विधान परिषद्के सदस्य थे। उन्होंने गांधीजी को सूचित किया था कि बंगाल विधान परिषद्ने १४ मार्च, १९३३ को यरवडा-समझौतेके विरुद्ध एक प्रस्ताव पारित किया था। उन्होंने स्वयं प्रस्तावका विरोध किया था और आगेकी कार्रवाईके बारेमें गांधीजी की सलाह माँगी थी।

जाये। तुम भी उन्हे लिखना और लडकोको अपने हाथमे लिया जा सके तो लेना। मैंने माधवजी और महालक्ष्मीको लिखा तो है।

डकनकी तबीयत ठीक होगी।

टाइटसको लिखा पत्र पढना।[1] दुग्धालयकी रिपोर्ट जैसी है वैसी ही भेज दो तो भी काम चल जायेगा। यदि जरूरत हुई तो उसकी नकल मैं यहाँ करा लूंगा। अन्यथा उसे पढकर वापस कर दूंगा।

केशू अब मुझे भी बस दो पक्तियाँ लिखकर अपना काम पूरा हुआ मानता है। उससे सन्तोष पानेकी आशा अब मैंने छोड़ दी है। उसने आश्रम छोडनेका ही निश्चय कर लिया है। शुक्रवारको मुझसे आकर मिल जायेगा। लगता है कि राधा भी बाहर ही रहना चाहती है।

डॉक्टर शर्मा और परचुरे शास्त्रीके बारेमे मैंने जो पत्र लिखा है वह तुमने पढ लिया होगा और मेरा आशय समझ लिया होगा। समझमे न आया हो तो पूछना।

सलग्न .

मालीडोशीका पत्र और चम्पा, परचुरे शास्त्री, टाइटस, मालीडोशी और राजभोजके नाम अपना पत्र।

बापू

[पुनश्च :]

६ अप्रैल, १९३३

गौर गोपालका पत्र आया था। मैंने उसका उत्तर तुरन्त दे दिया था। यह कई दिन पहलेकी बात है। अब उसे लिख देना कि वह निश्चिन्त होकर शैल आश्रम चला जाये। वहाँ उसके ठहरनेके लिए स्थान तो मिल ही जायेगा। भोजन आदिकी व्यवस्था तो वह स्वय कर लेगा। इसमे प्रभुदास उसका मार्गदर्शन करेगा। उसकी सार-सँभालमे यथासम्भव मदद करना हमारा कर्तव्य है।

धनजयकी परिचर्या ठीक हो रही होगी। बीमारी क्या है, यह तो तुम जानते हो। परिचर्या कौन कर रहा है? परिचारक बडी उम्रका हो तो ज्यादा अच्छा। कारण, बडी उम्रवालेको इस बीमारीकी छूत कम लगती है।

लीलाधरको क्या हुआ है?

बापू

[पुनश्च]

सेनिटेशन पर पूर की जो पुस्तक हमारे यहाँ है वह इस पतेपर भेज दी जाये :

श्री नी०, चीतलदुर्ग, मैसूर।

गौर गोपालका पता शायद वहाँ तुम्हारे पास न हो तो यह रहा :

मार्फत श्रीयुत गजेन्द्रप्रसाद दास, एडवोकेट, पटना।

1. देखिए "पत्र: टी० टाइटसको", ४-४-१९३३।

संलग्न पत्र: डंकन, प्रेमी, चिमनलाल, अमीना, आनन्दी, नानीबहन, दुर्गा, पुरुषोत्तम, नारणदास, तलवलकर, दुर्गा (बाबो)।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५० से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

३५५. पत्र: मीराबहनको

६ अप्रैल, १९३३

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र कल ही आया है। यह मैं प्रार्थनासे पहले पौने चार बजे लिख रहा हूँ। मैं कुछ अधिक सो लिया हूँ। उपवासका दिन था, इसलिए शायद कोई हर्ज नहीं।

तुमने वह सब लिखकर अच्छा किया। उसपर अमल करनेमें तीन तरहकी कठिनाइयाँ हैं। (१) या तो आश्रमको किसी और जगह ले जाना पड़ेगा या फिर अन्य प्रवृत्तियोंको छोड़ देना पड़ेगा। (२) तुमने जो शर्त रखी है उसपर तो एक नारणदासके अलावा शायद कोई भी आश्रमवासी नहीं टिक पायेगा। (३) तुमने जिस रूपमें पेश किया है, उस रूपमें आश्रमकी संकल्पना की ही नहीं गई थी।

यह अन्तिम कठिनाई ही शायद दुर्निवार है। मैं तो एक उच्चादर्शपूर्ण प्रयोग कर रहा हूँ, जो खतरनाक है और हो सकता है कि एक अप्राप्य आदर्श ही सिद्ध हो। मेरा विचार एक ऐसा स्थान बनानेका है जहाँ लोग नित्यप्रतिके सामान्य प्रलोभनोंके बीच ब्रह्मचर्यसे रहनेके लिए अपने-आपको प्रशिक्षित कर सकें। . . .[1] और . . .[2] का पतन इसलिए नहीं हुआ कि वे पाशविक वासनाओंको वशमें नहीं कर पाये। वे इतनी दूरतक नहीं गये हैं। लेकिन उन्होंने सत्यको छिपाया और सत्य-निष्ठाका विकास तो विभिन्न मनोवृत्तियोंवाले स्त्री-पुरुषों और प्रच्छन्न प्रलोभनोंके बीच रहकर ही किया जा सकता है। एक ही तरहकी आदतोंवाले चन्द व्यक्तियोंके लिए यह काफी आसान है कि वे एक-दूसरेके साथ धोखा न करें या उनका सही रंग न खुले। लेकिन यह तो ऐसा जीवन नहीं हुआ जिसमें सत्य-निष्ठाकी परख हो सके। आवश्यकता सहज, स्वाभाविक परिवेशमें सत्यमय जीवन जीनेकी है। लोगोंने तो ऐसी भी आपत्ति उठाई है कि आश्रमका जीवन सहज स्वाभाविक नहीं है।

पता नहीं, तुम मेरे यह सब लिखनेका आशय बराबर समझ रही हो या नहीं। यदि समझ रही हो, तो तुम्हें तुरन्त यह आभास हो जाना चाहिए कि पहली दो कठिनाइयाँ जान-बूझकर मोल ली गई इस तीसरी कठिनाईका ही सहज-स्वाभाविक परिणाम हैं। आश्रममें जो स्त्री-पुरुष हैं और जो प्रवृत्तियाँ चलाई जाती हैं वे हमने आश्रमको जैसा बनाया उसीके अनुसार हैं। और इन स्त्री-पुरुषों तथा प्रवृत्तियोंकी बुनियादपर तुम्हारी संकल्पनाके अनुरूप इमारत खड़ी नहीं की जा सकती। तुमने

१ और २. नाम छोड़ दिये गये हैं।

जो सुझाया है वह तो इसी तरह किया जा सकता है कि दो या तीन आश्रमवासी स्त्री-पुरुषोको अपने ढगसे रहनेके लिए किसी और स्थानमे भेज दिया जाये और वे कुछ समयमे अपनी ही तरहके कुछ व्यक्तियोको अपने साथ रहनेके लिए अनुप्राणित करे। परन्तु वह अपनी असफलता स्वीकार करना ही होगा। अनिवार्य हो जाये तो अपनी असफलता स्वीकार करनेमे मुझे कोई सकोच नही होगा। पर मैं इस वातका विलकुल भी कायल नही हूँ कि ऐसा अनिवार्य है। यदि हमारे इस प्रयोगमे चन्द लोग टिके रहे और उनके बारेमे कहा जा सका कि वे वहुत हदतक कसौटीपर खरे उतरे है, तो मै पूर्णत सन्तुष्ट हो जाऊँगा कि मेरा प्रयोग सफल रहा। हम जिस प्रकारका प्रयोग कर रहे हैं उसमे असफलताएँ तो नित्य-प्रतिकी घटनाएँ है। प्रत्येक असफलता सफलताकी एक सीढी होगी। . . घटनाने मुझे क्षुब्ध तो किया है, पर मुझे घवडा बिलकुल भी नही पाई है। पता लगनेपर तुरन्त कार्रवाई की गई है और अभी की जा रही है।

इसके वारेमे मेरा निदान क्या है—यह भी तुमको जानना चाहिए। सारा दोष यह है कि मैंने नई उम्रके इन दोनोपर जरूरतसे ज्यादा विश्वास किया। उससे पहले प्रारम्भिक दोष था इनके माता-पिताका। . . का खयाल था कि यदि उनके बच्चोका लालन-पालन समाजसे पृथक् रखकर किया जाये तो वे आश्रमके आदर्शके कही अधिक अनुरूप बन सकेगे। . . . यही विचार पाल रखा था। . . . इसीलिए बच्चे निरे स्वार्थी, अपनेको विशिष्ट समझनेवाले और आत्म-केन्द्रित वन गये। . . के पीछे मशा नेक था। और इसलिए . . की मृत्युके बाद मैंने परम्परा कायम रखी। उनके उत्तराधिकारीके रूपमे मुझे उसकी प्रभावकारिताको परखकर देखना ही था। परिणाम अव हमारे सामने है। मुझे इसका दुख नही है। . . को पूरा अधिकार था कि वे जिसमे आश्रमकी भलाई समझे उसपर अमल करे। जहाँतक . . का तरीका उलटा था। लेकिन . ने अपने पतिका पूरे तौरपर हाथ नही वँटाया। उनकी अपनी कोई नीति नही थी, परन्तु वे स्वय भी आश्रमके आदर्शका पालन नही कर सकी और इसलिए . आश्रममे एक लाडलेकी तरह वडा हुआ। स्वाभाविक परिणति तो शायद अव होगी। का स्वाभिमानी परिवार अव आश्रम-से अलग होकर अपने सहज ढगसे रहेगा। वह बुरा नही होगा। . . अपना सवक सीख चुकी है। वह . की खातिर अब अपनेको आश्रमके आदर्शके अधिकसे-अधिक अनुरूप वनानेकी कोशिश करेगी। . . शिकार वना। खलनायक था (शब्दके पूरे गृहीत अर्थमे नही)। समूचा आश्रम जानता है कि हर कीमतपर सत्यका पालन करनेसे ही स्थितिसे उवरा जा सकता है। इसी ढगसे चलकर स्थिति अपने-आप नियन्त्रित होती जायेगी।

धीरे-धीरे और भी कई कदम उठाये जायेगे। कोई वडा उग्र परिवर्तन नही किया जायेगा। किसी वडी आशकाका जरा भी कारण नही। प्रेमाके प्रति तुम्हारा रुख शायद विना जरूरत ही इतना सख्त है। उसमे वडी-वडी खामियाँ है सही, लेकिन इस घटनामे बेचारीका विलकुल कोई हाथ नही था। उसके कायिक ब्रह्मचर्य पर मुझे किंचित् भी शका नही और उसमे सत्यवादिता तो इतनी है कि उसे मुंह-

फट बना देती है। बाह्य नियमोके पालनमें वह बहुत ज्यादा पाबन्द रहती है। हाँ, उसकी जुबान बुरी है। उसपर काबू पानेकी वह कोशिश कर रही है। खैर, ऐसा कोई व्यक्ति है ही नही, जो आश्रमको नारणदासकी अपेक्षा अधिक अच्छे ढगसे चला सके। उसे आश्रमको अपनी योग्यताके अनुसार अच्छेसे-अच्छे ढगसे चलानेको मुक्त छोड देना चाहिए।

अब मै चाहता हूँ तुम इस लम्बे-चौडे पत्रको पूरे ध्यानसे पढकर और खूब सोच-समझकर मुझे इसके बारेमे अपनी आलोचना, अपने विचार और अपने सुझाव निस्सकोच भावसे साफ शब्दोमें लिख भेजो। जमकर सोच-विचार करनेके लिए तुम्हारे पास काफी समय है। मैं विचलित नही हुआ हूँ। मै हर चीजको सहज भावसे ग्रहण करता हूँ और जैसे-जैसे नई परिस्थिति सामने आती है, उसका मुकाबला करता हूँ। नारणदास सभी निर्देशोका सचाईसे पालन करेगा। और यदि मेरे हृदयने ऐसी प्रेरणा दी तो मेरे लिए यह बिलकुल शक्य है कि जहाँतक मेरे हाथमे है मै समूचे आश्रमको तत्काल भग कर दूँ; वैसे वैधानिक रूपसे मै ऐसा नही कर सकता। लेकिन यह तो कोई बाधा ही नही है। मेरा नैतिक सत्ताधिकार तो मौजूद है। इसलिए तुम चाहे जैसे सख्त सुझाव दे सकती हो।

यहाँ और सब ठीक है। इसमे जितना कुछ मैने लिखा है उसे आवश्यकतानुसार बा को समझा देना।

हम सबकी ओरसे सप्रेम,

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६७३) से; सौजन्य . मीराबहन

३५६. पत्र : नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्जीको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके २७ मार्चके पत्रके लिए धन्यवाद। जुनू[1] द्वारा काते गये सूतसे बुना खद्दरका टुकडा भी अब मुझे मिल गया है। नन्ही मुन्नीको मेरी ओरसे धन्यवाद दीजिए और उससे कहिएगा कि मैं उस खादीका बडी खुशीसे इस्तेमाल करूँगा और उस समय उसकी याद भी कर लिया करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्जी
घलबरिया गाँव
मथुरेशपुर डाकघर
खुलना जिला (बगाल)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५५) से।

१. नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्जीकी छः वर्षीय पुत्री जिसने गांधीजी को भेंट करनेके लिए दो वर्षतक सूत काता था।

३५७. पत्र : आर० के० गोलिकेरेको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय गोलिकेरे,

आपका पत्र पाकर मुझे वास्तवमें आश्चर्य हुआ और उसे पढकर तो और भी। आपने मुझे याद रखा और मुझे अपनी पुस्तक भेजी — इसके लिए मेरा धन्यवाद। मैं अवश्य ही उसे पढनेका समय निकालूँगा। ज्योतिषकी आपकी नई परिभाषाको मैं तब ज्यादा अच्छी तरह समझ सकूंगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० के० गोलिकेरे
सारस्वत बिल्डिग्स
गामदेवी, ग्राट रोड
[बम्बई]

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५६) से।

३५८. पत्र : डंकन ग्रीनलीजको

६ अप्रैल, १९३३

आपका पत्र मिला। मन हर्षित हो उठा।[1] पत्र स्पष्टवादिता और खरी ईमानदारीसे भरा-पूरा है। आपने जो लिखा है उसका एक-एक शब्द मैं समझता हूँ। आप वही कीजिए जिसकी प्रेरणा आपके अन्तरका सत्य आपको दे। वही मुझे पूर्ण सन्तोष देगा। भाग्य आपको कही भी ले जाये, मैं आपको एक आश्रमवासी ही मानता रहूँगा। इस बीच आश्रमके जीवनसे आप जितना भी ग्रहण कर सकते है, कीजिए, लेकिन अपने ऊपर किसी तरहकी कोई ज्यादती किये बिना। उपवास शुरू करके आपने एक बडा कदम उठाया है। आशा है, आप पुरुषोत्तमके मार्ग-दर्शनमे चल रहे है। आप गरम या ठडा पानी जितना पी सके, पीजिए। यदि ठीक विधिसे लिया जाये तो इससे आपको कोई भी नुकसान नही पहुँचेगा। पानीको ठडा बनाये रखनेका सबसे अच्छा और सस्ता तरीका आपको मालूम है। पानीके पात्रको गीले कपडेसे लपेट कर रखे। आपको रोजाना पूरा एनीमा लेना है और यदि मतली-सी आये तो नीबूकी दो-चार बूंदे — और यदि आपको मीठा प्रिय हो तो शहद — पानीमे मिलाकर ले ले।

डकन ग्रीनलीज

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४०) से।

१. डकन ग्रीनलीजने गांधीजी को लिखा था कि वे मदनपल्ली जाकर अध्यापनकार्य करनेकी सोच रहे है।

३५९. पत्र : वी० एस० काथवटेको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा खयाल है आपको उस लडकीसे शादी करनेका विचार बिलकुल छोड़ देना चाहिए। लगता है आप इस बातका कोई खयाल ही नही करते कि उसकी अभी उम्र केवल ग्यारह वर्ष ही है। इस उम्रमे वह शादीका कोई विचार रख ही नही सकती और यदि रखती है तो वह उसका असामयिक, अपरिपक्व और अस्वस्थ ज्ञान ही है, जिसे प्रोत्साहन नही दिया जाना चाहिए। इसलिए निस्सन्देह आप लोगोके बीच जो निकटका सम्बन्ध है उसके बावजूद मै समझता हूँ कि लडकीकी उम्र उसमें एक बहुत बडी बाधा है, और आपको उसकी आँखोमें अपने लिए कोई निवेदन नही पढ़ना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एस० काथवटे
सावनूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४९) से।

३६०. पत्र : केशवको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय केशव,

आपका स्पष्टवादी पत्र मुझे अच्छा लगा। मै आपका दृष्टिकोण भली-भाँति समझता हूँ। चाहे मै उससे सहमत न होऊँ, पर मै उसकी कद्र कर सकता हूँ। मेरा बुनियादी दृष्टिकोण आप जानते ही है। जानते है न? मेरी यह भावना कभी नही रही कि मुझे पूरे तौरपर जो सत्य लगता है, वह दूसरोको भी ऐसा लगना ही चाहिए। सत्यका जो स्वरूप हमे दिखलाई पडता है वह सदा हमारा सापेक्ष ज्ञान ही होता है, इसलिए यह जरूरी नही कि वह सब-कही और सबपर समान रूपसे लागू हो। इसलिए मै अपने पडोसियोके लिए ईश्वरसे यही प्रार्थना करता हूँ, "हे सर्वज्ञ, वे सत्यको उसी रूपमें देख सके जिस रूपमें तू उनको दिखाना चाहता है।"

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५२) से।

३६१. पत्र : पी० आर० लेलेको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय लेले,

त्याग-पत्रकी[1] सूचना देता हुआ आपका पोस्टकार्ड देखकर मुझे आश्चर्य नही हुआ। आपके इधर हालके पत्रोने मेरे मनको उसके लिए तैयार कर दिया था। आपकी भाषासे आपके मनकी बेचैनी टपकती थी। आशा है, बोर्डसे अलग होनेके बावजूद हरिजन-कार्योमे आपकी दिलचस्पी ज्योकी-त्यो बनी रहेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
वाडेकर बिल्डिंग
बम्बई न० ४

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५३) से।

३६२. पत्र : नी०को

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

३१ मार्च और २ अप्रैलके तुम्हारे दोनो पत्र मुझे एक साथ मिले।

श्रीनिवास रावके उपहार स्वीकार करना और खानेके वास्ते चोकरयुक्त आटा तथा मेवे भेजनेको उनसे कहना तुम्हारे लिए सर्वथा उचित था। तुमको वहाँ ताजा साग नही मिल पाता — यह सचमुच, एक बडी अडचन है। लेकिन तुम जानती ही हो कि पत्तेदार साग-सब्जियाँ उगानेमे कोई अधिक समय नही लगता। दक्षिण आफ्रिकामे मेरे साथ एक अंग्रेज मित्र रहते थे। उन्होने एक ही पखवारेमे चनसुर-जैसी भाजियाँ पर्याप्त मात्रामे उगा ली थी। थोडे-से बीज लो और जमीनके एक छोटे-से टुकडेपर बाड लगाकर उसकी अच्छी तरहसे गोडाई करके उसे खूब बराबर कर लो। आस-पासके मवेशियोसे मिलनेवाली खाद इस्तेमाल करके उसमे तुम सलाद, टमाटर और आसानीसे उगनेवाली भाजियोके बीज बो सकती हो। तुमको चीतलदुर्गमे और उसके आसपासके इलाकेमे घूम-फिरकर देखना चाहिए। मै तो सोच भी नही सकता कि उस इलाकेमे कही भी भाजी कहलानेवाली पत्तेदार सब्जियाँ होती ही नही होगी। मैं

१. हरिजन सेवक संघके बम्बई प्रान्तीय बोर्डके मन्त्रि-पदसे।

तुमसे यही कहूँगा कि फिलहाल तो दूध और मक्खनसे परहेज मत करो। चाहो तो थोडी मात्रामे ही लो, लेकिन यदि तुम ये दोनो चीजे नही लेती रहोगी तो ताजे फल और चोकरयुक्त आटा भी न मिलनेके कारण कुछ ही समयमे कमजोर हो जाओगी।

तुमको अपने बयानके बारेमें दुर्गादासको[1] कुछ भी लिखनेकी जरूरत नही। अपनी याददाश्तसे खुद ही लिख डालो, और मेरे पास भेज दो।[2]

सि० के सिलसिलेमे दालोके बारेमे तुमने जो लिखा है, उसे मै समझता हूँ। तुमने यहाँ उसका जो वर्णन मुझसे किया था, उसके अनुसार वह काफी सक्रिय किस्मका लडका है, इसलिए उसे कुछ कम मात्रामे दाल देनेसे शायद कोई हानि नही होगी।

'विलेज सेनीटेशन' (ग्राम-सफाई) पर लिखी पुस्तक मै तुमको भेज दूँगा। आश्रमको लिख रहा हूँ, पर मै पूरकी पद्धतिका सार तुमको बतलाये देता हूँ। उनका सिद्धान्त यह है कि हमारी पृथ्वीकी १८ इच तककी परतमे ऐसे कीटाणुओकी बहुतायत है जो पृथ्वीपर रहनेवाले सभी प्राणियोके लिए सफाईका काम करते रहते है। पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणी उसकी सतहपर रोज-ब-रोज जितनी सारी गन्दगी जमा करते है, उस सबकी सफाई वे कीटाणु कर सकते है। पूरने यह जानने और चीनी लोग किस प्रकार मैलेका आर्थिक दृष्टिसे सबसे अच्छा उपयोग करते है, इस बातसे अवगत होनेके बाद अपने तरीकेका विकास किया और कहा कि मल-मूत्रको जमीनके अन्दर ज्यादासे-ज्यादा १२ इच और हर हालतमे १८ इचसे कम गहराईमे ही दबा दिया जाना चाहिए। इसीलिए उन्होने न तो एक स्थानसे दूसरे स्थानमें हटाये जाते रहनेवाले पाखानो और न गहरे गड्ढोवाले पाखानोकी ही बात सुझाई है। उनका सुझाव है कि पाखानोमें बाल्टियाँ रखी जायें और हर व्यक्ति अपने मैलेको पाखानेमें रखी मिट्टीसे ढकता जाये। इस तरह शौचालय सदा ही स्वच्छ बना रहेगा और उसमे अच्छी गध रहेगी। फिर इन बाल्टियोको शौचागारसे कुछ ही गजकी दूरीपर पहलेसे खोदकर तैयार की गई क्यारियोमे उलट दिया जाये और फिर उनके किनारोपर बनाये हुए मिट्टीके ढेरोसे मिट्टी लेकर मल-मूत्रको ढक दिया जाये। हाल ही में मिट्टीसे ढके मैलेपर और मैला नही डालना चाहिए। हर जगह मैलेको काफी मिट्टीसे ढक देना चाहिए जिससे कुत्ते और अन्य जानवर उसे खोद न सके। इस प्रकार एक पखवारेके अन्दर ही वहाँ मौजूद कीटाणु उस मैलेको बढिया खादमे बदल देगे और वह भूमि कृषि-योग्य बन जायेगी।

हम आश्रममे इस योजनापर पिछले १७ वर्षोसे अर्थात् आश्रमकी सस्थापनाके दिनोसे ही, बडी कामयाबीके साथ अमल करते आ रहे है। इस पूरी प्रक्रियामे कोई अधिक समय नही लगता और उन क्यारियोसे दुर्गंध भी नही आती।

१. एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इडियाके तत्कालीन सम्पादक।

२. नी० ने अपने बारेमें एक बयान तैयार करके उसे प्रकाशनके लिए एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इडियाको भेजा था, लेकिन उसे प्रकाशित नहीं किया गया था।

आशा है कि मैंने जो कुछ यहाँ लिखा है उसपर अमल करनेमे तुमको कोई कठिनाई नही पडेगी। सभी प्रकारके मैलेको उपयोगी वनानेका यही सबसे कम खर्चीला तरीका है। रसोईसे बचनेवाली जूठन आदिको भी इसी तरीकेसे उपयोगी वनाया जा सकता है, लेकिन उसे मैलेके साथ मिलाना नही चाहिए, क्योकि कीटाणु साग-सब्जियो की जूठनपर अपना जो काम करते है वह मैलेपर किये जानेवाले उनके कामसे भिन्न होता है। अन्य सभी बातोमे प्रक्रिया एक ही तरहकी होती है। आश्रममे हमने देखा है कि इस प्रकार तैयार की गई खादका प्रयोग करनेपर हमारी फसल गुण और परिमाण दोनो ही दृष्टियोसे अधिक भरी-पूरी होती रही है।

इसपर अमल करनेमे यदि तुम कोई कठिनाई महसूस करो, तो लिखना।

तुमने जो जरूरी हो ऐसी सभी सहायता देनेके लिए नगरपालिकासे जो अनुरोध किया है वह सर्वथा उचित है। यदि वह सहायता दे तो बहुत ही अच्छा, लेकिन यदि न भी दे तो चिन्ता मत करना, परेशान न होना। फिलहाल तुम्हारे लिए जो काम निश्चित किया गया है, वह है — हरिजनोके बीच काम करना, और उससे भी बढकर, आत्म-सुधार करना।

अब पोशाककी बात लेता हूँ। तुमको सिर्फ तीन चीजोकी जरूरत है — पुरुषोकी कमीजसे मिलती-जुलती कोहनियो तककी बाँहवाली एक ढीली कुर्ती, घुटनोसे ३-४ इंच नीचेतक पहुँचनेवाली एक घाघरी, और मेरे जैसा एक कटि-वस्त्र, लेकिन इतना लम्बा नही। यदि तुम सिलाईका कष्ट उठानेके लिए भी तैयार हो तो तुम पुरुषोके जाँघियेकी तरहकी कोई चीज बना सकती हो। यही सबसे सादा पोशाक रहेगी। सन्यासिने कुछ इसी तरहकी पोशाक पहनती है। तुम अपनी साडियोकी कुर्तियाँ या कमीजे बना सकती हो। तुम्हारे स्कर्ट काम आ सकते है और शायद तुम्हारे पास नेकर या जाँघिये-जैसी भी कुछ चीजे हो।

हृदयसे तुम्हारा,

[पुनश्च :]

मुझे बापू कहकर सम्बोधित करना तुम्हारे लिए गलत होगा। तुम मुझे बापू सिर्फ तब कह सकती हो जब तुमको अपने ऊपर पूरा भरोसा हो जाये कि तुम मेरा विश्वास प्राप्त कर लोगी और मुझे कभी धोखा नही दोगी। मै अपनी ओरसे बापू हस्ताक्षर करके तुमपर विश्वास करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४९-ए)से।

३६३. पत्र : बी० आनन्द नायकरको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय नायकर,

मैंने आपका १५ मार्चका पत्र जान-बूझकर इसलिए अलग रख लिया था कि उसे पढनेका समय निकालूंगा। अब मैं उसे पढ गया हूँ। मुझे आशंका है कि दुकान का काम आपसे ठीक तरह सँभल नही पायेगा। मैं तो चाहूँगा कि आप शारीरिक मेहनत वाला कोई ऐसा काम ले जिसमें आप घरसे बाहर दिन-भर व्यस्त रहे, स्वयं अपनी और अपने करणीय या अकरणीय कार्योंकी चिन्तासे मस्तिष्कको मुक्त रखें, और केवल अपने सामने पडे कामपर ही पूरा ध्यान लगाये। निस्सन्देह, हल्की-फुल्की बागवानी ऐसा ही काम है। उसमें लगकर आप फल-फूलोकी भाषा समझ पायेंगे; और मुझे भरोसा है कि वह आपको दिलचस्प लगेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० आनन्द नायकर
मार्फत—पोस्टमास्टर
पोस्ट आफिस, बासवगुडि, बगलोर शहर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५१) से।

३६४. पत्र : के० ए० श्रीनिवास सेट्टीको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके तीन पत्र मिले, धन्यवाद। मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि पूज्यपाद महाराजने[1] चीतलदुर्ग मठके द्वार हरिजनोके लिए खोल दिये हैं और वे हरिजनोको मास-भक्षणसे दूर रहनेका परामर्श दे रहे हैं।

केन्द्रीय बोर्डके नामके बारेमें आपकी आपत्ति सर्वथा तर्क-सगत है, लेकिन यह नाम 'हरिजन' नामके प्रचलनसे पहलेका रखा हुआ है। पर भारतीय भाषाओमें सभी बोर्डोको हरिजन सेवा समाज या मण्डल कहा जाता है।

१. लिंगायतोंके जगद्गुरु जयदेव मुरुघाराजेन्द्र स्वामी।

मै देखता हूँ कि हरिजन-उत्थानके लिए देवनगिरिमे एक सघ बनाया गया है और मुझे यह जानकर भी बडी प्रसन्नता हुई कि वहाँ अध्यापन-कार्य करनेवाला ब्राह्मण स्नातक हरिजनोके हलकेमे ही रह रहा है और उनमे साफ-सुथरे ढगसे रहनेकी प्रवृत्ति बढा रहा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० ए० श्रीनिवास सेट्टी
अवैतनिक मन्त्री
आदि-कर्नाटक सहाय सघ
देवनगिरि (मैसूर स्टेट)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५०) से।

३६५. पत्र : टी० वी० के० स्वामीको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे अपनी पुस्तके सर्मपित करनेवाले सभी लेखक मुझसे इसकी अनुमति नही माँगते, और आपकी पुस्तक के[1] समर्पणकी अनुमति मुझे देनी ही नही चाहिए, क्योकि मै उसे समझ ही नही पाऊँगा। परन्तु इतने सारे अन्य लेखको की भाँति पुस्तक मुझे सर्मपित करनेकी आपको भी पूरी आजादी है। हाँ, आप उसमे यह घोषणा न करे कि वैसा आपने मेरी अनुमतिसे किया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० वी० के० स्वामी
गीता विलास
कल्लकुरिचि
दक्षिण आर्कट

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४७)से।

१. यह गीताका तमिल अनुवाद था।

३६६. पत्र : डॉ० जी० आर० तलवलकरको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० तलवलकर,

कुसुमबहनके बारेमें आपका विस्तृत पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और मुझे यह भी बहुत अच्छा लगा कि आपने उसे मेरी सुविधाके लिए टाइप करा दिया।[1] पत्र मैंने अच्छी तरहसे समझ लिया है। आपने मुझे वह जानकारी दे दी है जिसके लिए मैं इतना उत्सुक था। आपको जितने भी मरीज मिले हैं — कमसे-कम आश्रममें — उनमें तो कुसुमबहन ही शायद सबसे अधिक आज्ञाकारी मरीज है और चूँकि आपको पूरा विश्वास है कि उसको आपके इलाजसे लाभ हुआ है, इसलिए यह इलाज तबतक लगातार चलता रहेगा जबतक आप और आपके इलाजपर उसका विश्वास कायम है। उसे और मुझे भी, इस बातसे चिन्ता होती है कि उसे अक्सर अतिसार हो जाता है। मेरा खयाल है कि उसे जो चन्द दिनोंके अन्तरालसे बार-बार टट्टियाँ आने लगती है, उसे अतिसार कहकर मैं ठीक शब्दका ही प्रयोग कर रहा हूँ। लेकिन यदि यह आपके उपचारका स्वाभाविक परिणाम है, तब तो हम दोनोंमें से किसीको कुछ कहना नहीं है। हाँ, बाकायदे एक आरोग्यशाला बनानेके आपके विचारका मुझे ध्यान है, लेकिन वह चीज तो अभी भविष्यके गर्भमें ही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४८) से। सी० डब्ल्यू० ९६८७ से भी; सौजन्य : आर० के० प्रभु

३६७. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

६ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तू मूर्ख भी है और सयानी भी, इसलिए एक ही विशेषण नहीं दे सकता। बोलना लगभग बन्द होना ही चाहिए। ऊँची आवाजसे बोलना बिलकुल ही बन्द। गाना भी सर्वथा बन्द। काम न चलनेपर भी धीमी आवाजसे बोलना पड़े तो बोला जाये, अन्यथा जो कहना हो वह लिखकर कहना चाहिए। ऐसा नहीं करेगी तो तुझे पछताना होगा।

१. डॉ० तलवलकरने तपेदिकसे पीड़ित कुसुमको तपेदिकके इन्जेक्शन लगानेकी सलाह दी थी।

तेरी खुराकमे ज्वार-वाजरा अनुकूल न पडे तो उन्हे वन्द कर देना चाहिए। मेरी इच्छा तो तुझे कच्चे दूधपर रखनेकी होती है। उसके साथ थोडे-से मुनक्के चवाकर चूसनेसे सन्तोष रहेगा। टमाटर तो हमारे यहाँ वारहो-महीने पैदा होने चाहिए। और जब भाजी मिले तव हरी भाजी उवाल कर ली जाये। इतने पर तू रहे तो और किसी चीजकी मुझे जरूरत नही मालूम होती। तेरी शक्ति जरूर कायम रहेगी। जाँच करके देखना, क्या हो सकता है।

किसनके समाचार दुखद है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३४) से। सी० डब्ल्यू० ६७७४ से भी, सौजन्य: प्रेमाबहन कटक

३६८. पत्र: लक्ष्मीदास पु० आसरको

६ अप्रैल, १९३३

आप आश्रममे रह सकेगे, यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई। इससे नारणदासको बहुत मदद मिलेगी।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९५३४) से, सौजन्य: छगनलाल जोशी

३६९. पत्र: मूलचन्द अग्रवालको

६ अप्रैल, १९३३

भाई मूलचन्दजी,

पत्नीके मोहकी वरदास करना।[1]

यदि लडकीका पतिमे खादी प्रेम है तो सभव है लडकीपर उसका प्रभाव पडेगा।

छोटेभाईको अपनेपर छोड देना चाहिए।[2]

अपना क्रोधको मारनेके लिए नित्य रामनाम जपना और क्रोध आवे ऐसे ही उस स्थानसे हट जाना।

बापूके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७३) से।

१. श्री मूलचन्द अग्रवालने लिखा था कि यद्यपि मेरी पत्नी खादी पहननेकी आदि हो गई है किन्तु वह अब भी दूसरे कपडे पहननेकी शौकीन है।

२. उसे तम्वाकू और भाँग-गाँजे आदिका व्यसन था।

३७०. पत्र : डॉ० जी० वी० देशमुखको

[७ अप्रैल, १९३३ के पूर्व][1]

प्रिय डॉ० देशमुख,

मुझे एक-दो बातोके बारेमे आपकी सहायता लेनेकी सख्त जरूरत आ पडी है।

(१) क्या अपनी मौत मरे हुए पशु और वध किये हुए पशुके मासमे कोई रासायनिक या शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे कोई अन्तर होता है? यदि होता है, तो क्या?

(२) आपकी जानकारीमे क्या कोई ऐसा चिकित्सा-शास्त्रीय कारण है जिसके आधारपर मासाहारी लोग भी अपनी मौत मरे हुए पशुके माससे बेहद नफरत करते है?

(३) यदि आपकी राय हो कि जो पशु उससे कुछ ही देर पहले अपनी मौत मरे हो जब उनके मासको खाया जाये, उनके और वध किये हुए पशुके मासमें कोई अन्तर नही रहता, तो क्या आप बतला सकते है कि दो या तीन दिन पहले मरे हुए पशु या चौबीस घटे पहले मरे हुए पशुके मासको ससाधित करनेसे कोई अन्तर पडेगा या नही?

(४) आपको शायद मालूम हो कि कुछ चमार लोग पशुओकी लाशे हासिल करनेके लिए उनको जहर खिला देते है और, कहते है, बादमे वे उनका मास भी खाते है। क्या जहरसे मारे गये पशुका मास खानेवाले को इससे किसी तरहकी कोई खराबी नही होगी? क्या मासमे जहरसे कोई खराबी पैदा नही होती, या फिर क्या इस तरहके भी कुछ जहर मौजूद है जिनको खिलानेसे पशु तो मर जाता है पर उसके मासपर कोई बुरा प्रभाव नही पडता?[2]

आप बम्बई नगरनिगमकी एक-एक बात जानते-समझते है इसलिए आपको बूचडखानोके बारेमें भी सारी जानकारी है। इसलिए मै चाहता हूँ कि आप मुझे मरे हुए पशुओकी खाल उतारने और शवके विभिन्न अगोको अलग-अलग करनेकी वैज्ञानिक विधि और सभी अगोके अलग-अलग निबटारेका आर्थिक दृष्टिसे सबसे अच्छा तरीका बतलायें। आपको मालूम होगा कि बूचड़खानेमे वध किये गये पशुओके मासके अतिरिक्त अन्य चीजो — जैसे खालो, हड्डियो, अँतडियो आदिका निबटारा कैसे किया जाता है।

१. देखिए "पत्र : डॉ० जी० वी० देशमुखको", ७-४-१९३३। उसमें गाधीजी ने इस पत्रके उत्तरमें भेजे गये डॉ० देशमुखके पत्रकी प्राप्तिकी सूचना दी है।

२. इन प्रश्नोंके उत्तरमें डॉ० देशमुख द्वारा लिखे गये पत्रके उद्धरणोंके लिए देखिए परिशिष्ट।

यदि बूचड़खानेके लोग भी इसके बारेमें पूरी जानकारी न जुटा पाये तो मैं चाहूँगा कि और जहाँसे भी मिल सके आप जाकर इसके बारेमें मेरे लिए जानकारी हासिल करें।

आशा है, आपको अंग्रेजी 'हरिजन' मिल रहा होगा। यदि हाँ, तो आपने "मरे ढोरोंका निवटारा"[1] के सम्बन्धमें मेरा लेख अवश्य पढ़ा होगा। यदि न पढ़ा हो, तो कृपया पढ़ जाइए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ८-४-१९३३

३७१. कानून और मन

एक सनातनी जो मन्दिर-प्रवेशको मानते हैं लेकिन कानूनमें जिनका विश्वास नहिं है वे लिखते हैं:

> जबतक मनुष्यके हृदयसे अस्पृश्यताके भाव भली-भाँति दूर न होंगे, तबतक वह निर्मूल नहीं हो सकती। इसलिए इस अस्पृश्यताको कानूनका दण्ड दूर नहीं कर सकता। कानूनकी शक्ति तो शरीरतक ही परिमित होती है, आधिभौतिक शक्तियाँ हृदय-अवलम्बिनी नहीं होतीं। अन्तरात्मापर सरलता-पूर्वक प्रभाव डालनेवाली एक आध्यात्मिक शक्ति ही है, जिस शक्तिके अंग श्रद्धा, भक्ति, सरलता तथा प्रेम हैं। जहाँ प्रेम या भक्तिका प्रभाव रहेगा, वहाँ अस्पृश्यताका नाम भी न रहेगा। प्रेम और भक्तिके साम्राज्यमें नीच और ऊँचका नामतक नहीं है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि गीता, उपनिषद् और भागवत-धर्मके आधारपर स्थान-स्थानपर योग्य और अनुभवी विद्वानों द्वारा अस्पृश्यता-निवारणका आयोजन कराया जाये तो उचित होगा। इससे अस्पृश्यताके भाव हृदयसे नष्ट हो जायेंगे। कानूनके द्वारा निश्चय ही अनेक संकटोंके उपस्थित होनेका भय है। परस्पर दलबन्दियाँ होकर विरोध खड़े हो जायेंगे। अपनी हठधर्मी पूरी करनेके लिए असनातनी भी सनातनियोंमें नाम लिखायेंगे। शैव, शाक्त, वैष्णवका बखेड़ा खड़ा होगा और लड़ाई-झगड़े तक नौबत पहुँचेगी। अशिक्षित समाजमें यह सब सम्भावना हो सकती है। केवल मन्दिर-प्रवेश तथा देव-दर्शन ही अस्पृश्यता-निवारणके हेतु नहीं हो सकते, क्योंकि अस्पृश्यताका सम्बन्ध मनुष्यके मनसे है और कानून मनमें परिवर्तन

१. देखिए "मरे ढोरोंका निवटारा", १२-३-१९३३।

नहीं ला सकता। मैं प्रायः भारतीय सनातन धर्मावलम्बियोसे थोड़ा-सा सम्बन्ध रखता हूँ। जहाँतक मेरा अनुभव है, एक भी सनातनधर्मी इस कानूनसे प्रसन्न नहीं है।

उपरोक्त लेखमें जो लिखा है उसका भाव सुंदर है लेकिन कानूनके बारेमें लेखककी गेर-समझ है। निःसंदेह अस्पृश्यता मनकी भावना है। वह कानूनसे मिट नहि सकती। कानून शरीरका स्पर्श कर सकता है। मनका कभी नहि। मनका स्पर्श प्रेमसे ही, दलीलसे ही हो सकता है। और धर्मका प्रचार और किसी साधनसे नहि हो सकता है, न होना चाहिए।

लेखकको झगडाका डर है। यह भी मेरी दृष्टिसे मिथ्या है क्योंकि कोई बलात्कारसे मंदिर खुलवाना नहि चाहते है। जो मंदिर खुलेंगे वह जनताके अभिप्रायसे खुलेंगे। जिस जगह बहुत लोग हरिजनको मंदिरमे ले जानेके लिये तैयार होगे वही मंदिर खुलेंगे और कही नहि।

यदि ऐसे ही है तो फिर कानून क्यो? कानून इस कारण चाहिये कि आज तो किसी जाहर मंदिरमे जानेवाले सब हिंदु, मंदिरके सब पूजारी और रक्षक चाहे कि वहाँ हरिजन दर्शन करे तो भी कानून रोकता है। यह कोई संशयकी बात नहि है लेकिन सिद्ध हुई बात है। इस कानूनको रद्द करनेके लिये कानूनकी आवश्यकता रहती है। कानूनी प्रतिबंध कानूनसे ही दूर हो सकते हैं यह तो प्रसिद्ध बात है। हा, जो नया कानूनकी बात चल रही है उसमें जबरदस्ती न होने पाय। एक तरफकी जबरदस्तीको हटाकर दूसरी तरफकी दाखल न की जाय। जहा तक मैं समझता हूँ दोनोमें से एक बिलमे भी जबरदस्तीका कोई प्रश्न नहि है। दोनोमे से कानूनी हस्तक्षेपको हटानेकी बात है।

लेकिन आज नाफेरवादीका [अपरिवर्तनवादी] ऐसा आग्रह बन रहा है कि वे किसी [की] बात सुनना नहि चाहते हैं। गालिया देते है. मारपीट कर लेते है, असत्य लिख रहे है। सुधारक क्या करे? यदि सुधारक धर्मकी रक्षा करना चाहते है तो उनका कर्तव्य है कि नाफेरवादीका सब जबरदस्तीको खामोशीसे बरदास्त करे, द्वेषका उत्तर प्रेमसे देवे, असत्यका सत्यसे, मारपीट सहन कर लेवे लेकिन साथ-साथ कर्तव्यका पालन करें — बूरा कानूनको हटानेकी चेष्टा करते रहे, खानगी मंदिर खुलवानेकी चेष्टा करे और जिस मंदिरमे हरिजन नहि जा सकते है उसमे वे भी न जाँय और हरिजनोपर दूसरा जो कष्ट पडता है उसे दूर करनेका प्रयत्न करे।

मैंने बहुत बार लिखा है और कहा है कि मेरे लिये अस्पृश्यता निवारण प्रायश्चित्तकी बात है। कोई धर्मकी अशुद्धि बगैर शुद्धिके दूर नहि हो सकती है। अस्पृश्यता हिंदु धर्मकी सबसे बडी अशुद्धि है उसको दूर करनेके लिये हजारो हिंदु अनशन करे तो मैं उसको कोई बडी बात नहि मानुंगा — संभव है कि इतनी आहुती पर्याप्त न हो। तुलसीदासजी कहते है कि शिवजीको पानेके लिये पार्वतीजी को बहोत

अनशन करना पडा था, जब मनुष्यको धर्म सकट आया है तब उसने ईश्वरकी आराधाना अनशनादि तपसे की है। तुलसी दासजीने लिखा है

तप बल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तप बल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तप बल संभु करहिं संघारा।
तपबल शेषु धरइ महि भारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥'[1]

हरिजनसेवक, ७-४-१९३३

३७२. तीन उलझनें

एक शिक्षक पूछते है·

१. वर्ण व्यवस्थाके अनुसार भंगी और चमार किस वर्णमें गिने जायेंगे?

२. एक धन्धा करनेवाला दूसरे धन्धेवाले के साथ विवाह करे या नहीं?

३. अस्पृश्यताको जब मिटाना ही है, तब हरिजनोंके साथ खान-पान भी क्यों न किया जाये?

सच पूछा जाये तो इन प्रश्नोके उत्तर किसी-न-किसी तरह 'हरिजनसेवक' में आ गये है। तो भी उत्तर देनेसे और अधिक स्पष्टीकरण हो जानेकी सभावना समझकर ऊपरके प्रश्नोके उत्तर लिखता हूँ।

मेरा यह अभिप्राय है कि वर्ण-व्यवस्था वस्तुत आज रही नही है। सभी वर्णोने अपना-अपना धर्म छोड दिया है। फिर शास्त्र कहता है और बुद्धि भी समर्थन करती है कि वर्णके गुण जब छूट जाते है, तब वर्ण लुप्त हो जाता है। आज वर्णोने अपना धर्म छोड दिया है। इसलिए वर्णोका सकर हो गया है। यदि कोई वर्ण कुछ बच रहा है, तो वह शूद्र वर्ण है, और उसी वर्णके अन्तर्गत सब स्पृश्य और अस्पृश्य माने जाने चाहिए। यदि यह ठीक नही है, तो सब लोग अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार अपना-अपना वर्ण पसन्द कर ले। मतलब यह कि वर्णधर्म नही रहा। धर्ममे इस तरह पसन्दगीके लिए स्थान नही हो सकता, क्योकि धर्म अधिकारका विषय नही, वह तो केवल कर्तव्यका ही विषय है। धर्ममे न कोई उच्च हो सकता है, न नीच।

दूसरा प्रश्न है विवाहका। मैंने कई बार कहा है कि वर्णके साथ विवाहका कोई ऐसा अनिवार्य सम्बन्ध नही है। विवाह तो अपनी-अपनी खुशीकी बात है। लेकिन क्योकि लोग अपने पडोसियोके साथ सम्बन्ध जोडते है, अपने जैसे लोगोसे सम्बन्ध करते है, इसलिए सदा ऐसा ही होता रहेगा कि अपने-अपने धन्धेवालो के साथ विवाह-सम्बन्ध लोग करेंगे।

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड-७२।

तीसरा प्रश्न है खान-पानका। अस्पृश्यता-निवारणकी मर्यादा जो आज रखी गई है उसमे रोटी-बेटी व्यवहारको स्थान नही दिया गया है और उचित भी यही है। खान-पान इत्यादि तो खुशीका सौदा है। जहाँ मन बोलेगा, वही मनुष्य खान-पान रखेगा। सयम-धर्ममे हमेशा मर्यादा रहेगी। प्रत्येक मनुष्य चाहे जहाँ भोजन नही करेगा। इस सम्वन्धमे कोई निश्चित नियम नही बन सकता। सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि इस सम्वन्धमे भी उच्च-नीचका भाव दूर हो जाना चाहिए। आज तो हिन्दू धर्ममे छुआछूत और नीच-ऊँचकी ही बात रह गई है। सब अपनेको उच्च मानकर और दूसरोको नीच समझकर न उनके हाथकी रोटी खाते है, न उनका छुआ पानी ही पीते हैं। इसमे मैं कोई धर्मकी बात नही देखता। इससे तो हम ससारमे उपहासके ही पात्र बन रहे है।

हरिजन-सेवक, ७-४-१९३३

३७३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

७ अप्रैल, १९३३

प्रिय चार्ली,

तुम्हारे पत्र तथा सहपत्र मुझे मिल गये और 'मॉडर्न रिव्यू'[1] के एक पुराने अकमे प्रकाशित तुम्हारे लेखकी प्रति भी।

'आमरण अनशन' के विरुद्ध नैतिक घृणाकी भावनाको मै समझता हूँ, बल्कि उसकी कद्र भी करता हूँ। मेरे मनमे भी आमरण अनशनके विरुद्ध यदि उतनी नही तो कुछ घृणा तो है ही, पर मै उससे विचलित नही होता। मैंने अपनी इच्छाके विरुद्ध अनेक अन्य काम भी किये है और आज भी कर रहा हूँ, इसलिए कि मैं जब ईश्वरकी इच्छाको बहुत ही स्पष्ट रूपमे जान लेता हूँ तब उसके सामने मैं अपनी इच्छाको नगण्य मान लेता हूँ। मुझे जो ईश्वरीय इच्छा लगती है, वह वास्तवमे ईश्वरकी ही इच्छा है, शैतानकी नही — यह सुनिश्चित करनेके लिए मैं मनुष्यके लिए जितना शक्य है उतना प्रयत्न अवश्य करूँगा। परन्तु मनमे एक बार पूरी तरह स्पष्ट हो जानेपर मैं अपनी इच्छाके मुकाबले उस ईश्वरीय इच्छाके सम्मुख नतशिर होकर उसका पालन करनेमे प्रसन्नता अनुभव करता हूँ, फिर चाहे एक भी मनुष्य उसमे मेरा समर्थन न करे। मुझे इसमे रचमात्र भी शका नही कि हिन्दू धर्ममे इस प्रकारके उपवासका एक अपना निश्चित स्थान है, जो उचित ही है। पर यह एक विशेषाधिकार है जो चन्द ही लोगोको मिल पाता है। और जब ईश्वरकी इच्छाके पालनके लिए ऐसा उपवास किया जाता है तब वह एक महती शक्ति बन जाता है। हाँ, आमरण उपवास शब्द अवश्य कुछ गडबड़ शब्द है। मैंने पहले जहाँ भी

१. यह लेख मॉडर्न रिव्यूके मार्चके अकमें "जातीय अलगाव और अस्पृश्यता" शीर्षकसे छपा था।

इस शब्दका प्रयोग किया, इसका एक निश्चित अर्थ था। पर अब सदर्भसे काटकर इस शब्दका उपयोग किया जा रहा है और इस तरह यह निश्चय ही बडा भोंडा लगता है। लेकिन आमरण अनशन एक वास्तविकताके रूपमे मौजूद तो है ही और उसका वास्तविक अर्थ भी सर्वथा सुनिश्चित है और तुम एक तरहसे कह सकते हो कि वह 'आमरण अनशन'की अपेक्षा 'नव-जन्म-प्राप्तिपर्यन्त अनशन' ही अधिक है।

फिर भी, मै तुम्हारे पत्र और अग्रेजोके रुखके बारेमे दी गई जानकारीकी कद्र करता हूँ। मै अवश्य चाहता हूँ कि इस सघर्षमे हमे अग्रेजोकी सहानुभूति मिले। मै यह भी अवश्य चाहता हूँ कि वे मेरी बात समझे। इसलिए तुम इस सम्बन्धमे जितनी स्पष्टवादिता बरतोगे या खुले मनसे जितना भी अधिक मुझे बताओगे, अधिक नही होगा।[1] ये चन्द अंग्रेज मित्र जो भी राय देगे उसका मै कभी भी गलत अर्थ नही लगाऊँगा।

तुमने किर्बी पेजका जो लेख भेजा है, उसे मै समय मिलते ही देख जाऊँगा और यदि उसके बारेमे कहने योग्य कुछ सूझ पड़ेगा तो उसे लिखित रूप दे दूँगा।

आशा है, तुम्हारे भाईने खराब दाँत निकलवा दिये होगे और इससे उन्हे लाभ भी हुआ होगा।

वेरियरका मन पलटनेकी बात तो तुमको सब मालूम ही है। तुम्हारा आशीर्वाद उसतक पहुँचनेसे पहले ही उसके विचार बदल चुके थे। तुम इसका कारण भी जानते ही हो। मै तो उन लोगोको शादीपर आशीर्वाद देनेके लिए भी तैयार था, लेकिन कहना पड़ेगा कि इस परिवर्तन पर मैने उन्हे कही अधिक प्रसन्न मनसे आशीर्वाद दिया है। सब-कुछ वेरियरके अपने निर्णयपर निर्भर था। मैने उससे कहा था कि यदि वह महसूस करता हो कि विवाह करना उसकी एक मानुषिक आवश्यकता है, तो वह अवश्य विवाह कर ले, भले ही दूसरे लोग उसके इस कामका गलत अर्थ लगाये। लेकिन वेरियर और मेरी दोनोके विचारोमे एक साथ परिवर्तन हुआ और इसमे दूसरे किसीकी भी कोई प्रेरणा बिलकुल नही थी।[2]

हृदयसे तुम्हारा,
मोहन

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३०१)से, बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल स० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ २८१-८२ से भी।

१. गांधीजी ने इनमें से सी० एफ० एन्ड्र्यूजका एक पत्र १५-४-१९३३के हरिजनमें उद्धृत किया था; देखिए "प्रकट चिन्तन", १५-४-१९३३ ।

२. वेरियर एल्विन और मेरी जिलेटने विवाह न करनेका निर्णय इस विचारसे किया कि हो सकता है, आगे चलकर पारिवारिक विवशताओंमें फंसकर वे समाज-सेवाके लिए पर्याप्त समय न निकाल पायें।

३७४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

७ अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपका २८ मार्चका पत्र मिला।

किसी भ्रामक धारणाके कारण हिन्दू धर्मका किसी समय परित्याग कर देनेवाले यदि स्वेच्छासे अब फिर हिन्दू धर्म अपनाना चाहे तो मुझे इसपर कोई आपत्ति नही। पर मेरी समझमे यह नही आता कि उनके वापस लौटनेके सिलसिलेमें कुछ खर्च बैठनेकी क्या बात है। यदि उन लोगोने किसी भ्रामक धारणाके वशीभूत होकर हिन्दू धर्मका परित्याग किया था, तो अपनी भूल समझ लेना अपने-आपमें उनके लिए एक पर्याप्त प्रायश्चित्त है और उसके लिए विधिवत् कोई समारोह करना जरूरी नही। यह तो हुआ इस प्रश्नके गुण-दोषकी दृष्टिसे विचार करनेपर मेरा उत्तर। अब मान लीजिए कि कुछ खर्च पड़ता ही है और वापस लौटनेवाले डोम लोगोसे उम्मीद नही कि वे उसे भर सकेगे। ऐसी स्थितिमे हरिजन सेवक सघ वह खर्च क्यो न उठाये या उसका एक हिस्सा क्यो न दे? मेरा उत्तर होगा – 'नही'। कारण, मैं समझता हूँ कि सघका अपना एक सुनिश्चित कार्य-क्षेत्र है — हिन्दू हरिजनोकी सेवा करना। इस समय जो लोग हिन्दू नही हैं उनसे सघका कोई वास्ता नही। भटके हुए लोगोके वापस लौट आनेके बाद ही सघका कार्यक्षेत्र शुरू होता है। वापस लानेका काम तो एक अलग, बिलकुल ही दूसरी संस्थाका है। इसलिए इसमे किसी प्रकारके भयका प्रश्न नही उठता है, बल्कि सवाल सिर्फ अपनी प्रवृत्तियोको अपने मूल उद्देश्यतक सीमित रखनेका है। डोम लोगोका हिन्दू धर्ममे वापस लौटनेका सिलसिला चाहे जितना सीमित हो, वह भी एक प्रकारकी 'शुद्धि' ही है, और चरम ढंगकी शुद्धि तथा इस सामान्य ढंगकी शुद्धिमें अन्तर केवल मात्राका ही है। और यदि संघ एक बार इस शुद्धिको अपने कार्यक्षेत्रमें शामिल कर लेगा तो फिर शुद्धिके अन्य रूपोमें सहायता न देना उसके लिए अत्यन्त कठिन हो जायेगा। इसलिए डोमोका हिन्दू धर्ममे फिर लौट आना वैसे कितना ही वाछनीय क्यो न हो, मेरा स्पष्ट मत है कि इसको प्रोत्साहन देना हरिजन सेवक सघके बुनियादी कार्य-क्षेत्रसे बाहरका काम है।

टीटागढ़ पेपर मिल्सके विज्ञापनके बारेमें मेरा बिलकुल स्पष्ट मत है कि हम किसी भी रूपमे उनका विज्ञापन नही दे सकते, और अगर यहाँ सस्ती दरपर कागज मिल सकनेका प्रश्न है, तो वह तो हम बिना किसी कठिनाईके अन्य मिलोसे भी ले सकते हैं। अंग्रेजी संस्करणके लिए हमें बाजारसे सस्ती दरपर ही कागज मिल रहा है। दर और भी घटवाई जा सकती थी, लेकिन मुझे लगा कि और अधिक रियायत मॉगना अनुचित होगा।

हिन्दी 'हरिजन' के बारेमे मैं आपको बतला ही चुका हूँ कि वह बडे सतोषप्रद ढगसे चल रहा है और यदि आप इसी प्रकार प्रयत्नशील रहे, तो निस्सदेह आप उसे महीने-भरमे ही अपने पैरो खड़ा कर देगे। अग्रेजी 'हरिजन' के अगले अकमे आपको इसके बारेमे एक टिप्पणी मिलेगी।[1]

हृदयसे आपका,
बापू

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल सख्या ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ २१५-१६ से; एस० एन० २०८६१ से भी

३७५. पत्र : डॉ० जी० वी० देशमुखको

७ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० देशमुख,

आपने मेरे प्रश्नोंका पूरे विस्तारसे बडा ही विद्वत्तापूर्ण उत्तर दिया है, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे वह इतना पसन्द आया कि 'हरिजन' के अगले अकमे ही मैंने आपके पत्रके लिए गुजाइश निकाल ली है, हालाँकि मैं उसका सम्पादन-कार्य पहले ही पूरा कर चुका था। बेशक, आप पूरा पत्र-व्यवहार प्रकाशनके लिए स्थानीय समाचार-पत्रोको दे सकते है।

मैं एक घरेलू मामलेके बारेमे आपसे सलाह लेना चाहता हूँ। आप जानते ही है कि सरदार वल्लभभाईकी नाकमें कुछ तकलीफ चल रही है। इधर कई महीनोसे वे उससे परेशान है, लेकिन हालमे तो तकलीफ बर्दाश्तसे बाहर हो गई है — हम देखनेवाले लोगोको तो यही लगता है। आप जानते ही हैं कि शिकायत करना उनकी आदत नही, लेकिन उनके साथी, हम लोग समझते है कि वे कितने कष्टमे है। जेलके चिकित्सा-अधिकारियोसे जितना बन पडा सब कर चुके है। पर उनकी दवाओसे कोई लाभ नही पहुँचा है। मैं देखता हूँ कि उनको लगातार नाक साफ करते रहना पडता है और वह हमेशा थोडी-बहुत बहती ही रहती है। इसके लिए वे बड़ा तौलिया इस्तेमाल करते है, जो चौबीस घटेमे सारा-का-सारा काफी गन्दा हो जाता है। बडे तौलियासे मेरा मतलब है नहानेका तौलिया, जो आम तौरपर मध्य-वर्गके हिन्दू घरोमे इस्तेमाल किया जाता है। मुझे लगता है कि यदि वे दिनमें तीन-चार बार गरम पानीसे नाक धो डाले तो बहना कुछ कम हो जायेगा और नाक साफ करनेमे इतना कष्ट नही होगा। लेकिन किसी डाक्टरने उनसे कह दिया है कि नाक धोनेसे उसमे शायद खुश्की पैदा हो जायेगी। इसलिए तब बीमारीवाले हिस्सेमे तकलीफ बढ जायेगी। मुझे सरदार वल्लभभाईकी तरहकी शिकायत तो कभी नही

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ८-४-१९३३।

रही, पर मैं अपनी नाक नियमित रूपसे धो लेता हूँ और कभी-कभी नाकसे पानी चढाकर मुँहसे निकालता भी हूँ। मैं इसी तरह अपने-आपको स्वच्छ और इस तरह-की तकलीफसे मुक्त रख पाया हूँ। किसी समय मैं पानीमें थोडी लाल दवा और कभी-कभी 'चिनोसाल'के कुछ दाने घोलकर उस मिश्रणसे भी नाक धोता था। पता नही, आप इस बारेमें क्या राय देंगे कि सादा गरम पानीसे या उसमें कुछ मिलाकर उसके मिश्रणसे नाक धोनेसे सरदारको कोई लाभ होनेकी सम्भावना है या नही। दूसरा कोई सुझाव हो, तो लिखनेकी कृपा करें। इस सूचनाको प्रकाशनके लिए मत दीजिए। इसे मैंने अपनी ही तसल्लीके लिए लिखा है।

सार्वजनिक किस्मके और सार्वजनिक स्वास्थ्यसे सम्बन्धित एक-दो प्रश्न और है जो मैं अभी पूछना चाहता हूँ, लेकिन आपका इतना अधिक समय लेना कहीं अनुचित न हो।

हृदयसे आपका,

[पुनश्च :]

आपका कहना है कि खाल और चर्बीको छोड़कर बाकी सभी चीजोंको खाद बनानेके लिए जमीनमें दबा देना चाहिए। पर अँतडियाँ तो ताँत बनानेके और अन्य कामोंमें आती है। और हड्डियोको सुखाकर पीस देनेपर वे जितनी जल्दी गल जाती है, क्या वे सीधे गाड़ देनेपर भी उतनी जल्दी गल जाती है? नगरपालिकाके बूचड़-खानोंमें क्या करते हैं?

डॉ० जी० वी० देशमुख
३९, पोद्दार रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५९)से।

३७६. पत्र : नारणदास गांधीको

७ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी बडी डाकके बादकी डाक भी मिल गई। उसका लिफाफा फट गया था। डाकखानेकी ओरसे उसपर यह टिप्पणी थी कि पत्रोंके गिर जानेका डर है। या तो वहाँ कपड़ेका अस्तर देकर मजबूत लिफाफे स्वयं बनवाओ या उतना पैसा खर्च करके दूसरोसे बनवाओ या फिर पत्रोको धागेसे बाँधकर भेजो। धागेसे बाँधनेमें समय ज्यादा जायेगा और यदि हम समयको धन मानें तो अन्तमें इस रीतिको अपनानेसे हमारा नुकसान ही होगा। पुरानी हो गई महीन खादीके टुकड़े इकट्ठे करके उनके सौ लिफाफे पहलेसे बनवा लो तो यह समय नष्ट हुआ नही माना जायेगा।

रमाबहनने शिकायत की है कि धीरूका वजन नही बढ रहा है, अत तुमने पण्डितजी के कहनेसे उसके लिए एक तोला घी अधिक देनेका कूपन तो दिया किन्तु अगले मासमे उसके पैसे काट लिये। रमाबहनकी यह माँग कि खर्चकी राशि ११से बढाकर १२ रु० कर दी जाये नामजूर कर दी गई। इस विषयपर तुम्हारे साथ बातचीत करनेमे उसे यह सोचकर डर लगता है कि कही उसका अपमान न हो। यह उसके पत्रका सार है। मैंने उसे उत्तर दिया है, उसे पढना। उसके पास जाना और उसे जो-कुछ कहना हो सो सुनना। उसकी शिकायतके बारेमें अपना मत मुझे लिखना। रमाबहनका हाथ कैसा है? . . [1]आज मिलने आ रहा है। उससे मिलनेके बाद शायद मैं तुम्हे एक और दु खद प्रसगका समाचार दूँ। मेरा खयाल है कि अब वह आश्रम तो छोड ही देगा।

कल यहाँसे जो डाक भेजी थी वह तो मिल गई होगी।

बापू

[पुनश्च :]

साथके पत्र उमा, अमीना, मणि, कुसुम।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से; सी० डब्ल्यू० ८३५१ से भी; सौजन्य . नारणदास गांधी

३७७. पत्र : मुन्नालाल शाहको

७ अप्रैल, १९३३

भाई मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र पढकर हम सभीको प्रसन्नता हुई। तुम्हे ठीक याद है। पाण्डिचेरी के अपने विशेष अनुभव लिखना। आशा है तुम अच्छी तरह जम गये होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६४७)से।

१. नाम छोड दिया गया है।

३७८. टिप्पणियाँ

"हरिजनसेवक"

पाठकोंको मालूम होगा कि 'हरिजन सेवक' नामसे 'हरिजन' का एक हिन्दी संस्करण भी निकलता है। उसका प्रकाशन दिल्लीसे हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस करता है।

अंग्रेजी संस्करण तो स्वावलम्बी हो गया है, लेकिन हिन्दी अभीतक नहीं हो पाया है। अगर किसी संस्करणमें घाटा आना ही हो तो मैं यही चाहूँगा कि अंग्रेजीमें ही आये, क्योंकि अस्पृश्यताके विरुद्ध असली प्रचार सामान्य जनताके बीच करना है और इसलिए सन्देश भी उसी तक पहुँचाना है। इसलिए विभिन्न भारतीय भाषाओंमें सही जानकारीका प्रकाशन आवश्यक है और चूँकि हिन्दी निर्विवाद रूपसे सबसे ज्यादा लोग समझते और बोलते हैं, इसलिए हम चाहेंगे कि हिन्दी संस्करण 'सेवक' की ग्राहक-संख्या बड़ी हो। धीरे-धीरे उसमें सुधार हो रहा है और चूँकि वह सारतः न्यूनाधिक वैसा ही होता है जैसा कि अंग्रेजी संस्करण, इसलिए अंग्रेजी संस्करणकी अधिकांश सामग्री उसमें भी होती है और उसके अलावा हिन्दी पाठकोंकी विशेष रुचिके उपयुक्त और भी सामग्री रहती है। फिलहाल १००० प्रतियोंकी बिक्री होती है। इसे स्वावलम्बी बनानेके लिए कमसे-कम २५०० प्रतियोंकी खपत होनी चाहिए। मुझे आशा है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रोंकी विभिन्न संस्थाएँ हिन्दी संस्करणकी ग्राहक-संख्या बढ़ानेकी कोशिश करेंगी। कार्यकर्ताओंको यह सूचना देनी चाहिए कि उनके अपने-अपने इलाकोंमें किस प्रकारका साहित्य चाहिए।

दो संशोधन

रत्नागिरिके दो मन्दिरोंमें हरिजनोंको प्रवेशाधिकार मिल गया है, यह खबर गत २५ फरवरीके 'हरिजन' में प्रकाशित हुई थी। और ४ मार्चके अंकमें भी यही समाचार फिरसे निकला था। इस भूलको दिखाकर नवप्रकाशित 'सनातनी' पत्रने मजाक उड़ाया है। यह ठीक ही है। यह एक स्पष्ट भूल है। यह भूल सुझानेके लिए हम 'सनातनी' के कृतज्ञ हैं। किन्तु उक्त पत्रका यह निष्कर्ष कि यदि रत्नागिरि की ही तरह मन्दिरोंके दरवाजे हरिजनोंके लिए खुलते चले जायें, तब तो मन्दिर-प्रवेश बिलकी कोई जरूरत ही न रह जायेगी, निराधार है। बात यह है कि रत्नागिरिके उक्त मन्दिर निजी मन्दिर थे। इसके सिवा, यदि किसी एक सार्वजनिक मन्दिरके ट्रस्टी अपने मन्दिरका दरवाजा हरिजनोंके लिए खोल दें और इसके लिए अपने खिलाफ मुकदमा चलाये जानेका खतरा उठानेके लिए भी तैयार हो जायें तो भी यह आशा नहीं की जा सकती कि दूसरे मन्दिरोंके ट्रस्टी भी ऐसा करने लगेंगे।

दूसरा संशोधन हमें कटककी श्रीमती रमादेवीकी ओरसे करना है। उन्होंने बतलाया है कि अपने कार्यका जो सामान्य विवरण उन्होंने भेजा था[1] उसमें उनका आशय यह कहनेका नहीं था कि वह खुद हरिजनोंको शिक्षा देती हैं। हरिजनोंको पढ़ानेका वास्तविक कार्य तो उनके साथ काम करनेवाली बहनें ही करती हैं।

भोर राज्य और अस्पृश्यता

अखबारोंमें यह खबर आई थी कि भोरके राजा साहबने, जहाँतक कानूनका सम्बन्ध है, अपने राज्यमें अस्पृश्यताको समाप्त कर दिया है।

अब मुझे १ नवम्बर, १९३२ की इस उद्घोषणाका पाठ मिल गया है। उद्घोषणा जितनी सम्पूर्ण हो सकती थी उतनी सम्पूर्ण है। उसमें प्रजाको यह सलाह दी गई है कि आज जैसी अस्पृश्यता बरती जाती है उसे वह अपने ही धर्मके उत्थानकी खातिर त्याग दे।

जिन लोगोंने मुझे इस उद्घोषणाकी प्रति दी है, उन्होंने भोर राज्यके सुधागढ़ ताल्लुकेके सुधारकोंकी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें एक मोटी रिपोर्ट भी मुझे दी है। उन्होंने अपने कामके बारेमें अपनी आशाओं और कठिनाइयोंका भी उल्लेख किया है। कार्यकर्ता थोड़े-से हैं और अस्पृश्यता-निवारणके सिलसिलेमें भारत-भरमें जो जबरदस्त प्रयत्न आरम्भ हुआ है, उनके परिणामस्वरूप भोर राज्यके कट्टरपन्थी लोग भी जाग उठे। फलतः सुधारकोंको अप्रत्याशित विरोधका सामना करना पड़ा। विरोध इतना तीव्र था कि खुद हरिजन लोग भी बहुत भयभीत हो उठे और ये थोड़े-से सुधारक उनकी जो सेवा करनेके लिए तैयार थे और कर सकते थे उसका लाभ भी उन्होंने नहीं उठाया।

उन कठिनाइयोंको गिनाकर और सुधारकों द्वारा प्राप्त सफलताका वर्णन करके 'हरिजन'का ज्यादा स्थान और पाठकोंका समय लेनेकी जरूरत नहीं है। उनकी रिपोर्ट पढ़कर मेरे मनमें यह धारणा बनी है कि जबतक सुधारक लोग खुद भी बहिष्कार, जाति-निष्कासन और शायद सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अपनी सम्पत्ति तक की क्षति सहनेको तैयार नहीं हैं तबतक उन्हें पूर्ण सफलताकी आशा नहीं करनी चाहिए। चैन और आरामसे जीते हुए कोई ठोस धार्मिक सुधार नहीं कर सकता। हमें यही समझकर चलना चाहिए कि कट्टरपन्थी लोग हृदयसे ऐसा मानते हुए कि उनका धर्म खतरेमें है, हर कदमपर लड़ेंगे और सुधारकोंको चैन नहीं लेने देंगे। उन्हें तो यही माननेकी शिक्षा दी गई है कि मानव-समाजके एक बहुत बड़े हिस्सेको सदाके लिए अस्पृश्यताकी स्थितिमें डाल रखना और इस स्थितिसे उत्पन्न कष्टोंको भोगते रहनेके लिए मजबूर करना इनके प्राक्तन पापोंका समुचित प्रतिफल है। उन्हें ऐसा माननेमें भी कोई झिझक नहीं होगी कि जो लोग अस्पृश्योंके कन्धोंसे यह जुआ उतारना चाहते हैं उन्हें भी अपने इस दुष्कर्मका ऐसा ही प्रतिफल मिलेगा, और हो सकता है, खुद उनके दृष्टिकोणसे उनका ऐसा सोचना सही भी हो। इसलिए जो

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-३-१९३३ के अन्तर्गत उपशीर्षक "हरिजन-सेवामें कटककी महिलाओंका योगदान"।

सुधारक धार्मिक निष्ठाके साथ ऐसा मानता हो कि यह सुधार आवश्यक है, उससे अपनी प्रवृत्तियोके लिए ऐसे तमाम परिणामोको झेलनेकी अपेक्षा की जाती है, और अगर सारे भारतमे ऐसे सुधारक पर्याप्त सख्यामे तैयार हो जायें तो कट्टरपन्थियोके विरोधके बावजूद सफलता निश्चित है। कारण, मै यह मानता हूँ कि सत्य और समयका रुख सुधारकोके साथ है, और जहाँ इन दोनोका मेल सुनिश्चित हो वहाँ इससे कोई फर्क नही पडता कि सुधारक कम है या ज्यादा।

थोरोने कितना सच कहा है कि 'ससार-भरमे जितने भी सुधार हुए है, सबको पहले किसी एक ही व्यक्तिने आरम्भ किया था।'

[अग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

३७९. हरिजन और मन्दिर-प्रवेश

अभी कुछ दिन हुए राव बहादुर एम० सी० राजाके नेतृत्वमे हरिजनोके एक शिष्टमण्डलने मन्दिर-प्रवेश विधेयकोके सम्बन्धमे परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयसे मुलाकात की। उनके निवेदनके निम्नलिखित अश[1] पाठकगण रुचिसे पढेगे।

उपर्युक्त अशोको देखते हुए किसीका ऐसा कहना तो बिलकुल निष्ठुरता ही मानी जायेगी कि हरिजन लोग मन्दिर-प्रवेश नही चाहते। हाँ, हरिजनोके आर्थिक एव राजनीतिक उत्थानकी तुलनामे मन्दिर-प्रवेशके अधिकारपर कितना जोर दिया जाये, इस सम्बन्धमे निस्सन्देह मतभेद हो सकता है। लेकिन मन्दिर-प्रवेशका विरोध तो डॉ० अम्बेडकर भी नहीं करते। यदि मन्दिर-प्रवेशके लिए कोई आन्दोलन न चलाया जाये तो सवर्ण हिन्दुओके विरुद्ध इस प्रतिबन्धको लेकर आरोप लगानेवालो मे सबसे आगे वही होगे। तथ्य यह है कि मन्दिर-प्रवेश किसी अन्य क्षेत्रमे हरिजनोके उत्थान का कोई विकल्प नही है। धार्मिक अस्पृश्यता मिट गई है और हरिजन अब हिन्दू समाजसे बहिष्कृत नही है, इस बातकी अनिवार्य कसौटी मन्दिर-प्रवेशका अधिकार ही है। ऐसा सोचना गलत न होगा कि हरिजनोके आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टियोसे

१. इन अंशोंका अनुवाद यहाँ नही दिया जा रहा है। शिष्टमण्डलने अपने निवेदनमें मोटे तौरपर ये बातें कही थीं: हमारी सामाजिक मुक्तिके लिए मन्दिर-प्रवेशका अधिकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दू-धर्ममें जबतक हमारे दर्जेमें सुधार नही होता, तबतक हम स्थायी तौरपर मुक्त नही हो सकते। ब्रिटिश सरकार भले ही हिन्दुओंके धर्ममें दखल न दे, लेकिन वह अस्पृश्यता-जैसी प्रथाओंके पालनमें तो मदद न दे। अस्पृश्यताकी समाप्तिके लिए विधान-सभामें जो विधेयक पेश किये जानेवाले है, उनसे जहाँ अस्पृश्यता कानूनी तौरपर मिट जायेगी, वहाँ किसी भी व्यक्ति या समुदायके धर्ममें भी हस्तक्षेप किये जानेका खतरा पैदा नहीं होगा। मन्दिर-प्रवेश-विधेयकमें हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशपर लगे प्रतिबन्धोंको आपसी बातचीत और मेल-जोलकी भावनासे हटानेकी तजवीज है, जिससे किसी भी पक्षको बुरा न लगे और शान्ति भी भग न हो। इस प्रतिबन्धसे वे चार करोड साठ लाख लोग हीनावस्थामें पड़े हुए हैं और अपने जीवनमें प्रतिदिन उसके दशका अनुभव करते है जो प्राचीन हिन्दू धर्मको किसी भी तरहसे छोडना नही चाहते और इस समस्याका कोई शान्तिपूर्ण हल चाहते हैं। अतः आप इसमें हमारी सहायता करें।

सवर्ण हिन्दुओसे अच्छी स्थिति प्राप्त कर लेनेपर भी सवर्ण हिन्दू, चाहे वे खुद कितने ही गरीव और पतित क्यो न हो, उनके साथ अस्पृश्यताका व्यवहार कर सकते है। ऐसे वहुत-से हरिजन है जो आर्थिक दृष्टिसे काफी सम्पन्न है और विधायिका सभाओ तथा नगरपालिकाओके सदस्य भी है, लेकिन सनातनी सवर्ण हिन्दुओके लिए तो वे, जवतक उन्हे सवर्ण हिन्दुओकी ही तरह मन्दिर-प्रवेशका अधिकार नही मिल जाता तवतक, अस्पृश्य ही है। मन्दिर-प्रवेश निषेध तथा उसके परिणामस्वरूप शेष समाजमे हरिजनोका अलगाव, यह उनके सिरपर लगा एक ऐसा लाछन है जिसने उन्हे सदाके लिए हीनावस्थामे डाल दिया है। जव वह लाछन हटा लिया जायेगा तव और केवल तभी यह कहा जायेगा कि धार्मिक अस्पृश्यता मिटा दी गई है। इसलिए यह तो कोई सवाल ही नही है कि कितने हरिजन मन्दिर-प्रवेशका अधिकार चाहते है या उसके मिल जानेपर उसका प्रयोग करेगे।

अगर सवर्ण हिन्दू हिन्दूधर्मको शुद्ध वनाना और चार करोडसे अधिक लोगोके साथ न्याय करना चाहते है तो उन्हे उनके उस अधिकारको स्वीकार करना होगा। इस-लिए सुधारकोको अपने प्रयत्नमें शिथिलता नही आने देनी चाहिए। इन विधेयकोपर विचार किया जाना अभी स्थगित कर दिया गया है। इससे लोगोको निराश न होना चाहिए और न हाथपर-हाथ धरकर वैठ ही जाना चाहिए। ये विधेयक तो गैर-सर-कारी है, इसलिए उनका स्वीकृत होना केवल इसी वातका सूचक होगा कि हिन्दू क्या चाहते है — सो भी तभी जव उन्हे हिन्दुओका स्पष्ट वहुमत स्वीकार करे और विधान-सभाके वाहर हिन्दू लोकमतका समर्थन उन्हे प्राप्त हो। यदि एक उच्चतर शक्ति इन विधेयकोको हिन्दुओपर थोप दे तो मेरे लिए उनका कोई महत्त्व न होगा। उनमे मेरी रुचि इसलिए है कि इस सुधारके मार्गकी कानूनी वाधाको दूर करनेके लिए वे आवश्यक है। अभी तो स्थिति यह है कि कट्टरताके पक्षधर चाहे वहुमतमे हो या उसकी ओरसे खडा होनेवाला एक ही आदमी हो, वह सुधारकी प्रगतिको रोकनेमे सक्षम है। इन विधेयकोकी आवश्यकता धार्मिक सहिष्णुताकी दृष्टिसे है इससे आगे या इसके अलावा उनका और कोई उपयोग नही है।

इससे यह प्रकट होता है कि अगर हरिजनोके लिए सार्वजनिक मन्दिरोके द्वार खुलवाने है तो कानून वनाना और उसके पक्षमे जनमत तैयार करना, दोनो आवश्यक है। अगर निजी मन्दिरोमे, जिनकी सख्या काफी है, उन्हे प्रवेश दिया जाता है और जहाँ जनमतकी माँग हो वहाँ हरिजनों-सहित सवको पूजा करनेके लिए मन्दिर वन-वाये जाते है तो उससे रफ्तार तेज होगी। अभी हालमे श्रीमती विजयलक्ष्मी पडितने थोडे दिन काठियावाडका दौरा करनेके वाद मुझे वताया कि राजकोटमे एक ऐसा मन्दिर वनवानेके लिए कोशिश चल रही है जिसका उपयोग सभी हिन्दू — हरिजन, सुधारक और चाहे तो सनातनी भी — कर सकते है।[1] इस मन्दिरको प्राचीन ढंगपर वनाना है, अर्थात् इसमे एक पाठशाला, एक धर्मशाला और एक पूजा-स्थल, ये तीनो साथ-साथ होगे। मुझे पूरी आशा है कि जिन लोगोके हाथोमे यह योजना है वे उसमें

१. देखिए खण्ड ५५, "एक आदर्श मन्दिर", २९-४-१९३३ और ३०-४-१९३३।

लगे रहेंगे और उसे कार्य-रूप देकर रहेंगे। इसके लिए अधिक पैसेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इसे धीरे-धीरे खण्डश: भी बनाया जा सकता है, जैसे कि दक्षिण के मन्दिर बनाये गये होंगे। एक अच्छी जगह प्राप्त करके और एक भक्त तथा सच्चे पुजारीकी व्यवस्था करनेकी शुरुआत तो तत्काल की जा सकती है। अगर मन्दिरका पुजारी भ्रष्ट हो तो सिर्फ ईंट-गारेसे कुछ बननेवाला नहीं है।

लेकिन यह तो विषयान्तर होता जा रहा है। इस समय तो मैं यह समझाना चाहता था कि निम्नलिखित तरीकोंसे मन्दिर-प्रवेश आन्दोलनको चलना ही है:

१ जनताको कानूनी कठिनाई दूर करनेके लिए कानून बनानेकी आवश्यकता समझाई जाये।

२. जिनके निजी मन्दिर हों उन्हे उनको हरिजनोंके लिए खोलनेपर राजी किया जाये।

३ जहाँ आवश्यकता हो और जनताके दान-दक्षिणासे ऐसे स्थलोंपर, जहाँतक हरिजन आसानीसे पहुँच सके, प्राचीन ढंगके बहुद्देशीय मन्दिर बनवानेके लिए कोष एकत्र हो सके, वहाँ नये मन्दिर बनवाये जाये।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

३८०. तुकाराम और अस्पृश्यता

सन्तों, विशेषकर महाराष्ट्रके सन्तों, ने अस्पृश्यताका पक्ष लिया है या नहीं — इस विषयपर एक वाद-विवाद चलता रहा है। नासिकके श्रीयुत पी० एच० गद्रेका कहना है कि सन्तोंने इसका पक्ष ही नहीं लिया, बल्कि उन्होंने तो बिना किसी लाग-लपेटके इसके विरुद्ध लिखा और बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि मनुष्यका मूल्य उसके जन्मसे नहीं, बल्कि उसके कर्मोंके आधारपर निश्चित किया जाना चाहिए, और ईश्वर-भक्ति तो जात-पाँतकी कोई सीमा माने बिना सभी व्यक्तियोंको शुद्ध कर देती है।

श्रीयुत गद्रेने विख्यात सन्त तुकारामके पदोंका एक संकलन प्रस्तुत किया है। मैं नीचे उनमें से कुछ चुने हुए पद उद्धृत कर रहा हूँ।[1]

लगभग ये सभी अनुवाद सर्वश्री फ्रेजर और मराठेकी कृतिसे लिये गये हैं, जिन्होंने श्रीयुत गद्रेको अपनी कृतिसे उद्धृत करनेकी अनुमति देनेकी कृपा की है। अन्य किसी स्रोतसे लिये गये अनुवादोंके साथ उनका स्रोत भी बतला दिया गया है।

मुझे आशा है कि श्रीयुत गद्रे या कोई अन्य अध्येता अन्य सन्तोंके भी इसी प्रकारके संकलन प्रस्तुत करेंगे। पाठकोंको याद होगा कि इन स्तम्भोंमें मोरोपन्तके पद भी उद्धृत किये जा चुके हैं, जिन्होंने अस्पृश्योंको हरिजनकी संज्ञा दी है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

३८१. इस सबका अर्थ

अभी पिछले दिनो मैंने हरिजनोके एक नये अध्यापकके अनुभवोमे से कुछ उद्धृत[1] किया था। उन्ही अध्यापकके हालके एक पत्रके कुछ उद्धरणोका सक्षिप्त भावानुवाद यहाँ फिर दे रहा हूँ.

इन बच्चोको पढाते हुए अभी कुछ ही दिन हुए है। इस बीच मैंने देखा है कि इन बच्चोको सिखानेके लिए हर चीजका पदार्थपाठ प्रस्तुत करना पडता है। सफाई सिखाना सबसे मुश्किल है। इसलिए पिछले पखवारे-भर से नियमित रूपसे बच्चोको नहलवानेके लिए ले जाता रहा हूँ। मै थोडा साबुन देकर उनसे उनके कपड़े धुलवाता हूँ। छोटे-छोटे बच्चोके कपडे मै स्वय धो देता हूँ। मै उनको दातुने देकर उनसे हर दिन दाँत साफ करवाता हूँ। मै उनके नाखून काटता हूँ और हर छोटी-मोटी चीजका खयाल स्वय रखता हूँ। इस सबका नतीजा यह है कि लिखना-पढ़ना सिखानेकी अपेक्षा फिलहाल उनको सफाई सिखानेके काममे ही मेरा मन अधिक लगा रहता है। बच्चोकी ओर इस प्रकार व्यक्तिगत रूपसे ध्यान देनेकी बात उनके माता-पिताओको बडी अच्छी लगती है। अब वे भी रातको मेरे पास जमा होने लगे है। मै उनको 'रामायण' और 'जातकमाला' से और टॉल्स्टॉयके आधारपर लिखी गई कथाएँ सुनाता हूँ और मेरा विचार है कि 'महाभारत' के नायकोके नानाभाई-कृत शब्दचित्र भी उनको सुनाया करूँ।

सुबह लगभग दस बच्चे उपस्थित रहते है। शामको उनकी उपस्थिति दूनी हो जाती है। आम तौरपर मुझे इस काममे आनन्द आता है, लेकिन कुछ ऐसी घटनाएँ घट जाती है कि मेरा दिल बैठने लगता है। कभी-कभी शराबी लोग आ जाते है, कभी पति-पत्नीमे खुली मारपीट होने लगती है, तो कभी मुझे एक-से-एक चुनी हुई गालियोका भी अनिच्छुक श्रोता बनना पड़ता है। कभी-कभी लडके भी छका डालते है। एक बार तो उनमे से एक शरारतमे सीमासे भी आगे बढ गया था। मुझे हाथ पकडकर उसे बाहर निकाल देना पड़ा। लेकिन मुझे ईश्वरपर भरोसा है और आशा है कि मै इसी काममे जीवन लगा दूँगा। मै जानता हूँ कि यह काम बहुत ही ज्यादा मेहनत चाहता है और मुझे ईश्वरका भरोसा न हो तो मै अकसर हताश हो उठूँ।

आपने मुझे ध्यान दिलाया है कि हरिजन लोग जिनके यहाँ काम करने जाते है उनके यहाँसे बचा-खुचा भोजन लानेकी आदतसे उनको विरत किया

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १६-३-१९३३ के अन्तर्गत उपशीर्षक "ढेढ और भंगी"।

जाये। लेकिन मै इसमे जल्दबाजी नही करूँगा। मै इस विषयकी चर्चा उनसे तभी करूँगा जब पहले उनका विश्वासपात्र बन जाऊँगा।

मरे हुए ढोरोकी खाल उतारना और चमडा पकाना मै जरूर सीखना चाहूँगा। अपनी मौत मरे हुए पशुओका मास खानेकी उनकी आदत छुडानेके लिए यह बहुत जरूरी है। उनमे से बहुत-से लोगोको इसके अलावा दारू पीनेकी भी लत है और तमाखूका प्रयोग तो स्त्री-पुरुषोके लिए आम है। मै उन लोगोके जितने अधिक सम्पर्कमे आता जाता हूँ, उनमे से अधिकाशकी गन्दे ढगसे रहनेकी आदतसे मै उतना ही अधिक परेशान हो जाता हूँ। उनके शरीरो और कपडोसे तेज बदबू आती रहती है, खासकर जब वे मरे हुए पशुओका मास खाते है। और फिर गोबर वगैरहके ढेरोसे भी बदबू उठती रहती है। इस बदबूका असर अधिकसे-अधिक कम करनेके लिए मै आम तौरपर खुले आकाशके नीचे जाकर बैठ जाता हूँ।

अध्यापकने इसके बाद दो लडकोंकी गन्दी आदतोका हृदय-विदारक वर्णन किया है। किसी भी अध्यापकको ऐसे अनुभवोसे हताश हो बैठनेकी जरूरत नही। हमे याद रखना चाहिए कि सवर्णों द्वारा बरती जानेवाली अपराधपूर्ण उपेक्षा और समाजके सबसे अधिक उपयोगी सदस्योको समाजसे बहिष्कृत करनेपर बाध्य करनेका ही यह प्रत्यक्ष परिणाम है; और यह सब धर्मके नामपर किया जाता है। यदि हम अपने समाजमें मृत्यु-दर घटाना चाहते है और हमारे बीच इतने जोरोसे फैले रोगोकी रोक-थाम करना चाहते हैं तो हमें इस तरहके कई सौ अध्यापक तैयार करने पडेगे जो सच्चे प्रेमकी भावना और अथक निष्ठाके साथ हरिजनोके बीच काम कर सके। हमें इन हरिजन बच्चोको अपने ही बच्चोके समान मानना पडेगा। जब अपने ही बच्चे सगलित चेचक या और भी भयानक रोगोके भीषण प्रकोपके शिकार बन जाते और कमरोमे तेज बदबू तथा गन्दगी भर जाती है तब माँ-बाप क्या करते है? वे अपने बच्चोको नीरोग देखनेके लिए अपने सर्वस्वकी बाजी लगा देते है। इन हरिजन बच्चोको हमें इसी प्रकारका स्नेह देना होगा। अपने बच्चोके साथ हम जितने धैर्यसे पेश आते है उतना ही इन बच्चोके साथ भी बरतना पडेगा। विरोधमे कोई कुछ भी कहे, मै तो डकेकी चोट यही कहूँगा कि हम यदि अस्पृश्यताके अभिशापसे अपने-आपको मुक्त नही करेगे, तो हिन्दू धर्मका पतन सर्वथा निश्चित है। हमने अपने समाजके चार करोड़से अधिक सदस्योकी जैसी घोर उपेक्षा की है वैसी तो हमारे शास्त्र किसी एक भी मनुष्यकी करनेकी अनुमति नही देते। हम यदि अपने पापोका प्रायश्चित्त करना चाहते हो तो मै चाहूँगा कि तथाकथित उच्चतर वर्गोंके लोगोमें से एक बड़ी सख्यामे ऐसे स्वयसेवक आगे आये जो हरिजन बच्चोको पढाने और उनकी देखभाल करनेके लिए तैयार हो।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

३८२. एक दान

एक मित्रने, जो अपना नाम नही देना चाहते, मुझे मेरी इच्छानुसार हरिजन-कार्यमे लगानेके लिए पाँच सौ रुपये भेजे है। यह राशि मेरी अनुमतिसे[1] इस्तेमाल किए जानेके लिए केन्द्रीय बोर्डको भेजी जा रही है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

३८३. पत्र : एफ० मेरी बारको

८ अप्रैल, १९३३

चि० मेरी,

तुम्हारा पत्र मिला।

मै तो अपनी ओरसे निस्सकोच कहता हूँ — 'तुम्हारा स्वागत है'।[2] सकोच तुम्हारी ओरसे हो सकता है। मै तो बहुत चाहता हूँ कि आश्रममे सभी राष्ट्रीयताओ और धर्मोके लोग आये, परन्तु अबतक सब लोगोको अपनी ओर खीचनेमें सफलता नही मिल पाई है इसका कारण हमारी अपनी सीमाएँ है। हमे अपनी बहुत-सी खामियाँ दूर करनी है।

तुमने अपने 'बुढ़ापे' की बात लिखी है। यदि तुम तनिक भी सकोचके बिना अपनी उम्र बतला सकती हो, तो मुझे बतला दो; लेकिन मुझे यकीन है कि तुम अभी चौसठकी तो नही ही हुई होगी, और मुझे यह सोचकर दु:ख होगा कि वृद्धा-वस्थाके कारण लोग अब मुझे भारस्वरूप मानने लगे है। तोतारामजी को तो अबतक तुम उनके नामसे जान ही गई होगी। मै समझता हूँ कि उनकी अवस्था मुझसे भी अधिक है। इसलिए तुमको अपनी अवस्थाको लेकर चिन्तित होनेकी कोई जरूरत नहीं। आश्रमके नारणदास और अन्य सदस्योकी क्या राय है यह मै अभी मालूम कर लूँगा। मै उनसे कहूँगा कि वे बिना किसी लाग-लपेटके साफ-साफ अपनी राय दे। वैसे तो मेरे कुछ कहे बिना भी उन्हे अपनी राय इसी तरह देनी चाहिये। पर यदि तुम आश्रममे रहनेका निर्णय कर ही लेती हो और आश्रम उसके लिए खुशीसे राजी भी हो जाता है, तब भी तुम अपनी सुविधाके खयालसे शुरुआती तौरपर अपना निर्णय एक वर्षकी निश्चित अवधि तकके लिए ही करना। मै वचन, प्रतिज्ञा

१. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ३/४-४-१९३३।

२. मेरी बारने आश्रममें कुछ सप्ताहतक रहनेके पश्चात् गांधीजी से पूछा था कि क्या वह और अधिक समय तक वहाँ रह सकती हैं।

या व्रतके, जो भी संज्ञा दी जाये, आध्यात्मिक पक्षको अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। इसलिए तुम यदि एकाएक ही अन्तिम रूपसे सदाके लिए वैसा व्रत ले डालोगी तो फिर वापस लौटनेकी कोई गुंजाइश नहीं रह जायेगी। इसलिए व्रतोंकी पवित्रताके प्रति पूर्ण सम्मानकी भावना रखनेवाले व्यक्ति व्रत लेते समय सावधानीसे काम लेते हैं। आश्रममें एक वर्षतक अपने-आपको जाँचने-परखनेके बाद यदि तुम इस निष्कर्ष पर पहुँचो कि यहाँका भौतिक और आध्यात्मिक वातावरण तुम्हारे अनुकूल पड़ता है, तुमको अच्छा लगता है तो तब तुम अन्तिम रूपसे ऐसा व्रत ले सकती हो।

आशा है, कश्मीरके सुरम्य वातावरणमें तुम दोनों प्रफुल्लित होगे। वहाँसे पत्र बराबर लिखती रहना।

तुम दोनोंको हम सबकी ओरसे सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६००२) से। सी० डब्ल्यू० ३३२८ से भी, सौजन्य : एफ० मेरी बार

३८४. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

सेठ पूनमचन्दकी पत्नीका दिनांक २७ मार्चका एक पत्र और सेठ जाजूके दिनांक ३० मार्च तथा इसी महीनेकी पहली तारीखके दो पत्र मुझे कल ही शामको चार बजे दिये गये हैं। आप जानते हैं कि ये तीनों पत्र सेठ पूनमचन्द राँकाके उपवासके बारेमें हैं, जिसके सिलसिलेमें सरकार विशेष आदेश जारी कर चुकी है। यदि ऐसे पत्र कई दिनोंतक रोक रखे जानेके बाद मुझे दिये जायेंगे, तो फिर उनका कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता है। मैं जानना चाहता हूँ कि आदेशोंके होते हुए भी इन पत्रोंको रोककर क्यों रखा गया था और क्या आगेसे इस सिलसिलेमें आये सभी पत्र मुझे तुरन्त दे दिये जायेंगे?

मैंने इसी महीनेकी पहली तारीखको बम्बई सरकारके सचिवके नाम एक पत्र[1] लिखा था। अब इस विलम्बको देखते हुए मैं इस बातके लिए और अधिक चिन्तित हो उठा हूँ कि सरकारकी ओरसे उसका उत्तर भी मुझे शीघ्र मिल जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल संख्या ८०० (४०) (३) ए, पृष्ठ १६७, जी० एन० ३८८६ से भी

१. देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १-४-१९३३।

३८५. पत्र : हरकिशनदासको

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय हरकिशन,

इसी महीनेकी ७ तारीखका आपका पत्र मिला। मै तो समझता हूँ कि बोर्डकी गति-विधियोसे सम्बन्धित सभी खबरे जितनी भी शीघ्रतासे बने, आपको स्थानीय समाचार-पत्रोमे देनी चाहिए। 'हरिजन' को ही पहली प्रति मिले, इसके लिए समाचारोंको रोकना नही चाहिए। 'हरिजन' का अस्तित्व आन्दोलनके लिए है, आन्दोलन तो 'हरिजन' के लिए नही है। पर मै चाहूँगा कि आप अपनी सुविधानुसार मुझे पाक्षिक या साप्ताहिक विवरण भेज दिया करें और उसमे बोर्डकी गति-विधियोका संक्षिप्त वृत्तान्त दे दिया करे, जिससे कि ऐसी खबरे उन लोगोतक भी पहुँच जायें जिनको स्थानीय समाचार-पत्र नहीं मिल पाते या मिलनेपर भी जो उनको पढ़ना पसन्द नही करते। फिर 'हरिजन' मे तो आपकी गति-विधियोंका संक्षिप्त सार ही दिया जा सकता है, जबकि स्थानीय समाचार-पत्रोसे आशा की जा सकती है कि उनमें आपकी भेजी हुई प्रत्येक खबरको पर्याप्त स्थान दिया जायेगा। आशा है, मैंने अपना आशय बहुत ही स्पष्ट शब्दोमे व्यक्त कर दिया है।

हृदयसे आपका,

अवैतनिक मन्त्री
बम्बई बोर्ड

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७०) से।

३८६. पत्र : रमेशचन्द्रको

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके[१] लिए धन्यवाद। क्या यह एक सार्वत्रिक अनुभव नही है कि जो चीजे किसी समय शुद्ध रूपमे विद्यमान थी, कालके चरणोंने उन्हें अशुद्ध बना दिया है? 'महाभारत' और 'रामायण' दोनोमें ऐसे प्रमाण प्रचुर मात्रामें मिलते है कि एक समय था जब वर्ण-धर्मका पालन उसी अर्थमे किया जाता था जो मैंने बतलाया है।

१. इसमें रमेशचन्द्रने कहा था कि जाति-प्रथा मिटाये बिना वर्णधर्मपर अमल ही नहीं किया जा सकता।

मुझे तो इसकी जानकारी थी ही नही कि लगभग सभी हिन्दू जाति-प्रथा और वर्णाश्रम, दोनोको एक ही समझते है। मै तो ऐसे किसी हिन्दूको नही जानता जिसने दावा किया हो कि वर्ण अनेक है, परन्तु जातियाँ अनेक है, यह तो एक बच्चा भी जानता है। क्या यह भी एक सचाई नही है कि ऐसी अनेक जातियाँ है जो अपना वर्ण एक ही बतलाती है? मेरी समझमे तो जाति और वर्ण दोनोके उद्गम सर्वथा भिन्न है और एक सीमाके बाद जाति और वर्णके अपने-अपने कार्य-प्रयोजन भी सर्वथा भिन्न हो जाते है।

मेरा यह दावा जरूर है कि आदर्श वर्णमे असमानता या ऊँच-नीचके लिए कोई गुजाइश नही हो सकती। विविधता उसमे हो सकती है, असमानता नही।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत रमेशचन्द्र
एग्जीक्यूटिव इंजीनियर
सिलचर
(असम)

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०९२) से; एस० एन० २०८६५ से भी

३८७. पत्र : श्रीप्रकाशको

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय श्रीप्रकाश,

आपको आशा थी कि आगेसे मै पत्र-व्यवहार बिलकुल बन्द कर दूंगा। मुझे आपको निराश ही करना पडेगा। हाँ, निराशाका कुप्रभाव मनपर मत पडने दीजिएगा। आपके पत्र लम्बे-चौड़े तो होते है, लेकिन वे मुझे आपके विचारोको अधिक गहराईसे समझनेका मौका देते है और अपने सभी सहयोगियोके बारेमे ऐसा करना मुझे पसन्द है। आपको यह नही सूझा कि आपने अपने प्रस्तावोंमे गाड़ीको घोडेके आगे रख दिया है। आपके किसी भी प्रस्तावमे हमारी ओरसे किया जानेवाला कोई प्रयत्न अपेक्षित ही नहीं है। उनमे हर काम विधान-मण्डलो और इसीलिए सरकारके जरिये करानेकी बात की गई है; और समूचा इतिहास गवाह है कि यह सदा ही अधोगतिको प्राप्त होनेका मार्ग रहा है। आपने जितने सारे सुधारोकी रूप-रेखा दी है, वे तभी फलित हो सकते है जब हम अस्पृश्यताके राक्षसके विरुद्ध अधिक कुछ नही तो जनताकी आत्माको जगानेके लिए अपेक्षित पर्याप्त प्रयत्न कर ले। उच्च जातियोके हिन्दुओं द्वारा तथाकथित निचली जातियोका जो उत्पीड़न किया जाता है उसका चरम रूप ही अस्पृश्यताके रूपमे हमारे सामने आया है। इसलिए मै चाहूँगा कि आप

अस्पृश्यताकी उत्पत्ति और उसके अत्यन्त व्यापक प्रभावोका अध्ययन इससे कही अधिक गहराईसे करे।

आशा है, आपने पहले-जैसी शक्ति फिर पा ली है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पिताजी जव-तव आते रहते है।

कलकत्तेके साप्ताहिक वुलेटिनसे पता चलता है कि शिवप्रसाद अभी चगा नही हुआ है। हम आशा करे कि शीघ्र ही हमे उसके वारेमें शुभ समाचार मिलेगा।

हृदयसे आपका,

वापू

श्रीयुत श्रीप्रकाश
सेवा आश्रम
वनारस कैन्ट

श्रीप्रकाश पेपर्स : फाइल न० जी० २; सौजन्य . नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय। एस० एन० २०८६६ से भी

३८८. पत्र : एन० वी० थडानीको[1]

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय थडानी,

एक विदूषक-जैसी हाथकी सफाई दिखाते हुए आपने अपनी शरारतको छिपानेकी कोशिश की है, लेकिन नत्थी कागजोका[2] मोटा पुलिंदा तो सारी बात कह देनेके लिए साथमे मौजूद था। साप्ताहिक सम्पादनके दिन मै इस सारे पत्र-व्यवहारको पढकर देखूँगा कि उसमे मुझे अपने लिए उपयोगी कुछ मिल पाता है या नही।

'महाभारत'के आपके रहस्योद्घाटनकी मै प्रतीक्षा करूँगा। अनेक लोगोके प्रयत्न विफल हो चुके है। अव यदि आपको सफलता मिलती है तो उसमे उन लोगोकी असफलताओंका योग रहेगा, और यदि आप भी असफल रहते है तो आपकी असफलता भी आगे कभी किसीकी सफलताकी एक और सीढ़ी वनेगी और सफल होनेवाला व्यक्ति यदि मूर्ख होगा तभी वह उसे केवल स्वयकी ही सफलता वतलायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० वी० थडानी
रामजस कॉलेज
दिल्ली

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७२) से।

१. रामदास कालेज दिल्लीके प्रिंसिपल।

२. इस पुलिंदेमें जगद्गुरु शकराचार्य और एन० वी० थडानीके वीच हुआ पत्र-व्यवहार था; विषय था : हिन्दू धर्ममें पंचम वर्णके अस्तित्वका वैदिक प्रमाण।

३८९. पत्र : जमनालाल बजाजको

८ अप्रैल, १९३३

चि० जमनालाल,

यह उचित होगा कि तुम सेठ पूनमचन्द राँकासे जितनी जल्दी मिल सको मिलो। उनसे कहना कि उनका उपवास सत्याग्रहकी नीतिके विरुद्ध है और मुझे तो लगता है कि किसी भी तरीकेसे उसका समर्थन नही किया जा सकता। सभी लोग कैदियोके वर्गीकरणके विरुद्ध नही है। जिन कैदियोको 'ए', 'बी' क्लास मिलती है, वे सभी स्वेच्छासे 'सी' क्लासको ही स्वीकार नही कर लेते। जिन्हे ऊँची क्लासमे रखा जाता है वे उस क्लासकी सुविधाओका उपभोग करनेके लिए बाध्य नही है। जो लोग इस सुविधासे लाभ उठाते है वे अपनी इच्छासे ही वैसा करते है और उसका त्याग करनेके लिए सेठ पूनमचन्द उन्हे कैसे मजबूर कर सकते है? उनके लिए उपवास कैसे कर सकते है? वे खुद चाहे जिस सुविधाका त्याग करे, यह दूसरी बात है। यह वर्गीकरण मुझे खुद पसन्द नही है, किन्तु उसमे रद्दोबदल करानेका मार्ग उपवास हर्गिज नही है। मुझे आशा है कि सेठ पूनमचन्द अपना हठ छोड देगे। उनको यह भी जानना चाहिए कि जबतक वे अपनेको सत्याग्रही मानते है तबतक वे उसकी मर्यादाओका पालन करनेके लिए बँधे हुए है। सत्याग्रहके प्रणेताके नाते उसकी मर्यादा स्थिर रखनेका मुझे कुछ तो अधिकार होना चाहिए। इस दृष्टिसे भी उनके लिए मेरी सलाह मानना उचित है।

ईश्वर तुमको सफलता दे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृष्ठ १०७

३९०. पत्र : द० बा० कालेलकरको

८ अप्रैल, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई केशवको मैंने तीन दिन पहले उत्तर[1] दे दिया था। उत्तर छोटा-सा ही था। आशा है वह तुमसे मिल गया होगा।

'यूकेरिस्ट'[2] मे ये मित्र शायद मधु लेने लगे किन्तु दूसरे ईसाई और विशेषकर रोमन कैथोलिक इसे कभी स्वीकार नही करेगे क्योकि उसमे तो 'वाइन' (मदिरा) शब्दका ही प्रयोग हुआ है। किन्तु ज्यादा शक्य तो यह है कि वे ऐसे द्राक्षरसको लेने लगे जो नशीला नही होता। कुछ विद्वान् 'वाइन' का मूल अर्थ 'अनफरमेन्टेड ग्रेप जूस' (अकिण्वित द्राक्षरस) करते हैं। द्राक्ष तो आवश्यक ही है। कुछ गिरजोमे ऐसे निर्दोष रसका व्यवहार किया जाता है और आजकल निर्दोष द्राक्षरसकी लाखो बोतले आती हैं। तुमने त्रिवेदीको जो पुस्तके भेजी हैं उनमे भी ऐसा द्राक्षरस तैयार करनेकी कई विधियाँ बताई गई हैं। अत उक्त रसका व्यवहार करनेके सुझावपर तुरन्त अमल किया जा सकता है।

यदि वे भाई मराठी 'हरिजन' प्रकाशित करे तो बहुत अच्छा हो।

समय-समयपर अपने समाचार देते रहना।

नेत्र-चिकित्सा सम्बन्धी वह अमरीकी पुस्तक मुझे भेज देना। अपनी आँखोका इलाज वहाँ अवश्य करवा लेना।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९६) से। सौजन्य द० बा० कालेलकर

३९१. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

८ अप्रैल, १९३३

चि० गगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला।

शारदा[3] के लिए लिखा पत्र इसके साथ है, पढकर उसे दे देना। कृष्णमैयादेवीको यदि तुम कोई धन्धा नही दे सकती तो उससे कुछ काम तो जरूर ले सकती हो। सिलाई-कढाई आदिके जो काम तुम उससे पहले कराती थी वे काम आज भी कराये

१. देखिए "पत्र: केशवको", ६-४-१९३३।

२. ईसाइयोंका एक धार्मिक अनुष्ठान।

३. एक आश्रमवासी चिमनलाल एन० शाहकी कन्या।

जा सकते हैं। मेरा तात्पर्य यह है कि उसे कोई उत्पादक कार्य करना चाहिए ताकि उसे यह अनुभव न हो कि मैं तो मुफ्तका खा रही हूँ।

धर्मकुमारकी शिक्षाका रूप [फिलहाल तो] यही है कि उसे घरमें अच्छी तरह गढ़ा जाये। यही आश्रमकी शिक्षाका आदर्श है। यदि बच्चे अपने माता-पितासे सद्‌गुण और शरीर-श्रम करना सीख लें तो अक्षरज्ञान वे बादमें प्राप्त कर लेंगे। हम अपने अनुभवसे यह जानते हैं, ऐसी कोई बात नहीं है कि जो बच्चे अक्षरज्ञान प्राप्त करते हैं वे निश्चय ही सद्‌गुणी होते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जो सद्‌गुणी होते हैं वे धनवान भले न हो सकें किन्तु भूखों नहीं मरते। झूठमूठकी दया अहिंसा नहीं बल्कि सूक्ष्म हिंसा है और इसलिए अधिक सावधानी बरतनेकी आवश्यकता है। कृष्णमैया और महावीर, दोनोंकी तुम्हें मदद करनी चाहिए किन्तु सही ढंगसे। वे काम करें, आलस्य छोड़ दें और खायें-पियें। प्यारेअलीका कहना है कि वह महावीर को ४० से ५० रु० तक कमाने लायक बना सकता है। यदि फिलहाल उसे सुन्दर-दासके यहाँ २५ रु० से अधिक न मिलते हों और वह अपने कामसे सुन्दरदासको सन्तुष्ट कर पाता हो तो उसे प्यारेअलीके यहाँ रख देना ज्यादा अच्छा होगा बशर्ते कि सुन्दरदास उसे छोड़नेको तैयार हो। इस बारेमें विचार करना।

. . . का[1] पूरा परिवार आश्रम छोड़ रहा है। . . . की[2] थाह मुझे अभीतक नहीं मिल पाई है। उसकी मान्यता है कि वह आश्रममें रहने लायक ही नहीं था क्योंकि उसे बड़ा इंजीनियर बनना है। . . . का[3] कहना है कि उसके लिए कुछ विशेष सुख-सुविधाएँ आवश्यक हैं, इसीलिए वह भी आश्रममें रहने लायक नहीं थी। ऐसी स्थितिमें, . . .[4] अकेला तो आश्रममें रह ही नहीं सकता। इस प्रकार पूरा कुटुम्ब आश्रम छोड़कर चला जायेगा। यह कार्य छोटी-मोटी घटना नहीं है। किन्तु यही उचित है। क्योंकि हम यह नहीं चाहेंगे कि कोई अनिच्छापूर्वक रहे। इस कुटुम्बको हमने आश्रमके नियमोंका पालन करनेसे लगभग मुक्त कर दिया था, उसका यह परिणाम निकला है। . . .[5] अब किसी कारखानेमें स्वतन्त्रतापूर्वक काम करना चाहता है। ऐसा लगता है कि उसकी इच्छा . . . के[6] साथ काम करनेकी है। यदि वह जा सके तो इसमें कोई हानि नहीं है। किन्तु उसका खर्च बहुत अधिक पड़ेगा। देवलालीमें ही वे लोग १०० रु० खर्च कर देंगे। . . .[7] स्वयं भी अच्छी तरह खर्च करेगा। इसलिए मैं समझता हूँ कि उनका खर्च १५० रुपये तक आना सम्भव है। ईश्वरकी जैसी इच्छा होगी वही होगा। अब आश्रमकी ओरसे मदद देना बन्द कर दिया जायेगा। मैं समझता हूँ कि शायद एक-आध महीनेका खर्च और देना पड़ेगा।

ऐसा लगता है कि तुम वहाँ पारिवारिक समस्याओंको सुलझानेमें जुटी हुई हो। अच्छा है; सुलझाओ।

यदि काकु-लक्ष्मी, दोनोंमें साथ-साथ रहने और उठने-बैठनेका सम्बन्ध हो तो मेरी सलाह है कि उनका विवाह कर देना चाहिए। विवाहके बाद वे भले ही अलग

१, २, ३, ४, ५, ६ व ७. नाम छोड़ दिये गये हैं।

रहे और जबतक इच्छा हो ब्रह्मचर्यका पालन करे, किन्तु विवाहके पहले वे एक-दूसरेका चिन्तन करे, उनका मन विकारग्रस्त हो और शायद वासनायुक्त भावसे वे एक-दूसरेको स्पर्श भी करते हो तो यह सर्वथा धर्म-विरुद्ध होगा। सगाई तो टूट सकती है, किन्तु विवाह नही टूट सकता। इसलिए यदि उनके एक साथ घूमने-फिरने आदिके अवसर आते हो तो उनका विवाह हो जाना वाछनीय लगता है। काकु और लक्ष्मीसे इस सम्बन्धमे बातचीत कर लेना। नाथसे भी विचार-विमर्श कर लेना।

तुम्हारी बहन कितना चाहेगी? तुम जमनालालजी से मिलकर उनसे बातचीत कर लेना और बादमे उनसे अपनी बहनको मिलाना। यदि उसे कमाईका लोभ नही हो, केवल परोपकारी जीवन बिताना हो और किसीका भरण-पोषण करनेका उत्तर-दायित्व उसपर न हो तथा वह आश्रमका जीवन बितानेको तैयार हो तो मैं समझता हूँ कि वह आश्रममे तो रह ही सकती है। किन्तु शायद इस उम्रमे ऐसा करना उसके लिए सम्भव न हो।

गोमतीसे कहना कि उसने मुझे पत्र लिखना क्यो बन्द कर दिया। किशोरलालका पत्र भी बहुत दिनोसे नही मिला है।

यदि मजु[1] डाक्टर बनना चाहे और यदि उतना खर्च उठाया जा सके तो तुम उसे ऐसा करनेके लिए प्रोत्साहित करना। मुझे ऐसा नही लगता कि यह कोई बडी उपलब्धि है। किन्तु फिर भी यह एक प्रकारकी शिक्षा और ज्ञान है। यदि उसे इसका शौक हो तो भले वह ले ले।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८८००) से; सौजन्य: गगाबहन वैद्य

३९२. वर्ण-व्यवस्थाका रहस्य

अग्रेजी 'हरिजन' में प्रकाशित मेरा वर्ण-व्यवस्था-सम्बन्धी लेख[2] पढकर एक विद्यार्थीने लिखा है:

> क्या आप जन्मना वर्ण-विभागमें विश्वास रखते हैं? क्या आपका यह कहना है कि ब्राह्मणके घरमें पैदा हुए मनुष्यका धर्म 'ब्राह्मणत्व' होगा, और तदनुसार, भंगीके घर पैदा हुए मनुष्यका कर्म भंगीका ही होगा? ऐसे विचार का तो भौतिक अर्थ यही होता है कि जन्मका भंगी वेद-शास्त्रोंका अध्ययन नहीं कर सकता या वेद-शास्त्रोंमें पारंगत होकर भी ब्राह्मण-पद नहीं प्राप्त कर सकता। आपके कथनानुसार प्रत्येक प्राणी जन्मकी सीमाओंसे इस तरह बँधा हुआ है कि इन बन्धनोंके अन्दर ही कर्म-विशेष करके उसे सन्तुष्ट होना

१. गगाबहनकी पौत्री।
२. देखिए "वर्णधर्म", १९-३-१९३३।

पड़ेगा, और उन्हीं में उसे मोक्ष प्राप्तिका प्रयत्न करना होगा। ऐसे सिद्धान्तका पोषण व्यक्तिवादकी हत्या करनेके बराबर है तथा व्यक्तिके कार्य एवं विचार-स्वातन्त्र्यको छीन लेना है।

मानवी दुर्बलताओंसे पूर्ण इस संसारमें जान-बूझकर वर्ण-विभाग रखनेसे समय पाकर जाति-भेदका दोष अवश्य आ जायेगा। आजकलकी शिक्षाके अनुसार तो प्रत्येक व्यक्तिको कार्य एवं विचारकी स्वाधीनता होनी चाहिए। वैयक्तिक स्वतन्त्रताका यही मूल मन्त्र है। प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे उसका जन्म कहीं भी हुआ हो, संसारमें सेवा और कर्तव्यके निमित्त अपनी इच्छानुसार कोई भी सुकर्म करने देनेमें समाज, धर्म या किसी व्यक्ति विशेषको आपत्ति ही क्यों होनी चाहिए? प्रत्येक जीवका, चाहे उसका जन्म कहीं भी हुआ हो, यह जन्म-सिद्ध अधिकार है कि वह ज्ञान, शक्ति, धन या सेवामें से किसी एकको ले ले, अथवा चारोंको साथ-साथ पूरा करे। जीवनकी पूर्णताके लिए तो चारों चीजें आवश्यक हैं। इस जीवनकी पूर्णताको समझ लेना और उसके अनुसार कर्तव्य करना ही धर्मकी सच्ची सेवा है।

आप इस विषयपर अपने विचारोंको कृपया और स्पष्ट करनेका कष्ट करें।

हाँ, मै 'जन्मना' वर्ण-विभागमे विश्वास रखता हूँ। यदि ऐसा न होता, तो वर्ण-व्यवस्थाका कुछ अर्थ ही न रहता। वर्ण-व्यवस्थाका कुछ उपयोग ही न रहता। तब तो शब्द-जाल मात्र रह जाता।

वर्ण-विभाग कोई मनुष्य-कृत योजना नही है। उसका मूल तो प्रकृति अथवा ईश्वरके कानूनमे है। उस कानूनका पालन करना-न-करना मनुष्यके हाथमें है, इसलिए मनुष्यके व्यक्तित्वको कोई हानि नही पहुँच सकती। आग कहती है—'मेरा स्पर्श करोगे, तो जल जाओगे।' यदि हम आगकी बात न सुने और अपने व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके कारण आगको पकड ले, तो हाथ अवश्य जल जायेगा। ठीक इसी तरह वर्ण-व्यवस्थाके नियमकी बात है। ऋषि-मुनियोने तपश्चर्याके द्वारा ध्यानावस्थित होकर देखा कि समाज-विकासके लिए वर्ण-विभाग आवश्यक है और उन्होने तदनुसार विभाग-रचना की। उसका पालन करना-न-करना हमारी इच्छाकी बात है। पालन न करे, तो उसके लिए कोई राजदण्ड तो है नही। किन्तु प्राकृतिक दण्डको कौन रोक सकता है? अथवा उसे दण्ड क्यो कहे? वर्ण-विभागके नियमोका पालन न करनेसे जो प्राकृतिक परिणाम होगा उसे कौन रोक सकेगा? इसलिए वर्ण-विभाग व्यक्तित्व को कोई हानि नही पहुँचाता।

लेकिन जन्मना वर्ण क्यो? यह कोई मेरा निजी आविष्कार नही है। वर्ण-विभागकी जडमे ही जन्म है। ब्राह्मणकी सज्ञा ही ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मण अपनी सतति को ब्राह्मणत्वके लिए तैयार करेगा। इसी तरह शूद्र अपने बाल-बच्चोको शूद्रत्वके लिए तैयार करेगा। पर इसका यह अभिप्राय नही है कि शूद्र ज्ञानका अधिकारी नही है। वर्ण-व्यवस्थाका सम्बन्ध तो आजीविकाके साथ है। जिस वर्णमे जो पैदा हुआ है,

उसी वर्णके धन्धेसे वह अपनी आजीविकाका उपार्जन करेगा। एक वर्ण दूसरे वर्णका ज्ञान प्राप्त करे, इसमे कभी कोई वाधा नही आ सकती। व्यक्तिगत विकास और स्वातन्त्र्य-रक्षाके लिए सबमे चारो वर्णके सामान्य गुण होने चाहिए, लेकिन प्रत्येक मनुष्यमें अपने वर्णके गुण अधिकाशमे दिखाई देगे।

वर्ण-व्यवस्था तो भौतिक लोभको मर्यादित करती है, जिससे आत्मविकासके लिए अधिक अवकाश मिल सके। भौतिक पदार्थ और भौतिक सुख तो क्षणस्थायी है। उन्हीकी वृद्धिमे यदि मनुष्य फँस जाये, उन्हीको अपना जीवन-ध्येय वना ले, तो उसके लिए आध्यात्मिक विचार करना कठिन ही नही असम्भव है। वर्ण-व्यवस्था पुरुपार्थमे कही वाधा नही पहुँचाती। मनुष्यको जव आजीविकाके साधनकी खोजमे व्यस्त नही होना पड़ेगा — क्योकि आजीविकाके साधन पहलेसे ही तैयार है — तव उसके समस्त प्रयत्न केवल आध्यात्मिक साधनाके लिए ही होगे। मेरे हृदयमे कुछ ऐसा विश्वास जम गया है कि हिन्दू जातिने वर्ण-व्यवस्थाकी वदौलत वहुत वडे आध्यात्मिक शोध और आध्यात्मिक विकासके लिए सामग्री तैयार की थी।

कालान्तरमें दुर्भाग्यवश इसे हम भूल गये। वर्ण-व्यवस्था अव्यवस्थित हो गई। रोटी-बेटी व्यवहारके प्रतिवन्धमे वर्ण मर्यादित हो गया, और छुआछूतने इसका अन्त कर दिया। इसीसे वर्णोका संकर हुआ और वर्ण-व्यवस्थाका पतन हुआ। एक वर्ण दूसरे वर्णके धन्वेमें पडनेके प्रयत्नमे फँस गया। ब्राह्मण लोभी वना और उसने अपना स्वधर्म — ब्राह्मणत्व — छोड दिया।

"दरियामे लगी आग, वुझा कौन सकेगा!"

लवणने जब अपना लवणत्व ही त्याग दिया, तव सवका सव नीरस तो हो ही जायेगा। इसमे आश्चर्यकी वात ही क्या है?

यही कारण है आज हिन्दू धर्मकी अवनतिका।

हरिजनसेवक, १४-४-१९३३

३९३. माता-पिताकी आज्ञा

माता-पिताकी आज्ञाका पालन ही धर्म है। वे गुरु है। वे परमेश्वर है। माता-पिताको परमेश्वर मानकर ही श्रवणने मोक्षपद प्राप्त किया। श्री रामचन्द्रजी ने पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए राज-पाटका त्याग कर दिया। आप कहते है कि अस्पृश्यता अधर्म है, यह कलक धोये विना हिन्दू धर्मका नाश निश्चित है। हममे से कईको आपका यह कथन ठीक लगता है, किन्तु माता-पिताके दिलमें यह वात नही जम सकती। मेरे एक मित्रने हरिजन-सेवाका आरम्भ ही किया कि उसकी माँ घर छोडकर भाग गई। कही आधी रातको उसका पता लगा। वह फिर घर लौट आई है, लेकिन मित्र तो वेचारा धर्म-सकटमे पड गया है। वह क्या करे? मैं तो समझता हूँ कि ऐसा ही अनुभव कई युवकोको होता होगा।

मेरे पास आये हुए एक पत्रका यह सारांश है। यह धर्म-संकटकी बात है सही। माता-पिताकी भक्तिमें मेरा विश्वास है। मेरे माता-पिता जब जीवित थे, तब मैं अपने सामने श्रवणका आदर्श रखता था। मैंने जो-कुछ अपने जीवनमें पाया है वह सब मेरी मातृ-पितृ-भक्ति और उनके आशीर्वादका ही प्रताप है, ऐसा मैं मानता हूँ। यह मानते हुए भी, मैं ऐसे अनेक प्रसंग सोच सकता हूँ, जब माता-पिताकी आज्ञाका भंग ही शुद्ध धर्म हो जाता है। जब माता-पिताको गुरु और परमेश्वरका पद दे दिया, तब तो वे पूर्ण हो चुके, अर्थात् अपनी सन्तानकी दृष्टिमें वे पूर्ण ही हैं। सन्तानको कभी यह शंका नहीं होती कि माता-पिताकी आज्ञामें कोई अज्ञान या भूल हो सकती है। माता-पिताके प्रति सन्तानका पक्षपात होगा ही, क्योंकि वे सदैव बच्चोंका हित ही चाहेंगे। जहाँ वातावरण शुद्ध हो और माता-पिताके प्रति सन्तानकी अनन्य श्रद्धा हो, वहाँ माता-पिताकी आज्ञा-पालनमें ही उसका श्रेय है।

लेकिन जब सन्तानके मनमें शंका उपस्थित हो तब क्या किया जाये? यदि माता-पिता कहें, 'शराब पीओ, मुर्दार मांस खाओ, रिश्वत दो, बेईमानीसे नौकरी हासिल करो, व्यापारमें असत्य धर्म है, नौ वर्षकी कन्याके साथ शादी कर लो, अस्पृश्यता-निवारण पाप है' तब सन्तानका क्या कर्तव्य होना चाहिए? मैं मानता हूँ कि इस प्रश्नमें ही इसका उत्तर आ जाता है। जब माता-पिताकी आज्ञा स्पष्टतः अधर्मरूप मालूम होती हो, तब उस आज्ञाका भंग ही धर्म हो जाता है। किन्तु जब किसी कर्तव्यके धर्माधर्मके ही विषयमें शंका हो, तब तो माता-पिताकी आज्ञा-पालन ही धर्म है। माता-पिताकी आज्ञाके मुकाबलेमें और किसी मनुष्यकी आज्ञा ठहर ही नहीं सकती। ऐसी स्थितिमें यदि माता-पिताकी आज्ञा और अन्य मनुष्यकी आज्ञामें यह प्रश्न आ जाये कि किसकी आज्ञाका पालन करना चाहिए तो माता-पिताकी ही आज्ञाका पालन करना ठीक माना जायेगा। माता-पिताकी आज्ञाका उल्लंघन तो वही कर सकता है, जिसे ऐसा करनेके लिए धर्मकी अन्तःप्रेरणा हुई हो।

पर ऐसी अन्तःप्रेरणा किसे हो सकती है? आज्ञाके उल्लंघनकी प्रेरणा तो उद्धत पुत्रको भी हो सकती है, उच्छृंखल पुत्रको भी हो सकती है, स्वार्थी पुत्रको भी हो सकती है। पर इससे इन सबको माता-पिताके आज्ञा-उल्लंघनका अधिकार थोड़े ही मिल जाता है। जो पुत्र संयमी हो, विवेकवान हो, त्यागी हो, सहनशील हो, जिसे आज्ञा-पालनका अभ्यास हो और जिस पुत्रमें स्पष्टतया धर्म-जागृति आ गई हो, उसे ही माता-पिताकी आज्ञाके विरुद्ध काम करनेका अधिकार है। खासकर आजकलके स्वच्छन्दता और स्वातन्त्र्यवादके जमानेमें, जबकि अनेक पुत्र माता-पिताको यों ही तुच्छ समझते हैं, यह कहना कठिन है कि केवल धर्म मानकर ही उनकी आज्ञाका उल्लंघन कौन करता है। पर इसका यह अर्थ न लगाया जाये कि कुछ इने-गिने धर्म-भावयुक्त पुत्र भी अपना धर्म-पालन नहीं करते। मेरा अभिप्राय तो यह है कि मैंने जिस मर्यादाका निर्देश किया है उसपर चलनेवाला कभी भूल नहीं करेगा।

दूसरी बात यह है कि जो युवक या युवती माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध काम करते हैं उन्हें अपने माता-पिताकी सम्पत्ति और घरकी अन्य सुख-सुविधाओंके उपयोगका अधिकार नहीं है। उन्हें बिना क्रोध किये निस्संकोच होकर घर-बार, धन-

सम्पत्ति आदि छोड़नेके लिए उद्यत रहना चाहिए। कभी-कभी तो ऐसे सत्याग्रही बरतावका परिणाम शुभ ही होता है। माता-पिताका विरोध शान्त हो जाता है, और स्वेच्छाचारी माता-पिताका संयमी पुत्र कभी-कभी उनका 'हृदय-परिवर्तन' तक कर देता है। अस्पृश्यतामें ऐसी बात नहीं है। वह तो एक ऐसा विषय है, जिसमें माता-पिता और पुत्र दोनों ही पक्ष संयमी होकर अपने-अपने व्यवहारको धर्म मान सकते हैं। ऐसा सच्चा मतभेद सदाके लिए निभ जाये तो क्या कहना। ऐसी स्थितियोंमें यही आशा रखी जा सकती है कि एक-दूसरेके प्रति सहिष्णुताका भाव रखें। वय-प्राप्त पुत्र या पुत्रीसे माता-पिता सदा आज्ञा-पालनकी आशा न रखें। और यदि माता-पिताका आग्रह स्पष्ट हो और वे मरनेकी या ऐसी ही कोई धमकी दें, तो युवक निर्भय होकर जिसे विवेकपूर्वक अपना स्पष्ट धर्म समझे उसीका पालन करे।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ९-४-१९३३

३९४. शब्दोंका नूतन प्रयोग[1]

[९ अप्रैल, १९३३]

एक सज्जन लिखते हैं :

> **आप सदा शब्दोंके नूतन प्रयोग किया करते हैं। इससे अनर्थका भय है। आपने कहा हैं—'हम सब मूर्तिपूजक हैं, मन्दिर हिन्दूधर्मका आवश्यक अंग है।' इसमें मूर्तिपूजा और मन्दिर आप एक अर्थमें लेते हैं और जनता दूसरे अर्थमें। इसलिए आपको स्पष्टीकरण करना चाहिए। इन शब्दोंका आपने क्या एक विस्तृत रूपमें प्रयोग नहीं किया है?**

यह कथन लेखककी दृष्टिसे भले ही कुछ ठीक हो, पर मेरी दृष्टिसे नहीं। अर्थका विस्तार मैंने अवश्य किया है, लेकिन लौकिक अर्थका त्याग नहीं। लेखक लौकिक अर्थका त्याग करते हैं और मेरे विस्तृत अर्थको स्वीकार करनेका प्रयत्न। उनके इस प्रयत्नमें ही दोष है। लौकिक अर्थका त्याग कर दिया गया, तो फिर विस्तार किसका रहा? मैं तो पाषाण इत्यादिकी मूर्ति भी मानता हूँ। बात यह है कि मनुष्यके विचारोंका यथार्थ और पूर्ण अर्थ भाषा कभी दे ही नहीं सकती। अतः शब्दोंका विस्तार तो होता ही रहेगा। प्रत्येक अर्थके लिए नया शब्द बनाना असम्भव है और अनावश्यक भी। जब विरोधी विचार व्यक्त करनेके लिए ही एक भी शब्दका प्रयोग किया जाता है, तब शंका और अनर्थका भय अवश्य रहता है। यहाँ तो ऐसा कोई भय नहीं है। मैंने तो यहाँ केवल लौकिक अर्थका ही विस्तार किया है — वस्तुतः विस्तार नहीं, किन्तु उसका स्पष्टीकरण ही किया है।

लौकिक अर्थ पाषाणको परमेश्वर बना देता है। लेकिन सही बात यह है कि पाषाण स्वतः परमेश्वर नहीं, परन्तु पाषाणमें परमेश्वर है। लोग कहेंगे कि यदि

1. इस लेखका गुजराती अनुवाद ९-४-१९३३ के हरिजनबन्धुमें प्रकाशित हुआ था।

पाषाणमे परमेश्वर है तो फिर पाषाण परमेश्वर क्यो नही? शरीर आत्मा नही है, शरीरमे आत्मा है। तो भी करोड़ो लोग ऐसा कहते व मानते है कि शरीर ही आत्मा है। उनकी दृष्टिसे वह भी सत्य है अन्यथा उनके कथनमे भी सत्यका अश है। अर्थात् लौकिक अर्थ सर्वथा त्याज्य नही है। जैसे विचारका विस्तार होगा, वैसे ही शब्दोंके अर्थका भी विस्तार होता जायेगा। मैं जो-कुछ कर रहा हूँ, वह कोई नई बात नहीं है। मेरे विचारोमे ही कुछ नवीनता-सी देखनेमे आती है। यह अनिवार्य है। क्योकि मेरी यही साधना है। सत्यकी खोजमे विचार करना ही पड़ता है। संकुचित अर्थसे सन्तोष नही होता। ध्यान करनेसे उसी शब्दके उसी अर्थमे ही सन्तोष का बीज देखनेमे आता है।

कहा जाता है कि वेद केवल 'ॐ'का ही विस्तार है। गोसाईं तुलसीदास कहते हैं, राम ही ओम् है, राम ही वेद है। सब-कुछ उसीमे है, सब वही है और कुछ नहीं है। लेकिन लौकिक राम दशरथ-नन्दन है। तुलसीदास कहते है—'मेरा राम दशरथ-नन्दन है सही, लेकिन वह उससे भी बहुत अधिक है। वही सच्चिदानन्द पूर्ण परब्रह्म है।' इस कथनमे कोई विरोध नही, विचार-विस्तार, अर्थ-विस्तार है। रामके परम भक्त तुलसीदासने ध्यान किया और ध्यान-पथमे निरंजन, निराकार, सर्वव्यापक रामको पाया। यहाँ कोई अनर्थ नहीं हुआ। अच्छा ही हुआ। परिणाममे अवतारवादके रहस्यको हम और अधिक समझने लगे। इस प्रकार पाषाण-शिलासे लेकर परमाणु तक चले जाइए तो भी मूर्ति ही नजर आती है। और परमाणुमे भी परमात्मा छिपा हुआ पाया जाता है। इस दृष्टिसे सारा जगत् प्रतिमा-पूजक है। जगन्नाथ नामका मकान जिसमे जगन्नाथकी मूर्ति प्रतिष्ठित है, वह भी मन्दिर है और जिस स्थान पर पाँच आदमी बैठकर प्रभुका नित्य नाम-स्मरण करते हैं वह भी मन्दिर है। इस कारण मन्दिर हिन्दू धर्मका ही नही, बल्कि संसारके सभी धर्म-मजहबोंका एक आवश्यक अंग है। फिर कोई भले ही उसे गिरजा, मस्जिद, गुरुद्वारा, उपाश्रय इत्यादि नामसे पुकारे। जहाँतक शरीर और आत्माका सम्बन्ध रहेगा, वहाँतक मन्दिर और भगवान्‌का भी मेल बना रहेगा। शरीर नरककी खान है और ईश्वरका निवास-स्थान भी है। ठीक इसी तरह मन्दिर नरककी खान भी बन सकता है, भगवान्‌का निवास स्थान तो ही है—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी।।

हरिजनसेवक, १४-४-१९३३

३९५. पत्र : लीलावती आसरको

९ अप्रैल, १९३३

चि० लीलावती,

तूने तो यही किया कि बिच्छूका मन्त्र जानती नहीं और साँपके बिलमें हाथ दे दिया। प्राइमस स्टोवमें बहुत स्पिरिटकी जरूरत नहीं होती। इसलिए तूने निरी स्पिरिटवाला स्टोव पसन्द किया। किन्तु तुझपर ईश्वरकी कृपा है इसलिए तेरे थोड़े-से बाल ही जले और तू बच गई। अब अच्छी तरह सावधान हो जाना और हर प्रतिबन्ध या छूटका रहस्य समझ लेना। अर्थात् अपने जीवनको स्थिर, शान्त और विचारमय बनाना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३२५) से।

३९६. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

९ अप्रैल, १९३३

बालको और बालिकाओ,

विनोदको क्या हो गया था? आशा है अब वह अच्छी हो गई होगी।

यदि तुम सब शान्तारामसे खूब प्रेम करोगे तो उसकी बुद्धि खुलेगी। किसीको उसकी खिल्ली नहीं उडानी चाहिए।

क्या नई खुराक तुम सबको अनुकूल आ गई है? क्या तुम सब लक्ष्मी बहनको पत्र लिखते हो? वह तो तुम सबको बहुत याद करती है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

३९७. पत्र : चाँपानेरियाको

९ अप्रैल, १९३३

भाई चाँपानेरिया,

आपका पत्र मिला। आपने लिखकर बहुत अच्छा किया। एक ओर तो अत्यधिक विनम्रता और दूसरी ओर मृत्युपर्यन्त दृढता और सर्वस्व-त्यागकी भावना यदि मुट्ठी-भर कार्यकर्ताओमे भी होगी तो अस्पृश्यता-रूपी रावणका नाश अवश्य होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१४०) से।

३९८. पत्र : नारणदास गांधीको

९ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी ७ तारीखकी भेजी डाक आज मिली और उसे पढनेके बाद ही आजकी डाक यहाँसे तुम्हे भेजी।

परचुरे शास्त्री आश्रममे तीन वर्षकी तालीम लेने आये थे। उनका उद्देश्य तालीम लेनेके बाद आश्रमका काम करनेका था। उसमे उनका हेतु और मेरा हेतु यह था कि वे और उनके साथी आश्रमके आदर्शका अनुसरण करते हुए काम करेगे। दुर्भाग्यवश उन्हे बीचमे ही चले जाना पडा किन्तु आश्रमका काम उन्होने यथाशक्ति किया इसलिए मैने उन्हे आश्रमवासी ही माना है। 'आश्रमवासी' का यहाँ शाब्दिक अर्थ नहीं करना है। मै उसे उसके शाब्दिक अर्थसे कही व्यापक अर्थ देना चाहता हूँ। डकनको लिखे अपने पत्रमे मैने जो लिखा है, क्या वह तुमने देखा? मेरे मनमे तो वह आश्रमवासीका स्थान ले ही चुका है। और यदि कही सेवा-कार्य करते-करते उसकी स्थिति विषम हो जाये तो मै उसे आश्रममे आ जानेके लिए अवश्य कहूँगा। वह कही भी जाये, आश्रमसे उसका यह सम्बन्ध बना रहेगा। मेरा विश्वास है कि परचुरे शास्त्रीने ऐसा ही किया। चिंचवडवालोपर भी यही बात लागू होती है। दूसरे कई लोगोकी गिनती भी ऐसोमे की जा सकती है। आश्रमकी बुनाईशालामे जो लोग आते है उनके विषयमे मै ऐसा नही कहूँगा। उनमे से कुछ तो बुनाई सीखकर

आश्रम-जीवनसे निकल ही जाते है और मात्र जीविकोपार्जनमे व्यस्त हो जाते है। बात समझमे न आई हो तो अभी पूछना।

नरहरिके पत्रके सम्बन्धमे तुम्हारी टीका मै स्वीकार करता हूँ। तुमने उसकी भाषामे जो कठोरता देखी है उसे मै भी देख सका था। किन्तु मैंने उसकी भाषाको अनदेखा करके उसके हेतुकी और सुझावोकी जाँच की। मैंने उसे इस दृष्टिसे जाँचा मानो वह मेरे विषयमे हो। इसलिए तुम्हारे लिए उसने जिस कठोर भाषाका प्रयोग किया है, उसका मैंने कोई विचार नही किया। नरहरिके स्वभावको मै जानता हूँ। तुम्हारा धर्म तुम्हारे लिए प्रयुक्त भाषाकी ओर न देखना है। लिखनेवाले का हेतु दुष्ट न हो और उसके सुझाव विचार करने योग्य हो तो हमे उनपर विचार करना चाहिए। यह अहिंसाका मार्ग है – हसकी रीति है। 'जड-चेतन गुन-दोषमय विश्व कीन्ह करतार, सत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि-विकार' ऐसा किये बिना सतत्व नही मिलता, सत्य नही मिलता और मिल जाये तो उसकी रक्षा नही हो पाती। दोष हम देखे भले किन्तु उन्हे तोलनेका काम तो निष्कलंक ब्रह्मका ही हो सकता है दोषमय मनुष्यका नही। मनुष्यका वर्णन ही किसीने 'दोषोका पुतला' कहकर किया है। इसलिए तुम्हे हार स्वीकार नही करनी है। यह अध्याय आज तो यही पूरा करता हूँ।

. . [1]के विषयमे तुम्हे लिख चुका हूँ। मुझे अब इसकी कोई आशा नही रही कि उनमे से कोई भी फिलहाल आश्रममे रहेगा। आश्रमके नियमोके पालनका ताप वे सहन नही कर सकते। इसलिए मै मानता हूँ कि अपनी शक्तिकी मर्यादाको समझकर ही वे आश्रम छोड रहे है। तुम्हारे प्रति उनमे आदर या विश्वासकी भावना नही है किन्तु मै उसके बिना भी चला लेता। तुमसे तो मै चला लेनेको कहता ही। किन्तु जहाँ आश्रमके नियमोका पालन करनेकी अशक्ति या अनिच्छा (अन्तमे तो ये दोनो एक ही वस्तुके सूचक है) हो वहाँ यदि उसके बावजूद वे आश्रममे रहते है तो उन्हे घुटन महसूस होगी और आश्रमको भी घुटन महसूस होगी। मेरा खयाल है कि . [2] और [3] दोनो अपना भरण-पोषण आप कर सकते है। . . [4]भी बीमार न हो तो इस दिशामे पूरी तरह समर्थ है। सम्भव है कि आश्रमके बाहर उनका ज्यादा अच्छा विकास होगा और वे अपनेको चमका भी सके। आश्रमके साँचेमे ढलनेके लिए वे तैयार नही है। तुम्हारा विचार मुझसे भिन्न हो और तुम उन्हे आश्रममे खीच सको तो मुझे अच्छा ही लगेगा। उनका आश्रमसे बाहर जाना मुझे अपने ही बाहर जाने-जैसा लगता है। मेरे लिए तो उनका जाना बहुत ही गम्भीर घटना है किन्तु वे आश्रममे विवश होकर रहे और एक प्रकारका कृत्रिम जीवन बिताये तो यह एक असह्य वस्तु होगी, यह धर्मके विपरीत होगा।

हमने यहाँ [राष्ट्रीय] सप्ताहका आरम्भ उपवास करके तो मनाया किन्तु उसके सिवा हम कुछ नही कर सके।

१ से ४. यहाँ नाम नहीं दिये गये हैं।

तुम्हारे पत्रमे वालजीके लेखका उल्लेख है किन्तु वह हमें मिला नही। शायद कल मिले।

बापू

[पुनश्च :]

अपने अज्ञानमे मै यहाँके बोर्डको पच्चीस गाडीव चरखे, १२ आना प्रति नगकी दरसे, देनेके लिए बँध गया हूँ। उन्हे वचन देनेके बाद मैंने लक्ष्मीदाससे कीमत पूछी तो उसने डेढ रुपया बताई। किन्तु अब मुझे तो उन्हे पच्चीस गाडीव देने ही होगे। इस सम्बन्धमे अपने एक पत्रमे मैंने केशूको लिखा भी था। किन्तु वह तो अब चला गया। मै नही जानता कि इस समय कारखानेमे ऐसा कोई है या नही जो यह काम कर सके। यदि वहाँ न बन सकते हो तो लक्ष्मीदास बनवाकर भिजवाये और बारह आनेसे अधिक जो भी कीमत बैठे उतना पैसा आश्रमसे वसूल कर ले। उसमे मोढिया, तकुआ और कमानी — इतने अग आवश्यक है। मैंने जेलमे जो चरखा बनाया था वह वहाँ है। वैसा ही सादा चरखा चाहिए। उसमे रोगन करनेकी जरूरत नही है। ऊपर एक हुक होना चाहिए ताकि काम हो चुकनेपर उसे दीवार पर टाँगा जा सके। हुक टीनके पतरेका बनाया जा सकता है। या उसमे एक छेद करके डोरी डाली जा सकती है। चक्रके लिए स्टीलकी धुरीकी जरूरत नही है। केशूने जो नमूना दिया था उसमे स्टीलकी धुरी नही है। शुरूमे हमने इसमें जिस चक्रका उपयोग किया था उसमें दो कीले ही थी। उसपर मैंने तो बहुत कताई की थी। बनानेमे कोई असावधानी न हो और चरखा अच्छी तरह काम दे, इतना हुआ तो काफी माना जायेगा। रेलभाडा बोर्ड देगा। ये चरखे जहाँ भी बनवाये जाये, जल्दी बने तो अच्छा होगा। कोई बात समझमे न आई हो तो पूछना। यह पत्र लक्ष्मीदासको भी दिखाना।

बापू

[पुनश्च :]

कुल २६ पत्र है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से; सी० डब्ल्यू० ८३५३ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

३९९. पत्र : नारणदास गांधीको

९ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

कल मैंने तुम्हे जो चिट्ठियाँ भेजी है उनमे . . .के[1] मामलेको लेकर हुई चर्चाका विवरण, उससे सम्बन्धित दो पत्र, मेरीका एक पत्र, मेरीके इस पत्रका मेरा अपना उत्तर और वहाँ रखनेके लिए इस उत्तरकी एक नकल भेजी है।

मेरीबहनका पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा। मैंने उसे जो उत्तर दिया है उसे मै जानता हूँ तुम समझोगे। तुम सब लोगोको यदि उसका स्वभाव पसन्द आया हो तो उसकी इच्छाका आदर करना। किन्तु सब आश्रमवासी साथ बैठकर इस सुझावपर स्वतन्त्र रूपसे 'विचार कर लेना। ऐसा न समझना कि मैंने जो-कुछ कहा है उसे करना ही है। मेरीबहनको मैंने जो उत्तर दिया है उसमे भी मैंने यह तो स्पष्ट कर ही दिया है।

इसके साथ जेकीबहनका[2] पत्र भेज रहा हूँ। उसके लडके अब बडे हो गये है। उनकी देखरेख अब वहाँ आसानीसे हो सकती है। यदि उन्हे आश्रममे रखा जा सकता हो तो मणिभाईको[3] लिखना कि उन्हे भेज दे। उनपर जो खर्च आनेका अनुमान हो वह उनसे मँगा लेना। . .[4]

. .[5] .[6]के साथ जो हुआ है उससे यदि हम चाहे तो बहुत-कुछ सीख सकते है। उन्होने बार बार आश्रमके नियमोका उल्लघन किया इसलिए उन्हे जाना पडा। . .[7]ने आश्रमके नियमोंका पालन नही किया और वह अनुभव करता है कि आगे भी उनका पालन करना उसके लिए शक्य नही है। उसने सारे नियमो का पालन अभीतक नही किया और भविष्यमे भी नही कर सकेगा। इसलिए यह सारा कुटुम्ब आश्रम छोड़ रहा है। .[8] आश्रमके स्तम्भ थे। उनके बिना आश्रम का जन्म भी न हुआ होता। उनका कुटुम्ब आश्रमसे जाये यह एक दुःखद और गम्भीर घटना है। तथापि मै मानता हूँ कि उन सबके जानेमे ही आश्रम-धर्मका पालन है। वे चले गये इसलिए अब हमारे प्रेमके पात्र नही रहे, ऐसी बात नही है। हमारी नजर इन दोनो कुटुम्बोंपर रहेगी ही। हम ऐसी इच्छा करे कि वे

१. नाम नहीं दिया गया।
२. डॉ० प्राणजीवन मेहताकी पुत्री।
३. मणिलाल डॉक्टर, जेकीबहनके पति।
४. एक अनुच्छेद छोड़ दिया गया है।
५, ६, ७ व ८. नाम छोड़ दिये गये हैं।

बाहर तो चले गये है किन्तु बाहर भी वे आश्रम-धर्मका यथाशक्ति पालन करते रहेगे और ऐसा कुछ नही करेगे जिससे आश्रमको लज्जित होना पडे।

मै चाहता हूँ कि ऐसा गर्व कोई न करे कि वे चले गये है इसलिए वे अपूर्ण थे और हम आश्रममे है इसलिए हम पूर्ण है। हो सकता है कि जानेवाले आश्रममे बने रहनेवालो से ज्यादा योग्य हो। जानेवालो के दोष सबको दिख गये किन्तु रहनेवालो के दोष यदि छिपे रह गये हो तो कौन जानता है? हम किसीके न्यायाधीश न बने। यह तो ईश्वर ही जानता है कि कौन योग्य है और कौन अयोग्य।

इन उदाहरणोसे हम चेते। कोई अपना दोष छिपाये नही, सब अधिक जाग्रत बने, कोई भी झूठी शर्मके कारण कुछ न करे, सब अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार चले और जिनकी शक्ति या इच्छा आश्रम-धर्मका पालन करनेकी न हो वे बाहर ही रहे, यही ज्यादा अच्छा होगा। हम सब अपूर्ण है पर यदि यह जानते हुए हम आश्रम-धर्मके पालनका निरन्तर प्रयत्न करते हो, अपने दोष छिपाते न हो तो हमे आश्रममे रहनेका अधिकार है। किन्तु यदि हममे इस धर्मका पालन करनेकी इच्छा नही है अथवा उसमे हमारी श्रद्धा नही है तो हमे आश्रमका त्याग कर ही देना चाहिए।

पत्रके इस अशको यदि वहाँकी मित्र-मडलीमे घुमा दो तो काफी होगा। इसमे कही कोई परिवर्तन या परिवर्धन सुझाना चाहो तो सुझाना।

बापू

[पुनश्च .]

छगनलाल रमाकी कोई चिन्ता नही करता। उसे विश्वास है कि जो भी आवश्यक होगा, तुम सब करोगे ही।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५२ से भी, सौजन्य . नारणदास गाधी

४००. पत्र : नानालाल के० जसानीको

९ अप्रैल, १९३३

भाई नानालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि मगनलाल न आये तो भी तुम दोनो मिलकर बँटवारा करके तो देखो और उसे छगनलालके सामने रखो। हमे यह आशा रखनी चाहिए कि तुम जो करोगे उसे मगनलाल स्वीकार कर लेगा। डाक्टर [अमुक व्यक्तियोके लिए] जो-जो रकमे लिख गये है उन्हे स्वीकार करके ही, यानी पूरी सम्पत्तिमे से उतनी धन-राशि कम करके ही, बँटवारा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६३१)से।

४०१. पत्र : माधवजी और कृष्णा कापडियाको

९ अप्रैल, १९३३

चि० माधवजी और कृष्णा,

तुम दोनोंके पत्र मिले। मेढको मैंने भी लिखा तो था। उसने मुझे पत्र लिखा था। उसमें भविष्यका वादा होनेके कारण मैंने तुम्हें सूचित नहीं किया। किन्तु अब तुम्हें कुछ शान्ति मिली है यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। उतार-चढाव तो आते ही रहते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि तुमने अपनी मानसिक शान्ति नहीं खोई।

बापूके आशीर्वाद

माधवजी गोकुलदास
शामजी शिवजीनो मालो
मनोरदास स्ट्रीट
बम्बई

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२)से।

४०२. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

९ अप्रैल, १९३३

चि० नर्मदा,

मक्खीकी टाँगोंकी तरह टेढ़े-मेढ़े अक्षर मत लिखा कर। हाथ साधकर बड़े-बड़े अक्षर लिखो। मुरदार मास तूने उनसे उनकी सहमतिसे ही छुड़ाया था यह मैं समझ गया।[1] खानेकी बहुत-सी चीजें होते हुए भी, मुरदार मास उनके मुँह लग गया है इसलिए वे खाते हैं।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७७६)से, सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

१. देखिए "पत्र : नर्मदाबहन राणाको", २७-३-१९३३।

४०३. पत्र : शामल आर० रावलको

९ अप्रैल, १९३३

चि० शामल,

तूने प्रश्न पूछा सो ठीक किया। यह तो मैं कभी नही कहूँगा कि मुरदार मास नही, मारे गये जानवरोका मास खाना चाहिए। मैं इतना अवश्य कहता हूँ कि मुरदार मास खानेसे मनुष्यपर बहुत ही खराब असर पडता है। दुनिया-भरमे इसे बुरा माना जाता है। हाँ, मैं इतना जरूर कहता हूँ कि जो लोग मास खाये बिना रह ही नही सकते वे भले ही मारे गये पशुओका मास खाये। यह तो हो नही सकता कि जिसे मास खानेकी आदत है वह सिर्फ मुरदार मास ही खायेगा, अन्य प्रकारका नही। ऐसी बात नही है कि मुरदा जानवरका मास खानेवाले वध किये गये पशुओके मासको धर्म-विरुद्ध मानकर नही खाते। मुरदार माससे शरीर स्वस्थ रहता है, यह कहना तो वहम ही है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१४६)से। सी० डब्ल्यू० २८८२ से भी, सौजन्य : शामल आर० रावल

४०४. पत्र : पद्माको

९ अप्रैल, १९३३

चि० पद्मा,

तेरा पत्र मिला। यदि वहाँ तुममे से किसीकी भी तबीयत अच्छी न रहती हो तो लोगोके लिए बोझ बनकर तुम्हे वहाँ नही रहना चाहिए। ऐसा हो तो मैं तुम्हे आश्रममे जाकर रहनेकी सलाह दूँगा। इधर-उधर बेकार भटकनेके बजाय जो-कुछ होना हो सो आश्रममे ही हो। और यदि वहाँ तेरा स्वास्थ्य ठीक रहे तो तुझे वही जम जाना चाहिए। मैं तेरे उत्तरकी प्रतीक्षा करूँगा।

आशा है, शीला अब ठीक हो गई होगी और सरोजिनीदेवी भी स्वस्थ होगी।

विद्यावतीजी की तबीयत कैसी रहती है? आजकल वहाँ कितनी लडकियाँ है? तू क्या करती है? वहाँकी आबोहवा कैसी है? मुझे पूरे समाचार देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१४३) से।

४०५. पत्र : अमीना जी० कुरेशीको

९ अप्रैल, १९३३

प्रिय बेटी अमीना,

कुरेशीसे तेरी मुलाकातके बादके तेरे पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तम्बाकू और मिर्चोंके बारेमें भी मैं तेरे मनकी बात जानना चाहता हूँ। निस्संकोच लिखना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६६६)से। सी० डब्ल्यू० ४३११ से भी; सौजन्य हमीद जी० कुरेशी

४०६. तार : पूनमचन्द राँकाको

[१० अप्रैल, १९३३][1]

एक्सप्रेस

सेठ पूनमचन्द
कैदी
जिला जेल, खंडवा

आपके उपवासको सत्याग्रह और अनुशासनके नियमोंके विरुद्ध मानता हूँ। भूख-हड़ताल करके सुविधाओंकी माँग नहीं की जाती और 'ए' तथा 'बी' श्रेणियोंके कैदियोंको दी जानेवाली सुविधाओंका लाभ उठानेकी किसी पर बाध्यता तो नहीं है। इसलिए आशा करता हूँ कि आप अपना उपवास तोड़ देंगे।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८७)से। होम डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, पॉलिटिकल फाइल नं० ३१/१०८, १९३२, पृष्ठ ९८ से भी, सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. देखिए अगला शीर्षक।

४०७. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

कल मुझे सेठ पूनमचन्द राँकाके बारेमें इसी ६ तारीखको भेजे दो तार मिले। उनपर लगी डाककी मुहरोंसे लगता है कि आपको तो वे उसी दिन दे दिये गये थे। आप यह जानते हैं कि वे कितने महत्त्वपूर्ण हैं। फिर यह देर कैसे हुई, समझमें नहीं आता। इस विलम्बके परिणामको कुछ हदतक मिटानेके लिए मेरे पास एक ही रास्ता है कि मैं एक तार सीधे सेठ पूनमचन्दको भेजूं। लेकिन मैं जानता हूँ कि सरकारी आदेशमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। अगर आपको टेलीफोन करने या तार भेजनेका अधिकार हो तो मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप सरकारसे संलग्न तार[1] सेठ पूनमचन्द या खण्डवा जेलके अधीक्षकको अत्यावश्यक सन्देशके तौर पर सरकारी खर्चेपर भेजनेकी अनुमति प्राप्त करें।[2] मेरी विनम्र रायमें उपवास कर रहे उस कैदीके और मेरे लिए कमसे-कम इतना तो किया जाना चाहिए।

जिस पत्र-व्यवहारका सम्बन्ध एक कैदीके जीवनसे हो और जिसके लिए सरकारकी अनुमति भी मिल गई हो उसके बारेमें ऐसा विलम्ब क्यों किया जाता है, इसका कारण मैं जल्दीसे-जल्दी जानना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८७)से।

४०८. पत्र : अब्दुल अलीमको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय अब्दुल अलीम,

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। तुम्हें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। खुदा सचमुच तुमपर बड़ा मेहरबान रहा है। लोगोंकी सद्भावनाके बिना तुम न तो 'रिफ्यूज'में जगह पा सकते थे[3] और न कैम्बेल अस्पतालमें। और फिर सतीश और

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. बम्बई सरकारने पूनमचन्द राँकाके पास पहुँचानेके लिए यह तार मध्य प्रान्त सरकारको भेज दिया था।
३. देखिए "पत्र : देवप्रसाद सर्वाधिकारीको", ९-३-१९३३।

उनके आश्रमके सभी लोग तुम्हे आवश्यक सहायता देनेको तो तैयार ही है। यह सच है कि पैसेसे बहुत-कुछ प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन गरीबीकी भी नियामतें है जो पैसेसे नही मिल सकती। अगर इसमे कुछ आकर्षण नही होते तो इतने-सारे लोगोने उसे खुशी-खुशी न अपनाया होता। तुमने 'कुरान' पढा है और यह जानते हो कि खुद पैगम्बर साहब और उनके बहुत-से साथी बडे गरीब थे और उन्होने बडी तगीकी जिन्दगी बिताई थी। इसलिए तुमको अपने भाग्यपर खिन्न नही होना चाहिए।

तुम्हारे कहे अनुसार यह पत्र मैं सतीशबाबूके पतेसे भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८८६) से।

४०९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

डेविड-योजनाके लिए मुझे कुल ५,००० रुपयेके दो चेक मिले — २,५०० रुपये का श्री० सुव्रतादेवीसे और इतनेका ही दूसरा श्री० जानकीदेवीसे।

पहले अनुदानका उपयोग अगर राजपूतानेमें कोई ठीक योग्यतावाला हरिजन विद्यार्थी मिला तो उसपर किया जायेगा, अन्यथा बम्बई प्रान्तके किसी हरिजन छात्रपर।

दूसरेको अव्वल तो मध्य प्रान्त (मराठी)के किसी हरिजन विद्यार्थी पर खर्च किया जायेगा और अगर न हो तो मध्य प्रान्त (हिन्दुस्तानी)के विद्यार्थीपर। यदि यह भी सम्भव न हुआ तो उसे किसी भी हरिजन छात्र पर खर्च किया जायेगा।

मुझे जानकीदेवीसे १०० रुपये और भी मिले हैं। इस रकमको मुझे अपनी समझके मुताबिक किसी भी हरिजन-कार्यपर खर्च करना है।

मैंने ये रकमे ठक्कर बापाको दे दी है और अनुदानोके साथ जो निर्देश दिये गये थे वे भी मौखिक रूपसे बता दिये हैं। लेकिन यह बात मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि आपके तत्सम्बन्धी कागजोमे उसका उल्लेख रहे। अभी भी मुझे आपको ५०० रुपये भेजने है और इसके सम्बन्धमे मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ।[1] आशा है, ठक्कर बापाने आर्य भूषण प्रेससे १,०४४ रुपये, जो 'हरिजन'की ओरसे पेशगी दिये गये थे, वापस ले लिये हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८८५) से।

१. देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", ३/४-४-१९३३।

४१०. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय जयरामदास,

इतने दिन बाद तुम्हारी लिखावट देखकर बडी प्रसन्नता हुई। आशा है, तुम बिलकुल स्वस्थ और प्रसन्न होगे।

श्रीयुत उत्तमचन्द गगारामसे[1] प्राप्त ५,००० रुपयेके अनुदानकी घोषणा क्या 'हरिजन' मे करनी है? करनी है तो किन शब्दोमे?

क्या डॉ० चोइथराम चल-फिर लेते है? हम सबकी ओरसे उन्हे स्नेहाभिवादन कहिए।

प्रेमी[2] तो नियमित रूपसे पत्र लिखने लगी थी, लेकिन इधर कुछ दिनोसे बिलकुल मूक हो गई है। उससे पूछना कि चुप क्यो बैठ गई है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७६) से।

४११. पत्र : नी० को

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

पिछले तीन-चार दिनोसे तुम्हारा कोई पत्र नही मिला है। तुम्हारे सम्बन्धमें मुझे वैसी ही चिन्ता होने लगी है जैसी माँको अपनी बच्चीके लिए होती है। मै जानता हूँ वह जरूरी नही है, लेकिन जब मुझे तुम्हारा पत्र नही मिलता तो मै तरह-तरहकी बाते सोचने लगता हूँ। कही तुम बीमार तो नही पड गईं? या तुम अपने सकल्पसे डिग गईं? इसलिए तुम अपने वचनके अनुसार नियमित रूपसे लिखना कभी मत भूलो।

आशा है, शुक्रवारको भेजा मेरा लम्बा पत्र[3] तुम्हे मिल गया होगा। उसमे तुम्हारे प्रत्येक प्रश्नका उत्तर है।

१. सिन्धके एक सरकारी स्कूलके अवकाश-प्राप्त प्रधानाध्यापक। उन्होंने सिन्धकी प्राथमिक शालाओंके हरिजन विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियाँ देनेकी एक योजनाके लिए अनुदान दिया था।

२. जयरामदास दौलतरामकी पुत्री।

३. तात्पर्य शायद ६ अप्रैलके पत्रसे है, जो सम्भवतः अगले दिन भेजा गया हो।

रामस्वामीको लिखे अपने जिस पत्रके बारेमे मैंने तुम्हे बताया था, उसका उसने सन्तोषजनक उत्तर दिया है। उसका यह गुरु कौन है जिसके साथ, बताया जाता है, तुम रहती हो? उसकी उम्र क्या होगी? वह कौन-कौन-सी भाषाएँ जानता है? क्या चीतलदुर्ग उसका घर है? रुद्रमणिका व्यवहार अब कैसा है?

हृदयसे तुम्हारा,

. अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७५) से।

४१२. पत्र : के० रामस्वामीको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय रामस्वामी,[1]

तुम्हारे सबसे ताजा अर्थात् ८ अप्रैलका पत्र काफी सन्तोषजनक है। अब मैं स्थितिको ज्यादा अच्छी तरह समझ गया हूँ।

जहाँतक तुम्हारे गुरुका सम्बन्ध है, मैं जानता हूँ कि यह इतना पवित्र विषय है कि इसपर कोई चर्चा नही की जा सकती। मेरा खयाल है, ये वही सज्जन हैं जिन्हे रुद्रमणि भी अपना गुरु बताता है। क्या तुम उनका कुछ वर्णन कर सकते हो? उनकी उम्र क्या है? वे कौन-कौन-सी भाषाएँ जानते हैं? अच्छे, सच्चे और आध्यात्मिक दृष्टिसे परिपक्व व्यक्ति कोई भाषा जाने ही, ऐसी कोई बात नही है। यह सब तो मैं केवल अपने कुतूहलको तुष्ट करनेके लिए पूछ रहा हूँ।

जहाँतक हरिजनोके बीच तुम्हारे कामका प्रश्न है, उस विषयमे अभी तुम्हारा कोई मार्गदर्शन करनेके लिए मेरा मन तैयार नही है। अभी तो मैं केवल यही आशा कर सकता हूँ कि तुमने और तुम्हारे साथ कुछ अन्य लोगोने जो काम शुरू किया है वह बन्द नही होगा; बल्कि वह और भी अधिक सत्यमय रूप ग्रहण करेगा, जैसा कि मैं आशा करता हूँ, नी० के साथ हुआ है।

भंगीका काम अपनानेके परिणामस्वरूप तुमने जो अनेक बातोमे सयम बरतना शुरू किया है,[2] उसके बारेमे पढकर मुझे बड़ी खुशी हुई।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत के० रामस्वामी
मार्फत श्रीयुत आर० कृष्णराव
वीवर्स लाइन्स
मैसूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७४) से।

१. एक छात्र स्वयसेवक, जो समाज-कल्याणके कार्योंमें भंगीका काम वगैरह करनेमें लग गया था।

२. के० रामस्वामीने कॉफी पीना और सिनेमा देखना छोड दिया था।

४१३. पत्र : जमनाबहन गांधीको

१० अप्रैल, १९३३

चि० जमना,

पुरुषोत्तम-जैसा वैद्य भेज दिया उसके बाद भी क्या तुझे मेरा पत्र चाहिए? और वह भी स्वय लिखे बिना? तेरे एक भी पत्रका जवाब मैंने न दिया हो, ऐसा मुझे स्मरण नही है। तुझे लिखे अपने गत पत्रके उत्तरकी तो मैं अबतक राह जोह रहा हूँ। जो मेरे पत्रकी इच्छा करता है उसे मुझे सुन्दर पत्र लिखना चाहिए या फिर उसे इतना बीमार होना चाहिए कि उसमे पत्र लिखनेकी शक्ति ही न हो।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७५) से, सौजन्य . नारणदास गाधी

४१४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१० अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

नरहरिके हाथो भेजी हुई पूनियाँ मिली। हिसाब बादमे। सूरती पूनियाँ १८ तोला हैं।

शान्ताके बारेमे समझा। उसने अभीतक मुझे कुछ नही लिखा है। इन दोनो बहनोके बारेमे तू जमनालालजी को वर्धा लिख दे तो अच्छा हो।

लक्ष्मी शिकायत करती है कि उसे कोई पत्र नही लिखता। मालूम करना। तू तो लिखती है न?

दुःखो और कष्टोका मैं आदी हो गया हूँ। ईश्वर मेरी परीक्षा अनेक प्रकारसे ले रहा है। तपे बिना मनुष्यका निर्माण कैसे हो? तू कर्तव्यका पालन नही करती, इतना कष्ट तो जरूर देती है। शुरूसे ही गलेको आराम देनेके लिए मैं लिखता रहा हूँ। शरीरको भी आराम देनेकी बात मैंने लिखी है। लेकिन तू दोनो आज्ञाओका अनादर करती है। ये आज्ञाएँ देनेमे स्वार्थ तेरा नही, आश्रमका है। तेरा गला हमेशाके लिए बिगडे, तेरा शरीर कमजोर हो तो तुझे जितना नुकसान होगा उसकी अपेक्षा आश्रमको ज्यादा नुकसान होगा। यह सादा सत्य समझमे आता है? अगर समझमे आ जाये तो नम्र बनकर शरीरको अच्छा रखनेके लिए जो-कुछ कहा जाये उसपर तू अमल कर। इसी तरह क्रोधके बारेमे समझना। क्रोध भी एक व्याधि है। उसे भी दूर कर। अधीरताको भी दूर कर।

किसन कुछ ठीक है ऐसी खबर मिली है। उसे हिस्टीरियाका दौरा हो यह बात समझमे नही आती।

वापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३५) से। सी० डब्ल्यू० ६७७५ से भी; सौजन्य . प्रेमाबहन कटक

४१५. पत्र : भगवानजी पु० पण्डयाको

१० अप्रैल, १९३३

चि० भगवानजी,

तुम्हारे दो पत्र मिले। यह बहुत अच्छा हुआ कि तुमने मरे हुए पाड़ेकी चीरने-फाडनेकी क्रिया देखी। अब उक्त क्रियाको स्वय करनेका मौका भी निकालना।

जहाँ आवश्यक जान पडे वहाँ रोगियोके लिए मदद प्राप्त करनेकी कोशिश करना। तीन-चार प्रकारकी व्याधियोके लिए तो जाने-माने इलाज है। तुम उन्हे जान लेना। यदि मुझे समय मिला तो मैं लिख भेजूंगा।

वापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५५) से; सौजन्य भगवानजी पु० पण्डया

४१६. पत्र : टी० आर० भट्टको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अगर आप अपने क्षेत्रमे अस्पृश्यता-निवारणमे अपने हिस्सेका योग देंगे[1] तो आप देखेंगे दूसरे लोग भी, यदि उन्हे आप एक कृतसंकल्प और निस्स्वार्थ कार्यकर्ता लगे तो, आपके उदाहरणका अनुकरण करेगें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० आर० भट्ट
३, लॉरेंस रोड
नामनेर, आगरा कैंट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८८७) से।

१. टी० आर० भट्टने बद्रीनाथमें अस्पृश्यता-निवारणके लिए काम करनेका इरादा जाहिर किया था।

४१७. पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और जो कतरन[1] भेजी है उसके लिए धन्यवाद। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि अस्पृश्यताके अभिशापको मिटानेके लिए आप जो-कुछ कर सकते है, पहलेसे ही करते रहे है।

मैंने हरदयालबाबूका बचाव करते हुए जो-कुछ कहा है उससे आप यह नतीजा न निकाले कि मै भी ठीक वैसा ही लिखूंगा[2] जैसा उन्होने लिखा। आशा है, ब्राह्मणोपर 'हरिजन' मे लिखा मेरा लेख[3] आपने पढा होगा। उससे मेरी व्यक्तिगत स्थिति स्पष्ट हो जाती है। मै ब्राह्मणो या किसी भी वर्ग-विशेषके खिलाफ जेहाद बोल देनेके बिलकुल खिलाफ हूँ। मुझे तो लगता है कि जहाँतक इस अस्पृश्यता-रूपी दैत्यका सम्बन्ध है, हम सब एक ही रगमे रँगे हुए है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८८८) से।

४१८. पत्र : अन्नदाप्रसाद चौधरीको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय अन्नदाबाबू,

आपका पत्र पाकर बडी प्रसन्नता हुई और उससे भी अधिक यह जानकर कि सुरेशदा[4] के स्वास्थ्यमे आश्चर्यजनक सुधार हुआ है, इतना कि वे जलवायु-परिवर्तनके लिए कर्सियाङ् जा सके। वहाँ अगर वे पूरी तरहसे स्वस्थ हो जाये तो यह हम सबके लिए बडे हर्षका विषय होगा।

फ्री प्रेसके संवाददाताके बारेमे आपने जो-कुछ कहा है, उसपर मैंने ध्यान दिया है। जैसे सन्देश मै एसोसिएटेड प्रेसको दिया करता था, वैसे सन्देश फ्री प्रेसको देना

१. आर० आर० चक्रवर्ती द्वारा मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें स्टेट्समैनको लिखे पत्रकी कतरन।
२. देखिए "पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको", १-४-१९३३।
३. देखिए "ब्राह्मणोंके खिलाफ निन्दात्मक प्रचार", २५-३-१९३३।
४. डॉ० सुरेशचन्द्र बनर्जी।

सम्भव नही था।[1] वैसे भी फ्री प्रेसवाले बयानोको निरी लापरवाहीके साथ जिस तरह गलत रूपमे छापते रहे है उससे मै इतना असन्तुष्ट था कि मैने उन्हे ऐसी कोई सुविधा देनेकी फिक्र ही नही की।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अन्नदाप्रसाद चौधरी
८८ जी, कार्पोरेशन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९८) से।

४१९. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय सतीशबाबू,

इसमे कोई सन्देह नही कि अस्पृश्यताका जैसा क्रूरतापूर्ण रूप दक्षिणमे है वैसा और कही नही है। दक्षिणमे सभी अब्राह्मण अस्पृश्योकी कोटिमे नही रखे जाते, इसका एक ऐतिहासिक कारण है। लेकिन व्यवहारमे तो बात वही है, चाहे आप उन्हे अस्पृश्य कहे या न कहे। इसीलिए मद्रासमे अब्राह्मण निर्वाचन-क्षेत्र है। इसलिए मद्रासमे केवल अस्पृश्योके बजाय अब्राह्मणो और अस्पृश्यो दोनोके लिए सीटे सुरक्षित है, और वहाँ ब्राह्मणो तथा अब्राह्मणोके बीच उससे कही अधिक कटुता है जितनी कि स्पृश्यो और अस्पृश्योके बीच है। बेशक, बगालमे भी स्थिति काफी खराब है और उसमे सुधार लाना जरूरी है। बगालके अस्पृश्योका मन भी उतना ही क्षुब्ध होता होगा जितना मद्रासके अस्पृश्योका होता होगा, क्योकि वे यह तो नही जानते कि कोई उनसे भी अधिक बुरी अवस्थामे है। लेकिन तुलना करने बैठे तो हमे यह स्वीकार करना ही होगा कि मद्रासवाली अस्पृश्यता बगालकी अस्पृश्यतासे लाख दर्जे बदतर है, और अगर आप मद्रास जाकर इस समस्याका अध्ययन करे तो आप तुरन्त कहने लगेगे कि 'वैसे तो हमारे यहाँ बगालमे भी स्थिति खराब है, लेकिन मद्रासमे तो उससे लाख दर्जे ज्यादा खराब है।' इसलिए मै चाहता हूँ कि आप बगालमे तो अस्पृश्यताके खिलाफ उसी मुस्तैदीके साथ काम करते रहे जिस मुस्तैदीके साथ आपने शुरू किया है, लेकिन साथ ही दूसरे प्रान्तोसे तुलना करनेसे बचे और सनातनियोके सम्बन्धमे कोई राय जाहिर करनेमे औचित्य ही नही, उदारतासे भी काम ले।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९३) से।

१. अन्नदाप्रसाद चौधरी किसी समय कुमिल्लाके अभय आश्रमके खादी-कार्यकी देख-रेख करते थे। उन्होंने गांधीजी से अनुरोध किया था कि जिस तरह वे एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको अपने बयानोंकी प्रतियाँ देते है उसी तरह फ्री प्रेस ऑफ इंडियाको भी दें।

४२०. पत्र : मेरी जिलेटको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम दोनोका आश्रम छोडना बिलकुल अनावश्यक था। मैंने तो मात्र कुछ दिन दूर रहना ही आवश्यक माना था। यह बात स्वाभाविक रूपसे हो गई लगती है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब तुम ज्यादा खुश हो। मै तो तुमसे यह सुनना चाहता हूँ कि तुम्हारी सारी उत्तेजना और घबराहट बिलकुल मिट चुकी है और अब तुम ऐसी शान्तिसे रह रही हो जैसी शान्तिका उपभोग तुमने पहले कभी नही किया था।

इस बातको मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि इन तमाम घटनाओंका तुम्हारे माता-पिता, विशेषकर तुम्हारी मातापर क्या असर हुआ होगा।[1] मुझे लगता है कि अगर तुम्हारे रास्तेमें कोई और अडचन न हो और तुम निजी तौरपर इन्तजाम करनेकी स्थितिमे हो तो यह अच्छा होगा कि उनका मानसिक सतुलन बिगड जानेका खतरा सिरपर आनेसे पहले ही तुम अभी तुरन्त वहाँ चली जाओ और उन्हे सब-कुछ समझाकर उनके सामने भारतमे सेवा-कार्य करनेका अपना अटल सकल्प स्पष्ट कर दो। अगर यह किसी भी तरह सम्भव हो तो मेरे खयालसे तुम भी यह देखोगी कि इससे तुम्हारा समय बचेगा, खुद परेशानीसे भी बचोगी और पैसेकी भी बचत होगी। तुम्हे यह आशा नही करनी चाहिए कि तुम्हारे माता-पिता तुममे इतनी तेजीसे हुए परिवर्तनोको बुद्धिपूर्वक और सहानुभूतिके साथ ग्रहण कर सकेगें।

वेरियरके स्वास्थ्यके बारेमे तुमने जो भरोसा दिलाया है, उससे मुझे खुशी हुई है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९६) से।

१. इन दिनों मेरी जिलेट करजा (म० प्रा०) स्थित गोंड सेवा संघमें काम कर रही थीं। उनके माता-पिताको यह बात पसन्द नहीं थी और वे चाहते थे कि वह इंग्लैंड लौट आये। उनकी माताका दिमाग खराब हो जानेका खतरा था।

४२१. पत्र : मीराबहनको

११ अप्रैल, १९३३

चि० मीरा,

तुम्हारा लम्बा पत्र कल मिला। तुम्हारी दलील मुझे ठीक लगती है। तुमने जो दलील दी है, उसका विरोध खुद स्त्रियोने ही किया है। मैंने तो सदासे यह माना है कि आक्रामक पुरुष ही होता है। वह स्त्रीसे अधिक विषयासक्त होता है। इसलिए तुम्हारी दलील समझनेमे मुझे कोई कठिनाई नही हुई। लेकिन तुमने उससे जो नतीजा निकाला है, वह अनुभव-विरुद्ध है। जहाँ वह सफल हुआ है वहाँ इसका परिणाम अच्छा रहा है। लेकिन ऐसे उदाहरण विरल ही मिलते हैं और विरल ही रहेगे। वैसे यह कोई दु.खकी भी बात नही है। सामान्य स्थिति विवाह और सन्तानोत्पत्ति ही है। उसका मतलब ब्रह्मचर्यको हम जिस रूपमे जानते है उस रूपमे उसका भग है। मगर इसका मतलब यह नही हुआ कि हम उसके लिए प्रयास ही न करे। भले ही तमाम प्रयोगोमे से सच्चे ब्रह्मचर्यकी सिद्धिका केवल एक ही उदाहरण सामने आये, लेकिन हमे इसके लिए प्रयास करना ही है। मोक्षके लिए प्रयत्न तो बहुतेरे करते हैं, लेकिन सफलता कुछको ही मिलेगी। इसलिए सामान्यतया हमे इतनेसे ही सन्तुष्ट रहना पडेगा कि विवाहित लोग उत्तरोत्तर ब्रह्मचर्यको अपनाये और केवल कुछ ही लोग यावज्जीवन ब्रह्मचारी रहे। अगर मेरा कहना सही हो तो आश्रमको वैसा ही रहना होगा — जैसा वह आज है और अपने प्रयत्नमे प्रत्येक विफलताके साथ उसे कुछ-न-कुछ ऊपर उठते जाना है। . .[1] और . . . आश्रममे रहनेके कारण अब पहलेसे कई गुना ज्यादा अच्छे हो गये हैं और उनके वहाँ रहनेसे आश्रम कोई पहलेसे खराब तो नही हो गया है। अगर मै या यो कहो कि सभी वयोवृद्ध लोग जितने अपूर्ण हैं उससे कम अपूर्ण और अधिक समझदार होते तो वे बडी आसानीसे, जितने अच्छे वे बन पाये हैं, उससे बहुत अच्छे बन सकते थे। लेकिन मुझमे, उनका मार्ग-दर्शन करनेवालेमे, कितने अधिक दोष, कितना असत्य भरा था। लेकिन मैं अपनेको ऐसा मार्ग-दर्शक नही मानता जिसके बताये रास्तेपर चलना निरापद न हो, क्योकि मैं जानबूझकर असत्याचरण नही करता और अपने दोषोका पता लगाकर उन्हे दूर करनेके लिए बराबर प्रयत्नशील रहता हूँ। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक हमारे बीच कोई सर्वांगपूर्ण पुरुष या स्त्री नही होगी तबतक विफलताएँ तो मिलेगी ही। लेकिन . . . के-जैसे उदाहरण मिलनेपर हमे आशा छोड़ने या हिम्मत हारनेकी जरूरत नही है। वे तो शरीरकी अपवित्रताको दूर करनेके लिए किये गये

१. यह और आगे आनेवाले नाम छोड दिये गये हैं।

प्रयत्न है। जिस प्रकार अपने शरीरमें किसी रोगके अस्तित्वका पता लग जानेपर, इस बातसे तो मैं दुखी होऊँगा कि मुझे ऐसा रोग है लेकिन उसका पता लग जानेके कारण प्रसन्न होऊँगा उसी प्रकार . . की गलतीपर तो मुझे दुख है, लेकिन इसका पता लग जानेपर मुझे बहुत हर्ष भी हो रहा है। इस जबरदस्त समस्याके बारेमे मैं इससे आगे कुछ नही कहूँगा — 'मेरे लिए तो अगले कदमका अन्दाजा पा लेना ही काफी है, मैं यह नही कहता कि मुझे दूरकी चीज दिखाओ।' हम उस बुनियादी सत्यको जानते है जिसे हमे पाना है और यह भी जानते है कि किस रास्तेपर चलकर उसे पाना है। उसका पूरा ब्योरा हमे मालूम नही है, कभी होगा भी नही, क्योकि हम तो जाने-अनजाने उस परम परिणामकी ओर अग्रसर होते हुए असख्य तुच्छ साधनोमे से ही है। हममे से प्रत्येकको सापेक्ष सत्यका जैसा बोध है उसके अनुसार यदि हम सब ईमानदारी और दृढताके साथ उसका आचरण करे तो किसी दिन हम सम्पूर्ण सत्यको भी प्राप्त कर लेगे।

बा को पत्र लिखनेकी निर्धारित अवधि अलग है इसलिए वह चाहती है कि उसे पत्र भेजा भी अलगसे ही जाये। उसको जिस दिन मेरा पत्र दिया गया तबसे गिने तो अभी एक पखवाड़ा नही हुआ है। जेलके नियमोके प्रयोगका यह उलझन-भरा तरीका मेरी समझमे नही आता। स्पष्ट है कि अलग-अलग जेलोमे अलग-अलग तरीके है। लेकिन इससे कोई चिन्ता नही होनी चाहिए। जेल-जीवनका दर्शन यह है कि शरीर जिसने उसे अपनी कैदमे रख छोडा है उसका अर्थात् राज्यका है। इसलिए मोटे तौरपर देखे तो कहा जा सकता है कि जो कैदी बाहरी आवश्यकताओकी चिन्ता करता है, वह मूर्ख है, क्योकि उनकी पूर्ति तो पूरी तरहसे उस रखवालेकी इच्छापर निर्भर है। इसलिए कैदीको दी गई हरएक चीज एक रियायत है, जो राज्यकी इच्छा-भर होनेसे वापस ले ली जा सकती है। घरेलू पत्र भी इसी कोटिमे आते है। जबतक ऐसे पत्र लिखने और पानेकी सुविधा है तबतक हम राज्यका आभार मानकर पत्र लिखते और पाते रह सकते है, लेकिन यह सुविधा वापस ले ली जानेपर हमे उसपर खीझना नही चाहिए। पत्र नियमपूर्वक पहुँचाये जाये तो इसकी हम कद्र भले ही करे, लेकिन उसमे व्यतिक्रम आनेपर हमे व्याकुल नही होना चाहिए। जो लोग अपनी अन्तरात्माके आदेशका पालन करनेके कारण जेल गये है, कमसे-कम उन्हे तो इस सीधे-सादे, किन्तु आम तौरपर लोगो द्वारा न समझे जानेवाले सत्यको ग्रहण करना चाहिए। अगर तुम बा को यह बात समझा सको तो समझाना।

हिन्दी 'हरिजन' समयपर मिले, इसके लिए मैं जो कर सकता हूँ, करूँगा। मेरा वजन वही १०४ पौडपर टिका हुआ है।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हारे 'पवित्र कार्ड' अलग पैकेटमे भेजे जा रहे है।

जिस कागजपर तुम्हारी प्रतिज्ञाओंकी नकल है, वह तुम्हारे लिए इतना मूल्यवान है कि उसे मुझको अपने पास नहीं रखना चाहिए। सो यह भी लौटा रहा हूँ ताकि इसे तुम अपने पास रखो।

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६७४) से, सौजन्य मीराबहन

४२२. पत्र : पी० एन० राजभोजको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय राजभोज,

आपका लेख मैं नहीं छाप रहा हूँ, क्योंकि इसमें अकसर दोहराई जानेवाली आम ढंगकी बातोंके अलावा कुछ है ही नहीं।

जैसा कि मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ, अभी तो आपके लिए अच्छा यही है, आप जो-कुछ ग्रहण करनेके लिए आश्रम गये हैं उसे ग्रहण कीजिए और अपने सारे विचार अभी मनमें ही रखिए। दुनियाके सामने उन्हें रखनेमें जल्दबाजी मत कीजिए। फिर आप देखेंगे कि इस प्रशिक्षण-क्रमसे गुजर जानेके बाद आप कितने अधिकारके साथ अपनी बात कहते हैं, क्योंकि तब आप जो-कुछ कहेंगे, ज्ञानपूर्वक कहेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८०४) से।

४२३. पत्र : रामचन्द्रको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

पोस्टकार्डके लिए धन्यवाद। देखता हूँ कि तुम नी० की जितनी सहायता कर सकते हो कर रहे हो। हमें आशा करनी चाहिए कि वह इस अग्नि-परीक्षाको सकुशल झेल लेगी और उसके परिणामस्वरूप और भी पवित्र बनेगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९७) से।

४२४. पत्र : पी० पांडुरंग शेनायको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

समय मिलनेपर आपके नामका किसी भी तरहसे उल्लेख किये बिना मैं 'हरिजन'मे आपके पत्रके एक हिस्सेकी चर्चा करनेकी आशा रखता हूँ।

जहाँतक आपके पत्रके आखिरी सवालका सम्बन्ध है, उस ब्राह्मणने अस्पृश्यताके प्रश्नपर अपने भाषणमे जो-कुछ कहा वह मेरे विचारसे बिलकुल गलत था। स्त्रियोके मामलेमें जो अस्पृश्यता बरती जाती है, उसका सम्बन्ध एक अस्थायी अवस्थासे है, और अगर अन्य लोगोके सम्बन्धमें भी ऐसी ही अवस्थामे अस्पृश्यता बरती जाये तब तो उसके खिलाफ कुछ कहा ही नही जा सकता। लेकिन, यहाँ तो स्थायी अस्पृश्यता बरती जाती है और उसके साथ अत्यन्त निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार जुडा होता है। इन दो अस्पृश्यताओमे कोई साम्य नही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० पाडुरग शेनाय
२० अडिअप्पा ग्रामणि स्ट्रीट
रायपुरम्, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९५) से।

४२५. पत्र : सरोजिनी नानावटीको

११ अप्रैल, १९३३

चि० सरोजिनी,

रेहाना तेरे बारेमे इतना ज्यादा कहती रही है कि ऐसा लगता है मानो मैं तुझे जन्मसे ही जानता होऊँ। पूनासे रवाना होनेके पहले उसने जो पोस्टकार्ड लिखा है उसमें भी तेरा उल्लेख किया है। मै यह समझ सकता हूँ कि तुझे रेहानाके बिना घर सूना लगता होगा। ईश्वर तुझे दीर्घायु करे और सेवा करनेका उत्साह तथा शक्ति दे।

बापूके आशीर्वाद

सरोजिनीबहन
मार्फत — जस्टिस नानावटी, पूना

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४८४) से।

४२६. पत्र : वसुमती पण्डितको

११ अप्रैल, १९३३

चि० वसुमती,

तेरा पत्र न तो आश्रम पहुँचा और न मुझे ही मिला। मै तो तेरे पत्रकी प्रतीक्षा कर ही रहा था। २१ मार्चका पत्र अवश्य मिला है। नारणदासका पत्र भी नही मिला उसका भी यही मतलव है। यदि उसमे कोई खास बात लिखी हो तो मुझे फिरसे लिखना।

तुम सवकी तबीयत कैसी रहती है? मुझे लिखना कि तुम लोग क्या काम कर रही हो और क्या पढ रही हो? बालकोके बारेमे मैंने महालक्ष्मीको जो पत्र लिखा था, आशा है वह मिल गया होगा। उसके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। किसन अपने किस पत्रका उत्तर चाहती है? मुझे याद नही पडता कि मैंने उसके किसी पत्रका उत्तर नही दिया है। किसन वीमार कैसे पड गई?

हम सब लोग आनन्दसे हैं। बा और मीराके समाचार मुझे बराबर मिलते रहते हैं। रामदास अच्छा है। सुरेन्द्र यहाँ नही है। देवदास दौरेपर गया है।

सभी बहनोको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९३३६)से। सी० डब्ल्यू० ५८२ से भी, सौजन्य वसुमती पण्डित

४२७. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

११ अप्रैल, १९३३

चि० हेमप्रभा,

वहुत दिनोके वाद तुमारा खत मिला है। ऐसा न किया जाय। मुझे खत लिखनेका एक दिन निश्चित ही कर लिया जाय जिससे मैं समझु कि मुझे खत फुलानेसे रोज मिलेगा ही।

अरूण कैसा है? अबदुल हलिम लिखता है उसका स्वास्थ्य अच्छा नहिं है।[1]

मीठी बहनके बारेमे समजा हू। कालिघाटपर[2] जो वध होता है उसमें तुमारे पडनेका नहि है। तुमारे पास जो कार्य पडा है वह काफी है। और, वही

1. देखिए "पत्र : अब्दुल अलीमको", १०-४-१९३३।
2. कलकत्तेका कालि मन्दिर।

तुमारी साधना है। प्रतिष्ठान जब शुद्ध आश्रम बन जायगा तब बहुत अच्छा काम होगा।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० १६९९) से।

४२८. पत्र: रेहाना तैयबजीको

११ अप्रैल, १९३३

बेटी रैहाना,

रेलपर लिखा हुआ तुम्हारा खत मिला। सरोजिनीने भी खत भेजा है। वह लिखती है कि तुम्हारे चले जानेसे उसको अच्छा नही लगता है। जो काम पूनामे नही कर सकी वह मसूरीमे होना चाहिये।[1] उसके बाद किसीकी बात जरूर हो सकती है। सबको सबके तरफसे आदाब, सलाम, बन्दे वगैरह।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६५८) से।

४२९. पत्र: एम० जी० भगतको

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

हरिजन सेवक सघके अध्यक्षके नाम लिखा आपका पत्र मिला।[2]

साथमे आपने जो प्रमाणपत्र भेजे हैं उनसे लगता है कि आप हरिजन वर्गके नही है, और अगर आप हरिजन वर्गके नही हैं तो आपने अपने पत्रमे जिस ५०० रुपयेके अनुदानका उल्लेख किया है, उसमे से कुछ भी आपको नही दिया जा सकता। लेकिन ऐसा कोई कारण नही है कि आपने अपने पत्रमे जिस उद्देश्यका जिक्र किया है उसके लिए आम कोषका उपयोग न किया जाये। इसलिए अगर आप हरिजन वर्गके न हो तो आपको सघकी बम्बई शाखासे सम्पर्क करके उसे अपने निवेदनके औचित्यका विश्वास दिलाना चाहिए।

१. तात्पर्य रेहाना तैयबजीके पुनः स्वास्थ्य-लाभसे है।

२. एम० जी० भगत बम्बई विश्वविद्यालयके अधीन महाभारतमें अस्पृश्यतापर शोध कर रहे थे। उन्होंने अपने शोध-कार्यके निमित्त आर्थिक सहायता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे हरिजन सेवक संघ द्वारा घोषित ५०० रुपयेकी छात्रवृत्तिके लिए आवेदनपत्र दिया था।

जबतक आपका उत्तर नही आ जाता, आपके कागजात अपने पास ही रखे हुए हूँ।

हृदयसे आपका,

एम० जी० भगत
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९०७) से।

४३०. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय महोदय,

अपने इसी माहकी १ तारीखके पत्रमे[1] मैंने जो निवेदन किया था उसका सरकारकी ओरसे भेजा पत्र मैंने अभी-अभी पढा है।

इस भूल-सुधारके लिए मै आभारी हूँ कि १९२२ मे नही, बल्कि १९२३ मे मुझे यरवडा जेलमे उपवास कर रहे दो साथी कैदियोसे मिलनेकी अनुमति दी गई थी।

मैंने जो सवाल उठाया उसपर सरकार द्वारा किये निर्णयकी जानकारी पाकर मुझे दु ख हुआ।

प्राविधिक दृष्टिसे सरकारका निर्णय सही है। कैदीकी सजाकी मियाद खत्म होनेके साथ-साथ स्वभावत उसको दी गई सारी रियायतें भी खत्म हो जाती है। मौजूदा रियायतोकी मर्यादाओपर मैंने कभी कोई ऐतराज नही किया है, हालाँकि जहाँतक दूसरे कैदियोके साथ किये जानेवाले व्यवहार और उनके आचरणके विषयमे पूछताछका सम्बन्ध है, मुझे वे अच्छी नही लगी। सौभाग्यसे इस सवालको स्पष्ट रूपसे खडा करनेका कभी प्रसग ही नही आया। मेरी कोशिश यह रही है कि जहाँतक बने, अधिकारियोके साथ कोई झझट खडी न होने दूं। मै तो, जैसा कि एक कैदीको चाहिए, जो मिल जाये उसीको खा-पहनकर और जैसे रखा जाये उसी तरह रहकर दिन काटनेमे सन्तोष मानता आया हूँ और यह आशा करता रहा हूँ कि मेरे आचरणके परिणामस्वरूप कालान्तरमे सरकारको यह विश्वास हो जायेगा कि मै जेलमे अनुशासनका पालन करना चाहता हूँ और इस तरह एक कैदी के रूपमे भी मेरे लिए मानवीयताके जो कार्य करना सम्भव है उनके लिए रास्ता साफ करना चाहता हूँ। और इस सन्दर्भमे सरकार द्वारा निर्धारित एक नीतिका उल्लेख करने और उसको जारी रखनेका अनुरोध करनेकी धृष्टता दिखानेके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।

मगर लगता तो यह है कि सरकार अतीतमे दी गई रियायतोके लिए पछता रही है और वह उन्हे कम करना चाहती है। कारण, जिस पत्रका मैं उत्तर दे रहा

१. देखिए "पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १-४-१९३३।

हूँ उसमे कहा गया है "सरकार इस रियायतको इस तरह बढानेमे असमर्थ है कि इससे उनके (गाधीजी) तथा यरवडा जेलके अतिरिक्त किसी अन्य जेलके कैदियोके बीच भी पत्र-व्यवहारकी छूट दी जा सके।" क्या इसका मतलब यह है कि यरवडा जेलके अतिरिक्त दूसरे जेलोके कैदियोके साथ आजतक मै जो पत्र-व्यवहार करता रहा हूँ उसे अब बन्द कर दूँ और सेठ पूनमचन्दके-जैसे मामलोमे मुझे मैत्रीपूर्ण ढगसे बीच-बचाव करनेके लिए आगे आनेकी इजाजत नही दी जायेगी? मै आशा तो यही कर सकता हूँ कि मुझे जो रियायते दी गई है उनमे कमी करने या उनपर रोक लगानेका सरकारका इरादा नही है। आपसे अनुरोध है कि पत्रोत्तर शीघ्र दे, क्योकि सेठ पूनमचन्दके मामलेमे दी गई रियायतको भी, मेरे खयालसे, पूरा अजाम नही दिया गया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल न० ८०० (४०) (३) ए०, पृष्ठ १९५, जी० एन ३८८८से भी

४३१. पत्र: पी० आर० लेलेको

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय लेले,

मै यह तो जानता ही हूँ कि मेरी जिन्दगी बचानेकी समस्या खडी हुई उससे बहुत पहलेसे ही अस्पृश्योके हित-साधनसे आपका सम्बन्ध था।[1] 'लिबरेटर'[2]के सम्पादककी हैसियतसे आपने मेरे साथ पत्र-व्यवहार भी किया था। मेरा कहना तो यह था कि सघकी बम्बई शाखासे आपका चाहे जो भी मतभेद हो, आप सघ द्वारा सुझाये ढगसे इस काममे रुचि लेते रहे। जैसाकि आपने कहा है, ठक्कर बापा तो अपने-आपमे ही एक सस्था है। अगर यह सच है कि बम्बई शाखाके अस्तित्वके कारण हरिजनोकी सेवा करनेवाली दूसरी सस्थाएँ काफी कमजोर पड गई है तो यह मेरे लिए बड़े दु खका विषय होगा। मै चाहूँगा कि आप इस विषयमे ज्यादा साफ-साफ लिखे। और यह कहकर तो आपने मुझे कुहेलिकामे डाल दिया है कि आपको "डॉ० अम्बेडकर सेवाका जो अवसर प्राप्त करने देगे और जो अवसर वे

१. पी० आर० लेलेने कहा था कि अस्पृश्य-सेवा संघकी बम्बई शाखाको सिर्फ गाधीजी को उपवास करनेसे रोकने की ही चिन्ता रही है और उसके अस्तित्वके कारण ऐसे दूसरे संगठन कमजोर हुए है।

२. स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा प्रकाशित पत्र जो हरिजन कल्याणके उद्देश्यसे चलाया जाता था। पी० आर० लेलेने इसमें १९२६ में काम करना शुरू किया था।

खुद देंगे उन्हीसे आपको सन्तुष्ट रहना" होगा। डॉ० अम्बेडकर और अन्य लोगोके काम करनेके ढगमे चाहे जो अन्तर हो, इतना तो निश्चित है कि दोनोका लक्ष्य एक ही है। फर्क सिर्फ इतना है कि डॉ० अम्बेडकरको वर्णाश्रमके सम्पूर्ण उच्छेदसे कम कोई चीज सन्तुष्ट नही कर सकती। किन्तु, जहाँतक कुछ लोगोको समाजमें कोई स्थान ही न देनेके अर्थमे अस्पृश्यताके उन्मूलनका सम्बन्ध है, दोनोमे पूर्ण मतैक्य है। इसलिए सेवाका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि चाहे किसी सगठनमे शामिल होकर हो या स्वतन्त्र रूपसे, सब लोग इस काममे हाथ बँटा सकते है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९०६) से।

४३२. पत्र : उषाकान्त मुखोपाध्यायको[1]

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके लम्बे और तर्कपूर्ण पत्रके लिए धन्यवाद। लेकिन इस पत्रसे मै इस बातका कायल न हो सका कि हम जैसी अस्पृश्यता आज बरतते है वैसी अस्पृश्यता बरतना किसी भी लाभदायक प्रयोजनसे आवश्यक है, और जब आप यह कहते है कि सभी लोगोके उपयोगके लिए ऐसे आम मन्दिर बनवाये जाये जिनमे सभी वर्गोके हिन्दू प्रवेश कर सके ताकि आज बरते जानेवाले कृत्रिम भेद-भावको लोग कालान्तरमे भूल जाये तब ऐसा लगता है कि आप प्रकारान्तरसे अपनी ही बात काट रहे है।

जहाँतक चारो वर्णोका सम्बन्ध है, अगर आप यह स्वीकार करते हो कि वे ऊँच-नीचके दर्जे कायम करने या रोटी-बेटी व्यवहारके सम्बन्धमे अलघ्य दीवारे खडी करनेके लिए नही, बल्कि इन चार वर्गोके कर्त्तव्योका नियमन करनेको बनाये गये है तो मै आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। रोटी-बेटी व्यवहारके सम्बन्धमे कोई एक रिवाज किसी भी व्यवस्थामे कायम हो ही जाता है, यह बात तो मै समझ सकता हूँ, लेकिन वह वर्ण-धर्मका अभिन्न अग कभी नही हो सकता और न था।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९०८) से।

१. उषाकान्त मुखोपाध्यायका कहना था कि उत्तर भारतमें परदा-प्रथाके समान ही अस्पृश्यताका उद्देश्य समाजके कमजोर लोगोंकी रक्षा करना था।

४३३. पत्र : नी० को

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

चार दिनोतक प्रतीक्षा कराने और सशयमे रखनेके बाद अब तुमने मुझे यह लम्बा पत्र भेजा है।

तुम्हारे बाये पैर और दाहिनी टाँगमे फोडे निकल आये, यह मुझे अच्छा नही लगा। आशा है, फोडोका मामूली इलाज तुम जानती होगी और यह पत्र मिलनेतक वे बिलकुल ठीक हो चुके होगे। जब शरीरके ऐसे हिस्सोमे फोडे हो जाये जहाँ उनमे धूल-आदि लगनेका खतरा हो तब काम करके ऐसा खतरा उठानेसे बेहतर यही है कि काम करना बिलकुल बन्द कर दिया जाये। अगर तुम साधारण बीमारियोके मामूली इलाज भी न जानती हो तो तुमको वे जल्दी ही सीख लेने चाहिए। सच तो यह है कि यह नया जीवन तुम्हारे लिए नया जन्म लेनेके समान है। ईश्वर करे, यह नया जन्म तुम सकुशल प्राप्त करो।

जहाँतक सि०[1]का सम्बन्ध है, उसे एक मौका और देनेसे तुम्हारा क्या मतलब है, मै नही जानता। आशा है, उसने जो अनुचित रूपसे घनिष्ठता दिखानेका प्रयत्न किया है, उसपर तुमने उसे एक कडा पत्र लिख दिया होगा। जबतक वह सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप न करे तबतक उससे कुछ भी स्वीकार नही किया जा सकता और यह ठीक नही होगा कि सिर्फ उसकी बातोको पश्चात्तापका प्रमाण मानकर तुम उससे कोई भेट लो। जिनको हम सुधारना चाहते हो या जिनके साथ हमारा सम्बन्ध ऐसा रहा हो जिसे ठीक निगाहसे नही देखा जाता उनसे भेट स्वीकार करना नैतिक दृष्टिसे पतनकारी है। इसलिए सि० को अपना पश्चात्ताप दिखानेका पूरा अवसर मिले, यही इष्ट है। उससे, बल्कि रे०[2]से भी कुछ भी स्वीकार नही किया जाना चाहिए। मै तो जिस एक व्यक्तिको भरोसेके लायक मानता हूँ, वह है रामचन्द्र। जिस चीजकी भी जरूरत हो, उससे लो — और किसीसे नही। रामचन्द्रको तुम्हारी जरूरतोका खयाल रखनेको लिखूँगा। उसने मुझे बताया कि तुमने पत्र लिखकर उससे साबुन भेजनेको कहा था, तो उत्तरमे उसने यह लिख दिया था कि इसके लिए वह पैसा भेज देगा, ताकि तुम वही साबुन खरीद सको। इसमे उसका मन्शा एक छोटेसे पार्सलपर बैठनेवाला रेल-भाडा बचानेका था। वहाँ तो तुम खरीदारी तभी कर सकती हो जब तुम बाजार-भाव जानती हो या कोई ऐसा विश्वनीय आदमी हो जो तुम्हे ठगे नही। पता नही क्यो, रु०[3]की ओरसे मै निरापद महसूस नही

१, २ और ३. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

करता। मेरे लिए तो वह बिलकुल अनजाना है। हो सकता है, वह बहुत अच्छा आदमी हो, पर मैं तो निरापद महसूस नही करता।

अब इस परसे साबुनकी बात आती है। जब तुम मेरे साथ थी, मैंने तुम्हे बताया ही था कि शरीरकी सफाईके लिए साबुन जरूरी नही है। शरीरको स्वच्छ रखनेके लिए बस, साफ पानी और मोटे तौलियेकी ही जरूरत है। बाल धोनेके लिए रीठे-जैसी अच्छी और कोई चीज नही है। यह भारतमे सब जगह मिलता है। रातमे रीठेके कुछ छिलके भिगो दिये जाये और इसके बाद उन्हे पानीमे डालकर हाथसे भलीभाँति मिला दिया जाये। उससे जो झाग तैयार हो उससे तुम अपने बाल अच्छी तरह धो सकती हो। लेकिन, मेरे पास एक इससे भी आसान तरीका है। हरिजनोकी सेवा और आत्मशुद्धिके लिए तुमने सब-कुछ त्याग दिया है। इसलिए तुम हर मायनेमें सन्यासिनी बन गई हो। अतएव तुम्हे सिरके बाल मुडवाकर इतने छोटे कर देने चाहिए कि मानो वे उस्तरेसे मूडे गये हो। मीराके बाल ऐसे ही है। हजारो विधवाएँ इतने ही छोटे-छोटे बाल रखती है। यदि तुम अपने सिरके बाल कटवानेके लिए आसानीसे तैयार हो जाओ तो फिर मुझे उन्हे साफ रखनेके लिए कोई लम्बे-चौडे उपाय बतानेकी जरूरत नही रह जाती। अलबत्ता, मैं इसके लिए कोई आग्रह नही करना चाहता। पता नही, अपने बालोसे तुम्हे कितना मोह है। मैं तो चाहूँगा कि आश्रमकी हरएक लडकी अपने बाल मुडवा ले, लेकिन अबतक इसके लिए राजी कुछको ही कर पाया हूँ। अगर तुम्हे भी अपने बालोसे आश्रमकी इन लडकियोके जैसा ही लगाव हो तब तो मुझे कुछ कहना ही नही है। लेकिन, अगर तुम अपने बाल उसी भावसे उतरवा देनेको तैयार हो जिस भावसे अपने नाखून काटती हो तो मैं कहूँगा, अपने पासके किसी नाईको पकडो, उससे अपने हाथ और कैंची गरम पानीमे धो लेनेको कहो और फिर उससे कहो कि वह तुम्हारे बाल उतार दे। अगर उसके पास बाल काटनेकी मशीन न हो तो साधारण कैंचीसे ही बाल काटनेको कहो। इससे बाल, जितना मैं चाहूँगा, उतने छोटे तो नही होगे, लेकिन इतने छोटे तो जरूर हो जायेगे कि तुम्हे बालोकी चिन्ता करनेसे छुटकारा मिल जायेगा और साथ ही काफी समयकी भी बचत होगी। अगर तुम अपने बाल कटवाना न चाहो तो अगले पत्रमे तुम्हे लिखूंगा कि साबुनके बिना तुम उन्हे कैसे साफ रख सकती हो। याद रखो कि इस देशके करोडो लोगोको यह मालूम नही है कि साबुन क्या चीज है। और यह भी कि तुमसे अपना काम लगभग साबुनके बिना चलानेको कह कर मैं तुम्हे एक ऐसा काम करनेको कह रहा हूँ जिसको करनेके लिए मैं सभी आश्रमवासियोको राजी नही कर पाया हूँ।

अब कपडे धोनेकी बात लो। पता नही, पानी गरम करनेके लिए तुम्हे काफी लकडी मिलती है या नही। अगर तुममे कुछ-कुछ इजीनियरिंगका भी कौशल हो तो पानी धूपमे भी गरम कर सकती हो। इसके लिए धातुके एक बरतनकी जरूरत होती है और एक छोटी-सी नलकी तो होती ही है। अमरीकी शिक्षा-प्रचारक साम हिगिनबॉटम इलाहाबादमे धूपमे ही अपनी जरूरतका पानी गरम करते है, लेकिन अभी यह सब तुम्हारे लिए नही है। यह तो मैं केवल इसलिए लिख रहा हूँ कि

गाँवोमे रहते हुए अपने छोटे-मोटे काम करनेकी तुम्हारी इच्छा और भी बढे। लेकिन अगर तुम पानी गरम कर सको तो तुम्हे सिर्फ कपडे धोनेके कच्चे सोडे-भरकी जरूरत रह जाती है। उसे पानीमे मिला दोगी तो वह साबुन-मिले पानीके ही जैसा हो जायेगा। जब सोडा-मिला पानी खौल रहा हो, उसी समय अपने कपडे उसमें डुबो दो और रात-भर उन्हे उसीमे रहने दो। फिर सुबह उनको धो डालो। इस तरह उन कपडोकी सारी मैल उतर जायेगी, हालाँकि वे दूध-जैसे सफेद नही होगे, क्योकि उनमे कुछ-कुछ कच्चे सोडेका रग आ जाता है। लेकिन, इसमे कोई हर्ज नही मानना चाहिए और यह चीज ग्राम्य जीवनके अनुकूल ही है। किन्तु, कपडे उतने ही साफ हो जायेगे जितने कि अमरीकाके किसी पहले दर्जेके होटलमे धुले हुए कपडे होते है। और तुम सिर्फ सफाई ही तो चाहती हो न!

तुमने अपने पहनावेमें जो परिवर्तन किया है, वह बहुत उपयुक्त जान पडता है। यदि तुम वह चोगा, मैंने अपने पत्रमे जिस घाघरेका जिक्र किया है, उसके ऊपर से पहनती हो तो तुमने लगभग वही किया है जो मेरे मनमे था। बेचारे रामचन्द्रके साथ तुम न्याय नही कर रही हो। मेरा खयाल है कि उसकी बात सदाशयतापूर्ण थी। स्त्रियोके बारेमे तुम्हारी बात काफी तर्कसगत है, लेकिन दुर्भाग्यवश हम तर्कके अनुसार ही नही चलते। जिन स्त्रियोको तुम खुले बदन देखती हो, यहाँ मै उनका इतिहास नही बताऊँगा, किन्तु तुम शीघ्र ही समझ जाओगी कि तुम इन बहनोके साथ स्पर्धा नहीं कर सकती। सत्यका तकाजा यह है कि हमारा बाहरी वेश यथा-सम्भव हमारी आन्तरिक अवस्थाका प्रतिबिम्ब हो। आज तुम अन्दरसे इतनी विशुद्ध होनेका दावा नहीं कर सकती कि तुम्हारी उस विशुद्धतापर कोई शका न की जा सके। जब तुम उस अवस्थाको प्राप्त कर लोगी तब तुम्हे उसका प्रदर्शन करनेकी आवश्यकता भी नही रह जायेगी। क्या तुम शुकदेवजी और व्यासकी कथा जानती हो? नहीं जानती हो तो बताना मै किसी और दिन उसके बारेमें लिखूँगा।

तुम्हारे आहारसे मैं तनिक भी सन्तुष्ट नही हूँ। रागीकी रोटी बन्द कर देनी चाहिए। अबतक तुम्हे गेहूँका चोकरयुक्त आटा तो मिल ही गया होगा। अगर मिल गया हो तो तुम्हे अपने लिए खुद ही चपातियाँ बनानी चाहिए। अगर न मिला हो तो तुम्हे दूध और जो-कुछ मेवे मिले उन्हीपर रहना चाहिए। इससे तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा और तुम्हे आवश्यक शक्ति भी मिलती रहेगी। अगर लोग खुशी-खुशी दे तो तुम्हे अपने लिए दूध खुद ही माँगना चाहिए। भैसके दूधमे काफी पोषक तत्त्व होता है और अगर तुम्हे एक पौड भी मिल जाये तो उससे काम चल जायेगा। कहनेकी जरूरत नही कि सि० के हिस्सेकी फिक्र पहले करनी चाहिए। जब-तब तुम्हे जो फल और सब्जियाँ मिल जाये वे वास्तवमे तुम्हे जरूरतके लायक क्षारीय तत्त्व और विटामिन देनेके लिए काफी होंगी। जहाँतक स्वास्थ्यका सम्बन्ध है, प्रतिदिन ताजी सब्जियाँ और फल मिलना कोई अनिवार्य आवश्यकता नही है—विशेषकर जब हम खुली हवामे रह रहे हों और हमे अत्यधिक शारीरिक या मानसिक श्रम न करना पड़ता हो।

तुम्हे गुस्सेपर कावू रखना चाहिए, सि० के सम्बन्धमे भी। जो लोग तुम्हारी छोटी-सी कुटियाको घेरे रहते हैं और तुम सोना चाहो, उस समय भी तुम्हे थोडा-सा एकान्त नही देते, उनके साथ तुम्हे धीरजसे काम लेना चाहिए और उनको थोडा-सा समझाने-बुझानेसे सब-कुछ ठीक हो जायेगा। जबतक तुम्हारा नये जीवनसे अभ्यस्त होनेका क्रम जारी है, तुम्हे इस बातका खास खयाल रखना चाहिए कि दिनमे खुद तुम और सि० भी घटे-भर सो ले। यह तुम्हारे शरीर और मिजाज दोनोके लिए लाभदायक रहेगा और अगर तुम तथा सि० अपने-अपने सिरके वाल उतरवा दो तो जैसा तुमने मुझे देखा था, उसी तरह तुम भी सिरपर एक-एक भीगा हुआ मोटा कपडा लपेटने लगना, इससे सिर और शरीर तत्काल ठडे हो जाते है।

तुम्हे रु० का पत्र, उसने जैसा लिखा था, उसी रूपमे मुझको भेज देना चाहिए था। मुझे तो उसको जैसा तुम दिखाना चाहती हो उस रूपमे नही, वल्कि जैसा वह है उस रूपमे देखने दो।

मेरा खयाल है, अब मैंने तुम्हारे पत्रकी सारी बातोका उत्तर दे दिया है।

ईश्वर, अर्थात् सत्य तुम्हारी और सि० की रक्षा करे। मै जानता हूँ कि अगर उसमे तुम्हारी सम्पूर्ण श्रद्धा होगी तो तुम्हारा सब तरहसे कल्याण ही होगा। साथ मे सि० के लिए पत्र[1] भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९१०) से।

४३४. पत्र : सि० को

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय सि०,

तुम्हारा प्यारा पत्र मिला। मुझे सब-कुछ लिखते रहो और तुम जिस गाँवमे रहते हो उसमे और उसके आस-पास जो-कुछ देखते हो उसके बारेमे और ज्यादा लिखना। वहाँ किसी लडकेसे दोस्ती की है क्या?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९१०) से।

१. देखिए अगला शीर्षक।

४३५. पत्र : जी० रामचन्द्रन्को

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्रन्,

नायरो और हरिजनोके झगडेपर लिखी तुम्हारी रिपोर्ट यो तो बहुत विस्तृत और अच्छी है, लेकिन तुमने तिथियाँ, दोनोमे से प्रत्येक पक्षकी जनसख्या और जिस इलाकेमे झगडा हुआ, उसका एक मोटे ढगका नक्शा देना छोड दिया है। यह रिपोर्ट मुझे ठक्कर बापाने इसी ८ तारीखको दी। लेकिन यह पत्र मै तुम्हारी रिपोर्टकी आलोचना करनेके लिए नही, बल्कि यह पूछनेके लिए लिख रहा हूँ कि इस सम्बन्धमे हमारा जो उद्देश्य है, उसके हकमे क्या तुम यह चाहते हो कि इस रिपोर्टको प्रचारित किया जाये और इसकी विषयवस्तु पर सम्पादकीय टिप्पणी लिखी जाये। ठक्कर बापाकी बडी इच्छा है कि मै इसके बारेमे लिखूं, इसलिए मै उसकी तैयारी ही कर रहा था कि अचानक मेरा ध्यान सिफारिशोवाले अनुच्छेदपर पड़ा। उसमे तुमने बताया है कि उस क्षेत्रके प्रभावशाली लोगोके जरिये समिति दोनो पक्षोका झगडा निबटानेकी कोशिश करेगी। इसपर तुरन्त मेरे मनमे यह सवाल उठा कि रिपोर्ट को प्रचारित करने और उसपर टिप्पणी लिखनेसे मैत्रीपूर्ण बीच-बचावके द्वारा शान्ति स्थापित करनेके प्रयत्नकी प्रगतिमे बाधा पडेगी या सहायता मिलेगी। सो तुम निर्णय लेनेमे मेरी सहायता करो। जो तुम कहोगे मै वही करूँगा। और अगर इस विषय पर अगले हफ्तेके 'हरिजन' मे लिखवाना हो तो मुझे तारसे सूचित करो। यह पत्र तुम्हे शनिवारको मिल जाना चाहिए, और अगर तुम्हारा तार मुझे सोमवारको या उससे पूर्व मिल गया तो काम चल जायेगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जी० रामचन्द्रन्
प्रान्तीय मन्त्री
हरिजन सेवक सघ
न० ७७ ए, सम्सपीरन स्ट्रीट
बिग बाजार, त्रिचनापल्ली

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९०९) से।

४३६. पत्र : जमनालाल बजाजको

१२ अप्रैल, १९३३

चि० जमनालाल,

कमलनयनका[1] पत्र पढनेके बाद मुझे ऐसा लगा कि वर्धासे मुक्त हुआ जा सके तो तुम्हे तत्काल पहाडपर चले जाना चाहिए। मुझे तो महाबलेश्वर अधिक अच्छा लगता है। पूरा डेढ महीना मिल सकता है। बादमे पचगनी आ सकते हो अथवा और कहीं जाना हो तो जाया जा सकता है। कान बहनेकी हालतमे नीचे गर्म स्थानमे नही रहा जा सकता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९१३)से।

४३७. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी साप्ताहिक डाक मिली। श्रीमती धनवतीका[2] पत्र मिल गया। वालजी भाईका लेख नही मिला। यदि तुमने भेजा है तो मालूम होता है कि यहाँ [जेलके] दफ्तरमे खो गया है। उसकी नकल रखी हो तो अच्छा। यदि लेख वहाँ नही छूट गया है तो वालजीको लिख देना ताकि समय बचे। वालजीको जानना चाहिए कि यह जेल है।

अमीनाको घीके बजाय वैसलिन ज्यादा उपयोगी साबित होगी। उसमे थोडा-सा बोरिक एसिडका पाउडर अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

धीरूके विषयमे मै अन्तिम निर्णय नही कर सकता। कारण, मुझे उसका इतना परिचय नही है। इसका निर्णय तो तुम सब लोग ही कर सकते हो जो उसे आज तक जानते रहे है। पण्डितजी के पास वह पढता रहा है। नरहरि भी उसे अच्छी तरह जानता होगा। इस समय वह तुम्हारी सीधी देखरेखमे काम कर रहा है। वह जो-कुछ लिख रहा है वह यदि विश्वास योग्य हो तो उसे भेजना हमारा कर्त्तव्य

१. जमनालाल बजाजके पुत्र।

२. पूनमचन्द राँकाकी पत्नी।

हो जाता है। लेकिन यदि उसमें शंका हो तो फिर हम उसे नही भेज सकते। शान्तिनिकेतन ठीक स्थान है या नही, यह बात विचारणीय हो सकती है किन्तु इस मामले मे हमे चुनावकी गुंजाइश नही है। और इसमें तो कोई शका हो नही सकती कि शान्तिनिकेतनमे चित्रकला अच्छी सिखाई जाती है। इस कलाका वह दुरुपयोग करेगा या सदुपयोग, यह तो धीरूके आचरणपर निर्भर करता है। और इसका निर्णय तो मैं नही कर सकता कि वह सदाचारी है या नही, परिश्रमी है या नही, उसमे इस कलाके बीज है या नही। वह स्वय तो मुझे एक लम्बा पत्र लिखनेके बाद चुप हो गया है। उसका चुप हो जाना मुझे अच्छा नही लगा है किन्तु इसका कारण उसकी लज्जाशीलता या विनयशीलता भी हो सकती है।

प्रार्थनाके बाद सब लोग एकदम मौन ले ले या बोलना ही हो तो कानमे बोले — ऐसा हो तो बहुत अच्छा। आश्रमके कामके सम्बन्धमे बोलनेकी छूट भले दी जाये। सिपाहियोकी बैरकोमें सोनेकी घंटी बजनेके बाद फिर कोई किसीसे बात नही कर सकता। प्रार्थनाके बाद किसी तरहकी गपशप तो नही ही होनी चाहिए। यह बात लडकोंके हितकी दृष्टिसे भी आवश्यक है और आश्रमकी दृष्टिसे भी। जेलमे तो यह नियम होता ही है। न हो तो जेल-जीवन असह्य हो जाये। जेलमे तो निश्चित समयपर बत्तियाँ भी बुझा दी जाती है। शोरगुल तो किया ही नही जा सकता। इसलिए यदि मौनका या कानमे ही बात करनेका नियम शुरू किया जा सकता हो तो यह तुरन्त करने योग्य है।

बापू

[पुनश्च]

डॉ० शर्माका पत्र तुमने पढा होगा। जब आये उसे स्नेहसे अपनाना। उसके साथ उसकी पुत्री आये तो कोई हर्ज नही। उसके प्रयोगोके लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटा देना। उसके पत्रोसे उसके बारेमे अच्छी राय बनती है।

भोजनमें किये गए परिवर्तनोके असरके बारेमे तुम अपनी राय नही लिख रहे हो। क्या परिणाम हुआ है, लिखना। किसीपर कोई जबरदस्ती नही करनी है। इस सम्बन्धमे कोई कुछ फर्क करना चाहे तो अपनी सीमाके भीतर उसे वैसा करने देना। छोटुभाईने मुझे इसके विषयमे कुछ लिखा है। छोटुभाईको दिया हुआ मेरा जवाब पढ़ना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४३८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१२ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। मैंने तुझे चेतावनी दी इतना काफी है। तेरा यह मानना ठीक नही कि मै तेरे पत्र अच्छी तरह नही पढता। तेरी बात मैंने समझ ली थी। इतने आत्म-विश्वासमे ही अभिमान या गर्व निहित है। तेरा अभिमान तेरी भाषामे मौजूद है। इसका यह अर्थ नही कि तू अपने विचारोको छिपाये अथवा उन्हे गढकर मेरे सामने रखे। जैसे आते है वैसे तू लिख भेजती है, यह मुझे पसन्द है। तू जैसी भीतर और बाहर है वैसी मुझे दिखती है, इसे मै तेरा गुण समझता हूँ। तू कृत्रिम बन जाये तो मै लाचार हो जाऊँगा और तुझे कुछ भी न कह सकूँगा।

रजकण बननेका पाठ मै नही दे सकता। ईश्वरको समझनेके प्रयत्नमे हम रजकण हो ही जाते है। वह स्थिति तो अपने-आप जब आनी होगी तब आ जायेगी।

तुझे किसीका कुछ सहन नही करना पडता, यह बात भी नही है। परन्तु दुख यह है कि तू उसे क्षण-भरमे धो सकती है।

तू मानती है कि मेरे आसपास तेरे विरुद्ध वातावरण बना दिया गया है। इसमे तू भूल कर रही है। सरदार तो तेरे विरुद्ध हरगिज नही हैं। उनके विनोदको तू विरोध न मान। महादेव तेरे विरुद्ध है, ऐसा मुझे बिलकुल नही लगता। छगनलालने तेरे बारेमे जो कहा वह नया नही है। वे तेरा मूल्य जानते हैं, परन्तु कहते हैं कि जबतक तू अपनी जीभको वशमे नही कर सकती, तबतक तुझपर जिम्मेदारी नही होनी चाहिए। यह उनकी पुरानी बात है। तू जान ले कि मै अपने तीन साथियोके साथ शायद ही बाते करता हूँ। खाते या टहलते समय थोडे-से विनोदके सिवा और कुछ हो ही नही सकता। प्रसगके बिना हम शायद ही किसी व्यक्तिकी चर्चा करते हैं। अपने काममे मुझे चर्चा करनेका होश भी नही रहता और व्यर्थ चर्चा करके मै अपनी शक्तिका व्यय भी नही करना चाहता। .[1] और .[2] की करुण कथाकी चर्चा भी मै मुश्किलसे ही कर सका हूँ। विचारोका कमसे-कम आदान-प्रदान करके ही मैंने सन्तोष कर लिया है। न तो तेरे विरुद्ध मेरे आसपास कोई वातावरण है और न मेरे मनमे है। मै तुझे सख्त उलाहना इसलिए देता हूँ कि मै तुझे अपनी पुत्री मानता हूँ और तुझे पूर्ण देखना चाहता हूँ। इसलिए मेरी आलोचनासे दुखी क्यो होती है? उसमे से जो लेना हो वह लेकर बाकीको भूल जा, क्योंकि

१ और २. नाम छोड दिये गये हैं।

यह तो सर्वथा सम्भव है कि मेरी आलोचनामे अज्ञान हो, तेरी भाषा मैं न समझ सका होऊँ।

एक ही वस्तुको भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न रीतिसे देखे यह ठीक है। एक ही शक्तिका उपयोग भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है, यह हम रोज देखते है।

मेरा यह विचार जरूर है कि मासिक धर्मके समय किसीको नियत कार्य न सौंपा जाये। कब उसे दर्द अनुभव होगा यह दूसरे किसीको पता नही लग सकता। उस समय स्त्रीपर किसी प्रकारका बाहरी भार न होना अच्छा है। अपने-आप जो काम वह करना चाहे खुशीसे करे। कुछ स्त्रियोको इस धर्मका असर मालूम ही नही होता और वे अपना काम करती रहती है। कुछको असह्य वेदना होती है। कुछको वेदना तो नहीं होती, परन्तु उनका शरीर काम करने लायक नही रहता। जो स्त्री उस [शरीर] धर्मका सदुपयोग कर सकती है, वह प्रति मास नई शक्ति प्राप्त करती है। ये तीन या चार दिन नई शक्ति प्राप्त करनेके लिए है और उसे प्राप्त करनेके लिए स्त्रियोको हर तरहकी जिम्मेदारीसे मुक्त कर देना उचित है। उसे लेटे रहना हो तो लेटनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। नासमझीसे कुछ स्त्रियाँ उस समय भी दौडधूप नही छोडती। वे ज्ञानहीन है। उन्हे समझानेकी जरूरत है। इसलिए लक्ष्मी दासकी बात कुल मिलाकर मुझे अच्छी लगती है।

किसनके बारेमे तू जो लिखती है वह सम्भव है। उसके स्वस्थ हो जानेकी बात जानकर मुझे बडी खुशी हुई। मालूम होता है किसनने मेरे पत्रकी प्रतीक्षा की है। परन्तु मुझे याद नही कि उसके एक भी पत्रका जवाब बाकी रहा है।

तेरी पूनियोके बारेमे लिख चुका हूँ।

कच्चा दूध पीनेसे वजन घटना नही चाहिए। उबला हुआ साग एक बार लेगी तो शायद लाभ ही होगा। सम्भव है, तेरे गलेको उसकी जरूरत हो। मैं मानता हूँ कि कच्चे दूधकी तो है ही। आजमाकर तो देख।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३६) से। सी० डब्ल्यू० ६७७६से भी; सौजन्य . प्रेमाबहन कटक

४३९. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रचूजको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय चार्ली,

इस सप्ताहके 'हरिजन' मे तुम्हे उपवासके सम्बन्धमे अपनी शकाका उत्तर[1] देखनेको मिलेगा। तुम्हारी आलोचनाकी आतुरतासे प्रतीक्षा करूँगा। निनेवे की कहानी तो सयोगसे ही मेरे हाथ लग गई, लेकिन जैसा मैने सोचा था, वैसी ही सटीक बैठी।

अपने २२ मार्चके पत्रमे तुमने डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके बारेमे एक प्रश्न पूछा है। विधेयककी प्रति मिलते ही खुद मुझे भी समुचित बहुमतवाली बातके सम्बन्धमे कठिनाई महसूस हुई और इस ओर मैने राजगोपालाचारीका ध्यान दिलाया। बल्कि मैने तो एक सशोधन भी सुझाया था, जिसमे तीन-चौथाईतक बहुमत रखनेकी बात कही थी, क्योकि मै सदासे यह मानता आया हूँ कि जबतक पूर्ण रूपसे निर्णायक बहुमत साथ न होगा तबतक जो बडा सुधार करनेका हमारा इरादा है, वह सन्तोषजनक ढगसे चल नही सकता, और तुमने तो यह देखा ही होगा कि किस प्रकार मैने विपक्षमे खडे होनेवाले एक भी व्यक्तिकी आपत्तिका निराकरण करनेकी तजवीजकी है, क्योकि जिस बातको मै केवल एक अन्धविश्वास मान सकता हूँ, वह उस एक विरोधीके लिए जीवन-मरणका प्रश्न हो सकती है। उसका वह मन्दिर-विशेष उसके लिए सब-कुछ हो सकता है और उसका यह अखण्ड विश्वास हो सकता है कि अगर उसे उस मन्दिरमे किसी हरिजनके साथ-साथ पूजा करनी पडी तो वह उसके लिए किसी कामका ही नही रह जायेगा। लेकिन यह सब तो उपयुक्त अवसर आनेपर करना है। मैने सार्वजनिक तौरपर भी इसकी चर्चा की है, लेकिन मै इसे दोबारा शुरू नही करना चाहता, क्योकि अभी तो इसके बारेमे कोई सोचता ही नही। किन्तु आप आश्वस्त रहे और जो चाहते है, उन दूसरे लोगोको भी आप इस बातका आश्वासन दे कि विधेयकके समितिकी मजिलतक पहुँचनेपर निर्णायक बहुमतके सम्बन्धमे एक सशोधन निश्चित रूपसे स्वीकृत हो जायेगा तथा और भी ऐसे सशोधन, जिनसे सनातनियोको तो सन्तोष हो किन्तु हमारे सिद्धान्तको कोई आँच न आये, अवश्य स्वीकार किये जायेंगे।

तुमने अपने मनमे मेरे लिए जो आदमी तय कर रखा है, उसके बारेमें महादेव अभीतक कोई अन्दाजा नही लगा सका। मुझे इसमे कोई सन्देह नही है कि तुम्हारे मनमे एक नही, अनेक लोगोके नाम होगे।

१. देखिए "प्रकट चिन्तन", १५-४-१९३३।

तंगई तो स्वभावत: तुम्हारी खजूर खानेकी क्षमताके बारेमे मुझसे कुछ नही कहना चाहेगी, क्योकि वह जानती है कि कमसे-कम इस मोर्चेपर तो मैं तुम्हे बराबर मात दे सकता हूँ, और सो भी ऐसी-वैसी नही, गहरी मात।

जहाँतक लिफाफेपर कम पैसेका टिकट लगानेका सम्बन्ध है, उसमे हमारे लिए सच्ची या झूठी किसी भी तरहकी मितव्ययिता बरतना सम्भव ही नही था। तुम खुद कभी जेलमें नही रहे हो, इसलिए स्पष्ट ही तुम ऐसा सोचते हो कि हम चाहे जो कर सकते हैं — यहाँतक कि लिफाफेपर टिकट लगानेके सम्बन्धमे भी तो तुम यह जान लो कि टिकट हम नही लगाते है। वे तो जेल-कार्यालयमे लगाये जाते हैं।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
मोहन

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८००(४०)(३), भाग-४, पृष्ठ २८९-९०। जी० एन० १३०२ से भी

४४०. पत्र : राजकुमारी एफी एरिस्टार्शीको

१३ अप्रैल, १९३३

तुम्हारे दो पत्र मिले।

तुम अकसर मुझसे खुद अपने और अपनी माँके लिए प्रार्थना करनेको कहती हो। अबतक इसके सम्बन्धमे मैंने कुछ नही कहा है। लेकिन आज तुम्हारे सामने अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनेका मन हो रहा है। मैं मन्दिरोमे विश्वास तो करता हूँ, लेकिन इन दिनो किसी मन्दिरमे जाता नही और तुम जानती ही हो कि आश्रम के मन्दिरकी छत आकाश है, फर्श धरती माता है, दीवारे चारो दिशाएँ है। इस मन्दिरमे मित्रोके लिए प्रार्थना नही की जाती। प्रात और सायंकालीन प्रार्थनाओमे संस्कृतके कुछ निश्चित श्लोकोका पाठ किया जाता है और गुजराती, हिन्दी, बंगला, मराठी, उर्दू तथा अंग्रेजीके मिले-जुले भजनोकी एक पुस्तकसे भजन गाये जाते है। हाँ, अंग्रेजीके भजन तभी गाये जाते हैं जब प्रार्थना-सभामे उन्हे गानेवाला कोई हो। इसलिए जो मित्र मुझसे अपने लिए प्रार्थना करनेका अनुरोध करते है उनके लिए मैं केवल यही करता हूँ कि मन-ही-मन वही-का-वही ईश्वरसे उन्हे अपनी शरणमे लेनेको कहता हूँ। इसे किसी भी तरहसे उनके अनुरोधका पर्याप्त उत्तर माना जायेगा या नही, यह मैं नही कह सकता। लेकिन ईमानदारीके साथ मैं इसके अलावा और कुछ कर भी नही सकता। मेरे लिए ईश्वरसे प्रार्थना करना शायद सामान्यसे भिन्न अर्थ रखता है। मैं मानता हूँ कि उससे कुछ कहनेकी आवश्यकता नही है। वह हमारे हृदयको इतनी अच्छी तरह पढ लेता है जितनी अच्छी तरह हम खुद भी उसे नही

जानते। हमारी माँगों और इच्छाओंका अनुमान वह पहले ही लगा चुकता है और उसके अनुसार जो करना होता है, कर देता है। हमारे लिए क्या अच्छा है, यह बात जितनी हम जानते है उससे भी अधिक वह जानता है। हमारी जो इच्छाएँ और आकाक्षाएँ उसकी दृष्टिमे अनुचित होती हैं उन्हे अस्वीकार करनेमे वह कोई सकोच नही दिखाता। चूँकि मेरे विश्वास इस तरहके है, इसलिए मुझमे उस विशेष उद्देश्यसे प्रार्थना करनेका साहस नही है और इसीलिए बहुत-से ईसाई बन्धु, बल्कि हिन्दू भाई भी जिस प्रकार उससे कुछ निश्चित माँगे करते हैं उस प्रकारसे मैं उससे कुछ माँग नही सकता। मेरे कहनेका मतलब यह नही कि जो मैं करता हूँ वह उदाहरणके तौरपर समझ लो, जो तुम करती हो उससे अच्छा है। ईश्वरसे सम्बन्ध जोडनेका हरएकका अपना अलग तरीका होता है और यदि उस तरीकेके पीछे सच्चे हृदयकी प्रेरणा हो तो हरएक तरीका उसे समानरूपसे स्वीकार्य है। मैंने सोचा कि तुम मुझपर जितना स्नेह उँडेल रही हो, उस सबके बदलेमे मैं तुमसे इतना तो कह ही दूँ।

तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९२३) से।

४४१. पत्र : अगाथा हैरिसनको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय अगाथा,

तुम्हारे सभी पत्रोके उत्तर मैं नही देता, क्योकि मैं हर हफ्ते तुम्हे एक लम्बा छपा हुआ पत्र तो भेजता ही हूँ।

शास्त्रीके पत्रका खयाल किये बिना तुम्हे तो सहज भावसे ही लिखते रहना है और व्याकरणके बारेमे चिन्ता नही करनी है।[1]

एन्ड्रयूजकी मितव्ययिताकी ही तरह उसका परदा भी एक धोखा है। वह कहता तो यह है कि उसे लिखनेके लिए शान्त जगह चाहिए, लेकिन वह शोर-गुलके बीच बैठकर लिखता है और शान्ति अपने अन्दरसे उत्पन्न करता है।

आशा है, तुम मिजाजपुर्सीके लिए विट्ठलभाई पटेलसे मिलने जाती रही हो और इसलिए तुमसे उनका समाचार जाननेकी उम्मीद करता हूँ। अखबारोमे छपे तारोसे आनेवाली सक्षिप्त खबरोको पढनेसे लगता है कि उनकी अवस्था बिगडती चली जा रही है। हम सब उनके लिए चिन्तित हैं।

मीराका पत्र हर हफ्ते मिल जाता है। वह काफी अच्छी है।

१. अगाथा हैरिसनने विनोदपूर्वक कहा था कि आपके और श्रीनिवास शास्त्रीके बीच हुए पत्र-व्यवहार को पढ़कर तो मुझे उनको पत्र लिखनेमें डर लगता है; देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ४३५-८।

महादेव जल्दी ही हमसे विदा लेनेवाला है।[1] देवदास मालवीयजी के साथ बनारसमे है और प्यारेलाल नासिक जेलमे। उसका कोई पत्र नही आया है।

हम दोनोकी ओरसे सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

कु० अगाथा हैरिसन
२, क्रैनवोर्न कोर्ट
अलवर्ट ब्रिज रोड
[लन्दन] एस० डब्ल्यू०-११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६४)से। एस० एन० २०९२०से भी

४४२. पत्र : वी० ए० होडकेको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका वह कार्ड पाकर बड़ी खुशी हुई जिसमे आपने बताया है कि भैंसेकी वलि वन्द हो गई है, अन्य पशुओकी बलि भी बहुत कम हो गई है और अगले साल उसके विलकुल ही वन्द हो जानेकी सम्भावना है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० ए० होडके
मन्त्री
प्राणि-दया संघ
सिरसी (उ० कनारा)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९१९)से।

१. महादेव देसाई १९ मई, १९३३ को रिहा होनेवाले थे।

४४३. पत्र : गर्ट्रूड एस० केलर-चिंगको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय बहन,

आपके सबसे ताजे पत्रका उत्तर तो मुझे देना ही पड़ेगा। आपने अपनी जिनेवा-यात्राका जो विवरण दिया है वह अत्यन्त दिलचस्प है और मुझे इस बातकी खुशी है कि आपने वहाँ बहुत-से लोगोंसे परिचय किया।

और अब आप चाहती हैं कि मैं आपको कोई भारतीय नाम दूं। मीराबहनने अपनेको भारतीय नाम देनेको कहा, उसका तो कुछ मतलब था, क्योंकि उसने शरीरतः भी भारतीयोंके सुख-दुःखकी सहचरी बननेका निश्चय कर लिया था, लेकिन आपके भारतीय नाम चाहनेमें क्या तुक हो सकती है? वहाँ आपको कोई उस नामसे नहीं पुकारेगा। इसलिए मैं समझता हूँ कि आपको भारतीय नाम अपनानेकी इच्छा छोड़ देनी चाहिए। आपका हृदय भारतीय है, वही काफी है।

आशा है आपका किसी शान्त जगह जाकर शान्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न आपके लिए लाभदायक रहा होगा — बेशक, असली बात तो अन्दरसे ही शान्ति प्राप्त करना है। तब और केवल तभी हम सर्वथा निरापद हो सकते हैं।

आपने जिन मित्रोंका उल्लेख किया है उन सबसे मेरा नमस्कार कह दें।

हृदयसे आपका,

श्रीमती गर्ट्रूड एस० केलर-चिंग

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (२०९२१)से।

४४४. पत्र : डोरोथी ई० न्यूमैनको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय डोरोथी,

तुमने तो कमलानीका[1] बचाव करते हुए मुझे बहुत बड़ा बयान भेजा है। लेकिन इसकी कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह बड़ा नेक, दृढ़ और स्थिरचित्त तरुण कार्यकर्ता है।

'हरिजन' बहुत-सारे विदेशी मित्रोंके लिए उपयोगी साबित हो रहा है, यह जानकर खुशी हुई। अगर तुम इसे, जैसा कि तुमने खुद ही कहा है, आँखें मूंदकर नहीं, बल्कि जागरूकताके साथ पढ़ती हो तो जितने विनयपूर्ण ढंगसे कहना चाहो उतने विनय पूर्ण ढंगसे या तुमसे जितनी स्पष्टवादितासे काम लेते बने उतनी

१. एक भारतीय जो लन्दनमें बसकर भारतीय उद्देश्यके निमित्त कार्य कर रहे थे।

स्पष्टवादितासे, कभी-कभी मुझे बताना कि तुम कहाँ सहमत नही हो। कारण, मैं मित्रोंकी आलोचनाओंकी बडी कद्र करता हूँ और उनसे लाभ भी उठाता हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

कु० डोरोथी ई० न्यूमैन
२० एवेडेल रोड
स्टॉकवेल, एस० डब्ल्यू० ९
लन्दन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९२२)से।

४४५. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

तुम्हारा २० मार्चका पत्र चिन्ताजनक है। जल्दबाजीमे किया हर काम वैसे तो नुकसानदेह ही साबित होता है लेकिन अगर ऐसा न हुआ तो भी असन्तोषजनक तो सिद्ध होता ही है। इसलिए हर प्रकारकी जल्दबाजीसे बचना चाहिए। मैं मानता हूँ, तुम तो अपने ऊपर बराबर उच्चतम मानदण्ड ही लागू करना चाहती हो, और ऐसे मानदण्डकी दृष्टिसे देखे तो तुम्हारा यहाँ आना तभी उचित होगा जब तुम आश्रम-जीवनके लिए तैयार हो। जाहिर है कि तुम तैयार नही हो। इस समय तुम्हारा कर्त्तव्य अपनी मांकी सेवामे तत्पर रहना है। तुम उन्हे भारत लानेका खतरा नही उठा सकती। अगर तुम बेरोजगार हो जाओ और तुम्हे नये कामकी तलाश करनी पडे तो भी तुम्हे बहादुरीके साथ स्वजनोका साथ देना चाहिए और जो मुसीबते उन्हे झेलनी पडेगी उन्हे तुम्हे भी झेलना चाहिए। और अगर तुमने अपने अन्दर आश्रम-जीवनके मौलिक तत्त्वोका विकास कर लिया है तो तुम उनकी अमूल्य सेवा भी कर सकती हो। इसलिए तुमने भारतके २४ व्यक्तियोंको तुम्हे कोई काम दिलाने के लिए जो पत्र लिखे, वे सब तुम्हें नही लिखने चाहिए थे। तुम भारतमे कोई रोजगार नही चाहती, बल्कि अपनी समस्त सेवाएँ, अपना समस्त जीवन भारतको बिना किसी प्रतिदानके अर्पित कर देना चाहती हो। दो परस्पर विरोधी बाते एक साथ तो नहीं की जा सकती। इसलिए मै चाहता हूँ कि तुम रोजगार पानेका विचार छोड़ दो, वहाँ अपनी माँ के पास बनी रहकर वही आश्रमका जीवन जिओ, ताकि जब प्रभु-इच्छा हो तो वह स्वय ही तुम्हे किसी दिन आश्रम भेज दे।

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४४६. पत्र : ईश्वरशरणको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय मुशीजी,

आपका इसी ५ तारीखका पत्र और हरिजन सेवक सघकी इलाहाबाद शाखा द्वारा नियुक्त समितिकी रिपोर्टकी एक प्रति मिली, तदर्थ धन्यवाद।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि रिपोर्ट मिलते ही मैंने उसे पढना शुरू कर दिया। आज पढना पूरा भी हो गया। रिपोर्ट कल मिली थी। आपका पत्र आज आया। मै 'हरिजन' मे रिपोर्टके बारेमे लिखने[1] की उम्मीद करता हूँ, इसलिए इस पत्रमे उसके विषयमे कुछ कहनेकी जरूरत नही रह जाती।

लेकिन, यहाँ दो बाते मै जरूर कह दूँगा, क्योकि सार्वजनिक रूपसे रिपोर्टकी चर्चा करते हुए मै उनके बारेमे कुछ कहना नही चाहूँगा। अगर जनसख्याके तथा कुछ अन्य आवश्यक आँकडे भी दिये जाये और रिपोर्टका आकार आधा कर दिया जाये तो यह एक महत्त्वपूर्ण प्रलेख हो जायेगी। मै परिशिष्ट न दिये जानेके पक्षमे हूँ। अगर उसे इस प्रकार सक्षिप्त करना सम्भव हो और फिर यदि आप उसे प्रकाशित कर सके तो मुझे विश्वास है कि रिपोर्ट कार्यकर्ताओ और शायद दूसरी नगरपालिकाओके लिए भी एक मार्ग-दर्शिका बन जायेगी।

अब मै यह आशा करूँगा कि इस रिपोर्टके परिणामस्वरूप आप रिपोर्टमे वर्णित गन्दी और मनुष्यके रहनेके सर्वथा अयोग्य बस्तियोको नष्ट करके हरिजनोके लिए अच्छे रिहायशी हलकेका इन्तजाम करनेके लिए कारगर कदम उठायेगे।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९१४) से।

१. देखिए "तात्कालिक कर्तव्य", २२-४-१९३३।

४४७. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे प्रसन्नता है कि अब तुम जल्दी ही आश्रम पहुँच जाओगे। वैसे सम्भव तो यह भी है कि इस पत्रके आश्रम पहुँचनेतक तुम वहाँ आ ही चुके हो। आशा है, साथमें अपनी चार वर्षीया बच्ची को भी लाये होगे और यह भी उम्मीद है कि तुम्हारा छोटा बच्चा अपनी बहनको छोड़ ही नहीं रहा होगा। अगर उसने यह जिद न की हो कि बच्ची उसके साथ ही रहे तो मैं कहूँगा कि भाईके हृदयमें बहनके लिए जो प्यार होना चाहिए उसका उसमें अभाव है। आश्रममें घरकी तरह चैनसे रहना और जिस चीजकी भी जरूरत हो, निस्संकोच नारणदाससे कहना।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

डॉ० हीरालाल शर्मा
मार्फत — आश्रम
साबरमती

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ २९

४४८. पत्र : सुशीला पैको

१३ अप्रैल, १९३३

तुम्हारी मित्रता[१] अखण्डित रहे। उसके रहनेका मार्ग मैंने बता दिया है। यह स्वयंसिद्ध है कि व्यक्तिगत मित्रता अनन्तकाल तक हरगिज नहीं रह सकती। इसलिए उस मित्रताको ईश्वरके साथकी मित्रतामें होम देना चाहिए। इससे उसका नाश नहीं होता, परन्तु वह विस्तृत हो जाती है, विशुद्ध हो जाती है। निजी मित्रताका आनन्द क्षणिक और तुच्छ है। मैं यह समझता हूँ कि तुम्हारी मित्रता केवल सेवाके लिए

१. प्रेमाबहन कंटकके साथ।

है। ऐसी मित्रतामे निजीपन क्या हो सकता है? इस विचारको अपने मनमे रख लेना। अनुभवसे उसकी सचाई तुम देख लोगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृ० २२७

४४९. पत्र : जमनादास गांधीको

१३ अप्रैल, १९३३

चि० जमनादास,

तेरा पत्र मिला। इसमे तूने अच्छे शब्द-चित्र दिये है। काम कठिन तो है ही किन्तु तू मेहनत करता रह। जो होना होगा सो होगा। मन्दिरके दूर होनेकी तुझे चिन्ता नही करनी चाहिए। मन्दिरके दूर होनेमे लाभ है। आज वहाँ भले ही थोडे हरिजन आये किन्तु जब मन्दिरमे पाठशाला आदि हो जायेगी तब वह हरिजनोसे भर जायेगा। बच्चोको वहाँ सायकालीन दर्शनके लिए ले जा सकते है और वयस्क लोग छुट्टीके दिन आ सकते है। जिस प्रकार जगन्नाथ और भूतनाथके मन्दिर दूर थे (अब शायद वे नजदीक माने जाते होगे) उसी प्रकार यह नया मन्दिर भी भले दूर माना जाये। मन्दिरकी जमीन भी लम्बी-चौडी होनी चाहिए। दस एकड़ जमीन मुझे कम लगती है।

तेरे स्वास्थ्यके बारेमे मुझे निरन्तर चिन्ता बनी रहती है। तेरे स्वास्थ्यका सम्बन्ध तेरे मनसे है, अत उसकी दवा भी तू ही कर सकता है। तुझे दवा करनी भी चाहिए और मैं चाहता हूँ कि तू करे।

मै चाहता हूँ कि तू मुझे और जल्दी-जल्दी पत्र लिखने लगे तो अच्छा हो। उससे मुझे तेरे काम और तेरे मनका परिचय मिलता रहेगा।

यदि भाऊकी कोई विशेषता तुझे नजर आई हो तो मुझे लिखना।

इसके साथ ही सुशीला और भाऊके लिए पत्र भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४९)से; सौजन्य : नारणदास गांधी

४५०. पत्र : नानालाल के० जसानीको

१३ अप्रैल, १९३३

भाई नानालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं काफी सोच-विचार करता रहा हूँ किन्तु मुझे लगता है कि बँटवारेकी स्वीकृति रतिलालने दी है। इसमें छगनलालका दोष नही है। उसका मन ही उसके काबूमे नही है इसलिए मगनलालको सहज ही डर बना रहता है। बँटवारा हो जानेपर शायद कुछ बच जाये। बँटवारा न होनेपर तो पूरी सम्पत्तिके डूब जानेका भय है। यदि मेरे पहले सुझावपर अमल किया जाये तो सम्पत्ति अविभाजित रह सकती है किन्तु ऐसा नही लगता कि कोई इस सुझावपर ध्यान देगा। पाँच वर्षके लिए तीनो भाई हट जाये और सारा कारोबार न्यासियोके हाथमे सौप दे तथा अपने लिए स्वीकृत भत्ता लेते रहे। शेष मिलनेपर।

जमनादास अच्छा कार्यकर्ता जान पडता है। वह वहाँकी शाखाके कामको बहुत अच्छी तरह करता जान पडता है। यदि तुमपर भी उसकी ऐसी ही छाप पड़ी हो तो उसे खर्चेकी तरफसे निश्चिन्त कर देना। वह इसकी चिन्तामे सूखा जा रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६५०) से।

४५१. पत्र : सुभद्रा, सरला और जयदेवीको

१३ अप्रैल, १९३३

चि० सुभद्रा, सरला और जयदेवी,

मैं तुमसे यह तो कैसे कह सकता हूँ कि जैसा करोगी वैसा पाओगी। सनातनी कहते है कि हरिजनोने जैसा किया है वैसा वे पा रहे हैं; हम इस नियमकी अवज्ञा करके उनकी दशा सुधारनेमे हिस्सा ले तो हमे पाप लगेगा, यह हम कैसे कर सकते है? यदि मैं तुम बहनोपर सनातनियोका यह तर्क लागू करूँ तब तो हरिजनोके लिए मैंने जो घोसला बनाया है वह मुझे नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहिए। ऐसा तो मैं कर नही सकता इसलिए तुम लोग बच गई। सनातनियोकी नीतिपर चलूँ तो चूँकि तुमने अपना पत्र सीसेवाली पेंसिलसे लिखा है इसलिए मुझे अपनी पत्थरकी नोकवाली पैंसिलसे लिखना चाहिए — है न? किन्तु हमे तो सनातनियोको भी जीतना है।

लेकिन यह सही है कि नदूवहनने तुम लोगोको जो नाम[1] दिया है तुम उसके लायक सिद्ध हुई हो। ज्योही निकली कि उस नामके लक्षण तुमने प्रकट किये। घासका ही पानी[2] पीना शुरू कर दिया। और वह भी सूखी घासका? काठियावाडी बैलोसे तो चीन देशके बैल अच्छे। वे घासका पानी तो पीते है पर हरी घासका। नाराज होकर यदि तुम फिर पशुशालामे भागी तो तुम्हे डरनेका कोई कारण नही है। सरदार इतने उदार है कि तुम्हारा गुस्सा वे माफ कर देगे।

हाँ, एक अर्थमे नदूबहनकी दी हुई उपमा बहुत सही मालूम होती है। गाय, बैल, घोडे आदिको क्या कभी चिन्तामे पडा सुना है? यदि पशुको ज्ञान हो तो वह सचमुच योगी माना जाये। कहा जाता है कि योग पुरुषोके लिए कष्ट-साध्य है किन्तु स्त्रियोके तो वह स्वभावमे है। उसे केवल मोहका त्याग करना है और उसे योगिनीका पद मिला। तुम सब तो ज्ञानी पशु हो। योगशालामे रहकर तुमने जो आरोग्य-धन प्राप्त किया है उसे यदि भाँति-भाँतिके पकवान खाकर नष्ट किया तो याद रखना दण्डके योग्य मानी जाओगी।

अगले पत्रमे दूसरे पराक्रमोका वर्णन करना। क्या-क्या पढा, इत्यादि।

मणिबहनका क्या करूँ? उसे पत्र लिखता हूँ फिर भी यदि उसे नही मिलता तो इसमे दोष किसका? इसके सिवा, हम कैदी है, इसका कोई चिह्न तो होना चाहिए?

केवलरामभाई और मेरे बडे भाई समवयस्क थे। दोनो ही बहुत उदार और उडाऊ थे। दोनो भोगप्रिय थे। बादमे दोनोको वैराग्यका आकर्षण हुआ। दोनोने स्वतन्त्र रूपसे मुझे लिखा था कि वे अपने जीवनका शेषाश दक्षिण आफ्रिका आकर विताना चाहते है और अपने-अपने बच्चोकी बाँह मुझे सौपना चाहते हैं। मैने दोनोकी इच्छाका स्वागत किया और उनके शुभागमनकी बाटमे तैयारी करने लगा। किन्तु भाग्यने साथ नही दिया। वे मुझे छोड़कर चले गये। बडे भाईके बच्चे मेरे हाथ आये ही नही। मैने उसके लिए कुछ प्रयत्न भी किया था। किन्तु देखो तुम सब मेरे हाथ कोई प्रयत्न किये बिना ही आ गई। इसे हम क्या कहे — नियति या अपने पूर्वकर्मोका विपाक? आई हो तो अब छोडना नही। मेरी विरासत तो कोई भी लूट सकता है। तुमसे जितनी बने उतनी लूटना और शोभान्वित होना। वह चन्द्रहास कहाँ छुप गया है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च.]

निर्मला कहाँ है? कैसी है?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०८७) से। सी० डब्ल्यू० ५२ से भी; सौजन्य. मगलाबहन बी० देसाई

१. बैल।

२. चाय।

४५२. एक पत्र[1]

१३ अप्रैल, १९३३

तुम्हारा खत पूरा पढ गया। तुम्हारे भाव शुद्ध है। लेकिन जिस शक्तिकी आशा मेरे पास तुमने रखी है, मेरेमे है ही नही। मै भी दूसरोके जैसा पामर प्राणी हूँ और ईश्वरके दर्शनके लिए उत्सुक हूँ, प्रयत्नशील हूँ। मै अवश्य चाहता हूँ कि तुमको और तुम्हारे पतिको ईश्वर दीर्घायु रखे, दोनोमे पवित्र सेवाभाव पैदा करे, और दोनोमे परस्पर शुद्ध प्रेमकी वृद्धि करे। यह खत तुम्हारे दोनोके लिए समझो। इसी कारण पतिको अलग खत नही लिखता।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ २२७

४५३. पानीसे भी वंचित!

राजपूताना हरिजन सेवक सघके मन्त्री श्री रामनारायण चौधरी लिखते है[2]

यह प्रदेश मरुभूमि है। यहाँ जलाशय बहुत कम है। कुएँ ही — वे भी बहुत गहरे और थोड़े — एकमात्र पानीके साधन है। परन्तु यह प्रदेश लक्ष्मीका लाड़ला है। इसमें बहुसंख्यक धनी रहते है। उनमें धर्म-भाव भी बहुत हैं — अनेक औषधालय, धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, बावड़ियाँ, गोशालाएँ, भोजनक्षेत्र इन सम्पन्न भाइयोंके धर्मके उज्ज्वल प्रमाण हैं। जहाँ इनके मनमें आ जाती है, जंगलमें मंगल कर देते है। परन्तु प्रतीत होता है कि मेहतर भाइयोंके जल-सम्बन्धी कष्टोंकी ओर इनका ध्यान अभीतक नहीं गया है। . . . अनेक स्थानोंपर इन बेचारोंको 'खेलों'का पानी पीना पड़ता है। 'खेल' राजस्थानी भाषामें उस लम्बे और नीचे हौजको कहते हैं, जो प्रत्येक बड़े कुएँके साथ बना होता है। इस खेलमें ढोर पानी पीते है, रजस्वला स्त्रियाँ कपड़े धोती हैं और अपढ़ आदमी आबदस्त भी लेते हैं। वही पानी मेहतर भाइयोंको लाचार होकर पीना पड़ता है। क्या यह अवस्था सिरपर मैला उठाकर ले जानेकी प्रथासे भी बुरी नहीं है?

१. यह पत्र पजाबकी एक महिलाको लिखा गया था, जिसने अपने पत्रमें गांधीजी को ईश्वरके समान बताया था और उनसे प्रार्थना की थी कि वे उसको और उसके पतिको गृहस्थ-सुखका आशीर्वाद देते हुए पत्र लिखें।

२. यहाँ पत्रके केवल कुछ अंश ही दिये जा रहे है।

यह कार्य केवल 'हरिजनसेवक' मे चर्चा कर देने मात्रसे नही होगा। ऐसे मेहतर कितने है और कहाँ है, इसका पूरा पता सेवकोको लगाना होगा और जहाँ-जहाँ पानीका यह कष्ट है, उस प्रदेशके उदार धनिकोसे नये कुओंका निर्माण अथवा कोई और उचित प्रबन्ध कराना होगा। इसीके साथ-साथ मेहतर भी अपनी स्थितिमे सुधार करे, ऐसा मार्ग उन्हे दिखाना होगा। उन लोगोके रहन-सहनमे क्या सुधार हो सकता है, यह भी सेवकोको देखना होगा; अर्थात् प्रत्येकका परिचय आवश्यक है। इस सब कार्य करनेमें सच्चे सेवकोकी और उनकी कार्य-दक्षताकी आवश्यकता है।

हरिजनसेवक, १४-४-१९३३

४५४. तार : विट्ठलभाई झ० पटेलको

१४ अप्रैल, १९३३[1]

वि० झ० पटेल
मार्फत इंडिया आफिस
लन्दन

ईश्वर आपकी रक्षा करे। अपनी अवस्था तार द्वारा सूचित करे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ ३१९

४५५ पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

टीटागढ कागज मिलके बारेमे लिखा आपका इसी १० तारीखका पत्र मिला। निश्चय ही मेरा इससे पहलेका पत्र मिलनेसे पूर्व ही आप यह पत्र भेज चुके होगे। मैंने अपनी यह पक्की राय बता दी है कि हम विज्ञापन बिलकुल नही ले सकते — विशेष कृपाके रूपमे भी नही, लेकिन अगर 'हरिजन' के संचालनके बारेमे आपके विचार भिन्न हो और आप इस पक्षमे हो कि 'हरिजन' मे सामान्य रूपसे विज्ञापन लिये जाये तब तो बात और हुई। और अगर आप इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि विज्ञापन

१. इस तारको भेजनेकी अनुमति सरकारसे १९ तारीखकी शामको प्राप्त हुई, मगर तबतक वि० झ० पटेलको इलाजके लिए वियना भेज दिया गया था। इसलिए गांधीजी ने यह तार नहीं भेजा। देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १९-४-१९३३; यद्यपि उसमें १३ अप्रैलकी तिथि दी है।

लिये ही जाने चाहिए तो मैं विरोध नही करूँगा। आप तो जानते ही है कि सामान्य अखबारोमे भी विज्ञापन लिये जानेके बारेमे मेरे विचार विचित्र किन्तु पक्के है, लेकिन हमारा यह आन्दोलन जैसा महान् है, वैसे आन्दोलनका संचालन करनेमे ये विचार निर्णायक नही हो सकते। किन्तु मेरा यह निश्चित मत है कि अपवादके तौरपर कोई विज्ञापन लेनेकी नीतिका औचित्य हम कभी नही सिद्ध कर सकते।

लाला कमलापतके[1] दिये ३,००० रुपयेका उल्लेख अखबारमे करना है या नही — आप क्या चाहते हैं?

रामानन्द सन्यासीके[2] बारेमे मैं आपकी बात समझता हूँ। मैं तो सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि उनके बारेमे अपनी राय बदलनेका आपको कोई कारण मिला था क्या। चूँकि आपके मनमे अब भी शका है, इसलिए मेरा सुझाव यह है कि आप उनको बुलवाकर उनसे साफ-साफ बात कीजिए। अगर वे अच्छे सन्यासी हैं तो आपकी साफगोईको पसन्द करेंगे और फिर आप भी उनसे काम लेना आसान पायेंगे।

आशा है, सुव्रतादेवी और जानकीदेवीके अनुदानोके बारेमे मेरा पत्र[3] आपको मिल गया होगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९३४) से।

४५६. पत्र : सुधीरचन्द्र चक्रवर्तीको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं कुछ नही कर सकता। लेकिन आपको सबसे पहले प्रान्तीय अस्पृश्यता-विरोधी बोर्डसे सम्पर्क करना चाहिए और उसके बाद अगर आप चाहे तो केन्द्रीय बोर्डसे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुधीरचन्द्र चक्रवर्ती
१०/१ नेपाल भट्टाचारजी स्ट्रीट
कालिघाट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३६) से।

१. कानपुरके एक प्रमुख उद्योगपति कमलापत सिंहानिया।

२. दिल्लीमें दलित वर्गके उद्धारके लिए काम करनेवाले एक प्रमुख कार्यकर्ता।

३. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", १०-४-१९३३ और "डेविड योजनाके लिए ५,००० रुपये", १५-४-१९३३ भी।

४५७. पत्र : एम० एन० चौदप्पाको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने उस भाषणकी[1] कतरन तो भेजी ही नही है जिसका आपने उल्लेख किया था। मुझे याद है कि उस भाषणका एक हिस्सा मुझे पढकर सुनाया गया था, लेकिन मुझे उस समय तो ऐसा नही लगा कि उसमे टिप्पणी लिखने लायक कुछ है।

आपके पत्रके चौथे अनुच्छेदका आशय मुझे स्पष्ट नही हुआ।

हृदयसे आपका,

सहायक सम्पादक
'प्रजा[मत][2]'
१४३–५, मिन्ट स्ट्रीट
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३७) से।

४५८. पत्र : एस० पॉल डेनियलको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। मूर्तियोके माध्यमसे ईश्वरकी उपासनाके प्रति मेरी भावना वैसी नही है जैसी आपकी है। इस सम्बन्धमे मैंने 'हरिजन' मे जो-कुछ लिखा है उसे आप पढे। फिर आप मुझसे चर्चा करना चाहे तो कर सकते है। मैंने वर्णाश्रम पर भी लिखा है। वर्णाश्रमका मै जो अर्थ लगाता हूँ उस अर्थमे मै उसमें विश्वास करता हूँ। इसके लिए भी मै आपसे 'हरिजन' ही पढनेको कहूँगा।

१. मैसूरके दीवान सर मिर्जा इस्माइलने चीतलदुर्गमें एक भाषणमें कहा था कि मेरी समझसे अस्पृश्यता "धार्मिक समस्याकी अपेक्षा सामाजिक समस्या अधिक है और इसलिए इसका समाधान भी इसी ढगसे किया जाना चाहिए।" एम० एन० चौदप्पाको यह बात आपत्तिजनक लगी थी और उन्होने इसपर गांधीजी की राय माँगी थी।

२. साधन-सूत्रमें यहाँ "मित्र" है, जो स्पष्टतः चूक है।

जहाँतक रोटी-बेटी-व्यवहारका सम्बन्ध है, उसे मैं अस्पृश्यता-निवारणके लिए आवश्यक नही मानता। मैं किसीको भी अस्पृश्य नही मानता, लेकिन इसका मतलब यह नही कि मेरे लिए उस व्यक्ति-विशेषके साथ भोजन करना या विवाह-सम्बन्ध कायम करना आवश्यक है। ये बाते तो बिलकुल अलग धरातल की हैं। जहाँतक इन दो बातोका सम्बन्ध है, हम अपने मनके मुताबिक चुनाव करते ही है, लेकिन जहाँतक लोगोका स्पर्श करनेका सवाल है, हमे यह छूट लेनेका अधिकार नही है कि हम अमुकको छुएँगे, मानेंगे और अमुकको नही।

हृदयसे आपका,

श्री एस० पॉल डेनियल
ट्रिचेन्दूर रोड
पालमकोट्टा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३३) से।

४५९. पत्र : दिवाकर सिंहको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय दिवाकर,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। अगर तुमने सडकोकी सफाईका काम फिर शुरू कर दिया है तो मुझे आशा है कि अब तुम उसमे बिना किसी प्रदर्शनकी भावनाके लगे ही रहोगे। लेकिन मैं शीघ्र ही इलाहाबादकी गदी बस्तियोके बारेमे एक लेख लिखने वाला हूँ। और मैं चाहूँगा कि मेरा वह लेख[1] जब 'हरिजन' मे प्रकाशित हो तो तुम उसे पढ़ लो और उस कामपर ध्यान दो। जबतक तुम काम करते रहोगे, मैं तुम्हारे साथ पूरा धीरज बरतूँगा।

नी० देवीका क्या हुआ, शायद तुम नही जानते। मुझे लगता है कि अब मुझे तुमको यह बता देना चाहिए कि उसने मेरे मनपर आखिर क्या छाप छोड़ी है। उससे बातचीतके दौरान मैंने पाया कि बगलौरमे भगीका काम करते हुए भी वह सीधा और नैतिक जीवन नही जी रही है। लेकिन, मुझे लगा कि उसे जो-कुछ हुआ उसपर सच्चा पश्चात्ताप है। अब उसने हरिजनोके सुख-दु:खको ही अपना सुख-दु:ख बना लिया है, मौजकी जिन्दगी बिलकुल छोड दी है और वह चीतलदुर्गके निकट एक हरिजन गाँवमे प्रसिद्धिसे कोसो दूर यथासम्भव हरिजनोके जैसा जीवन व्यतीत कर रही है तथा जो-कुछ खाने-पीनेको दे दिया जाता है उसीपर गुजारा कर रही है। उसका लडका उसके साथ है। ऐसा माना जाता है कि वह मेरे मार्ग-दर्शनमे चल रही है। उसपर सन्देह करनेका मुझे कोई कारण दिखाई नही देता। मुझे जो

१. देखिए "तात्कालिक कर्तव्य", २२-४-१९३३।

पत्र वह भेजती है, वे काफी सन्तोषजनक हैं। लेकिन, आखिरकार वह कैसी बनेगी, यह अभी तो नही कहा जा सकता। यह सब मैं तुमसे इसलिए कह रहा हूँ कि हम दोनोमे यह तय हुआ है कि जो लोग उसके सम्पर्कमे आये है, कमसे-कम उन्हे तो उसके निकट विगत पापोकी एक सामान्य जानकारी हो ही जानी चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

कुँवर दिवाकर सिह
हॉलैंड हॉल
इलाहाबाद

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३२) से।

४६०. पत्र : हृदयनाथ कुँजरूको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय हृदिजी,

बुलन्दशहरसे किन्ही सज्जनने एक पत्र लिखकर बताया है कि नगरनिगमने अपने कर्मचारियोके वेतनोमे जो आम कमी की है, उसके साथ भगियोके वेतन भी घटा दिये गये है। भगियोने इस कटौतीके खिलाफ हडताल की है। पत्र-लेखकका कहना है कि उनके वेतन तो अभी ही बहुत कम है। निगमका अध्यक्ष भगियोकी शिकायत सुननेको बिलकुल तैयार नही है। ऊपरसे देखनेमे तो यह पत्र युक्तिसगत लगता है। क्या आप जाँच करके जो-कुछ करना सम्भव हो सो करेगे?

वह पत्र साथमे भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

सलग्न पत्र – १

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३५) से।

४६१. पत्र: सुधीर मित्रको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका इसी १० तारीखका पत्र मिला। मुझे तो इस बातमें सन्देह है कि सिर्फ अस्पृश्यता-निवारणका उद्देश्य लेकर ही कोई मासिक पत्रिका चलानेकी जरूरत है। इसलिए आपके इस उद्यमको अगर पहलेसे ही मैं अपना आशीर्वाद नहीं दे रहा हूँ तो इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुधीर मित्र
मित्र कॉटेज
२ कालि लेन
कालिघाट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९२५) से।

४६२. पत्र: हरिभाऊ फाटकको[1]

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय हरिभाऊ फाटक,

हरिजनोंका, दरिद्रनारायणका सेवक होनेका मेरा दावा सिद्ध होना अभी शेष है और मैं निस्संकोच यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे दावेके सिद्ध होनेके मार्गकी कठिनाइयोंमें से एक मेरा आहार भी है। लेकिन, आपको यह मालूम होना चाहिए कि अपने आहारपर मैं खुद कुछ खर्च नहीं करता। यहाँ तो यह खर्चीली सरकार मेरा भोजन जुटाती है और फिर मुक्तहस्त होकर खर्च करनेवाले मित्र भी इसमें उसकी सहायता करते हैं। लेकिन कोई और मेरे भोजनपर बहुत-सा पैसा खर्च करता है, इस बातसे इस खर्चका औचित्य सिद्ध नहीं होता और न शायद इसी आधारपर उसको मुनासिब कहा जा सकता है कि मैं जो बकरीका दूध और फल लेता हूँ वह

१. हरिभाऊ फाटकने १३ अप्रैलके अपने पत्रमें लिखा था कि लोगोंको जब वे गांधीजी के आहार और उसपर होनेवाले खर्च तथा उसके स्वदेशीपनको लेकर व्यंग्य करते सुनते हैं तो उन्हें बहुत बुरा लगता है। लोगोंके आक्षेपोंका उत्तर देनेके लिए उन्होंने इस सम्बन्धमें गांधीजी का आश्वासन चाहा था।

डाक्टरी सलाहके मुताबिक मेरे शरीरके लिए जरूरी है। मै जानता हूँ कि लाखो नही तो हजारो लोग तो ऐसे है ही जिनके शरीरोके लिए डाक्टरी सलाहके मुताबिक वैसे ही आहारकी आवश्यकता बताई जायेगी जैसा मेरा आहार है। लेकिन, उनके पास ऐसे प्रमाणपत्र देनेवाला कोई डाक्टर नही है और अगर उनको ऐसा डाक्टर मिल भी जाये तो न तो सरकार और न हमारे यहाँके लखपती लोग ही उन्हे वैसा आहार देगे जो मुझे मिलता है।

मै स्वदेशीके सिद्धान्तमे सोलहो आने विश्वास करता हूँ, लेकिन मै यह भी मानता हूँ और इस बातपर किंचित् गर्व भी अनुभव करता हूँ कि मेरा स्वदेशीका सिद्धान्त कोई सकुचित सिद्धान्त नही है। जो चीजे मै भारतमे यहाँके करोड़ो लोगोको दृष्टिमे रखते हुए लाभपूर्वक पैदा नही कर सकता उन्हे तो मै सारी दुनियासे खरी-दूंगा। इसलिए अरबसे वहाँका स्वास्थ्यवर्धक खजूर और अफगानिस्तानसे ऐसे ही स्वास्थ्यवर्धक मुनक्के लेनेमे मुझे कोई सकोच नही होता। मै जिन विदेशी चीजोका इस्तेमाल करता हूँ उनके ये कुछ-एक उदाहरण है। लेकिन, मेरा स्वदेशीका समर्थक होनेका दावा भली-भाँति सिद्ध हो जाता है, क्योकि भारतीय मिलो द्वारा तैयार किये नफीससे-नफीस कपड़ेके बजाय मै हरिजनो द्वारा तैयार की गई मोटीसे-मोटी खादी ही लूंगा।

हाँ, बेचारे प्यारेलालने हर स्वदेशी वस्तुके लिए मेरे मोहको जानते हुए यह सोचा था कि उसने अपने स्वर्ग—पजाबमे खजूर ढूंढ लिया है और सचमुच उसने ढूंढ भी लिया था। जिन्होने यह खजूर भेजा उनको तो काफी खर्च उठाना पडा, लेकिन मुझे उसके लिए कुछ नही देना पडा। जबतक वह खजूर उपलब्ध रहा, अरबके खजूरके बजाय मै वही लेता रहा, लेकिन आखिरकार बाजी तो अरबके ही हाथमे रही, क्योकि पजाबका खजूर तो केवल मौसममें ही मिलता है और यह मौसम केवल दो महीनेका होता है। तो कुल मिलाकर विजयी अरब ही रहा, क्योकि मेरे शरीरको खजूरकी जरूरत है और इसलिए मै उसे छोडना नही चाहता और अरबका खजूर लेकर मै भारतके खजूर पैदा करनेवालों को लाभसे वचित नही रखता। मै आपको एजेटोके नाम नही दे सकता, क्योकि प्यारेलालने पजाबका खजूर जुटानेका काम एक मित्रको सौपा था, इसलिए प्यारेलालको भी उनके नामोका पता नही है।

मुझे खुशी है कि पूना नगरपालिकाने श्रीयुत पाशनकरका वह प्रस्ताव पास कर दिया है जिसमे कहा गया है कि हरिजनोको सभी कुओ, तालाबो आदिका उपयोग करनेकी छूट दी जाये।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९२७) से।

४६३. पत्र: जी० रामचन्द्र रावको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी शुभ कामना है कि भारतीय टस्केजी की[1] स्थापनामें तुम्हे पूरी सफलता मिले। बुकर टी० वाशिंगटनके बारेमे मै बहुत-कुछ जानता था — जब दक्षिण आफ्रिकामे था, उन दिनो भी। उनके लिए मेरे मनमे बड़ा सम्मानका भाव है। तुमने अपने सामने एक योग्य आदर्श रखा है, लेकिन तुम भारतीय बुकर टी० वाशिंगटन नही बन सकते। वह तो कोई हरिजन ही बन सकता है। इसलिए तुम्हे तो हरिजनोमे से ही कोई बुकर टी० वाशिंगटन तैयार करनेमें अपनी पूरी शक्ति लगानी है। ईश्वर तुम्हे सफल बनाये।

तुमने माँगनेका अपना अधिकार तो सिद्ध किया है, लेकिन तुमने क्या असन्दिग्ध रूपसे यह भी प्रमाणित कर दिया है कि तुम्हे जो अनुदान मिलेगे उनसे तुम उनकी अपेक्षा हजार गुना अधिक मूल्यवान परिणाम पैदा कर दिखाओगे। अगर अपने लिए मूर्ख शब्दका प्रयोग किया जाना तुम्हे अच्छा लगे तो मै कहूँगा कि तुम बेशक इतने मूर्ख बन जाओ कि यह बात प्रमाणित कर दिखाओ।

हाँ, लेडी ठाकरसी द्वारा तैयार किये गये घीकी बूँद-बूँदका मैंने उपयोग किया और तुम्हे यह जानकर खुशी होगी कि उस दौरान अधिकाश समयतक नमकसे परहेज ही करता रहा। कुछ दिन बाद जब मैंने देखा कि न तो मालिशसे और न नमक त्यागनेसे कुहनियो [के दर्द]मे कोई फर्क पड़ रहा है तो मै फिर नमक लेने लगा और उसके बाद फिर मैंने घीकी माँग नही की। नमक लेना इसलिए शुरू किया कि मेरे सिरमें विचित्र ढगका दर्द रहने लगा था। इसका कारण मैंने नमक छोडना मान लिया, जो शायद बिलकुल गलत था। मगर विचित्र बात यह हुई कि नमक लेनेसे मेरा सिर-दर्द जाता रहा। कह नही सकता कि यह मात्र एक सयोग था या फिरसे नमक लेना शुरू करनेका नतीजा, हालाँकि मै नमक १५ ग्रेनसे ज्यादा नही लेता था।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जी० रामचन्द्र राव
मार्फत — सर्वेंट्स ऑफ इडिया सोसाइटी
रायपेटा (मद्रास)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३८) से।

१. अमरीकामें नीग्रो लोगोंके बीच शिक्षा आदिके प्रचारके लिए बुकर टी० वाशिंगटन द्वारा खड़ी की गई एक संस्था। रामचन्द्र रावने भारतमें हरिजनोंके लिए इसी ढगकी एक संस्था बनानेकी योजना पेश की थी। इसमें उनका काम होता चन्दा माँगकर संस्थाके लिए पैसा इकट्ठा करना।

४६४. पत्र : समरस शुद्ध सन्मार्ग संघम्‌को

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और पुस्तकके[1] लिए धन्यवाद। आपने जिस दूसरी पुस्तकका जिक्र किया है, वह मत भेजिए, क्योकि तमिल समझनेमे मुझे कठिनाई होती है और मेरे पास इतना समय नही है कि मैं उसे समझते हुए पढ सकूं।

हृदयसे आपका,

समरस शुद्ध सन्मार्ग सघम्
३६, स्वामी पिल्लै स्ट्रीट
छोलई डाकघर
मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९४०) से।

४६५. पत्र : रामगोपाल शास्त्रीको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

श्रीयुत स्वात्मदासकी[2] शिकायतके उत्तरमे श्रीयुत अ० वि० ठक्करको लिखे आपके पत्रकी प्रतिके लिए धन्यवाद।

आप बुरा न मानें तो कहूँ कि आपका पत्र मुझे आपकी बातकी प्रतीति नही करा सका। मैं कदापि यह नही कहता कि दलित सेवा मिशनने कोई सेवा की ही नही है, लेकिन आपके पत्रमे इस सम्बन्धमे कुछ नही कहा गया है कि आपके मिशनने किस प्रकारकी सेवा की है। हम लोग तो हरिजनोके सेवक होनेका दावा करते है न! तो हमे शरारत-भरी शिकायतोका भी बुरा नही मानना चाहिए। ऐसी शिकायतोको बन्द कर देनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि कोरे और ठोस तथ्य सामने रख दिये जायें। मैंने श्री ठक्करसे श्रीयुत स्वात्मदास द्वारा उल्लिखित सभी सगठनोंके

१. रामलिंग स्वामी-कृत तिरु अरुतपा।

२. प्रेषीने दिनांक ३१ मार्च, १९३३ के अपने पत्रमें लिखा था कि स्वात्मदास एक प्रपंची व्यक्ति है जिसने कई संस्थाओंको केवल सवर्ण हिन्दुओंकी हितकारी होनेका इल्जाम लगाकर बदनाम किया था। देखिए "पत्र. अमृतलाल वि० ठक्करको", १४-३-१९३३ और १६-३-१९३३ भी।

पास उस शिकायतकी प्रतियाँ भेज देनेको कहा था ताकि उन्हे यह मालूम हो जाय कि उनके बारेमे क्या कहा गया है और अगर वे चाहे तो अपने-अपने उत्तर भी दे जिससे कि केन्द्रीय बोर्ड विभिन्न सगठनोके खिलाफ लगाये आरोपोका सन्तोषजनक ढगसे निराकरण कर सके।

हृदयसे आपका,

वैद्यभूषण पण्डित रामगोपाल शास्त्री
मन्त्री, पजाब दलित सेवा मिशन
लाहौर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३९) से।

४६६. पत्र: रमाबहन जोशीको

१४ अप्रैल, १९३३

चि० रमा,

सरदारके नाम आया डॉ० पटेलका[1] पत्र मै आज ही देख पाया हूँ। इसमे कोई ऐसी खतरनाक बात नही है। यदि ऑपरेशन कराना ही पडा तो उसमे कोई खतरा नही है। मुझे लिखना कि आजकल हाथमे कितना दर्द होता है। हाथसे धीरे-धीरे काम करनेमे कोई नुकसान नही है। हाथके बेकार हो जानेका कोई खतरा नही है। हाँ, लापरवाही करनेसे अन्तमे ऐसा हो सकता है। किन्तु यह पता चल गया है कि क्या गडबडी है, इसलिए चिन्ताका कोई कारण नही। प्रतिदिन हाथको थोडा-सा व्यायाम देना चाहिए। मुझे पूरे समाचार देना। आशा है तुम्हारा मन प्रफुल्लित होगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४७) से।

१. डॉ० मार्तीभाई डी० पटेल, अहमदाबादके एक प्रसिद्ध सर्जन।

४६७. पत्र : नारणदास गांधीको

१४ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला।

भाई रामजीको लिखा मेरा पत्र पढना। उसके पोस्टकार्डमे इस तरहके वाक्य है — 'पेट सिरको लात मार रहा है', आदि, और वह राजभोजसे अपने मनकी पूरी बात कहनेकी अनुमति चाहता है। मैंने उसे लिखा है कि उसकी इच्छा है तो भले वह वैसा ही करे। समझमे नही आता उसे क्या हुआ है। उसका दिमाग कही गडबड तो नही हो गया है? उसकी बातोसे कभी-कभी मुझे ऐसी शका होती है। उसे हरएकके बारेमें सन्देह होने लगता है — अपने निकटके सम्बन्धियोपर भी।

डॉ० शर्मा और राजभोजके नाम लिखे पत्र इसके साथ रख रहा हूँ। कब्जकी शिकायतके सम्बन्धमे डॉ० शर्मासे चर्चा करना। अमीनाके पाँवोकी चमडी जगह-जगहसे फट-सी गई थी, उसकी यह तकलीफ दूर हो गई होगी।

मणिलालके बिल आश्रमके पैसोमें से नही चुकाये जा सकते। देवदासको तीन-सौ रुपये किसने दिये? आश्रमके पैसेका उपयोग हम अमुक व्यक्तियोकी निजी जरूरतोके लिए नही कर सकते।

कुसुमसे डॉक्टरने क्या कहा? उसके दस्त बन्द नही हो रहे है, यह तो ठीक नही है। कुसुमकी दवा तो डॉ० तलवलकर ही करेंगे। पर डॉ० शर्माको भी उसे दिखाना तो। देखे वह क्या कहता है?

केशू नौकरी ढूँढ रहा है।

बापू

[पुनश्च]

डॉ० पटेलने रमाबहनके विषयमे वल्लभभाईको जो पत्र लिखा है वह मैंने पढा है। तुम्हे कुछ और मालूम हुआ हो तो लिखना। उसके हाथका एक्स-रे होना था, उसका क्या हुआ? यह जाँच पन्द्रह रुपये देकर ही कराई जा सकती हो तो शायद वैसा करा लेना भी ठीक ही होगा। डॉक्टर जैसा कहे वैसा करना। ऑपरेशन करानेकी जल्दी नही है। मालूम होता है कि थोड़ा-बहुत काम करनेमे उसे अडचन नही होती। रमाबहनको लिखा पत्र भी साथमे है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५५ मे भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४६८. एक पत्र

१४ अप्रैल, १९३३

मेरे खयालसे ल० की शर्तें तुम्हे बिना संकोच मान लेनी चाहिए। आखिर तो वह तुम्हारा पति है। उसकी चोट पहुँची हुई भावनाओंको शान्त करनेमें कोई छोटा-पन नहीं है। इससे तुम अपनी नजरमे और ईश्वरकी नजरमे भी ऊँची उठ जाओगी। और ल०का विरोध न करनेसे तुम उसका प्रेम फिरसे प्राप्त कर सकोगी। मित्रोंके बीचके सम्बन्धमे एक पक्षको दूसरे पक्षके विरुद्ध कोई हक नही होते। पति-पत्नी मित्रोंसे भी ज्यादा हैं। आज तुम दोनोंके मार्ग एक-दूसरेसे अलग हो गये हैं, इसलिए इस सम्बन्धमे कोई फर्क नही पड़ना चाहिए। तुम शान्ति रखोगी, तो सब बातें ठीक हो जायेंगी। बच्चोका हित सर्वोपरि होना चाहिए, और तुम कोई आग्रह न रखो, तो इससे उस हितकी रक्षा ज्यादा अच्छी तरह होगी। ऐसा करके भी तुम्हे सन्तुष्ट रहना चाहिए। तुम अपने आनन्दके लिए नहीं, मगर उनके भलेके लिए ही तो उनसे मिलना चाहती हो। कानून और अदालतकी बात तो अपने दिलसे निकाल ही दो। मेरी बात अच्छी तरह समझमें आ रही है न? ईश्वर तुम्हारा सहायक हो और तुम्हे रास्ता दिखाये।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृ० २३०

४६९. केवल जन्मसे नहीं

अभी पिछले दिनो मदाम वाडियाने एक बड़ा ही शिक्षाप्रद भाषण दिया था। उसमे उन्होंने निम्नलिखित श्लोक भी उद्धृत किये थे, जो यद्यपि पहले भी अकसर उद्धृत और प्रकाशित किये जा चुके है, फिर भी यहाँ दिये जाने योग्य हैं:

आप 'महाभारत'के 'वन पर्व'में युधिष्ठिरके ये शब्द सुनिए:

हे सर्पराज, जिसमें सत्य, दाक्षिण्य, क्षमा, सदाचार, विनय, तप और दया ये गुण हैं वही ब्राह्मण है। यदि ये गुण किसी शूद्रमें है और द्विजमें नहीं हैं तो वह शूद्र शूद्र नहीं है और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है।

और 'विष्णु-भागवत'में कहा है:

जिन लक्षणोंके कारण कोई व्यक्ति अमुक जातिका माना जाता है, वे लक्षण यदि किसी अन्य व्यक्तिमें हों तो उसकी जातिका निर्धारण उन लक्षणों-के अनुसार ही होगा (अर्थात् उसके शरीर और जन्मके अनुसार नहीं होगा।)

लेकिन आप लोगोंमें से कुछको 'मनुस्मृति' की बात शायद अधिक जँचेगी। तो सुनिए। काठका हाथी, मृग-चर्म और अज्ञानी ब्राह्मण नामके लिए हाथी, मृग और ब्राह्मण है। जो ब्राह्मण वेदोका अध्ययन न करके कहीं अन्यत्र दास-वृत्ति करता है, वह अपनी सन्तान-सहित इसी जन्ममें शूद्र बन जाता है।

शास्त्रोंके इन तथा अन्य बहुत-से श्लोकोसे स्पष्ट रूपसे सिद्ध हो जाता है कि मात्र जन्मका कोई मतलब नही है। अपने जन्मके आधारपर मनुष्य जो दावा करता है, उसे तो उसको तद्रूप कर्म और आचरणके द्वारा सिद्ध कर दिखाना चाहिए। इस प्रकारके श्लोकोसे इन दलीलोको भी बल मिलता है :

(क) जो मनुष्य अपने वर्णके लिए आवश्यक गुणोका परिचय नही दे पाता वह अपने वर्णसे च्युत हो जाता है।

(ख) रोटी-बेटी व्यवहारपर लगाये प्रतिबन्धोकी चाहे जो अच्छाइयाँ हो, उसके कारण किसीके वर्णपर प्रभाव नही पडता, कमसे-कम उतना तो नहीं ही जितना कि अपने वर्णके अनुरूप आचरण करनेमे विफल होनेका पडता है।

(ग) किसी वर्ण-विशेषमे जन्म लेनेके कारण मनुष्य उस वर्णमे तो प्रवेश करता है और उससे माता-पिताको अपने बच्चोके लिए उपयुक्त प्रशिक्षण और धन्धेका चुनाव करनेकी सुविधा मिलती है, किन्तु यदि वह अपने कर्मोसे उस वर्णका नाम चरितार्थ नही करता तो केवल जन्मके ही कारण वह वर्ण उसका स्थायी वर्ण नही हो जाता।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-४-१९३३

४७०. दूसरा हरिजन-दिवस

पहला हरिजन-दिवस पिछले वर्ष १८ दिसम्बरको मनाया गया था। श्रीयुत अमृतलाल ठक्कर दूसरे हरिजन-दिवसकी तिथि निश्चित करवानेको बडे उत्सुक रहे है, लेकिन अपने विश्वासके अभावके कारण मैं उसे टालता रहा हूँ। ठक्कर बापा १९ दिसम्बरको किये गये कामसे सन्तुष्ट थे। मै नही था। कोई विशेष तिथि तो तभी तय करना मुनासिब होगा जब असाधारण प्रयत्न भी किया जाये। हरिजनोत्थान-जैसे पवित्र कार्यके सिलसिलेमे विशेष दिवस तो अपेक्षाकृत अधिक समर्पण, अधिक प्रार्थना और जुटकर काम करनेका दिन होना चाहिए। ठक्कर बापासे सलाह-मशविरा किया तो मेरा मन भी उन्हीकी तरह आशासे भर गया है। अत इस महीनेके आखिरी रविवारको यह दिवस मनाना तय किया गया है।

उस दिनका कार्यक्रम मैं कुछ इस प्रकार रखना चाहूँगा :

१ सवेरे ५ बजे प्रार्थना करे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार इस उद्देश्यके निमित्त कुछ पैसा या कपडा अथवा अन्न अलग रख दे। जो बहुत गरीब है वे भी मनमे

कोई ऐसा भाव लाये बिना कि उनका जरा भी नुकसान हुआ है, एक या एकाधिक बारका अपना भोजन या उसका एक अंश त्यागकर इस प्रकारका योग दे सकते हैं। अच्छा तो यह होगा कि जिन्सोंके रूपमें दिये जानेवाले दानको नकदीमें बदल लिया जाये। लेकिन जहाँ यह सम्भव नहीं हो वहाँ दानकी चीजें उसके सबसे उपयुक्त पात्र और जरूरतमन्द हरिजनको दी जायें।

२. अगर परिवारका कोई भंगी हो तो उसका काम या तो पूरे तौरपर या आंशिक रूपसे परिवारके सदस्य स्वयं करें। इससे लोग यह समझ सकेंगे कि भंगी कैसा काम करते हैं और हो सकता है कि इसके परिणामस्वरूप ऐसे काम करनेके तरीकेमें भी सुधार हो। पाखाने वगैरहका इस्तेमाल करते हुए बहुत कम लोग इस बातका खयाल रखते हैं कि इनकी सफाई करनेवाले बेचारे भंगियोंपर क्या बीतेगी। यदि हममें अस्पृश्यताका दोष न होता और जब-तब भी भंगियोंके काममें हाथ बँटाते तो हमारा पाखाने वगैरहकी सफाईका तरीका कुछ और ही होता।

३. ये दोनों काम कर लेनेके बाद हमें उन कार्योंमें लगना चाहिए जो हमको उस दिन सामूहिक रूपसे करने हैं। सबसे पहले तो हमें घर-घर जाकर नकद और जिन्सी अनुदान इकट्ठे करने चाहिए। एक निश्चित समयके अन्दर यह काम पूरा कर लेना चाहिए। अनुदानमें प्राप्त पैसा और चीजें स्थानीय समितिको दे देनी चाहिए। उस समितिको सब-कुछ अपनेसे ऊपरकी समितिको सौंप देना चाहिए और इस तरह अन्तमें वह प्रान्तीय समितिके पास पहुँच जाना चाहिए। अनुदान इकट्ठा करनेवालों को विचारपूर्वक चुनकर कुछ साहित्य भी साथमें रख लेना चाहिए। इसमें परचे, पुस्तक-पुस्तिकाएँ और जरूरतके मुताबिक अंग्रेजी अथवा देशी भाषाओंके 'हरिजन' की प्रतियाँ भी हो सकती हैं। यह साहित्य बिके तो बेचना चाहिए और जरूरत पड़े तो मुफ्त भी बाँटना चाहिए। लेकिन, प्रत्येक समिति जितना साहित्य मँगवाये उसका खर्च वह खुद उठाये। अगर 'हरिजन' की अतिरिक्त प्रतियोंकी आवश्यकता हो तो प्रकाशकोंको पहले ही सूचना दे देनी चाहिए, ताकि वे अतिरिक्त प्रतियाँ छाप सकें।

४. हर जगह हरिजन बस्तियोंमें जाना चाहिए। और जहाँ जरूरी हो वहाँ उनको साफ करना चाहिए। हरिजनोंकी सभाओंका आयोजन करना चाहिए और उनकी आवश्यकताओंकी जानकारी प्राप्त करके उन्हें दर्ज कर लेना चाहिए। उन्हें यह बताना चाहिए कि अस्पृश्यता-निवारणमें स्वयं उनकी क्या भूमिका निभानी है। उन्हें मरे हुए पशुओंका मांस खाना छोड़नेको समझाते हुए डॉ० देशमुखके अधिकृत मतका उपयोग करना चाहिए। बच्चे हरिजन बच्चोंकी सभाओं और उनके सैर-सपाटे-का इन्तजाम कर सकते हैं। सफाईके सुधरे तरीके लागू करनेकी सम्भावनाओंका पता लगाया जाये और जहाँ सम्भव हो वहाँ श्रीयुत हीरालाल शाहकी योजनापर अमल किया जाये। अगर लोग इतना-सा भार उठानेको खुशी-खुशी तैयार हों तो यह काम न कठिन है और न व्ययसाध्य। अन्तमें, इससे समाजको स्वास्थ्य और सम्पत्ति दोनोंका लाभ होगा।

५ हरिजन-दिवसका समापन सवर्णों और हरिजनोंकी आम सभाओंका आयोजन करके करना चाहिए। सभाओंमें प्रस्ताव पास किये जायें, जिनमें उपस्थित लोगोंको

अस्पृश्यता-निवारणके लिए प्रतिज्ञाबद्ध किया जाये और मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें अनु-ज्ञात्मक (परमिसिव) कानून बनानेकी वाछनीयतापर जोर दिया जाये।

६. जहाँ जनमत अनुकूल हो वहाँ हरिजनोको सार्वजनिक कुओंका उपयोग करने और निजी मन्दिरोमें जानेकी छूट दिलाई जाये।

जो काम किया जाये उसका ठीक-ठीक विवरण केन्द्रीय समितिको भेजा जाये और सम्भव हो तो, प्रकाशनमें विलम्ब होनेसे बचनेके लिए एक प्रति मुझे भी भेज दी जाये। प्रेस-सन्देश भेजनेके लिए शुल्ककी जो दरें हैं उन दरोंपर सम्पादकके नाम प्रेस-सन्देश भेजे जा सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १५-४-१९३३

४७१. प्रकट चिन्तन

मुझे और चार्ल्स फ्रीअर एन्ड्र्यूजको प्रकट चिन्तन करनेकी आदत है। उनके पत्रोंमें से एक नमूना नीचे दे रहा हूँ

> साथमें . . .का[1] पत्र भेज रहा हूँ, क्योंकि 'आमरण अनशन'को यहाँ लोग नैतिक दृष्टिसे कितना हेय मानते हैं, इसका भान आपको नहीं होगा। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि ईसाईके नाते उसके प्रति मैं भी ऐसी ही भावना रखता हूँ और किसी भी हालतमें इसका औचित्य सिद्ध करना मुझपर अत्यन्त कठिन गुजरता है। पिछले वर्ष जब इसके अलावा सारे रास्ते बन्द नजर आते थे तब उस लाचारीकी स्थितिमें मैं इसका कायल हो गया था, लेकिन तब भी मेरा मन व्यथित था। मैं यह भी जानता हूँ कि ईश्वरकी इच्छा यदि बहुत विचित्र रूपमें सामने आये तो भी मुझे उसको स्वीकार कर ही लेना चाहिए। मुझे यह भी मालूम है कि अतीतमें हिन्दू धर्ममें इसका स्थान रहा है और मुझे यह समझनेकी कोशिश करनी है कि किसी हिन्दूके लिए इसका ठीक-ठीक क्या महत्त्व है। इन बातोंको साफ-साफ समझनेके लिए मैं कठिन प्रयास कर रहा हूँ। लेकिन अबतक मुझे यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया है।
>
> मुझे लगा कि अभी निकट भविष्यमें तो ऐसे अनशनकी कोई सम्भावना नहीं है, इसलिए यह सब आपको अभी ही बता देना ठीक है। इस बीच मैं सारे विषयको गहराईसे समझनेकी कोशिश कर रहा हूँ। यहाँ मैंने आपके पिछले उपवासका बचाव बार-बार किया है और लोगोंको उसके परिणाम समझाते हुए यह बताया है कि गुरुदेवकी-सी संवेदनशील अन्तरात्मावाले व्यक्ति को भी उसमें केवल महान् और उदात्त तत्त्व ही दिखाई दिये लेकिन अपने

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।

देशको स्वतन्त्र करानेमें अंग्रेजोंका, जिन्हें आप स्नेह और सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं, साथ प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उनका हृदय परिवर्तन करनेके लिए आप स्वयं जो महान् प्रयत्न कर रहे हैं (और जिसका मर्म लोगोंको समझानेकी हम भरसक कोशिश कर रहे हैं), उसके सम्बन्धमें सचाई यह है कि :

१. अस्पृश्यता-निवारणके प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त करना आसान है। उनके हृदय सचमुच द्रवित हैं।

२. लेकिन आमरण अनशन करके आत्महत्या करनेके विचारके प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त करना आसान नहीं है। उनके मनमें इसके प्रति बहुत ही तीव्र घृणा और जुगुप्साका भाव है और ऐसी किसी बातकी आशंका-मात्रसे उनकी अन्तरात्मा जागरूक होनेके बजाय सर्वथा जड़ हो जाती है।

मैं जानता हूँ कि यह सब यदि मैं आपको पहले ही नहीं बता चुका हूँ तो अवश्य ही आप चाहेंगे कि अब बता दूँ; क्योंकि अभी तत्काल अनशनका कोई प्रश्न खड़ा नहीं है, इसलिए मैं शान्त मनसे लिख सकता हूँ।

इस पत्रको मैं इसलिए प्रकाशित कर रहा हूँ कि यह खुले उत्तरकी अपेक्षा रखता है। हिन्दू धर्मकी शुद्धिको मैं एक तरहसे सारे मानव-परिवारकी शुद्धि मानता हूँ और यह बात बिलकुल सही है कि इस अत्यन्त कठिन और आवश्यक कार्यमे मैं ससारके सभी हिस्सोसे जो तनिक-सी भी सच्ची सहानुभूति मिल सकती है उसे प्राप्त करना चाहता हूँ।

धार्मिक उद्दश्योसे अनशन और विशेषकर 'आमरण अनशन' के प्रति अग्रेजोके घृणाभावसे मैं परिचित हूँ। मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि मैंने बडे दुखी मनसे यह देखा है कि जिस उपवासके प्रति दीनबन्धु एन्ड्रयूजने जैसे-तैसे अपना मन मना लिया, भारतमे उसके भी कुछ बुरे परिणाम सामने आये हैं। उस समय हिन्दू लोग जोशमे थे और उस अवस्थामे उन्होने बहुत-से ऐसे काम किये जिन्हे बादमे जोश ठडा पडनेपर मिटा दिया। उपवासके दौरान उन्होने बडी उदारतासे हरिजनोको मन्दिरो और कुओके उपयोगका अधिकार दिया। लेकिन, उपवास समाप्त होनेके शीघ्र बाद ही इनमे से कुछका उपयोग उनके लिए पुन वर्जित कर दिया गया। बगालमे शिक्षित सवर्ण हिन्दुओमे ऐसे लोगोकी एक अच्छी-खासी तादाद है जो सच्चे हृदयसे मानते है कि उपवासके कारण जो जोश-जनून पैदा हुआ उसकी रौ मे बहकर हरिजनोको विधान सभाओमे स्थान देनेके सम्बन्धमे बगालके साथ बहुत बडा *अन्याय* किया गया। मुझे यह भी मालूम है कि कुछ अन्य प्रान्तोमे भी यरवडा समझौतेको मेरे उपवासके दबावके कारण ही स्वीकार किया गया। यह सब बहुत बुरा हुआ। उपवास शुरू करते समय मैंने वास्तवमे इन बातोकी कल्पना नही की थी। लेकिन, मुझे उपवास करनेपर पश्चत्ताप भी नही है। अव्वल तो उपवास मैंने अपनी ही इच्छासे नही किया। दूसरे, यद्यपि उपयुक्त कार्य उपवासके दबावमे किये गये, किन्तु वे अपने-आपमे बुरे नही थे। अगर वे बुरे होते तो उन्हे मिटानेके लिए मैं जमीन-आसमान एक कर देता।

लेकिन इस समय मुझे उपवासके परिणामोपर नही, बल्कि दैवी विधानके एक अनिवार्य अगके रूपमे स्वय उपवासपर विचार करना है। यदि यह सचमुच उसका अग है तो जब-कभी उपवास किया जाये, हर बार लोगोको इसका औचित्य समझानेकी जरूरत नही होनी चाहिए।

यद्यपि सनातनी लोग उपवासको लेकर मुझे खूब कोसते है और हिन्दू सह-कार्यकर्ता भी शायद इसपर दुखी होते है, किन्तु वे जानते है कि उपवास आज भी हिन्दू धर्मका एक अभिन्न अग है। वे इस चीजसे व्यथित होनेका ढोग ज्यादा दिनो तक नही कर सकते। हिन्दू धर्म-ग्रन्थ उपवासके दृष्टान्तोसे भरे पडे है, और आज भी हजारो हिन्दू छोटे-छोटे कारण उपस्थित होनेपर भी उपवास करते है। यह ऐसी चीज है जो कमसे-कम नुकसान पहुँचाती है। इसमे सन्देह नही कि हर अच्छी चीजकी तरह उपवासका भी दुरुपयोग किया जाता है। यह अनिवार्य है। अच्छाईके नामपर कभी-कभी बुराई भी की जाती है, इसीलिए अच्छा काम करना छोडा तो नही जा सकता।

मेरी असली कठिनाई तो उन ईसाई प्रोटेस्टेट मित्रोके सम्बन्धमे है जिनकी सख्या अच्छी-खासी है और जिनकी मित्रता मेरे लिए अपरिमित महत्त्व रखती है। मै उनके सामने यह स्वीकार करता हूँ कि उपवास उन्हे नापसन्द है, यह बात यद्यपि मै उनके साथ अपना प्रथम सम्पर्क होनेके समयसे ही जानता हूँ, किन्तु यह नही समझ पाया हूँ कि ऐसा क्यो है।

देह-दमनको संसारमे सर्वत्र आध्यात्मिक प्रगतिकी शर्त माना गया है। उपवासका जो व्यापकतम अर्थ है, उस अर्थमे उसके बिना प्रार्थना हो ही नही सकती। सम्पूर्ण उपवासका मतलब अपने दैहिक अहका पूरा-पूरा त्याग है। यह सबसे सच्ची प्रार्थना है। "मेरा जीवन ले लो और इसे सदा अपनी सेवामे नियोजित करो", यह सिर्फ ओठोसे बुदबुदाई जानेवाली या आलकारिक उक्ति नही है और न होनी चाहिए। इसे तो कहीसे तनिक भी सकोच किये बिना निर्द्वन्द्व और हर्षोल्लसित समर्पण होना चाहिए। भोजन, बल्कि जलका भी त्याग, इसका प्रारम्भ-मात्र है, इस समर्पणका तुच्छतम अश है।

जब मै इस लेखको लिखनेके लिए अपने विचार सजो रहा था, ईसाइयोकी लिखी एक पुस्तिका मेरे हाथ लगी। उसमे 'कथनीके बजाय करनी' पर एक परिच्छेद था। इसमे 'जोना'के तीसरे अध्यायमे से एक उद्धरण दिया गया है। पैगम्बरने यह भविष्यवाणी की थी कि महानगर निनवेमे उनके प्रवेशके चालीसवे दिन वह नगर ध्वस्त हो जायेगा।

> निदान ईश्वरमें निनवेवासियोंका विश्वास जमा। उन्होंने उपवासकी घोषणा की और बड़े-से-बड़े और छोटे-से छोटे सभीने टाटके कपड़े पहन लिये। कारण, निनवेके राजाको दिव्य वाणी सुनाई दी, और वह सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ, उसने राजसी पोशाक उतारकर टाटके कपड़े पहने और धूलमें बैठ गया। और उसने राजा तथा अमीर-उमरोंके नाम यह फरमान जारी किया कि "न मनुष्य

और न पशु, और न ढोर-डंगर या भेड़-बकरियाँ ही किसी चीजको मुँहसे लगायें; वे सब न कुछ खायें और न पियें। इसके बजाय मनुष्य और पशु सभी टाटके कपड़े धारण करें और पूरी शक्तिसे ईश्वरसे यह विनती करें: प्रभो, तुम सबको बुराईके मार्गसे विमुख करो और जिसके हाथमें जो हिंसा करनेकी शक्ति हो उसे उसका त्याग करनेको कहो। क्या पता कि ईश्वर अपना कदम वापस न ले ले, वह अपने कियेपर पछताने न लगे और अपना यह प्रचण्ड क्रोध त्याग न दे, जिससे हम सब विनाशसे बच जायें!" और ईश्वरने उनके कार्योंको देखा, उसने देखा कि उन्होंने कुमार्गका त्याग कर दिया है; और ईश्वरने उनको जो हानि पहुँचानेकी बात कही थी उसपर उसे खेद हुआ और उसने उनका कोई बुरा नहीं किया।

इस प्रकार यह 'आमरण अनशन' ही था। किन्तु प्रत्येक आमरण अनशन आत्महत्या ही नही होता। निनवेके राजा और निवासियोका यह उपवास अपने त्राणके लिए अत्यन्त विनयपूर्वक की गई महान् प्रार्थना था। या तो उन्हे त्राण मिलना था या मृत्यु। यदि मेरे उपवासकी तुलना 'बाइबिल'मे आये उपवासके दृष्टान्तोसे करना अनुचित न हो तो मैं कहूँगा कि मेरा उपवास भी ऐसा ही था। 'जोना'का यह अध्याय 'रामायण'की किसी घटना-जैसा लगता है।

मित्रगण मेरी बुनियादी स्थितिको जान ले, यह उचित ही है। व्यक्तिगत और सार्वजनिक तौरपर किये गये उपवासमे भी मेरा गहरा विश्वास है। फिर किसी दिन उसका प्रसंग आ सकता है और इस तरह कि उसका पूर्वाभास मुझे भी न हो। यदि यह प्रसग आता है तो एक सौभाग्य और आनन्दके विषयकी तरह मैं उसका स्वागत करूँगा।

अस्पृश्यता बहुत बड़ा पाप है। कदाचित् वह बहुत-से सेवकोके खूनके बिना धुल न सके। लेकिन उन्हे इसका उपयुक्त साधन बनना पडेगा। यदि मैं इस बलि-दानके योग्य पाया गया तो यह अवसर मुझे प्राप्त होगा। यदि वह अवसर आता है तो मैं तो यह चाहूँगा कि मेरे मित्र इसपर खुशी मनाये। उन्हे इसके प्रति न कोई विकर्षण होना चाहिए और न इससे घबराना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-४-१९३३

४७२. एक कार्यकर्ताकी अधीरता

एक उत्साही किन्तु अधीर कार्यकर्ता मन्दिरो तथा अन्य सार्वजनिक स्थानोको हरिजनोके लिए खुलवानेकी कोशिश करते रहे है। उन्हे थोडी-बहुत सफलता मिली है, पर कोई गर्व करने लायक नही। अत अधीर होकर वह भाई लिखते है

> **यह कार्य सनातनी लोग प्रारम्भ करेंगे, इस बातकी प्रतीक्षा करते रहनेसे कोई लाभ नहीं। जबतक उनको विवश नहीं किया जायेगा तबतक वे कुछ नहीं करेंगे। अस्पृश्यताको मिटानेके लिए कड़े कदम उठानेकी आवश्यकता है। इसलिए आप इस सम्बन्धमें अपना विचार बतानेकी कृपा करें कि यदि मन्दिरोके प्रवेश-द्वारोंपर हरिजन लोग सत्याग्रह करें और सनातनियोंको मन्दिरोंमें प्रवेश न करने दें तो क्या यह उपाय कारगर सिद्ध होगा। अनुनय-विनयका तो अबतक कोई असर नहीं हुआ है, और मेरी तुच्छ रायमें, इस सबपर अब और समय लगाना कीमती समयको व्यर्थ गँवाना ही होगा।**

इस तरह रास्ता रोकना तो पूरी जबरदस्ती ही होगी। लेकिन धर्म अथवा अन्य किसी सुधारमे तो जरा भी बल-प्रयोग नही होना चाहिए। अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन तो आत्मशुद्धिका आन्दोलन है। किसी भी व्यक्तिको उसकी इच्छाके विरुद्ध हम शुद्ध नही कर सकते। इसीलिए सनातनियोके प्रति, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, किसी भी प्रकारसे बल-प्रयोग नही होना चाहिए। हमे ध्यान रखना चाहिए कि अस्पृश्यता-निवारणकी आवश्यकता स्वीकार करनेसे पहले हममे से बहुत-से लोग सनातनियो-जैसे ही थे। उस समय यदि कोई मन्दिरमे जानेसे हमे रोकता तो क्या हमे अच्छा लगता? उन दिनो तो हमारा भी ऐसा ही खयाल था कि हरिजनोको मन्दिरोमे नही घुसने देना चाहिए, पर अपना वही विचार आज हमे गलत मालूम होता है। अत हमे सनातनियोका मन्दिरमे जानेका रास्ता नही रोकना चाहिए।

पत्र लिखनेवाले भाईको मुझे यह भी याद दिला देना चाहिए कि 'सत्याग्रह' शब्दका अकसर बिना विचारे ही प्रयोग किया जाता है, और उसमे छिपी हुई हिंसाका भी समावेश रहता है। पर इस 'सत्याग्रह' शब्दके निर्माताकी हैसियतसे मै यह कहना चाहूँगा कि इसमे प्रत्यक्ष या परोक्ष, गुप्त या प्रकट, अथवा मनसा, वाचा या कर्मणा, किसी भी प्रकारकी हिंसाकी गुंजाइश नही है। विरोधीका बुरा चाहना या उसका दिल दुखानेके इरादेसे उसे या उसके प्रति कठोर वचन कहना सत्याग्रहकी मर्यादाका उल्लघन है। क्षणिक आवेशमे आकर शारीरिक हिंसा करना और दूसरे ही क्षण उसके लिए पछताना और फिर विगतको भूल जाना, इसकी अपेक्षा बुरा विचार अथवा कटु-वचन सत्याग्रहके सदर्भमे कही अधिक खतरनाक हो सकता है।

सत्याग्रह बहुत कोमल वस्तु है, वह कभी किसीको चोट नही पहुँचाता। क्रोध या द्वेषसे प्रेरित होकर सत्याग्रह नही करना चाहिए। उसमे छोटी-मोटी बातोको कभी तूल नही दिया जाता, अधीरतासे काम नही लिया जाता, व्यर्थका शोरगुल नही मचाया जाता। यह जबरदस्तीकी ठीक उलटी चीज है। इसकी परिकल्पना हर तरहसे हिंसाका स्थान लेनेके लिए की गई थी।

फिर भी, "अस्पृश्यताको मिटानेके लिए कडे कदम उठानेकी आवश्यकता है", पत्र-लेखकके इस कथनसे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। पर ये कदम तो हमे अपने ही विरुद्ध उठाने है। सनातनी सच्चे दिलसे मानते हैं, जिस अस्पृश्यताका वे पालन करते है वह शास्त्रोक्त है, और यदि उसे मिटा दिया गया तो उनपर तथा हिन्दू धर्मपर भारी सकट आ जायेगा। उनके इस विश्वासका निराकरण हम कैसे कर सकते है? यह तो स्पष्ट ही है कि उन्हे हरिजनोको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार देनेको मजबूर करनेसे भी उनका विश्वास बदल नही सकता। हरिजनोको मन्दिरोमे प्रवेश करनेकी छूट दिलाना उतना जरूरी नही है जितना कि सनातनियोका हृदय-परिवर्तन करके उनमे यह विश्वास पैदा करना है कि हरिजनोको मन्दिर-प्रवेश से रोकना गलत है। यह हृदय-परिवर्तन उनके हृदयको द्रवित करके, अर्थात् उनके अन्दर जो-कुछ श्रेष्ठतम है उसे जागरूक और क्रियाशील बनाकर ही किया जा सकता है। उनके हृदयको द्रवित करनेका उपाय यह है कि हम प्रार्थना करे, उपवास करे, व्यक्तिगत ढगके अन्य कष्ट सहे अर्थात् अपनेको सतत अधिकाधिक पवित्र बनाये। इस उपायको अबतक कभी भी विफल होते नही देखा गया है। कारण, स्वय यह साधन ही अपनी सिद्धि है। सुधारकको अपने हेतुकी सचाईका बोध होना चाहिए। फिर वह अपने विरोधीके प्रति अधीरता नही बरतेगा, इसके बजाय खुद अपने प्रति अधीरतासे काम लेगा। उसे अनशन द्वारा मरनेके लिए भी तैयार रहना चाहिए। पर इसका अधिकार हर किसीको नही है। सबमे यह करनेकी शक्ति भी नही होती। ईश्वरकी कसौटी अत्यन्त कडी होती है। वह अपने भक्तोसे नम्रताकी आशा रखता है। यह सम्भव है कि उपवास भी जबरदस्तीका रूप ले ले। पर इस ससारमे ऐसी कोई चीज नही है जिसका मनुष्यके हाथो दुरुपयोग न हो सके। मनुष्य अच्छाई और बुराईका मिश्रण है। उसमे राम और रावण दोनोका ही वास है। पर जहाँ कष्ट-सहनकी बात आती है, वहाँ दुरुपयोगकी सम्भावना कमसे-कम रहती है।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, १५-४-१९३३

४७३. डेविड योजनाके लिए ५,००० रुपये

पाठकोको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि सेठ रामनारायणजी की विधवा श्रीमती सुव्रतादेवीने डेविड योजनाके लिए २,५०० रुपयेका एक चेक भेजा है। उनकी इच्छा है कि अगर राजपूतानाका कोई ऐसा हरिजन विद्यार्थी मिले जिसमे आवश्यक योग्यताएँ हो तो उसे प्राथमिकता दी जाये।

२,५०० रुपयेका एक और चेक सेठ जमनालालजी की पत्नी श्रीमती जानकीदेवीसे प्राप्त हुआ है। उनकी इच्छा है कि मराठी-भाषी मध्य प्रान्तके हरिजन विद्यार्थीको प्राथमिकता दी जाये और वहाँसे कोई अपेक्षित योग्यतावाला विद्यार्थी न मिले तो हिन्दुस्तानी-भाषी मध्य प्रान्तवाले को प्रमुखता दी जाये।

दान देनेवाली बहनोको मै बधाई देता हू और आशा करता हूँ कि उनके दृष्टान्तका अनुकरण अन्य सम्पन्न लोग भी करेगे।[1]

यह भी सूचित कर दूँ कि एक चुनाव बोर्डके गठनके सिलसिलेमे कार्यवाही चल रही है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-४-१९३३

४७४. पत्र : वी० एस० आर० शास्त्रीको

१५ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिलते ही उसे मै बहुत सावधानीसे पढ गया। आप मेरी इस बातका भरोसा कीजिए कि कोई कर सके तो मै कायल होना चाहता हूँ। इस दुनियामे सत्यके अन्वेषणके अलावा मेरा और कोई स्वार्थ नही है। आप अपनी या कह लीजिए, सनातनियोकी व्याख्यापर आग्रह कर रहे है और उसपर आपको पूरा भरोसा है। यह बात बिलकुल स्वाभाविक है। दूसरे लोगोको भी, जिनकी विद्वत्तामें मुझे तनिक भी शका नही है, अपनी व्याख्यापर ऐसा ही भरोसा है। उनके बारेमें यह कहकर कि वे तो मुझे खुश करनेके लिए वैसा करते है, आप उनके साथ अन्याय कर रहे हैं। मै तो आपको वही बता सकता हूँ जो मै जानता हूँ और जिसे केवल मै ही जान सकता हूँ। वह यह है. वे स्वतन्त्र चेता लोग है। वे जाने-माने विद्वान् है, उनका अपना एक चरित्र है, जिसकी रक्षा करनेकी उन्हे फिक्र है। और बहुत वर्षोतक विदेशोमे रहनेके बाद जब मै भारत लौटा, उससे पहले ही उनमे से बहुतोको

१. देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", १०-४-१९३३ भी।

शास्त्रोके अधिकारी विद्वानोके रूपमे मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। मुझे तो शास्त्रोके मूल पाठ और अनुवादोके अध्ययनके आधारपर उनके सम्बन्धमे प्राप्त अपने ज्ञानके अनुसार इन्ही दो व्याख्याओमे से किसी एकको चुनना है।

आपने विभिन्न विचारधाराओके पण्डितोकी एक बैठक बुलानेका सुझाव दिया है। शायद आपको मालूम नही है कि ऐसी एक बैठक मै करा चुका हूँ। उनके तर्कोंको मैंने अत्यन्त धैर्य और आदरके साथ सुना। सत्यको जाननेके अपने कार्यमें मै मनमे कोई पूर्वग्रह रखे बिना, खुले दिमागसे प्रवृत्त हुआ। मै अस्पृश्यताका विरोध इसलिए करता हूँ कि इसे मै बहुत बडा पाखण्ड मानता हूँ। अगर कोई मुझे इस बातकी प्रतीति करा दे कि यह बहुत बडा सत्य है तो मै अपनी भूलपर पश्चात्ताप करूँगा और अस्पृश्यतामे पूरी आस्था रखूंगा। इससे ज्यादा मै कुछ नही कह सकता।

लेकिन अन्तमें मुझसे आपने जो एक बहुत ही स्पष्ट-सा प्रश्न पूछा है, उसका उत्तर दे देना चाहिए। ईश्वरमे विलीन होनेपर ही सब-कुछ मिलकर एक हो जाता है। तब न गुण रह जाता है, न दुर्गुण, न अच्छाई रह जाती है, न बुराई, न पाप, न पुण्य; न सुख और न दु:ख; और अगर कहना चाहिए तो न सत्य और न असत्य ही। वह तो परिभाषातीत है। लेकिन जबतक मै यह शरीर धारण किये हुए हूँ तबतक तो मै द्वैतका अनुभव करता ही रहूँगा। द्वैतका लोप तो मानसिक बोधके रूपमे मेरी कल्पनाकी ही वस्तु हो सकती है। अगर कोई इसके विपरीत बात कहता है तो मुझे उसकी बातपर शका करनेका अधिकार नही होगा और मै उसकी तुलनामे अपनी स्थितिकी हीनता खुशी-खुशी स्वीकार कर लूंगा। लेकिन, उस हीनताके बारेमे सोचकर मुझे कोई परेशानी नही होगी। क्योकि इस सम्बन्धमे मेरी स्थिति, सत्यको जिस रूपमे मै देखता हूँ, उसके अनुसार ही होगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९४८) से।

४७५. पत्र: मणिलाल गांधीको

१५ अप्रैल, १९३३

चि० मणिलाल,

तेरी दो चिट्ठियोके जवाब देने है। पिछले पत्रका जवाब देना चाहता था पर नही दे पाया।

प्रागजी बम्बई आ पहुँचे है, यह सुना तो है पर उनकी ओरसे अभी कोई समाचार नही आया।

तूने नारणदासको प्रेसके कुछ सामानका पैसा भर देनेके लिए लिखा है। लेकिन यह कैसे हो सकता है?[1] ट्रस्टके पैसेका यह उपयोग तो अनुचित ही माना जायेगा।

१. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", १४-४-१९३३।

नारणदास निजी तौरपर कोई व्यवस्था कर सके तो अलग बात है। तुझे इस तरहके सम्बन्ध सीधे व्यापारियोंसे ही बनाने चाहिए अथवा माल वहाँके व्यापारियोंकी मार्फत मँगवाना चाहिए या फिर पैसा पहलेसे भेजना चाहिए। मैं तेरी कठिनाई समझता हूँ। किन्तु उसका जो भी हल ढूँढा जाये वह अनुचित तो नहीं होना चाहिए। अन्यथा किसी दिन हम निन्दाके पात्र ठहरेंगे। हमें अपनी चादरके अनुसार ही अपने पाँव फैलाने चाहिए। अपने पाँव सिकोड़कर सोना अच्छा है लेकिन किसी दूसरेसे ओढ़ना नहीं लेना चाहिए।

वहाँ बुखारका जो प्रकोप हुआ था, आशा है, उसमें सकुशल निकल आये होगे।

पथ्थर आदि जो लोग वहाँ हवा बदलनेके लिए आते हैं अपना खर्च आप उठाते हैं या वह तुझे उठाना पड़ता है। वह तेरे ऊपर पड़ता हो और तू इस बोझको उठा सकता हो तो बहुत अच्छा है किन्तु यदि न उठा सकता हो तो तुझे नम्रता-पूर्वक कह देना चाहिए कि सबको अपना-अपना खर्च स्वयं भरना पड़ेगा। झूठी प्रतिष्ठाके खयालमें अपने वशके बाहर कुछ भी करना अधर्म समझना। हम जैसे हों हमें वैसे ही दिखना चाहिए।

छापाखाना शहरमें ले जानेकी तेरी माँग तो बिलकुल अच्छी नहीं। उसका अर्थ यह होगा कि मेरे सारे आदर्श गलत हैं या तेरा उनमें विश्वास नहीं है या यह कि तुझमें उनका पालन करनेकी शक्ति नहीं है। इनमें से जो भी कारण हो तुझे उस हालतमें ट्रस्टी तो नहीं होना चाहिए और फीनिक्स छोड़ देना चाहिए। तू यह भूल गया मालूम होता है कि कितना कष्ट उठाकर और कितने उत्साहसे मैंने अपना शहरका डेरा नाबूद करके फीनिक्स बसाया था। फीनिक्समें ही तू बड़ा हुआ, वहीं तूने प्रायश्चित्त किया था, सीताका जन्म वहीं हुआ और फिर फीनिक्समें ही तूने स्वतन्त्र जीवनका आरम्भ किया। यह सब भूलकर एक क्षणमें तू उसका उच्छेद करनेके निर्णयपर आ गया, यह कैसी अस्थिरता और दयनीय स्थिति है।

तूने एक गलती की और मैंने उसमें तेरा साथ दिया। वेस्टने इसके लिए मुझे उलाहना दिया। उनका वह उलाहना कुछ हदतक सही ही था। अखबारमें विज्ञापन लेने लगनेकी तेरी यह गलती मुझे अच्छी तो नहीं लगी थी। किन्तु मेरी यह कहनेकी हिम्मत नहीं हुई कि 'इंडियन ओपिनियन' बन्द करना हो तो कर दो। खैर, अब तू और न गिर और अपने साथ मुझे मत गिरा। मैं तो अब नहीं गिरूँगा। यदि तू फीनिक्समें योगारूढ़ होकर नहीं बैठ सकता और उसके मान्य आदर्शोंका पालन नहीं कर सकता तो तुझे अपना काम समेट लेना चाहिए। या फिर फीनिक्स की रक्षाके लिए तुझे और सुशीलाको कष्ट उठानेका व्रत लेना चाहिए। मैं तो तुझसे यह चाहता हूँ कि तू लाचार होकर फीनिक्स बन्द करे उससे ज्यादा अच्छा यह होगा कि तू ट्रस्टियोंको अपना त्यागपत्र दे दे और फिर तेरे मनमें जो आये सो कर। तू निष्कलंक रहकर फीनिक्स छोड़ दे, यह मुझे अच्छा लगेगा। उसका मुझे दुःख नहीं होगा। किन्तु यदि तुझे वहाँसे कलंकित होकर निकलना पड़ा तो इससे मुझे गहरी चोट लगेगी। याद रख कि तू अभी-अभी एक सार्वजनिक संस्थासे दस हजार रुपये

लेकर गया है। भूतकालको भूल जा। नीदसे जाग। तेरे मनमें एक विचार आया और मैंने उसीको पकडकर इतना सब लिख दिया, ऐसा सोचकर तू दु:खी मत होना। इस विचारसे तेरी मनोदशा सूचित होती है। तेरे मनका यह रुख खतरनाक है, इसीलिए मै तुझे सावधान कर रहा हूँ।

एक ओर मिस श्लेसिन तेरे विषयमे सुन्दर सपने देख रही है और दूसरी ओर तेरी दृष्टि डर्बनकी जूठनपर है। तुझमे इतनी ऐंठ तो होनी ही चाहिए कि तू अपने पितासे प्राप्त विरासतको यदि और चमका न सके तो कमसे-कम बरबाद न करे। फीनिक्सके क्या आदर्श है, यह तो तू जानता है या उन्हे भी भूल गया? एक बार उन्हे फिर पढ लेना।

मिस श्लेसिनका सुझाव है तो बहुत अच्छा किन्तु मुझे लगता है कि उसे करना तेरे वशका नही है। अमरीकाकी यात्राका खर्च कैलेनबैक नही देंगे और किसी दूसरी जगहसे वह मिल नही सकता। और इस बीच 'इ० ओ०'का चलाया जा सकना मै असम्भव नही तो कठिन अवश्य मानता हूँ। तू अमरीका जाये और वहाँसे तालीम लेकर आये तो भी मुझे ऐसा नही लगता कि अनेक जातियोके बीमार लोग वहाँ अपना नैसर्गिक उपचार कराने आयेंगे। तथापि तुझे आत्मविश्वास हो और यह सब योजनाके अनुसार होना शक्य जान पडता हो तो मुझे अच्छा ही लगेगा, क्योकि उसमे हेतु शुभ है।

आशा है सीताकी तबीयत अब बिलकुल ठीक हो गई होगी। बहुत सावधानीसे रहना।

यह पत्र दो-चार बार पढकर अपनी दिशाका निश्चय करना। इतने प्रश्नोपर विचार करना

१. तुम दोनोका ध्येय क्या है?

२. फीनिक्सके आदर्शका पालन करना है या नही? उसके लिए अपनेमे आवश्यक शक्ति महसूस करता है?

३ 'इंडियन ओपिनियन' स्वावलम्बी हो सकता है या नही?

इतना तो निश्चयपूर्वक समझ ले कि फीनिक्सके आदर्शोका त्याग करके फीनिक्स नही चलाना है। 'इ० ओ०' को फीनिक्ससे नही हटाना है।

यह पत्र मैंने तुझे डॉटनेके लिए नही, तुम दोनोको जगानेके लिए ही लिखा है। अनिश्चय बुरी चीज है।

हम लोग सब प्रसन्न हैं। यह पत्र बहुत लम्बा हो गया है और अब मेरे पास समय भी नही है। इसलिए यहाँके समाचार नही लिखता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०६)से।

४७६. पत्र : सुशीलाबहन गांधीको

१५ अप्रैल, १९३३

चि० सुशीला,

मणिलालको लिखा पत्र[1] तुम दोनोके लिए है, इसलिए इस पत्रमे ज्यादा क्या लिखूं?

सीताको डाँटे-फटकारे और पीटे बिना, हँसते-खेलते जितना सिखा सको, उतना ही सिखाओ। तुम दोनो उसे जो सिखाओगे उसमे से वह बहुत-थोड़ा सीखेगी। तुम जो करोगे, उसकी नकल वह अवश्य करेगी।

रामदास अभी नही छूटा है। मईके आरम्भमे छूट जायेगा।

मेरी खुराकमे केवल इतना हेरफेर हुआ है कि मैं रोटी और सब्जी नही लेता फल और दूधसे काम चलता है। दूधको गरम नही करता। हाथमे बराबर दर्द है, पर यह बुढ़ापेकी निशानी लगती है।

बा के पत्र आते रहते है। वह ठीक है। काम तो मेरे पास बहुत है ही। रोज तीन बजे उठ जाता हूँ। दिनमे सो लेता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०७) से।

४७७. पत्र : क० मा० मुंशीको

१५ अप्रैल, १९३३

भाई मुंशी,

ऐसा लगता है कि तुम दोनोने बारी-बारीसे पत्र लिखनेका निर्णय किया है।

जो गुजराती नर्मदाशंकरको[2] नही जानता उसे गुजराती कैसे माना जा सकता है? मुझे तो उनका परिचय बचपनमे ही हो गया था। "सहु चलो जीतवा जग ब्युगलो वागे"—बिगुल बज रहा है, सब लोग लड़ाई जीतने चलो, यह कविता गाते-गाते मै कभी थकता ही नही था। उस समय जो तान छेड़ी थी वह आफ्रिकामें पक्की हुई। तबतक 'गीता'का पुजारी तो मैं बन ही चुका था। किन्तु नर्मदाशंकर द्वारा लिखित 'गीता'के अनुवादकी प्रस्तावनाने 'गीता' माताके प्रति मेरी भक्तिको दृढ़ बना दिया तथा नर्मदाशंकरके प्रति मेरा आदर बढ़ गया। मुझे दुख इसी बातका है कि अपनी अनेक प्रवृत्तियोके कारण मैं नर्मदाशंकर-जैसे लेखक और कविसे उतना परिचित न हो सका जितना कि मैं होना चाहता था।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. (१८३३-८८); एक गुजराती कवि।

आशा है फिलहाल तुम मुझसे इससे अधिक की अपेक्षा नही करोगे। इतना भी सुबह-सुबह तीन बजे उठकर लिख पाया हूँ।

हरिजनोकी खातिर जीनेका व्रत निबाहना कठिन कार्य है, उनकी खातिर मरनेकी योग्यता पैदा कर पाना तो और भी कठिन है। सत्यनारायण हमसे इतना-कुछ चाहते है कि हमारी हिम्मत जवाब देने लगती है। उन्हे बिलकुल बेदाग भेड चाहिए, अच्छेसे-अच्छा कुम्हडा चाहिए। वे निष्पाप मनुष्यके सिर माँगते है। किन्तु हम कहाँसे लाये? किसी गन्दी बातका विचार मनमे उठा नही कि वह व्यक्ति अनुत्तीर्ण हुआ। फिर भी उन्हे छोडा नही जा सकता। लेकिन वह कवियोका कवि इतना ईर्ष्यालु है कि अन्य कवियोकी पूजा ही नही करने देता। इस दु:खका रोना कहाँ रोऊँ?

मै मानता हूँ कि तुम्हारा दर्द बिलकुल चला गया है।

आशा है जगदीश ठीक होता जा रहा होगा।

अब कवीबाई न्यासके[1] बारेमे।

इस न्यासके सभी कागज-पत्र मै पढ गया हूँ। मेरा विचार यह है कि 'हाई क्लास' (उच्च वर्गीय) माने जानेवाले हिन्दुओको पूरी सुविधाएँ प्राप्त होनेके बावजूद जहाँ गुंजाइश हो वहाँ हरिजनको लेनेमे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। इस न्यासमे हरिजनोका निषेध नही है। किन्तु यदि तुम सब वकील इसका यही अर्थ करो कि पाठशालाओमे 'उच्च वर्ण' के हिन्दू विद्यार्थी काफी तादादमे नही आयेगे, भले बेंचे या स्थान खाली ही क्यो न पड़े रहे किन्तु हरिजनोको स्थान नही मिलेगा तो फिर मेरे लिए कुछ कहनेको नही रह जाता।

इसके बाद केवल शिक्षाका प्रश्न रह जाता है। न्यासके धनका उपयोग किस प्रकारकी शिक्षामे किया जाये? यह विषय ऐसा नही है जिसपर पत्रो द्वारा चर्चा की जा सके। शिक्षा-सम्बन्धी अपने विचारोको मै थोडे-से लोगोके ही गले उतार पाया हूँ। एक ओर तो मुझे गोखलेकी कल्पनाके त्यागी शिक्षक चाहिए और दूसरी ओर शिक्षाकी ऐसी व्यवस्था कि जिसका लाभ मृतप्राय. ग्रामीण भी उठा सके। इस देशके लिए किसी अन्य देशका अनुकरण करना उचित नही जान पड़ता। इसलिए हमे शिक्षा-सम्बन्धी अपने स्वतन्त्र विचार और स्वतन्त्र योजना बनानी होगी। किन्तु फिलहाल तो यह मेरा मधुर-स्वप्न ही है। और इस बारेमे सोच-विचार करनेका तुम्हारे पास भी समय कहाँ है?

चीटीकी चालसे मै तुम्हारी पुस्तकोमे प्रवेश कर रहा हूँ। किन्तु मेरा अध्ययन चल रहा है। क्या तुमने अहमदाबादी ठिगने बैलोकी ठिगनी गाडी देखी है? इस बैलगाड़ीकी चाल आगाखाँके घुडदौडके घोडोंकी चालको मात करनेवाली होती है। उसी गतिसे सरदार तुम्हारी पुस्तके पढ रहे है। मै यह स्वीकार करता हूँ कि इस सबमे मेरा स्वार्थ है। तुम दोनोसे मुझे काफी सेवा लेनी है। जिनसे इतनी अधिक आशा रखी जाये क्या उन्हे पूरी तरह जान नही लेना चाहिए?

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ २१२।

इससे तुम समझ जाओगे कि हम लोग तुम्हारे बारेमे सोचते और बात करते ही रहते है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७५२८) से, सौजन्य क० मा० मुशी

४७८. भेंट : कीकाभाई और दूदाभाईसे[1]

[१६ अप्रैल, १९३३ या उसके पूर्व][2]

अगर हिन्दू समाज आप लोगोके साथ न्याय नही करता तो मै फिर आमरण अनशन करूँगा।[3] आप लोग शिक्षाके क्षेत्रमे पिछड़े हुए है, इसलिए आप ऐसे किसी स्कूलसे — सरकारी स्कूलसे भी — लाभ उठा सकते है जिसके द्वार आपके लिए खुले हुए हो।

कई विषयोपर लम्बी चर्चाके बाद अन्तमें गाधीजीने कहा कि आखिरकार अस्पृश्यता तो अब तेजीसे मिट रही है और बहुत जल्द ही वह अतीतकी चीज बनकर रह जायेगी।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-४-१९३३

४७९. दो उदाहरण

हरिजन सेवा सघके कडी इलाकेके प्रतिनिधि श्री छोटालाल पण्डित लिखते है[4]

इसी तरहका एक दूसरा पत्र भी है। उसके लेखक एक जनसेवक है किन्तु फिलहाल वे हरिजन-सेवाका कार्य नही कर रहे है। उनके पत्रसे निम्नलिखित अश दे रहा हूँ .[5]

१. अहमदाबादके हरिजन नेता।

२. अखबारमें छपी रिपोर्टमें तारीख १६ अप्रैल दी गई है।

३. भेंटकर्ताओंने गाधीजी को सुझाव दिया था कि वे फिर आमरण अनशन न करें, क्योंकि इससे हरिजन लोग अपयशके भागी बनते हैं।

४ और ५. पत्रोके अनुवाद यहाँ नहीं दिये जा रहे है। पहले पत्रके लेखकका कहना था कि कभी-कभी तो हरिजन-सेवकोंके कार्यके फलस्वरूप हरिजनोंके कष्ट और बढ़ जाते है। पत्र-लेखकने किसी शालामें यह देखा कि हरिजन विद्यार्थियोंको कक्षाके बाहर बरामदेमें बिठाया जाता है। वे शिक्षक और विद्यार्थियोंसे मिले और उन्हें हरिजन विद्यार्थियोंको कक्षाके भीतर बिठानेके लिए राजी कर लिया। गाँववालोंको खबर लगी तो उन्होंने इस सेवकको धमकाया, गाँवके हरिजनोंको धमकाया और उनसे वचन लिया कि वे भविष्यमें अपने बच्चोंको सवर्ण हिन्दू बालकोंकी पाठशालामें नहीं भेजेंगे, और जिस शिक्षककी कक्षामें यह सब हुआ था उससे जुर्माना वसूल किया गया।

दूसरे पत्रके लेखकका कहना था कि हरिजन सेवा संघके प्रयत्नोंके बावजूद अस्पृश्यता-निवारणकी दिशामें कोई ठोस काम नहीं हुआ है। लोगोंमें हृदय परिवर्तन देखनेमें नहीं आ रहा है।

मेरे पास गुजरातके जो अनेक पत्र आते रहते है, उनमे से मैंने इन दो पत्रोका साराश सिर्फ वानगीके रूपमे ऊपर दिया है। काठियावाड़का भी यही हाल है। श्रीमती विजयलक्ष्मीवहन काठियावाडका भ्रमण करके वापस जाते हुए मुझसे मिली थी। उन्होने अपने अनुभव सुनाये। उन्होने परिस्थितिका जो चित्र पेश किया उसमे भी काला पक्ष कम नही था। अपनी कार्य-कुशलतासे वह कुछ काम निकाल सकी सही, पर कठिनाइयोका पार नही था। इसलिए इन पत्रोको कोई अपवाद-रूप न समझे। 'हरिजनबन्धु' तो केवल गुजराती पाठक ही पढेगे इसलिए गुजरातके वाहर जो थोड़े-से गुजराती है उन्हे छोड़ दे तो वाकी लोग तो इन पत्रोमे जो विवरण दिया गया है उसे वास्तविक परिस्थितिकी तुलनामे सौम्य ही मानेगे।

लेकिन सारे वातावरणपर काली घन-घटा ही छाई हुई है, यह मै नही कहूँगा। बादलोकी काली घटाके साथ शुभ्र रजत-रेखा भी है — बल्कि रुपहरी रेखासे रहित बादल ईश्वरने वनाया ही नही। अन्धकारका अर्थ है प्रकाशका अभाव। अनन्त, स्वच्छ और रत्न-जटित आकाशमे वादलोका विस्तार कितना भी अधिक क्यो न हो आकाशकी तुलनामे तो वे मानो अणु जितने ही होते है। तथापि वे नीचे वसनेवाले छोटे-छोटे प्राणियोको तो परेशान कर ही सकते है — यही वात इस समय हरिजन-सेवाके विषयमे है। कटु अनुभवोके काले वादल हरिजन सेवकोको हताश कर रहे है, ऐसा प्रतीत होता है; किन्तु

> सब देवोंपर भीर पड़ी जब
> उन्होने सुमिरा अन्तार्यामीको,
> मुक्ति हेतु दौड़े गिरिधर
> मेहता नरसैयाके स्वामी।

यह भी एक अनुभव-वचन है। इस भजनके पाठक यह तो समझ ही लेगे कि कविने यह बात कविताके प्रवाहमे यो ही नही कह दी। उसे यह कहना ही था। यह अनुभव केवल नरसिंह मेहताका ही नही है, समस्त संसारके भक्तोका भी यही अनुभव है। इसी कारण तो भगवान्का एक नाम 'भीर भंजन' है। हमारा यह युद्ध धर्म-युद्ध है। मरणके साथ मुकावला है। इसलिए सबसे पहली वात तो यह है कि कोई भी हरिजन-सेवक 'निराशा' शब्दका उच्चारण न करे। वह तो निश्चयपूर्वक विश्वास कर ले कि अन्तमे भीर-भजन प्रभु सहायता करेगा ही।

पर हमारी यह श्रद्धा मन्द न होनी चाहिए, मूढ न होनी चाहिए। यह श्रद्धा तो एसी होनी चाहिए, जिससे प्रचण्ड शक्ति पैदा हो सके। जहाँ वडे-बड़े वुद्धिमानोकी वुद्धि काम नही करती, वहाँ एक श्रद्धावानकी श्रद्धा काम कर जाती है। दूसरोकी आँख जहाँ चकाचौधमे पड जाती है, वहाँ श्रद्धालुकी आँख स्पष्ट रूपसे दीपकवत् सव देख लेती है। श्रद्धालु कभी हारकर वैठ नही रहता। उसके वैठनेमे भी गति होती है। वह विश्रामके लिए वैठेगा तो भी उसका वैठना तीव्रगतिका सूचक होगा। उसके अनशनमे निराशाकी दर्दभरी आह न होगी। उसमे से तो जीवन-सचारी मन्त्र सुनाई देगा।

इसलिए मै तो सभी सेवक-सेविकाओसे विनयपूर्वक वरावर यही कहूँगा कि 'सनातनीपर क्रोध मत करना और डरे हुए हरिजनोको सताना मत — वे चाहे जैसा

व्यवहार करे।' आग लगी हो तो जो घर बचाया नही जा सकता वहाँ पानीका छिडकाव नही किया जाता। लेकिन जिधर आगकी लपट बढ रही हो, वही अधिक पानी छोडा जाता है। ऐसा करके हम उस बढती हुई अग्निको घेर लेते है और उसे कमजोर कर देते हैं। आगको तो खुराक चाहिए, उसके बिना वह जी नही सकती। इसलिए अडोस-पडोसका स्थान सुरक्षित हो जानेपर वह अपने-आप शान्त हो जाती है। तात्पर्य यह है कि जहाँ हरिजनोमे थोडी भी शक्ति हो, जहाँ वे सीधी सहायता लेनेके लिए तैयार हो, वहाँ उन्हे सीधे सहायता दे देनी चाहिए। जहाँ वे तैयार न हो वहाँ उन्हे छोडकर, उनके अडोस-पडोसमे जहाँ लोग तैयार हो, वहाँ अपनी सेवा-सहायता पहुँचानी चाहिए। वह स्थल सजीव हो जानेके बाद निर्जीव स्थलोमे भी चेतनता आ जायेगी।

जिस गाँवकी बात की गई है, वहाँके सनातनियोसे विनय और दलील तो अवश्य की जा सकती है। शायद ही ऐसा कोई गाँव होगा, जहाँ हरिजनोको चाहनेवाला एक भी आदमी न हो। हमे उन्हीके जरिये उस गाँवमे अपना सम्बन्ध साधना चाहिए।

जिस पाठशालाकी चर्चा श्री छोटालाल पण्डितने की है उसीको लीजिए। हरिजन बच्चे चले गये, इसमे कोई हानि नही हुई। वहाँ जाना आवश्यक ही था। अगर इन बच्चोके माँ-बाप अपने बच्चे सौप देनेके लिए तैयार हो तो, उन्हे अपने कब्जेमे करके किसी दूसरी जगह पढानेकी व्यवस्था करनी चाहिए। शिक्षकमे शूरता हो, तो वह बहिष्कारका सामना करे, मार-पीट भी बरदाश्त करे और ज्यो ही अनुकूल अवसर मिले उन बच्चोको पुन उसी शालामे दाखिल करानेकी कोशिश करे। साथ ही वहाँके सनातनियोसे विनयपूर्वक बातचीतका सिलसिला जारी रखे। अधिक क्या, शिक्षकमे अगर धर्मका तीव्रभाव हो तो वह उन तीन बच्चोके लिए अपने प्राणो तककी बाजी लगा दे। पर मान लिया जाये कि उतनी शक्ति शिक्षकमे नही है, तो श्री छोटा-लालका तो कर्तव्य है कि वे उस गाँवका पीछा न छोडे। वे वहाँके सनातनियो और हरिजनोके साथ फिरसे सम्बन्ध जोडनेके अवसर ढूँढे। ऐसे अवसर तो उन्हे दोनोकी सेवा करनेसे ही मिल सकते हैं। वे उनके मित्रोको ढूँढ निकाले, जिनका उनपर प्रभाव पडता हो, उनकी सहायता ले। उन्हे सनातनियोकी न्याय-बुद्धि जगानी है और हरिजनोका भय दूर करना है। थोडेमे उनका धर्म यह है कि दूसरे काम करते हुए भी वे न तो उस गाँवको भूले, न उन तीन हरिजन बालकोको। बल्कि हर तरहसे उनकी रक्षा करना अपना एक विशेष ध्येय बना ले।

इन पत्रोके पढनेसे हमारी दृष्टि दो बातोपर जाती है। एक तो यह कि शुद्ध एकाग्रचित्त और प्राण न्योछावर करनेवाले सेवक-सेविकाएँ हमारे पास कम है। जिसने एक कामको अपना तन, मन, धन दे दिया है, मानना चाहिए कि उसने सभी कामोको अपना सर्वस्व सौप दिया। जो अनेक कामोको अपना तन-मन-धन देनेका दावा करता है, वह असलमे एकको भी नही देता। उसकी स्थिति तो व्यभिचारीकी स्थिति है। इस महान् सत्यको हमने अबतक ठीक-ठीक नही पहचाना है। इसे हम

पहचान ले तो हमारा बहुत-सारा कार्य बिलकुल आसान हो जाये। सर्वस्व-अर्पण करनेवाले हरिजन-सेवकको छोडकर अस्पृश्यताका कलक और कौन धो सकता है?

दूसरी बात यह है। जो मै कहता हूँ, उसपर मुझे आचरण करना ही चाहिए। यह मेरे स्वभाव ही में है। देशकी सेवा मैंने गुजरातसे शुरू की। पर गुजरात, हिन्दुस्तान, पृथ्वी, विश्व इन सबमे मै कोई भेद नही मानता। एकका ध्यान लगानेसे अनेकका ध्यान लग जाता है। मेरा जीवन इसी नीवपर खडा है। अहिंसाका आन्दोलन सार्वजनिक कल्याणका अविरोधी होना चाहिए। अस्पृश्यता-निवारणके यज्ञमे मेरी यही दृष्टि रही है। मै जब सनातनियोके दोष गिनाता हूँ तो वे दोष मेरे भी होते ही है। मै अपनेको उनसे भिन्न नही मानता। प्रायश्चित्त करनेके लिए मै अवश्य अधीर हूँ। किन्तु मेरी अधीरता कैसे काम आयेगी? प्रायश्चित्तके अनुरूप मुझमे पवित्रता होगी, तभी तो ईश्वर मुझे वैसा करनेकी आज्ञा देगा। इसीलिए मै दिन-रात उपयुक्त पवित्रता और आज्ञा-पालनकी शक्तिकी भिक्षा अपने सिरजनहारसे माँगता रहता हूँ।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १६-४-१९३३

४८०. पत्र : नारणदास गांधीको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला।

रमाबहनको तकलीफकी जाँचके लिए माणेकरावके पास भेजो। यदि वे उसका इलाज करनेके लिए तैयार हो तो करे। माणेकरावको बात समझमे न आये तो वह पूना आ जाये। पूनामे एक वैद्य हड्डियोसे सम्बन्धित बीमारियोका उपचार करते है? रमाबहनको उन्हे दिखायेंगे या और जो-कुछ करना ठीक मालूम होगा सो करेंगे। यहाँ डाक्टरी मदद भी सुलभ है। अन्तमे यदि ऑपरेशन ही जरूरी मालूम हुआ तो वह वहाँ किया जाये या कही अन्यत्र, इसका विचार कर लिया जायेगा। इस बीच बच्चे वही रहे तो अच्छा। वहाँ न रह सके तो साथमे रहे। बडौदामे नाजुकलाल[1] आदि है इसलिए वे लोग वहाँ उसकी सार-सँभाल कर सकेंगे, ऐसा मानता हूँ। अलबत्ता, मै जानता नही कि उसके घरमे कितनी सुविधा है। अब्बास साहबके घर भी रह सकती है। इस समय वहाँ भीड नही है। देशपाडे साहबके घर रहने लायक सुविधा है या नही, यह मै नही जानता। तो प्रो० माणेकरावसे पूछ लिया जाये और उसके बाद बडौदा जाये। माणेकराव बडौदामे न हो अथवा इलाज करनेके लिए तैयार न हो तो फिर वह पूना चली आये। पूनामे तो प्रो० त्रिवेदीका घर धर्मशाला-

१. नाजुकलाल चोकसी, लक्ष्मीदास पु० आसरके दामाद।

जैसा ही है। उनका यह ऋण तो हम लोगोपर चढता ही रहेगा। उन्हें यह अच्छा भी लगता है। उनके यहाँ इस समय भीड नही है।

मेरी राय केशूको यन्त्र दे देनेके ही पक्षमे है। उसकी कीमतका हिसाब मैंने नही लगाया है। यह तो तुम और केशू ही कर सकते हो। मै ऐसा मानता हूँ कि यन्त्रमे जो टूट-फूट हुई है वह और इसी तरहके दूसरे खर्च भी कीमतमे शामिल करने होगे।

माधवजी का पत्र मिला है, पत्र बहुत अच्छा है। उसने भी कलकत्ता पत्र लिखा है और कहा है कि बच्चोको आश्रम भेज दिया जाये।

जेकीके बच्चोंके सम्बन्धमे तुम्हारी बात मै समझ गया। मेरे ऊपर ऐसी छाप है कि बच्चे सुशील है।

अब तुम्हारी बात। हमारा आदर्श राम है। रामकी भी टीका करनेवाले लोग थे तब मेरी और तुम्हारी क्या बिसात? हमे तो इस टीकासे मात्र सार ले लेना चाहिए। छगनलालकी टीका और उसके सुझाव इसके साथ है। उनमे से अधिकाश तो पुराने ही है। प्रेमाबहनके सम्बन्धमे उसने जो लिखा है उसे यदि वह शान्त मनसे पढ सके तो भले पढे।

. . .[1] के विषयमे उसके सुझावको मै अनुचित मानता हूँ। किसी पिताको अपनी लडकीसे कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह कहनेका किसीको क्या अधिकार है? लेकिन यह सोचकर कि छगनलालने अपने मनके अनुसार जो टीका लिख भेजी है उसमें सुधार करके भेजनेके बजाय उसके मनमे जो है उसे जानना ही तुम्हारे लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। मै उसकी टीकाको जैसी वह है उसी रूपमें भेज रहा हूँ। उसमें और भी बहुत-कुछ ऐसा है जो मेरी आँखको सुधारने लायक प्रतीत हो रहा है। किन्तु वह सब मै लिखने लगूँ तो पत्र बहुत लम्बा हो जायेगा। छगनलालके मनका यहाँ मैंने जो परिचय पाया है वह बाहर नही पाया था। मेरा दृढ विश्वास है कि उसका हृदय स्वच्छ है। वह त्यागवृत्तिका विकास करना चाहता है किन्तु वह बालक है। उसकी बुद्धि अपक्व है, अवलोकन-शक्ति कच्ची है, मन व्यवस्थित नही है और स्मरण-शक्ति भी दुर्बल है। उसका मन बहुत-सारी चीजोमे घूमता है इसलिए उसमे एकाग्रताकी शक्ति बहुत कम है। अपनी इन सारी कमियोका उसे पूरा भान नही है। किन्तु उसमे अच्छा बनने और आगे बढनेकी उत्कट आकाक्षा है। उनमें द्वेष भाव नही है किन्तु बुद्धिके विकासके अभावमे उसके निर्णय अपूर्ण और गलत होते है। मेरा खयाल है कि उसके सम्बन्धमे यह विश्लेषण केवल मेरा नही है। यद्यपि अपने इन विचारोकी चर्चा मैंने किसी अन्य व्यक्तिसे नही की है। हाँ, काकाके साथ कुछ चर्चा की है। छगनलालको अपना यह मत मैंने अभीतक बताया नही है। वह पहली बार इसी पत्रसे जानेगा। आज उसे प्रकट करना उचित जान पडा सो इसलिए कि तुम उसके विषयमे कोई गलत धारणा न बनाओ। उसने जो-कुछ लिखा है, उसमे शायद तुम्हे द्वेष-भावकी गध आयेगी। किन्तु यदि तुम मान सको तो विश्वास करना कि उसके बारेमे मेरा अवलोकन सही है। ऐसा विश्वास यदि तुम कर सके तो

१. यहाँ नाम छोड दिया गया है।

छगनलालने तुम्हारी जो टीका की है और जो सुझाव दिये है उनमे जो-कुछ ग्राह्य है उसे तुम ग्रहण कर सकोगे। उसकी की हुई टीका और सुझावोका जवाव मुझे तो देना ही। दूसरे साथियोको यह पढाना चाहो तो मेरा निषेध नही है अगरचे दूसरोको पढवानेकी आवश्यकता मुझे नही लगती।

तुम अपनेमे जो गुण चाहते हो वे गुण सवसे ज्यादा और सो भी पर्याप्त मात्रामे तुममे ही है, ऐसा मै मानता हूँ और इसीलिए तुम आश्रमके मन्त्री-पदपर हो। तुम्हारे कार्यसे मुझे विलकुल भी असन्तोप नही है। तुम्हारे विषयमे मेरा यह मत ज्यो-का-त्यो कायम है और यदि दूसरोपर तुम्हारे कार्यकी यह छाप न पडी हो तो मुझे आश्चर्य होगा। न० के मनपर यह छाप नही पडी, ऐसा वह अपने पत्रमे कहता है। छगनलाल कुछ दूसरोके वारेमे भी ऐसा ही मानता है। किन्तु किसीने मुझसे शिकायत नही की है।

हाँ, यह लिखते हुए भगवानजी की याद आ रही है। लेकिन उसकी शिकायतका मेरे मनपर कोई असर नही हुआ था। भगवानजी का स्वभाव मै ठीक पहचानता हूँ। लेकिन हमे तो जिनके मनपर प्रतिकूल छाप पडी हो उनकी वात सुननी है। जो हमे अच्छा मानते है उनसे हम काम ले सकते है किन्तु उनसे हम कुछ सीख नही सकते। हमारे पहरेदार तो आलोचक ही हो सकते है। इसलिए न० से तुम्हे जितना सीखना हो उतना सीख लेना।

तुम्हे ठीक लगे तो . . .[1] और . . [2] के पत्र तुम तोतारामजी, पण्डितजी, नरहरि, लक्ष्मीदास तथा मथुरादासके सामने रखना। उसके विषयमे उन्हे कुछ कहना हो तो सुनना। तोतारामजी या पण्डितजी वागडोर अपने हाथमें लेना चाहे तो दे देना। और यदि वे चाहे तो उनके अधीन हिसाव-कितावका काम करना। आश्रमकी दृष्टिसे मै तोतारामजी को आश्रमके पितृपदके लिए सवसे ज्यादा योग्य मानता हूँ। हमे आश्रमके लिए पिता ही तो चाहिए। आश्रमको हमने एक कुटुम्व माना है। मै जव वहाँ रहता हूँ तो अपनेको पिता ही मानता हूँ। तोतारामजी इस पदको स्वीकार न करे तो भी उन्हे पिता मानकर प्रत्येक उलझनके समय यदि तुम उनकी सलाह का नि सकोच अमल करो तो मै इसमे कुछ अनुचित नही मानता। लक्ष्मीदासमे आश्रमका मन्त्री होनेके लिए जो गुण चाहिए वे सव है किन्तु मै नही जानता कि वह इस समय वहाँ रह सकता है या नही। नरहरि तो नही ही रह सकता क्योकि मेरा खयाल है वह अपनी दूसरी जिम्मेदारियोसे मुक्त नही हुआ है। चिमनलालका तो शरीर ही इस कामके अनुपयुक्त है। मथुरादासको अभी तैयार होना वाकी है। जिन साथियोके नाम इस सम्वन्धमे याद आये उनके वारेमे मेरे ये विचार है। विनोबाको वर्धासे हटाया नही जा सकता। विनोवाकी जिम्मेदारी वर्धातक सीमित है और इस समय तो उन्होने, कह सकते है, वर्धा भी छोड दिया है। आजकल वे हरिजनोके एक गाँवमे[3] रहते है। इसमे मेरी पूरी सहमति थी।

१ व २. यहाँ नाम नहीं दिये जा रहे है।

३. १९३२ में वे वर्धासे डेढ-दो मील दूर नालवाडी नामके गाँवमें चले गये थे।

अभी तो, सम्भव है, विनोबा किसी इससे भी अधिक सम्पूर्ण हरिजन ग्राममें चले जायें। इसलिए तुम सब लोग जो वहाँ हो उन्हें तो इसी परिस्थितिमें से अपनी राह ढूँढ निकालनी है, और कोई उपाय नहीं है। यह सब मैंने तुम्हें मात्र इसलिए लिखा है कि तुम इसपर विचार करो। आश्रम छोड़ते हुए जब मैंने आश्रमका श्रेय तुम्हारे हाथोंमें सौंपा तब तुम्हें कोई अधिकार नहीं बल्कि एक जिम्मेदारी सौंपी गई थी और आज भी वही स्थिति है। इस बीच मैंने ऐसा कुछ नहीं पाया जिसे देखकर ऐसा लगे कि यह जिम्मेदारी तुमसे ले लेनी चाहिए। और तुम उसे छोड़ भी नहीं सकते। इसलिए अपनी जिम्मेदारीका विचार करते हुए तुम्हें मेरे सुझावोंमें से जो अनुकूल लगे उनपर ही अमल करना है। यहाँ बैठे हुए मैं निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। अच्छा या बुरा, जो-कुछ होना होगा, तुम्हारे ही हाथों होना है। यह तो एक सुयोग है कि मुझे पत्र लिखनेका अधिकार है। यदि यह अधिकार मुझे न होता तो तुम्हें जो सूझता वही तो तुम करते। इसलिए मेरे विचारों और पत्रोंको रद्द मानकर तुम तो वही करना जो तुम्हें ठीक लगे। मेरा कर्तव्य तो मैं जो-कुछ सुनूँ और सोचूँ उसे तुम्हारे सामने रखकर समाप्त हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि इस सबमें तुम 'गीता'के शब्दोंमें तटस्थ और उदासीनवत् रह सको।

यह तुम्हारे लिए चिन्ताका कारण नहीं होना चाहिए। हाँ, यह तुम्हारे समत्वकी परीक्षाका अवसर अवश्य है। समत्व कभी न खोना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५६ में भी, सौजन्य : नारणदास गांधी

४८१. पत्र : जमनालाल बजाजको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। होम्योपैथीपर मुझे अधिक विश्वास नहीं है। परन्तु इस कारण पहाड़ जाना स्थगित नहीं किया जा सकता। अलमोड़ा जानेका विचार मुझे पसन्द है। अलमोड़ेमें भी होम्योपैथ डाक्टर रहता है। पर इस दर्दके लिए पहाड़ी हवा और दूध, मक्खन, फल, समूचे गेहूँके आटेकी रोटी और सब्जीके बाद दवाकी बहुत कम जरूरत पड़ेगी। अलमोड़ा जाकर अधिक काममें मत फँस जाना। यदि छोटेलाल साथ जा सके तो ले जाना। उस हरिजन भाईके लिए कोशिश करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृष्ठ १०८

४८२. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

१६ अप्रैल, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारे पत्र अव अनियमित रूपसे मिलते हैं।

. . .[1] के बारेमें तुम लोग थोडा-वहुत तो जान ही गये होगे। कुछ तो तुम्हे जानना चाहिए। उससे तुमने क्या शिक्षा ली?

आश्रममे रहनेवाले सव लोग सगे भाई-वहन हैं। यदि किसीके मनमें तनिक भी विकार आ जाये तो उसे तुरन्त अपने वुजुर्गोसे कह देना चाहिए। विकारको दूर करनेके लिए सख्त कदम उठाना चाहिए। कोई गोपनीय वात नही होनी चाहिए।

किसीको एकान्तमें नही रहना चाहिए। किसीको वनाव-सिगार नही करना चाहिए। जहाँतक हो सके भीतर-वाहर सादगी वरतनी चाहिए।

मर्यादाका उल्लघन किसीको नही करना चाहिए। एक-दूसरेके प्रति मर्यादाके भीतर रहते हुए ही छूट लेनी चाहिए।

यदि इस सम्वन्धमे सव लोग अपनी-अपनी राय मुझे लिखें तो अच्छा होगा। यदि मैंने तुम्हे पहले भी ऐसा लिखा हो तो भी कोई वात नही। ऐसी बातोकी याद ताजा होती रहा करे यही अच्छा है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

४८३. पत्र : नारणदास गांधीको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हे सवेरे एक पत्र भेज चुका हूँ। और गोपालका पत्र मुझे मिल गया है। उसे मेरा पत्र वहुत देरसे मिला, इसीलिए उसने पुरी जानेका निश्चय किया। मैंने उसे फिर लिखा है कि अलमोड़ा जाये।

प्रभुदासका मुझे तो एक भी पत्र नही मिला। क्या तुम्हे भी नही मिला? कहाँ है वह?

महादेव कहता है कि पूरकी पुस्तक मगनलालकी पुस्तकोमे है। यह तो तुम जानते ही हो कि ये सव पुस्तके आश्रमकी है। यदि उन पुस्तकोमे हो तो खोजकर भेजना। पुरुषोत्तमने जो सूची भेजी थी उसमे भी पूरकी पुस्तकका नाम था।

१. नाम छोड दिया गया है।

पुरुषोत्तम राजकोट न गया हो और यदि वह रुक सकता हो तो उसे रोकना। जमनाका उपचार अभी पूरा नही हुआ है और शायद अमीनाको भी उसकी सलाहकी जरूरत हो सकती है। किन्तु इस बातपर तुम्ही ज्यादा सही विचार कर सकोगे।

आज सवेरे मैंने तुम्हे पत्र लिखा तो है और छगनलालकी टीका भी उसके साथ भेजी है किन्तु वह सब मैंने सकुचाते हुए लिखा है। बात यह है कि मैंने तुम्हारा, छगनलालका, अपना और आश्रमका श्रेय उसीमे देखा। मुझे यह भी ठीक जान पडा कि छगनलालके विचारोको तुम उनके नग्न रूपमे देख लो। छगनलालके मनमे ये विचार क्यो उठते है, इसके सम्बन्धमे मेरी धारणा भी तुम जान लो, यह भी मुझे उचित मालूम हुआ। मेरे कानमे 'ईशोपनिषद्'का यह मन्त्र[1] सदा गूँजता रहता है कि सत्यका मुख हिरण्यमय पात्रसे ढँका हुआ है। उसकी सत्यता हर क्षण प्रतीत होती रहती है। किन्तु हमे इस पात्रको हटाना ही होगा। इस तरह सत्यको देखना जो सहन कर सकता है उसे सहन करनेके लिए फिर बाकी बहुत ही कम बच रहता है। हमारे विषयमे कोई जो भी सोचता है वह उसके लिए तो सोलह आना सत्य ही होता है। हममे इस सत्यको सहनेकी शक्ति होनी चाहिए। यह भी अहिंसाका एक प्रकार है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)। सी० डब्ल्यू० ८३५७ से भी; सौजन्य नारणदास गाधी

४८४. पत्र : विद्या हिंगोरानीको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० विद्या,

बडी बालक लडकी है? अब महादेव मिला तो मेरे पर दया खा कर नहिं लिखनी है?

आनद खुश होगा। उसे लिखनेका कहो। अब तो हिदीमे लिख सकेगा ना? प्रयत्न करे।

मेरा ख्याल है सही कि महादेवको दस टीपे एरडीके तेलके देनेसे ज्यादा अच्छा होगा। अगर आलिव आइलका अनुभव कर लिया है तो वही चालु रखो। तुमारा शरीर तो अब अच्छा रहता है?

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी माइक्रोफिल्मसे। सौजन्य : नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इण्डिया और आनद टी० हिगोरानी

१. १५वाँ।

४८५. पत्र : रमाबहन जोशीको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० रमा,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने नारणदासको विस्तारपूर्वक लिखा है[1]। मैंने उसे तुरन्त प्रो० माणेकरावको दिखाने और यदि वहाँ जाना न हो सके तो पूना भेज देनेके लिए लिखा है। यदि उससे भी ठीक नही हुआ तो मै ऑपरेशन करानेकी बात सोचूँगा। चिन्ताकी कोई बात नही है। यदि वच्चोको आश्रममे रख सको तो रख देना, नही तो साथ ले जाना। यदि धीरू नही बढ रहा है तो हम उसका कोई उपाय खोजेंगे। उसपर कामका या पढने-लिखनेका वहुत अधिक वोझ तो नही है? क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि उसे . . .[2] होना सम्भव है?

तुम्हारे खर्चके बारेमे नारणदासका कहना है कि यात्रा आदिका खर्च छोड देनेके बाद प्रति व्यक्ति १६ रु० मासिक खर्च आया है। शायद तुम्हे इस खर्चकी तो खबर भी नही होगी। सबके ग्यारह जमा होते है और उसमे किसी तरहकी बढोतरी नही की जाती। मै देखता हूँ कि तुम्हारे जैसोका जो खर्च होता है वह आश्रमके हिसाबमे मुजरा किया जाता है, फिर चाहे वह ग्यारह हो या इक्कीस। इसलिए ग्यारहकी सख्यासे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही रह जाता। ग्यारहकी रकम यही सूचित करती है कि खर्चके मामलेमे इससे आगे न वढना हमारा आदर्श है। यदि तुम्हे अधिक घी या किसी अन्य चीजकी जरूरत हो और वह न मिले तो निश्चय ही उसकी शिकायत की जा सकती है। मेरा अनुरोध यह है कि मनमे कुछ भी नही रखना चाहिए बल्कि जिन्हे हम अपना स्नेही मानते हो उनसे जो-कुछ मनमे हो वह साफ-साफ कह देना चाहिए। नारणदाससे तो हमारा जीवनपर्यन्त साथ रहेगा। उससे हम कोई दुराव कैसे रख सकते है? हम तो ससार-भरके साथ एक-मन होना चाहते है तो फिर क्या हम मुट्ठी-भर लोग अलग-अलग रहेगे?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४८) से।

१. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", १६-४-१९३३।
२. इस वाक्यका कुछ अंश छोड दिया गया है।

४८६. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तुम्हे एक पत्र तो बीचमे लिखा है। आजकल जब वातावरण इतना अस्थिर हो रहा है, तब तेरे बारेमे समय-समयपर विचार आते रहते है। तुझे सिखावन देनेकी इच्छा नही होती, और तेरे साथ चर्चामे पडनेकी हिम्मत नही होती। मेरी स्थिति गजेन्द्रकी जैसी है। जरा-सी सूँड बाहर रही है। वह भी पानीमे डूब जाये तो साँस रुँध जाये। इसलिए जिनके विषयमे आजकल मनमे विचार आते है, उनके लिए केवल प्रार्थना करना ही रहता है। परन्तु किससे करूँ? जो सदा ही जागता रहता है, जिसे आलस्य नामको भी नही है, जो हमारे नखकी अपेक्षा हमारे अधिक निकट है, जो सब-कुछ सुनता है, सब-कुछ देखता है, वह तो मेरी प्रार्थनाएँ जानता ही है।

इसलिए उसके आधारपर ही तो सूँड पानीके बाहर थोडी-सी रही है। उसे जो करना हो सो करे, जैसे रखना हो वैसे रखे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३४१) से। सी० डब्ल्यू० ६७८० से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

४८७. पत्र : नरहरि परीखको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० नरहरि,

तुम्हारा लिफाफा और पोस्टकार्ड एक ही दिन (कल) मिले। भाई-बहन दोनोके टान्सिल कटवाकर तुमने ठीक ही किया, किन्तु बच्चोको स्वस्थ रखनेके लिए कितनी देखभालकी आवश्यकता है यह बात समझमे आ जानी चाहिए।

यथासम्भव ताजी हवा;

शुद्ध प्राणायाम;

नियमपूर्वक हलकी कसरत;

दाँत और मसूडे साफ-सुथरे;

खुराकमे मुख्यत. दूध, दही, फल और साग-भाजीके साथ उचित मात्रामे रोटी;

कमसे-कम भात, दाल और शक्कर खाना छोड देना चाहिए।

इन बातोकी ओर ध्यान न देनेसे बहुत-से उपद्रव उठ खडे होते है।

तुमने नारणदासके बारेमें जो लिखा है उसे मैं समझ गया। नारणदासके जो दोष तुम्हे नजर आये हो वे मुझे लिख भेजना। यदि अलगसे पत्र लिखना चाहो तो लिखना। मैं तो यह चाहूँगा कि तुम्हे उसके जो दोष दिखाई देते हैं उन्हे तुम उसके सामने रखो। किन्तु यदि तुम ऐसा न करना चाहो तो उन दोषोको मेरे सामने रखना तुम्हारा कर्तव्य है। मेरे लिए यह बात असह्य है कि हमारे मुट्ठी-भर साथियोमे आपसमे मनमुटाव हो। काका सिंहगढ गये हैं। उनका शरीर स्वस्थ हो जानेकी आशा है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

मैं समझता हूँ कि बच्चोको लगातार ९ घंटे सोने देनेके बजाय उन्हे दिनमे एक घंटे सोने देना ज्यादा अच्छा है। इंग्लैंडमे उन्हे नियमपूर्वक [दिनके समय] सुलाया जाता है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०६०) से।

४८८. पत्र : तोताराम सनाढ्यको

१६ अप्रैल, १९३३

भाई तोतारामजी,

तुमारा विवरण[1] अच्छा लगा। महादेवको भजन भेजा वह भी अच्छा। और दोनोका मेल भी मुझे बहुत प्रिय लगा। हमारा प्रत्येक कार्य प्रभुका भजन ही होना चाहिये।

विवरण दुबारा पढ लुगा। मेरी आकाक्षा तो यह है कि हम इतने फल और इतनी भाजी पैदा करे जो हमारे लिये पर्याप्त हो। यदि गो-माताके लिये भी घास आदि पैदा करे और आश्रमके लिये अनाज तो खेतीके पूर्ण आदर्शको हम पहोचे। इसमे थोडा ज्यादा खर्च भी हुआ तो भी मैं उसको सफल समझुगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सब मूर्खका बकवाद है। खेतीका काम सबसे कम किया और बाते सबसे मैंने इस बारेमे ज्यादा की है। क्या करूँ, खेती उन्ही चीजोमे से है जो करनेका खयाल मुझको आधी आयु बीतने पर आया।

बापु

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५२६) से।

१. खेती-बाडीका; गांधीजी ने अपने ५ जनवरी, १९३३ के पत्रमें इस सम्बन्धमें पूछा था, देखिए खण्ड ५२।

४८९. पत्र : एस० ढवलेको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका १३ अप्रैलका पोस्टकार्ड मिला। इससे पहले आपकी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें मुझे कोई पत्र नहीं मिला था। मुझसे किसी सन्देशकी तो आपको आवश्यकता है ही नहीं।[1] आपके कामको ही आपका सन्देश होना चाहिए। कार्यकर्ता अपनी नई प्रवृत्तियोंके लिए सन्देश माँगे, यह बात गलत है। उन्हें तो ठोस सेवा करके उनका औचित्य सिद्ध करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० ढवले
१३४, हैरिसन रोड
कलकत्ता

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९८६) से।

४९०. पत्र : कृष्णचन्द्र मुखर्जीको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जो प्रश्न उठाया है, वह नया नहीं है। चूँकि हम लोग चतुर्दिक मृत्यु और विनाशसे घिरे हुए हैं, इसलिए विध्यात्मक शब्द "हिंसा" ही है, लेकिन फिर भी मानव-जातिको जितने भी धर्मोकी जानकारी रही है, सबमें जीवनको ही नियम माननेका आग्रह किया गया है। किन्तु उसके लिए जो आचरण निर्धारित किया गया है उसे निषेधात्मक नाम "अहिंसा" दिया गया है। शरीर-धारियोंके लिए तो इसका अस्तित्व एक ऐसे आदर्शके रूपमें ही हो सकता है जिसे उन्हें प्राप्त करना चाहिए, किन्तु शरीरके रहते हुए उसे आचरणमें पूरी तरह नहीं उतारा जा सकता। फिर भी, यदि हम अहिंसाके नियमको मान लें तो हम सदा ऐसा आचरण करेंगे जिससे उस लक्ष्यके यथासम्भव अधिकसे-अधिक निकट पहुँच सकें।

१. एस० ढवलेने "नवजीवन पुस्तकालय व वाचनालयके उद्घाटन समारोह" और विशेष रूपसे हरिजनोंके लाभके लिए उसके साथ "नवजीवन पुस्तकालय" मिलाये जानेके लिए गांधीजी से सन्देश माँगा था।

इसलिए तब हम यथासम्भव कमसे-कम हिंसा करेगे, लेकिन यदि हमारे जीवनका नियम हिंसा ही होती तब तो स्वभावत हम जितनी बन सकती उतनी हिंसा करते और उसपर प्रसन्न भी होते। किन्तु, हिंसा करके प्रसन्न होनेवाले लोगोकी सख्या अधिक नही है, जबकि ऐसे बहुत-से लोग है, जो उनसे जो भी हिंसा हो जाती है, उसके लिए क्षमा मॉगते रहते है। यदि हम यह कहे कि दोहरे नियम, अर्थात् हिंसा और अहिसा दोनो, काम कर रहे है तो उसका मतलब यह होगा कि दो परस्पर विरोधी नियम एक ही साथ चल सकते है। लेकिन यह सही चीज नही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कृष्णचन्द्र मुखर्जी
मागुरा, डाकघर (जैसोर)
बगाल

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९८२) से।

४९१. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय च० रा०;

बडी लम्बी प्रतीक्षाके बाद तुम्हारा पत्र मिला। नटराजन्ने जो लिखा था, वह तो मैंने देखा ही था। कोदण्डरावने क्या लिखा है, वह नही देखा है। इन मित्रोको पत्र लिखनेके अलावा और क्या किया जा सकता है, मुझे सूझ नही रहा है। ऐसे प्रसगोपर मै तो अकसर यही करता हूँ और उसमे न्यूनाधिक सफलता भी मिलती है। यह नुस्खा तुमसे भी आजमानेको कहता हूँ। शुरू-शुरूमे नटराजन्पर ही आजमा-कर देखो। वह अपनी दलीलकी खामियोको तो आसानीसे नही देख पाता, लेकिन अगर कोई उसे कायल कर सके तो कायल होनेको हमेशा तैयार रहता है। इसलिए मै उसे कभी भी लाइलाज मरीज नही मानता।

जमनालालजी खुद अपने इलाजके लिए पहाड जायेगे। पता नही वे अपने साथ किसको ले जायेगे। अपने पिछले पत्रमे तो उन्होने लिखा था कि वे अलमोडा जानेकी सोच रहे है।

मेरी तो सलाह है कि नरसिंहम्[1] और पापा[2]को बिना किसी अन्य साथीके ही — मतलब यह कि अगर नरसिंहम् खुद अपनी और पापाकी सार-सँभाल कर सके तो — किसी शान्त जगहमे भेज दीजिए, जिससे उन्हे पूरा विश्राम मिल सके। तुम खुद ही उन्हे नन्दी क्यो नही ले जाते? अगर तुम वहाँ पूरी अवधि तक न ठहरना

१. च० राजगोपालाचारीके पुत्र।
२. च० राजगोपालाचारीकी पुत्री।

चाहो तो भले ही पहले आ जाओ। तब भी वहाँ तुम्हे पाँच सप्ताहका समय तो मिल ही जायेगा। मगर कहनेकी जरूरत नही कि क्या ठीक है, यह तो ज्यादा अच्छी तरह तुम्ही जानते होगे। हो सकता है, जमनालालके साथ रहना उनके लिए सबसे अधिक लाभदायक हो।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९७२) से।

४९२. पत्र : जी० रामचन्द्रन्‌को

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्रन्,

तुम्हारा तार मिल गया था। नाटार-हरिजन झगड़ेपर मेरी टिप्पणी[1] 'हरिजन' में देख लेना और मुझे बताना कि दोनोमे मेल-जोल करानेके लिए क्या किया जा रहा है।

पी० एन० शंकरनारायण अय्यरने मुझे एक पत्र लिखा है। उसमे उन्होने बताया है कि १० फरवरीसे पहले उन्होने एक पत्र लिखकर कहा था कि उनकी संस्थाकी सेवा और सहयोग इस उद्देश्यके लिए प्रस्तुत है, किन्तु जैसा कि उन्होने बताया है, उन्हे कोई उत्तर[2] ही नही दिया गया। पता नही, उन्होने मद्रासमे किसीको लिखा था या नही। शायद तुम इन सज्जनको जानते होगे। उनका पता है. न० १, थर्ड स्ट्रीट, गोपालपुरम्, कैथेड्रल डाकघर, मद्रास, तथा वे और उनकी बहन जी० विशालाक्षी मद्रासमे गन्दी बस्तियोमे किये जा रहे सेवाकार्यमे लगे हुए है।

कुछ दिन हुए मैने डॉ० राजन्‌को एक पत्र[3] लिखा था और उसके साथ राव बहादुर राजाका वह पत्र भी भेजा था जिसमे उन्होने एक हरिजन-पुस्तकालयके लिए मुझसे मदद माँगी थी। उसका कोई उत्तर मुझे नही मिला है। जरा पता करके देखो कि क्या बात है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९७१) से।

१. देखिए "हरिजन होना क्या मतलब रखता है?", २२-४-१९३३।

२. शंकरनारायण अय्यरके पत्रके गांधीजी द्वारा दिये गये उत्तरके लिए देखिए "पत्र: पी० एन० शंकरनारायण अय्यरको", १९-४-१९३३।

३. देखिए "पत्र : टी० एस० एस० राजन्‌को", २२-३-१९३३।

४९३. पत्र : नी० को

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारा पत्र मिला और श्रीयुत बी० के० रामचन्द्र रावका भी एक पत्र मिला था। इन पत्रोसे मै इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि तुम्हारा वहाँ रहना बेकार है। रा०[1] और ग० में[2] से वहाँ कोई भी काम नही आ सकता। तुमने अतीतसे अपने सारे सम्बन्ध तोड लिये है और मै चाहूँगा कि अब तुम किसी भी कारणसे उसे अपने मनमे नही आने दोगी। इसलिए अगर तुम अबतक वहाँसे चल न चुकी हो तो मेरी आग्रहपूर्ण सलाह है कि तुम तत्काल पूना रवाना हो जाओ, और अगर रू०[3] खुद तुम्हे और सि० के[4] पूना पहुँचनेका पूरा खर्च देनेको तैयार न हो तो मैंने श्रीयुत रामचन्द्र रावसे तुम्हारे और सि० के लिए तीसरे दर्जेका किराया दे देनेको कहा है। तुम मुझे तार कर देना। फिर मै तुम्हारे रहनेकी व्यवस्था कर दूंगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९८४) से।

४९४. पत्र : बी० के० रामचन्द्र रावको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपने नी० से मिलकर उसके बारेमे मुझे पत्र लिखा, यह आपकी कृपा है। आपका पत्र आया, उसी समय उसका भी मिला और मैंने तुरन्त तय कर लिया कि उसे वहाँसे पूना आ जानेको कहूँ। मै यह समझ सकता हूँ कि वहाँ वह अकेली रहकर हरिजन-सेवा नही कर सकती। जिन साथियोके[5] नाम आपने बताये है, उनसे उसकी सहायता करनेको नही कहा जा सकता। आप शायद उसके जीवनके बारेमे सब-कुछ नही जानते। उसका विगत जीवन बहुत ठीक नही रहा है। मुझे उम्मीद है कि अब उसने अपने जीवनका एक नया अध्याय शुरू किया है। उसने स्पष्ट रूपसे ऐसा ही वचन दिया है। इसलिए उसके लिए बेहतर यही है कि पुराने साथियोमे से कोई भी उसके साथ न रहे—चाहे वे कितने भी अच्छे कार्यकर्ता रहे हो। इसमे छिपानेकी कोई बात नही है। जिन्हे जानना चाहिए था, उन सबके

१, २, ३ और ४. पूरे नाम नहीं दिये जा रहे है।
५. नी० के दो भूतपूर्व सहयोगी।

सामने उसने अपने विगत जीवनकी भूलोको स्वीकार कर लिया है। इस पत्रके पहुँचते-पहुँचते शायद वह वहाँसे रवाना हो चुकी होगी। अगर रवाना न हुई हो तो साथका पत्र[1] कृपया उसको दे दीजिएगा, लेकिन अगर वह पूना जानेवाली हो और रु०[2] उसके और उसके लडकेके लिए तीसरे दर्जेका किराया न दे सके या न दे तो मेरी खातिर कृपया आप उसे किराया दे देंगे। बादमे मैं आपके पैसे चुका देनेकी व्यवस्था करूँगा।

हृदयसे आपका,

वी० के० रामचन्द्र राव
वकील
चीतलदुर्ग

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९८३) से।

४९५. पत्र : मोतीलाल रायको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मोतीबाबू,

आपका पत्र मिला। आपने इतने विस्तारसे लिखा, इससे बडी खुशी हुई।

मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे विचार करते समय हमे यह नही सोचना है कि हरिजन क्या चाहते है, बल्कि यह सोचना है कि उनके प्रति हमारा क्या दायित्व है और मालवीयजी की अध्यक्षतामे बम्बईमे हुई सभामे[3] इतनी गम्भीरताके साथ क्या वचन दिया गया था। वहाँ उन्हे मन्दिर-प्रवेशका अधिकार देनेका वचन दिया गया था और हमे जीवनकी बलि चढाकर भी उस वचनको पूरा करना है। 'महाभारत'के इन शब्दोको याद कीजिए. "एक तुलापर सत्य और दूसरीपर अन्य सारे यज्ञोको रखे तो सत्य-वाला पलडा दूसरे पलड़ेसे भारी पड़ेगा।" हरिजनो तथा ईश्वरको दिये वचनको भग करना कल्पनातीत है। सनातनियोके साथ तो हम यथासम्भव अधिकसे-अधिक धीरजसे काम ले, किन्तु जिन्हे उस गम्भीर प्रतिज्ञाका तनिक भी खयाल हो उन्हे हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशके लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। इसलिए मन्दिर-प्रवेशके बारेमे आपकी दलीलके दूसरे हिस्सेपर विचार करनेकी मुझे कोई जरूरत नही है। बेशक, शिक्षाका हमारा कार्यक्रम एक सक्रिय कार्यक्रम होना चाहिए। शिक्षा शब्दके व्यापकतम अर्थमे शिक्षाकी आवश्यकता तो है ही — और सो केवल हरिजनोके लिए नही, बल्कि

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. पूरा नाम नही दिया जा रहा है।

३. यह २५ सितम्बर, १९३२ को हुई थी। प्रस्तावके पाठके लिए देखिए "हरिजन सेवक संघके संविधानका मसविदा", ९-३-१९३३।

सवर्ण हिन्दुओके लिए भी। आज हम शिक्षाके अभावसे उतने पीडित नही है जितने कि गलत ढगकी शिक्षासे। अभीतक तो हमे धर्म और ईमानदारीके स्थानपर अधर्म और वेईमानी, सच्चे ज्ञानके बदले अन्धविश्वास, उदारताके वजाय असहिष्णुता, सयमकी जगह असयम, शास्त्रोकी, जो उनके केन्द्रीय सत्यसे सुसगत हो, ऐसी सच्ची और सरल व्याख्या करनेके बदले उनका विकृत अर्थ निकालना ही सिखाया गया है।

संघकी प्रवृत्तियोके वारेमे आपने जो बात कही है, उसको मैंने लक्षित किया है और मुझे उम्मीद है कि आपके प्रयत्न सफल होगे। यदि आप असली चीज, अर्थात् हाथ-कताईको बरकरार रखना चाहते हो तो आप देशी मिलोसे वारीक सूत लेनेके प्रलोभनमे नही फँसेगे। पता नही, आपने इस ऐतिहासिक तथ्यको जाननेकी कोशिश की है या नही कि किस प्रकार केवल हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके बीचके स्वाभाविक सूत्रके टूट जानेसे ही हरिजनोको बुनाईका काम छोड-छोड़कर भगीका काम अपनाना पडा। अगर आप महीन कपडे चाहते हो तो आपको लोगोको महीन सूत कातना सिखाना चाहिए। अच्छी पूनियोसे मैं ७० अकका सूत कातता हूँ। महादेवने तो ११० अक तकका काता है। यह भारतकी किसी भी मिल द्वारा काते जानेवाले वारीकसे-बारीक सूतसे भी ज्यादा महीन है, और आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आश्रमके एक हरिजन बुनकरने महादेवके काते ४० अकके सूतसे भी कपडा बुना है। ४० से अधिक अकका सूत तो हम इस बारके कारावासके दौरान ही कातने लगे। लेकिन, मुझे इसमे कोई सन्देह नही कि जब हमारा काता बारीक सूत बुनाईके लिए दिया जा सकेगा तो वही बुनकर उसे भी बुन लेगा। इस पुनरुत्थान आन्दोलनमे हमे कठिनाइयोका मुकावला करना ही है, चाहे उसके लिए कोई भी कीमत क्यो न चुकानी पडे।

वैसे तो मेरी बडी इच्छा है कि हरिजन-कार्यके लिए जेलसे बाहर आनेके प्रश्न की चर्चा करूँ, किन्तु जेलके प्रतिबन्धोके कारण ऐसी चर्चाकी गुजाइश नही है।

मुझे नही मालूम था कि अरुणने प्रवर्त्तक सघका 'मेसेज एड मिशन' (सन्देश और कार्य) मुझे खास तौरसे मेरी सम्मतिके लिए भेजा है। अब मै अवश्य ही ढूँढूंगा और अगर वह मिल गया तो उसे आलोचनात्मक दृष्टिसे पढूँगा।

मेरा खयाल है आपके चिकित्सा-सम्बन्धी सलाहकारकी बात ठीक ही है। आपकी आँखोको आरामकी जरूरत है।[1] आपके इर्द-गिर्द इतने सारे निष्ठावान कार्यकर्ता है, फिर आपको अपनी आँखोको तकलीफ देनेकी क्या जरूरत है। पता नही, आप जानते है या नही कि दृष्टिके उपचारकी एक नई पद्धति चली है और विचार करनेपर वह बहुत ठीक भी लगती है। इसे बेट्स-पद्धति कहते है और भारतमे एक चिकित्सकको इसकी जानकारी है। उनका नाम और पता इस प्रकार है :

डॉ० अग्रवाल [राम आई हॉस्पिटल, बुलन्दशहर]

मैं इन सज्जनको नही जानता। मेरे साथ पत्र-व्यवहार करके सबसे पहले उन्होने ही मुझे इस पद्धतिकी जानकारी दी थी। उसके बाद कई अमरीकी मित्रोने

१. मोतीलाल राय ग्लॉकोमा से पीड़ित थे।

सम्बन्धमे मुझे पत्र लिखे हैं और साहित्य भी भेजा है'। अगर आप चाहे तो डॉ० अग्रवालसे पत्र-व्यवहार करे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९६८) से।

४९६. पत्र : चावलि सत्यनारायणको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र, जिसपर ३० (?) फरवरीकी तिथि अंकित है, इतने दिनोतक मेरे पास पडा ही रहा। अबतक वह मेरे हाथ ही नही आया। अब मै इसे पढ तो गया हूँ, लेकिन दु खके साथ कहना पडता है कि इसमें मुझे जँचनेवाली कोई दलील नही मिली। मेरे विचारसे अस्पृश्यताका औचित्य निस्सन्देह, किसी भी तरहसे नही ठहराया जा सकता, फिर भी यह बता दूं कि मुझे इसके पक्षमे आपकी दलीलसे अच्छी दलीले भी देखनेको मिली है, हालाँकि उनसे मै कायल नही हो सका।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चावलि सत्यनारायण
कोठपेट
गुटूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९७८) से।

४९७. पत्र : एन० वी० थडानीको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय थडानी,

आज तुम्हारे और जगद्गुरुके बीच हुए पत्र-व्यवहारको[2] पढनेका समय मिला। सुगठित शैलीमे दृढताके साथ, किन्तु सयत और शिष्टतापूर्ण भाषामे लिखे तुम्हारे पत्रोको पढकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, लेकिन दूसरी ओर जगद्गुरुके प्रलापपूर्ण, सर्वथा तर्करहित और अशोभनीय पत्रोको पढकर मन लज्जा, दु ख और निराशासे भर उठा। इसलिए मैंने 'हरिजन'मे इस पत्र-व्यवहारपर कुछ भी लिखनेका लोभ सवरण कर लिया है। अगर लिखूं तो जगद्गुरुकी आलोचना करनी पडेगी। ऐसा मै करना नही चाहता। इससे इस संघर्षमे कोई सहायता नही मिल सकती, लेकिन साथ ही मुझे

१. देखिए "पत्र: डॉ० हैरी जे० मल्लिकको", २४-३-१९३३।
२. देखिए "पत्र: एन० वी० थडानीको", ८-४-१९३३।

तुम्हारी दलीलका भी मोह है। इसलिए मेरा सुझाव है कि तुम 'हरिजन'में एक पत्र[1] लिखकर अपने पक्षको यथासम्भव कमसे-कम शब्दोमे प्रस्तुत करो और पाठकोसे कहो कि अगर वे वेदोमे पचम वर्णके उल्लेखका कोई भी हवाला दे सके तो दे। मेरा तात्पर्य तो तुम समझ ही गये होगे।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९७९) से।

४९८. पत्र : द० बा० कालेलकरको

[१८ अप्रैल, १९३३][2]

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला।

दुग्धोपचारकी पुस्तकमे आराम करनेपर बहुत जोर दिया गया है। अत यदि दिनशाजी भी ऐसा ही चाहते हो तो उनकी सलाहपर पूरी तरह अमल करना। तुम्हे नये सिरेसे अपना शरीर बना लेना चाहिए। पुस्तकके लेखकने तो पढने आदिका भी निषेध किया है। मारुती और लक्ष्मी आकर मुझसे मिल गये। आशा है करसनदास तुमसे मिल गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

आलाबहनको आशीर्वाद। मै दिनशाजी के पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

श्री काकासाहेब
मार्फत — डॉ० दिनशा मेहता
सिंहगढ
पूनाके नजदीक

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९७) से, सौजन्य : द० बा० कालेलकर

१. यह १३-५-१९३३ के हरिजन में छपा था।
२. डाककी मुहरसे।

४९९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१८ अप्रैल, १९३३

देवलाली या जो भी स्थान, तूने चुना हो वहाँ जल्दी चला जा, यह बहुत आवश्यक है।[1] किसी स्कूलकी अपेक्षा दिलीपको तू ज्यादा अच्छी तरह पढा सकता है, ऐसा तुझे विश्वास होना चाहिए।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृष्ठ ११९

५००. तार : डॉ० पुरुषोत्तम पटेलको

[१९ अप्रैल, १९३३][2]

डॉ० पटेल
पॉलीक्लीनिक
बम्बई

विट्ठलभाईकी दशा और वियानाका पता तार द्वारा सूचित करें।[3]

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २००२८) से।

१. मथुरादास त्रिकमजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं था इसलिए गांधीजी ने उन्हें किसी पर्वतीय स्थलपर जानेकी सलाह दी थी।

२. देखिए "पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १९-४-१९३३।

३. पुरुषोत्तम पटेलने इसका उत्तर २० अप्रैलको दिया था। उसमें कहा गया था· "विट्ठलभाईको पेटकी शिकायत है। चिन्ताकी बात नहीं। तारका पता: 'ट्रावेनिक्स वियाना' है।"

५०१. पत्र : रासबिहारी चटर्जीको

१९ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका लम्बा पत्र मिला। उसे मैं ध्यानपूर्वक पढ गया। जिस स्थितिमे मैं हूँ उसमे मैं क्या कर सकता हूँ, समझमे नही आता, लेकिन मेरा सुझाव है कि आप सतीशबाबूसे मिलकर उन्हीसे मार्ग-दर्शन प्राप्त करे। आपकी मदद करना मेरे लिए बडी खुशीकी बात होगी। लेकिन समझमे नही आता कि कैसे कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत रासबिहारी चटर्जी
डाकघर बारीनपुर
ग्राम – शासोन
(जिला – २४ परगना)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९८७) से।

५०२. पत्र : पी० एन० शंकरनारायण अय्यरको

१९ अप्रैल, १९३३

प्रिय शंकरनारायण,

आपका 'पेम्फलेट' इसके पहले नही पढ पाया, इसके लिए क्षमा करेंगे। मैं लाचार था। अब कुछ क्षणोका अवकाश मिलते ही उसे पढा।

आपने मुझसे टिप्पणियाँ, सुझाव, मार्ग-दर्शन और आशीर्वाद देनेको कहा है। अगर आप आशीर्वादके योग्य पात्र है तो आशीर्वाद तो आपको प्राप्त ही है। आप उसके पात्र है या नही, इसका निर्णय मैं नही कर सकता, क्योकि आपकी प्रवृत्तियोकी मुझे व्यक्तिगत तौरपर कोई जानकारी नही है। किन्तु आपकी रिपोर्टोंसे[1] आपकी लगनकी झाँकी अवश्य मिलती है।

आपके द्वारा विशेष रूपसे चिह्नित सभी अंश मैं पढ गया हूँ। कोई उपयोगी आलोचना कर पाना मेरे लिए कठिन है।

मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन और महान् राष्ट्रनेताओपर आपने जो चोट की है, उससे आपकी चिढ, अधैर्य और तथ्योका अज्ञान झलकता है। यदि आपने केवल इतना

१. उनकी प्रवृत्तियोंका उल्लेख २९-४-१९३३ के हरिजनमें किया गया था।

कहा होता कि आपकी जानकारीमे जो हरिजन आये है उन्हे मन्दिर-प्रवेशकी चिन्ता नही है तो वह एक उचित बात होती, किन्तु एक महान् धार्मिक आन्दोलनका अध्ययन तक किये बिना उसकी निन्दा करना ठीक नही है। जरा समझिए तो कि यह है क्या चीज। गत सितम्बर महीनेमे एक सार्वजनिक सभामे हिन्दू-समाजके प्रतिनिधियोने एक गम्भीर प्रतिज्ञा की कि और बातोके साथ-साथ हरिजनोके लिए मन्दिरोके द्वार भी खोल दिये जाये। उसी क्षणसे उनका यह कर्तव्य हो गया कि हिन्दू मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खुलवानेके लिए वे अपनी सारी शक्ति लगा दे। जिस प्रकार हरिजन लोग चाहते हो या नही, लेकिन उन्हे सार्वजनिक स्कूलो और कुओके उपयोगकी सुविधा तथा अबतक उन्हे जो अधिकार नही दिये गये है वे सारे अधिकार देनेपर आपत्ति करना असगत होगा, उसी प्रकार यह सवाल भी असगत है कि वे इन मन्दिरोका उपयोग करना चाहते है या नही। यह तो दमन करनेवालो का सीधा-सादा कर्तव्य है कि वह दलितोके सिरका बोझ हटा ले। हो सकता है, दलित लोग इतने जड हो गये हो कि अपने सिरपर से बोझ हटा लिये जानेके बावजूद वे इस चीजके मूल्यका अनुभव ही न कर पाये। लेकिन, इस कारण दमनकर्ताओको उनके सिर वह बोझ कायम रखकर उन्हे दबाते तो नही रहना चाहिए न!

अगर आप इस दलीलके औचित्यको स्वीकार कर ले तो आपको अपनी गलती माननेमे कोई सकोच नही होना चाहिए। मेरा खयाल है, इससे ज्यादा कहनेकी मुझे जरूरत नही है। हरिजनोके लिए किये गये हर छोटे-मोटे कामसे मुझे खुशी ही होगी और मेरा खयाल है कि इस सम्बन्धमे सेवाका क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत है कि कार्यकर्तागण दूसरोके प्रयत्नोकी — यदि ऐसे प्रयत्न शरारतपूर्ण, अनैतिक अथवा स्वार्थमय न हो तो — आलोचना या अनादर किये बिना मजेमे काम करते रह सकते है।

अपने पत्रके छठे अनुच्छेदमे आपने बताया है कि आपने पत्र लिखकर स्थानीय सेवा सघको अपना सहयोग और सेवा प्रदान करनेकी तत्परता बताई है, लेकिन अबतक आपको कोई उत्तर नही मिला है। अब मैंने उन लोगोको लिखा[1] है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत पी० एन० शकरनारायण अय्यर
न० १, थर्ड स्ट्रीट, गोपालपुरम
कैथेड्रल पोस्ट,
मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९६९)से। सी० डब्ल्यू० ९६७७से भी; सौजन्य : पी० एन० शकरनारायण अय्यर

१. देखिए, "पत्र : जी० रामचन्द्रनको", १८-४-१९३३।

५०३. पत्र : नेपालचन्द्रको

१९ अप्रैल, १९३३

प्रिय नेपाल बाबू,

आश्रममे एक लडका है, जिसका लालन-पालन शैशवावस्थासे ही वही हुआ है। उसमे चित्रकलाके प्रति बडा उत्साह है। ऐसा नही कि वह इस कलाके सम्बन्धमे बहुत या कुछ भी जानता हो, लेकिन वह और किसी बातके विषयमे सोच ही नही सकता। हमे वह लडका सीधा-सच्चा, परिश्रमी और अनुशासनको माननेवाला लगा है। लेकिन आश्रमके प्रति उसकी एक शिकायत है कि वहाँ उसे, उसमे जो विशेष क्षमता है, उसका विकास करनेकी सुविधाएँ नही दी जा रही है। इसलिए मैंने कहा है कि वह चाहे तो चित्रकलाके प्रशिक्षणके लिए उसे शान्तिनिकेतन भेज दूँ। क्या आप यह बतायेंगे कि इस लड़के (नाम उसका धीरेन्द्र[1] है)का दाखिला वहाँ हो जायेगा। वह पक्का निरामिषाहारी है। मेरा खयाल है वह बिना किसी कठिनाईके बगला सीख लेगा। उसकी मातृभाषा गुजराती है। हिन्दी अच्छी जानता है। कताईमे पटु है। अगर उसका दाखिला हो सके तो बताइएगा कि क्या उसे दाखिलेके लिए कोई फार्म भी भरना पडेगा, उसे वहाँ कब भेजा जा सकता है और शुल्क क्या होगा। अन्य जरूरी निर्देश और परामर्श भी भेजे। पता नही, इसके लिए आप उपयुक्त व्यक्ति है या नही। अगर न हो तो आप इसे सम्बन्धित अधिकारीको दे दे और मेरी ओरसे उनसे यह अनुरोध करे कि इस पत्रके सम्बन्धमे जल्दी ही कार्रवाई की जाये।

आशा है, आप स्वस्थ एव प्रसन्न होगे। सभी मित्रोको मेरा नमस्कार।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९९४) से।

१. व्रजलाल गाधीके पुत्र।

५०४. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

१९ अप्रैल, १९३३

सचिव
गृह-विभाग
बम्बई

प्रिय महोदय,

साथका तार[1] मैंने अधीक्षक महोदयको इसी १३ तारीखको भेजनेके लिए दिया था। १७ को पूछनेपर पता चला कि वह महानिरीक्षकको भेज दिया गया था। उसी दिन मैंने अधीक्षकसे तार भेजनेमे विलम्ब होनेकी शिकायत की थी। अब आज १९ तारीखको २-२० बजे दिनमे मुझे सूचना मिली है कि इस आशयका आदेश प्राप्त हो गया है कि "इस तारके भेजे जानेपर कोई आपत्ति नही है।"

सौभाग्यसे श्री वि० झ० पटेलकी तबीयतको तत्काल तो कोई खतरा नही है। अब मैं उक्त तारको उसके वर्तमान रूपमे नही भेजना चाहता। मुझे रोगीका वियानाका, जहाँ उन्हे इलाजके लिए भेजा गया है, पता भी मालूम नही है। मै पतेके बारेमे पूछताछ कर रहा हूँ।[2]

किन्तु, एक ऐसे प्रसगमे, जिसका सम्बन्ध किसी व्यक्तिके जीवन-मरणसे है, मुझे इस विलम्बपर अपना विरोध तो प्रकट करना ही पडेगा। और यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि यह व्यक्ति कोई कैदी नही है। एक कैदीके सम्बन्धमे, जिसकी जान खतरेमे है, विलम्बका एक मामला तो पहलेसे ही सरकारके विचाराधीन पडा हुआ है।

सरकार यह तो स्वीकार करेगी ही कि जैसा तार श्रीयुत वि० झ० पटेलको भेजना था, वैसे तारोका प्रयोजन तभी सिद्ध हो सकता है जब वे समयपर भेजे जाये। मैंने यह देखा है कि ऐसे तारोसे तार पानेवालो को बडा ढाढस मिलता है। मै यह माननेको तैयार नही हूँ कि ऐसे मामलोमें सरकारको उन लोगोकी भावनाओ का कोई खयाल नही होता जो उसकी निगरानीमे हैं। क्या उस तारको सात दिनो तक रोके रहना आवश्यक था? मै चाहूँगा कि मेरी क्या स्थिति है, यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया जाये। अगर मुझे ऐसे तार भेजनेकी छूट है तो सरकार उस अधिकारी को, जिसपर प्रत्यक्ष रूपसे मेरी जिम्मेदारी है, उन तारोके सम्बन्धमे खुद ही फैसला करनेका अधिकार दे दे। मै यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि मौजूदा तरीका अनुचित

१. देखिए "तार: विट्ठलभाई झ० पटेलको", १४-४-१९३३।
२. देखिए "तार: डॉ० पुरुषोत्तम पटेलको", १९-४-१९३३।

और अनावश्यक है। कहनेकी जरूरत नही कि वह तार जितना मेरी ओरसे था उतना ही रोगीके भाई सरदार वल्लभभाई पटेलकी ओरसे भी था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ ३२९, जी० एन० ३८८९ से भी।

५०५. पत्र: डॉ० हीरालाल शर्माको

१९ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र मुझे बहुत पसन्द आया।[1] उसे पढकर तुम्हारी योग्यता मेरी निगाहमे और चढी है। तुमने तो मेरे सामने आदर्श चिकित्सककी तसवीर खीचकर रख दी है। अगर जरूरी हो तो अमतुस्सलामके कपडे बेशक धोओ। हालाँकि वह आश्रममे है लेकिन पूरी तरहसे तुम्हारी देखरेखमे है। समुचित विश्राम और निर्धारित आहार लेनेपर आग्रह रखो।

मै चाहूँगा कि तुम आश्रमकी हर चीजपर आलोचनात्मक दृष्टिसे गौर करके उसके बारेमे अपने विचार मुझे लिखो। जो भी आश्रमवासी या आश्रमवासिनी तुम्हे परीक्षा करने दे उसके स्वास्थ्यकी पूरी परीक्षा करो। कहनेकी जरूरत नही कि जिन रोगियोका इलाज तुम्हारे बससे बाहर हो उनके बारेमे मुझे बता दो। मै चाहूँगा कि तुम कुसुमबहनकी जाँच करो। अभी वह डॉ० तलवलकरके इलाजमे है। लेकिन मै यह जानना चाहूँगा कि यदि वह तुम्हारे इलाजमे आ जाये तो तुम उससे क्या-क्या करनेकी अपेक्षा रखोगे। फिर जमनाबहन है। वह दमेकी पुरानी रोगिणी है। अगर वह तुम्हारी देख-रेखमे आ जानेको तैयार हो तो उसका इलाज तो अभी ही किया जा सकता है। फिर है रमाबहन। उसके कन्धेकी हड्डी बढी हुई है। अभीतक मै उसके रोगको समझ नही पाया हूँ। शायद उसका रोग तुम्हारे बूतेसे बाहर हो। अगर ऐसा न हो तो बताना कि तुम उसका इलाज किस तरह करोगे। और अन्तमे है आनन्दी। अभी हालमे उसका अपेंडिसाइटिसका ऑपरेशन हुआ है। वह केवल मेरा इलाज ही चला रही है, जैसा कि कमोबेश सभी लोग करते हैं। ये कुछ खास रोगी है, जिन्हे तुम जितनी जल्दी बने, देखकर उनके बारेमे सब-कुछ बताओ। कुछ और लोग भी है जिनकी ओर ध्यान देनेकी जरूरत है।

१. आश्रममें रहनेके लिए आनेपर हीरालाल शर्माने गांधीजी को पत्र लिखकर बताया था कि वे आश्रममें पूरी तरह घुल-मिल गये हैं।

और अब खुद तुम्हारे विषयमें। वैसे तो मैं चाहूँगा कि तुम भी आश्रमकी दिनचर्यामें ढल जाओ, लेकिन तुम्हे अपनी शक्तिसे बाहर प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सब-कुछ सहज भावसे करो। अपनी खास जरूरतोंके बारेमें बताकर उन्हें पूरा कराना। अगर समुचित ध्यान न देनेके कारण खुद तुम्हारे स्वास्थ्यपर ही बन आये तो मुझे बहुत दुःख होगा। अगर तुम आश्रमको अपना घर मानकर अपनी जरूरतें साफ-साफ बताओगे तो मुझे अच्छा लगेगा।

अच्छा हो कि एक बार भगवानजी के साथ जाकर हरिजन बस्ती देख आओ। वहाँके बीमार लोगों और सफाई वगैरहकी स्थितिकी जाँच करो।

तुम्हारे दोनों बच्चे तुम्हारे साथ रहते तो बड़ा अच्छा होता। खैर, सब-कुछ ठीक चलता रहा तो बादमें देखा जायेगा।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ ३०-२

५०६. पत्र : जमनाबहन गांधीको

१९ अप्रैल, १९३३

चि० जमना,

तुम्हारा पत्र मिला। ६७ पौंड वजन होनेके बावजूद जिसे परिहास सूझता हो उसकी चिन्ता करनेका विशेष कारण नहीं हो सकता।

एनीमा आदिके बारेमें लिखे तुम्हारे पत्रोंकी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे ऐसा याद आता है कि मैं पुरुषोत्तमके पत्रमें तुम्हारे प्रश्नोंके उत्तर दे चुका हूँ। किन्तु शायद भूलसे रह गया हो।

तुम टमाटर, . [1], नमक और पपीता ले सकती हो। किन्तु पुरुषोत्तमने जहाँ यह विद्या सीखी है उसके अनुसार, यदि सच कहा जाये तो केवल कच्चे दूधका ही स्थान है। इसके सिवा, तुम्हें बस चुपचाप खटियामें लेटे रहना है। किन्तु अब वहाँ डॉ० शर्मा पहुँच गये हैं। उनसे अपनी जाँच करवाना और यदि वे अभी जो इलाज चल रहा है उससे मिलती-जुलती सलाह दें तो तदनुसार चलना। उन्हें भी लिख रहा हूँ। इस व्यक्तिसे मेरा परिचय नहीं है, सिर्फ पत्रोंकी मारफत उन्हें जानता हूँ। उन्हें अपने कार्यका अनुभव तो है। अब चूँकि पुरुषोत्तम वैद्य चले गये हैं अतः मेरे पत्र तुम्हें पहलेसे भी अधिक नियमित रूपसे मिलते ही रहेंगे। तुम्हारे लिए वजन बढ़ाये बिना और कोई चारा नहीं है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७६) से। सौजन्य नारणदास गांधी

१. यहाँ एक शब्द अस्पष्ट होनेके कारण पढ़ा नहीं जा सका।

५०७. पत्र : रमाबहन जोशीको

१९ अप्रैल, १९३३

चि० रमा,

तुम्हारा पत्र मिला। हाथके बारेमे क्या करना चाहिए यह तो मै पहले ही लिख चुका हूँ। डॉ० शर्मा वहाँ पहुँच गये है इस वजहसे मेरे सुझावमे कोई विशेष फर्क नही पडता। यदि वे उस कष्टका ठीक-ठीक निदान कर सके और उसका उपचार करनेको तैयार हो तो जरूर कोशिश करे। अन्यथा जैसा कि मैने लिखा तुम्हे उसी-पर दृढ रहना चाहिए। तुम्हे ऐसा कोई भी काम नही करना चाहिए जिससे हाथको कोई कष्ट महसूस हो। तुम्हे हाथको वही व्यायाम देना चाहिए जिसमे तकलीफ न हो। किन्तु अब मेरे लिए कुछ कहनेको नही रह जायेगा। क्योकि तेरा हाथ जिनकी देखरेखमे रहनेवाला होगा वे सब ठीक कर देगे।

ऐसा लगता है कि अमीनाका सारा काम-काज अस्त-व्यस्त हो गया है। उसे हिम्मत बँधाना और उसके विश्वासको बनाये रखना। यदि उसने खान-पानमे सावधानी नही बरती तो उसकी तबीयत फिर बिगड जायेगी।

बापू

[पुनश्च.]

तेरा पाँच सेर वजन बढना निश्चय ही अच्छा माना जायेगा। किन्तु ऐसा लगता है कि इसका हाथपर कोई असर नही पडा।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४९) से।

५०८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तूने उस लडकीको क्यो मारा? शिक्षिका शिष्योसे माफी माँगे तो अपना स्वाभिमान नही खोती। उलटे वह बढता है। शिष्य भी उसे अधिक चाहते है। इसलिए तूने माफी न माँगी हो और उसे मारनेका दोष तेरी समझमे आ गया हो, तो उस लडकीसे माफी माँग लेना। इसमे तेरा श्रेय ही है।

तेरा आहार ठीक है। इसी प्रकार लेगी तो गला जरूर अच्छा हो जायेगा। डॉ० शर्माकी सलाह लेना। उन्हे पता लगेगा तो कुछ बतायेगे।

काम करनेमे अधीरता कैसी? जितना धीरे-धीरे करते हुए हो जाये उतनेसे सन्तुष्ट रहे, तो कामकी गति और स्वच्छता बढती है। ऐसा अनुभव मैंने तो हजारो बार किया है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३७) से। सी० डब्ल्यू० ६७७७से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कटक

५०९. पत्र : पी० एन० राजभोजको

१९ अप्रैल, १९३३

भाई राजभोज,

तुमारा हिन्दी खत बहुत ही अच्छा है।

आश्रममे सब सुभिता होगा।

तुमने जो प्रश्न पूछे है उनका उत्तर[1] 'ह० से०' मे देनेका प्रयत्न करूंगा। तो भी इतना कह दु।

हरिजनोसे भिन्न जाति है उनको मिटानेका मार्ग यह है — जो उच्च जाति मानी जाती है वह नीच मानी [जानेवाली] जातिके साथ सब व्यवहार रक्खे।

जहा सिवरेज हो जाता है वहाँके हरिजनोको विनाईका कार्य हस्तगत करना चाहियें। जिस जगह हरिजनोको पालखीपर बैठनेसे रुकावट की जाती है वहां पोलीसकी मदद लेनेमें कोई हरज न मानी जाय। दूसरे इलाज भी है जिसका उल्लेख मैं 'ह० से०' मे करूगा।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७८४) से।

५१०. पत्र : अमतुस्सलामको

१९ अप्रैल, १९३३

बेटी अमतुस्सलाम,

आश्रममे आ गई सो तो अच्छा हुआ। यहा आनेके बारेमें जैसा डॉ० शर्मा कहे वही किया जाये। उनके वहा होनेसे तुम्हारे लिए किसीको कुछ कहनेका हक नही है। डॉ० ने लिखा है कि तुम्हारे बिलकुल आराम लेना (है)। अगर वह इजाजत देवे तो शनीचरके दिन आ जाओ।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २८४) से।

1. देखिए खण्ड ५५, "एक हरिजनके प्रश्न", ५-५-१९३३।

५११. पत्र : नारणदास गांधीको

१९ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी बृहत्काय डाक मिली। इस बार तो वह सचमुच ही बड़ी है।

मेरे दोषोकी नकल कोई न करे। मुझसे दोष होते है। उनके कुछ कारण भी मै बता सकता हूँ। तथापि मै चाहूँगा कि सब लोग इन दोषोको पूरी तरह पहचानें और उनका त्याग करे।

१. भोजन करते समय कोई अखबार या पुस्तक न पढे। एक ही बारमे जितना चाहिए उतना लेकर एकाग्र चित्तसे और मौनपूर्वक भोजन करे और उठ जाये— यह उत्तम होगा। ऐसा न कर सके तो भले आवश्यकता होनेपर कानमे बोले। एक ही समयमे दो काम करना बुरी आदत है।

२. चरखा चलाते हुए कोई दूसरा काम न किया जाये। मेरी तरह उस समय न तो कोई कुछ लिखाये, न पढाये।

३. पाखानेमे बैठे-बैठे कुछ भी पढना बुरी आदत है।

४. पाखानेमे बैठकर दातुन करना असभ्यता है। यह एक गदी आदत है और आरोग्यके लिए हानिकर है। यह आदत मुझमे कभी नही रही।

किन्तु पहले तीन दोष मै करता रहा हूँ। पर किसीके दोषोकी नकल नही होनी चाहिए। इन आदतोको मैने कभी गुण नही बताया। इसके सिवा मै तो एकान्त-सेवी माना जाऊँगा। मेरे लिए पाखानेकी अलग कोठरी है। वहाँ किताबे रह सकती है। मेरा जीवन किसी भी समय समाप्त हो सकता है और कार्य करनेका लोभ मै छोड़ नही पाता। उसे मै छोड़नेका प्रयत्न भी नही करता। मतलब यह कि इन दोषोके अनेक कारण या बहाने है। किन्तु किसीको उनका अनुकरण नही करना है। पत्रका यह अश सबको पढवाना। कब्ज आदि बीमारियोमे ये बुरी आदते भी एक कारण है। आश्रममे हम शारीरिक परिश्रम और कार्य को महत्त्व देते है। किन्तु उसमे भी जल्दबाजी या अत्युत्साहके लिए कोई स्थान नही होना चाहिए। जहाँ भी किसीको अपना काम ज्यादा बोझीला महसूस हो उसे चाहिए कि वह उसे हलका कर ले। हम यह नही चाहते कि कोई भी अपनी शक्तिसे ज्यादा काम करे। आश्रममे सब अपनी स्वेच्छासे रह रहे है। वहाँ किसीको कामका बोझ नही महसूस करना चाहिए।

डॉ० शर्माको लिखा पत्र पढना। उसके साथ बातचीत करना। उसे जो भी सुविधाएँ चाहिए, देना। मैने जिनके नाम बताये है उन्हे तथा अन्य बीमारोको उसे

दिखाना। इलाजके परिणाम तथा अपनी रायसे मुझे अवगत कराना। उनके नाम अपने पत्रमे मैं काफी लिख चुका हूँ इसलिए यहाँ उसे दुहराता नही हूँ।

वालजी का लेख नही मिला। किन्तु वह मुझे उसकी नकल दे गया है।

गाडीव कहाँ भेजना है, उसका पता क्या मै तुम्हे दे चुका हूँ? पतेमे थोडा-सा परिवर्तन हुआ है.

श्री हरिभाऊ फाटक
पायनियर डाइग वर्क्स
सदाशिव पेठ
पूना सिटी

लक्ष्मीवहन, नर्मदा भुस्कुटे और अमतुस्सलाम, यदि डॉ० शर्मा अनुमति दे और वे आना ही चाहे तो, अगले शनिवारको आ जाये। सम्भव है कि यह पत्र तुम्हे समयसे न मिले अत आज तार[1] कर रहा हूँ।

रामजी ने भाई राजभोजके साथ वातचीत करनेकी इजाजत माँगी है। तुम्हे यदि यह ठीक लगे तो राजभोजके साथ तुम स्वय ही करा देना। वह स्वभावमे सशयी है इसलिए सम्भव है कि इसका उलटा अर्थ करे। अत तुम स्वतन्त्र रूपसे विचार कर लेना और जो उचित जान पडे सो करना।

वापू

[पुनश्च.]

एक वात भूला जा रहा था। नी० का नाम तो तुम जानते हो। कुछ दिन हुए वह मेरे पास आई थी। उसका एक लडका उसके साथ है। उसके खिलाफ आलोचना सुननेमे आई थी इसलिए मैंने उसे यहाँ वुलाया था। वह वगलोरमे हरिजन-सेवाका कार्य करती थी। कुशल है। अमेरिकाकी है और विवाह उसने ग्रीसमे किया है। उसके पिता रगशालाओंके सज्जाकार थे। वह स्वय नाटकोमे अभिनय करना जानती है। नृत्य आदि जानती है। लगभग तीन वर्ष पहले तुमने पढा होगा कि उसने काश्मीरमे हिन्दू धर्म स्वीकार किया था और वह आश्रममे आनेकी तैयारी कर रही थी। वात सच थी। किन्तु यह भी सच है कि उसका मन जाग्रत नही था। उसका चारित्रिक स्खलन हुआ है, कई लोगोसे उसने पैसा भी लिया है। मेरे पास आई तो उसने अपने ये सारे दोष स्वीकार किए और यह प्रतिज्ञा की कि अव वह अपना शेष जीवन हरिजन-सेवामे वितायेगी। उसकी उम्र, उसके अनुसार, २४ वर्षकी है। होटलसे वह सीधी हरिजनोंके वीच रहने चली गई। इस समय वगलोरसे दूर हरिजनोके एक गाँवमे रह रही है। मुझे पत्र लिखती रहती है। मुझे लगता है कि उसकी वृत्ति वदली है और वह सही रास्तेपर है। मैंने उसे यहाँ आनेके लिए तार दिया है। मेरी इच्छा उसे अन्तमे आश्रम भेजनेकी है। आश्रममे उसे प्रवेश देनेमे मै कोई डरकी वात नही देखता। नियमोका पालन करेगी तो

१. देखिए अगला शीर्षक।

रहेगी। सब सोच-विचारकर मुझे अपनी राय बताना। मुझसे कुछ और पूछना चाहो तो पूछना। पूरकी पुस्तक उसे फिलहाल भेजनेकी जरूरत नही है। अभी वह यहाँ आई नही है।

बापू

[पुनश्च :]

[साथके पत्र] शर्मा. छोटूभाई, कुसुम, रमा, आनन्द, लीलावती, मणि, धीरू, जमना, राजभोज, अमतुल, प्रेमा, अमीना, घनजय बाबू।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

५१२. तार : नारणदास गांधीको

१९ अप्रैल, १९३३

आश्रम
साबरमती

लक्ष्मीबहन, नर्मदा, और डाक्टर सलाह दे तो अमतुस्सलाम शनिवारको एक बजे आ सकती है।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८४०० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

५१३. पत्र : अमतुस्सलामको

[१९ अप्रैल, १९३३ के पश्चात्][1]

बेटी अमतुस्सलाम

मैंने तो तुम्हारे आनेका तार भेजा। लेकिन डा० साहबने नही आने दी ठीक हुआ। कमजोरीमे मुसाफरी करना अच्छा नही है। डा० कहे ऐसा करो। खुदा अच्छा करेगा। सेवा करनेकी फिकर मत करो। अच्छी हो जाएगी तब सेवा करनेका मौका पड़ा है।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २८२) से।

१. देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको", १९-४-१९३३।

५१४. पत्र : मीराबहनको

२० अप्रैल, १९३३

सुबह ३ बजे आरम्भ और ४ बजे समाप्त किया।

चि० मीरा,

आश्रमके संचालनके बारेमे विचार व्यक्त करते हुए लिखा तुम्हारा पत्र कल, अर्थात् बुधवारको आया।

हमारे आदर्श शायद कुछ भिन्न है। मेरी सकल्पनाका समाज कमसे-कम एक बडे लम्बे अर्से तक एक मिलाजुला समाज ही रहेगा। आदर्श तो आदर्श ही होना चाहिए। कुछ लोग उसे अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त करेगे और कुछ कम। तुम देखोगी कि परिभाषाके अनुसार एक ही आदर्श है, जिसे पूरे तौरपर प्राप्त किया जा सकता है; और वह है सत्यका आदर्श। कारण, किसी समय कोई व्यक्ति जिसे सत्य मानता है वही सत्य है; इसमे किसी भ्रमकी गुंजाइश नही होती। सत्य सदा ही अभौतिक रहेगा, जबकि अन्य सभी संकल्पोका अपना एक प्रत्यक्ष भौतिक पक्ष रहता है और इसलिए उनमे विभिन्न श्रेणियाँ रहना अनिवार्य है। उदाहरणके लिए, अहिंसाको लो। कोई तो अहिंसाका इतना ही पालन करके सन्तुष्ट हो जायेगा कि वह मनुष्य और पशुकी हत्या न करेगा। पर दूसरा व्यक्ति कीडे-मकोडोके प्रति, और तीसरा कोई व्यक्ति वनस्पति जीवनके प्रति भी अहिंसक रहनेका आग्रह करेगा। साँप या बिच्छू को मारना हम कोई अक्षम्य अपराध नही मानते। और अपरिग्रहको लो। इसमे तो मेरे और तुम्हारे विचार भी एकसे नही है। मै फाउटेन पैन रख सकता हूँ, तुम उसे त्याग सकती हो। मेरे पास दस गज और तुम्हारे पास बीस गज खादी हो सकती है। भौतिक या मूर्त्त अभिव्यक्तिकी गुंजाइश करनेवाले इन सब अन्य व्रतोके पूर्ण तथा समान पालनकी बात ही नही उठती। वे एकमात्र महान् प्रयोजन और आदर्श अर्थात् सत्यके सहायक, पूरक हैं। (मान लो) कुसुम अपनी मृत्यु-शय्यापर पड़ी हुई ऐसी सैकड़ों वस्तुओकी आकांक्षा करती है जिनकी मुझे कोई आकाक्षा न हो, लेकिन यदि हम दोनो मन, वचन और कर्मसे सत्यनिष्ठ हो तो वह भी आश्रमके आदर्शके पालनकी कसौटीपर उतनी ही खरी उतरेगी जितना कि मैं।

यदि तुम यहाँतक मेरा आशय बराबर समझती आई हो, तो तुम एकदम समझ जाओगी कि हमे शाखाओमे विभाजित होनेकी कोई जरूरत नही, विभाजित होना ही नही चाहिए। मिलाजुला जीवन जीते हुए, हममें से प्रत्येकको अपना अधिकतम विकास करना चाहिए। मैं यदि अब चौसठ वर्षकी अवस्थामे भी ब्रह्मचर्यका पालन नही कर सकता, विनम्रताके साथ अपनी यह अक्षमता स्वीकार करके मुझे आश्रमसे छुट्टी ले लेनी चाहिए। और इसपर किसीको मेरे ऊपर अगुली नही उठानी चाहिए।

मुझे मन, वचन और कर्मसे सत्यनिष्ठा बरतनेके साहसका श्रेय दिया जाना चाहिए वैसा करने पर आशा की जा सकती है कि मैं शायद ब्रह्मचर्यके पालनके योग्य भी बन सकूँगा। लेकिन, उदाहरणके लिए, [1] से — यदि वह बाहरसे कायिक ब्रह्मचर्य का पूरा-पूरा पालन करते हुए भी वासनाका शिकार बनकर लडकी या लड़कियोके पीछे भागता रहा है तो — ऐसी कोई आशा नही की जा सकती। आश्रमको कलकित . . .[2] ने किया है, मैंने नही।

इसलिए यदि हमे सहिष्णुता और सत्यका पालन करना है तो हमारी एक ही सस्था हो सकती है, जिसमे तुमको अपने विकासकी और सदाकी बीमार कुसुमको उसके अपने या . . .[3] तितलीको भी उसके अपने विकासकी पूरी गुजाइश मिलनी चाहिए, बशर्ते कि तुम तीनोमे से कोई एक क्षणके लिए भी धोखा न दे और आश्रमके आदर्शमे पूरा विश्वास रखे तथा उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करे।

अब किंचित् भिन्न या परिवर्तित तुम्हारा प्रस्ताव — एक या अनेक पृथक् सस्थाओ के निर्माणका प्रस्ताव आता है। एक आश्रम वर्धामे है, जिसका प्रधान विनोबा है। वह मूल सस्थाका ही एक अग है और उसके आदर्शपर अमल करनेका यथाशक्य प्रयत्न कर रहा है। क्या मैंने तुमको बतलाया था कि वह मेरी पूरी रजामन्दीसे भागकर वहाँसे सिर्फ दो मील दूर एक हरिजन गाँवमे बस गया है। हो सकता है कि वहाँ अपनी एक छाप छोड़कर वह किसी सहयोगीको लेकर या बिना किसी साथी के ही रेलवे लाइनसे पचास मील या इससे भी अधिक दूर कही चला जाये, लेकिन उस दशामे भी वह मूल सस्थाके आदर्शकी पूर्ति करेगा और उसका एक अविभाज्य अग बना रहेगा। यदि हम यह मानकर चले कि . . .[4] भी उतना ही सत्यनिष्ठ है जितना कि विनोबा और . . .[5] भी आश्रमके आदर्शपर उतना ही अमल कर रहा है जितना कि विनोबा तो विनोबा किसी भी तरफसे . . [6] से श्रेष्ठ नही ठहरता। क्या तुम इसे पूरी तौरसे समझ पाई हो?

एक और भी शाखा है जो अलमोडमे बडी-बडी आबादियोसे दूर, रेलवे लाइन से बहुत दूर तैयार हो रही है। सघर्षरत प्रभुदास आजकल उसका कार्य-भार स्वय सँभाले हुए है। लेकिन मैं कह नही सकता कि वह आगे चलकर कैसी निकलेगी। हो सकता है कि वह सदाके बीमारोका एक आरोग्याश्रम बनकर रह जाये, या हो सकता है, कुछ ऐसे लोगोका स्थायी अथवा अस्थायी आश्रम बन जाये जो अपने विकासके लिए एकान्त चाहते है। हम यदि अपने आश्रमसे असत्यको निकाल बाहर करने और सत्यमय जीवन तथा केवल सत्यके लिए ही जीना सीखनेमे लगातार सफलताएँ प्राप्त करते चले जाये, तो हमारी लाखो शाखाएँ खडी हो सकती है, जिनमे न कोई श्रेष्ठतर होगी और न कोई निम्नतर। तब ऐसी सभी शाखाएँ अपनी तपी-तपाई मूल सस्थाकी अभिव्यक्तिके रूपमे और उसके लिए अपेक्षित होगी। पता नही, मै अपने विचारोको इस तरह रख पाया हूँ या नही कि तुम समझ सको।

१ से ६. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

जितनी बात तुमको ठीक लगे उतनीका अनुसरण करो। इस सप्ताह या को कोई पत्र नहीं लिख रहा हूँ।

हम सबकी ओरसे सबको स्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

पिछले सप्ताहकी डाक शुक्रवारको दी गई थी और पवित्र कार्ड रजिस्टर्ड बुक पोस्टसे भेजे गये थे।

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६७५) से, सौजन्य : मीराबहन

५१५. पत्र : पी० एच० गद्रेको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और नासिकमें हरिजन बस्तियोंके बारेमें आपकी टिप्पणी दोनों मुझे मिल गये हैं।[1]

सेठ मथुरादास वासनजी से आप क्या सहायता चाहते हैं? यदि मुझे ठीक-ठीक मालूम हो, तो मैं शायद कुछ कर सकूँ।

अन्य सन्तोंके उद्धरणोंके बारेमें आपने जो लिखा, मैंने देख लिया है।[2]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एच० गद्रे
वकील
नासिक

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९९७) से।

१. नासिकके भंगियों और महारोंके बारेमें गांधीजी द्वारा माँगी गई रिपोर्ट; देखिए "पत्र : पी० एच० गद्रेको", ४-४-१९३३।

२. पी० एच० गद्रे रिपोर्ट तैयार करनेमें व्यस्त रहनेके कारण महाराष्ट्रके सन्तोंके उद्धरण गांधीजी को नहीं भेज पाये थे।

५१६. पत्र : दौ० गु० जाधवको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

इसी महीनेकी १७ तारीखका आपका पत्र[1] मिला। मैं तो समझता हूँ कि जाति से बहिष्कृत महार मित्रोको वहिष्कृत करनेवाली महार पचायतसे कोई वाद-विवाद या झगड़ा किये बिना अपने सकल्पपर अटल रहना चाहिए और यदि वे आत्म-सम्मानयुक्त मौन रखते हुए कष्ट झेले तो आप देखेंगे कि बहिष्कार बिलकुल ही निष्प्रभाव साबित हुआ है। शिक्षित महारोको बहिष्कारके प्रतिबन्धसे मुक्त रखा गया है, यह अपने-आपमे बतलाता है कि उसमे कोई जान नही है। मेरा खयाल है कि आपको लगनके साथ, चुपचाप उनके बीच काम करते रहना चाहिए और उन लोगोकी सेवा करनेकी कोशिश करनी चाहिए जो सुधारकोका बहिष्कार करानेके साधन बने है; और यदि आप दोनो पक्षोकी सेवा करते रहे तो आप दोनोके बीच सम्बन्ध जोड़नेवाली एक कडी बन सकते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत दौलत गुलाजी जाधव
वाघली,
चालीसगाँव (पूर्व खानदेश)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००३) से।

५१७. पत्र : कमलादेवीको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय कमलादेवी,

आपका पत्र मिला। अगले सोमवारको दोपहर दो बजे आनेकी कृपा कीजिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००८) से।

१. दौलत गुलाजी जाधवने गांधीजी को सूचित किया था कि नीची मानी जानेवाली मांग-जातिके लोगोंके साथ चाय पीनेके कारण अनेक महारोंको जातिसे वहिष्कृत कर दिया गया है, परन्तु शिक्षित होनेके कारण स्वय उन्हें बहिष्कारसे मुक्त रखा गया है।

५१८. पत्र : आर० मगुडेश्वरन्को

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पोस्टकार्ड मिला। आप सोमवार, १ली मईको दोपहर तीन बजे मुझसे मिल सकते हैं। कृपया आधे घंटेसे अधिक समय मत लीजिएगा। पर यदि अस्पृश्यताके सम्बन्धमें कुछ बहुत ही निश्चित और सचमुच महत्त्वपूर्ण प्रश्न आपके पास पूछनेको न हो, तो मैं कहूँगा कि इतनी दूर दक्षिणसे यहाँतक आप क्यों आये।[1]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० मगुडेश्वरन्
मार्फत – राजगा स्वामीनाथ अय्यर
तिरुवाडी
(तंजौर जिला)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००१) से।

५१९. पत्र : जी० वी० मोडकको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय कैप्टन मोडक,

आपका पत्र मिला। आपकी पुस्तक[2] सुपरिटेंडेटने रोक ली है। क्योंकि उनकी रायमें वैसी पुस्तकें मुझे देनेकी अनुमति नहीं है। इसलिए आप जबतक सरकारकी अनुमति प्राप्त न कर ले, वह पुस्तक मुझे नहीं दी जा सकती।

हृदयसे आपका,

कैप्टन जी० वी० मोडक
मार्फत – एस० आई० सोसाइटी
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००७) से।

१. अस्पृश्यताकी समस्यासे सम्बन्धित मगुडेश्वरन्की कुछ शंकाएँ थीं उनका विचार था कि उनका समाधान वे गांधीजी से स्वयं चर्चा करके ही पा सकते हैं।

२. रायल इंडियन आर्मीके सम्बन्धमें जानकारी जुटानेवाली।

५२०. पत्र : नारायणको[1]

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मुझे मिला। आप किसी मूर्तिकी पूजा करे या मन्दिरमे हो या गिरजे अथवा मसजिदमे या खुले आकाशके नीचे ही हो, प्रार्थना तो आप एक ईश्वरकी ही करते है, ईश्वर जो सर्वव्यापक है, जो सब-कुछ देखता है, जो सब-कुछ सुनता है।

ब्रह्मचारीका पीत वस्त्र धारण करना मै बिलकुल भी जरूरी नही मानता। प्राचीन कालमे अवश्य ही यह ब्रह्मचारियोको गृहस्थोसे पृथक् दिखानेका एक प्रतीक था और यो किसी सस्था या सम्प्रदाय-विशेषके सदस्य चाहे तो अपने लिए एक विशेष पहनावा अपना सकते हैं।

मै समझता हूँ श्राद्धके[2] अवसरपर अपने हरिजन या अन्य सहपाठियो या सहयोगियोमे कोई भेदभाव न वरतकर आपने वहुत ही ठीक किया है।

हृदयसे आपका,

डॉ० नारायण
गुरुकुल सेवा सघ
पो० आ० केगरी
वगलोर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९९५) से।

५२१. पत्र : डॉ० एम० ए० नारायणको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझसे ऐसी उम्मीद नही की जानी चाहिए कि मै अपरिचित व्यक्तियोके व्यक्तिगत चरित्रके बारेमे कोई फैसला दूंगा। अस्पृश्यताके कार्यक्रम पर अमल करनेका तरीका जनताको वतला दिया गया है। अब आम तौरपर सब

१. युवा नारायण चार वर्ष पूर्व एक 'रेजिडेंशल इन्स्टीट्यूशन' में शामिल हो गये थे, जिसका उद्देश्य देहातका पुनरुत्थान करना और मुफ्त डाक्टरी सहायता पहुँचाना था। इसका विवरण २२-४-१९३३के *हरिजन*में प्रकाशित हुआ था।

२. नारायणके पिताका।

जानते हैं कि इस सेवा-कार्यके लिए उन लोगोको ही आगे आना चाहिए जिनका चरित्र शुद्ध और भावना धार्मिक हो, अन्य लोगोको नही।

हृदयसे आपका,

डॉ० एम० ए० नारायण
मार्फत — न्यू फार्मसी
२३, ४४वी स्ट्रीट
रगून

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००५) से।

५२२. पत्र : टी० प्रकाशम्‌को

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय प्रकाशम्

सलग्न कागजात[1] मैंने हरिजन सेवक सघके प्रान्तीय बोर्डको भेजे थे। वहाँसे इनको यह कहकर लौटा दिया गया है कि यह विषय उनके अधिकार क्षेत्रमे नही आता और मुझे ये आपके पास भेजने चाहिए। इसलिए अब आपको भेज रहा हूँ। लिखिए कि इस मामलेमे आप क्या कर सकते है।

आशा है आप स्वस्थ होगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००४) से।

५२३. पत्र : एम० शेषगिरि रावको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जिस तरहसे ब्योरेवार प्रश्न पूछे है, उस तरह पूछकर गलत किया है और अब अगर मैं उन सब प्रश्नोके उत्तर दूं तो यह धृष्टता होगी और इसलिए गलत भी। सत्यका पालन हर कीमतपर करना ही चाहिए — मोटे तौरपर एक सिद्धान्त जान लेनेके बाद यह प्रत्येक व्यक्तिका अपना काम हो जाता है कि वह इस सिद्धान्तका पालन करनेकी अपनी क्षमताको देखते हुए उसे अपने जीवनमे उतारनेका ब्योरा खुद तैयार करे।

१. ये उपलब्ध नही हैं।

आपके पत्रसे मुझे ऐसा जरूर लगता है कि आपमे संकल्पकी दृढ़ता नही है, आप अपने उद्देश्यको ठीक-ठीक नही पहचानते और आपके लिए शायद यही अच्छा रहेगा कि आप अपने पिताके मरक्षणमे रहकर पहले इस ओरसे आश्वस्त हो जाइए कि आपने चारित्रिक शुद्धि और प्रामाणिकता प्राप्त कर ली है। आपको इसमे सफलता मिलनेपर शायद आपके पिता स्वय ही अपने विचार बदल देगे।

जहाँतक आपकी पत्नीकी बात है, मेरा खयाल है कि उसके वारेमें कोई भी फतवा देना आपके लिए बिलकुल गलत होगा। यदि आप उससे अधिक बुद्धिमान है तो आपको उसका मार्ग-दर्शक वनकर उसे सहृदयतापूर्ण ढगसे सही मार्गपर ले जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० शेषगिरि राव
मार्फत — बी० सूर्यनारायण
डाकिया
तेक्कलि (जिला गंजाम)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००६) से।

५२४. पत्र : एस० स्वामीनाथनको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[१] मै इतना ही कह सकता हूँ कि आप साप्ताहिक 'हरिजन' देखनेकी कृपा करे। उसके अंकोमे आपको मेरे विचार स्पष्ट रूपमे व्यक्त किए हुए मिल जायेगे। मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमे किसीको विवश करनेका कोई प्रश्न ही नही उठता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० स्वामीनाथन
११४६- अडियापिल्ले अग्रहारम्
करुणात्तमकुडि
तजौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९९६)से।

१. एस० स्वामीनाथनने-जाति प्रथाका समर्थन करते हुए लिखा था कि हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशसे सवर्ण हिन्दुओंकी भावनाओंको ठेस पहुँचेगी।

५२५. पत्र : नारणदास गांधीको

[२० अप्रैल, १९३३][1]

चि० नारणदास,

तुम्हारी बहुत-सारी चिट्ठियोंवाली डाक कल मिली। उसमें से कुछ बातोंका निर्णय तुरन्त होना चाहिए, इसलिए यह पत्र आज ही लिख रहा हूँ।

लक्ष्मीबहन एक वर्षके लिए जानेको[2] राजी है, यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी। अब मैं इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार करूँगा। मुझे लगता है कि जो-कुछ भी होगा अब जमनालालजी के जेलसे बाहर आनेपर ही होगा। दो बहनोंके एक साथ जानेकी जरूरत शायद नही होगी।

यदि चिमनलाल हिम्मत हार जायेगा तो हमारा काम कैसे चलेगा?

डॉ० तलवलकरका पत्र पढनेके बाद ऐसा लगता है कि कुसुमको अभी उन्हींके इलाजमें रखना ठीक होगा।

पन्नालालको लिखा पत्र रखना और यथासमय उसे देना।

तुम्हारे किए हुए परिवर्तन ठीक ही प्रतीत होते हैं। प्रेमाका बोझ अवश्य कुछ कम किया जाना चाहिए। उसका बोलना बन्द नही हुआ तो मुझे लगता है कि कभी कोई सकटकी स्थिति पैदा हो जायेगी। इस मामलेमें तुम उसके साथ सख्त रहना।

परचुरे शास्त्री जितनी कक्षाएँ ले सके उतनी लेने देना। अगर लोग उनसे 'गीता' का शुद्ध उच्चारण करना सीख गये तो इसे मैं एक बड़ा लाभ मानूँगा।

हमारे पास जो पुस्तकें हैं वे तो उन्हे देना ही। उनका उपयोग किस तरह किया जाए, यह मैंने अपने पत्रमें समझाया है। उन्हें जो अन्य चार पुस्तकें चाहिए वे, काका कहते हैं, विद्यापीठमें हैं। पण्डितजी माँगे या नरहरि उन्हें लेने दें तो उन्हे हम आश्रमके लिए ले ले।

कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ तो हमे वहाँसे लेने ही हैं। इतना ही है कि इसमें थोड़ा समय लगेगा। शास्त्रीजी तबतक धीरज रखे।

गुजराती (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३६० से भी; सौजन्य: नारणदास गाधी

१. बापुना पत्रो–९: श्री नारणदास गांधीने, भाग २ में इस पत्रकी तारीख "२२ अप्रैलके आसपास" मानी है जो कि सही नहीं जान पड़ती। नारणदास गांधीको लिखे अपने २४ अप्रैलके पत्रमें गांधीजी "बड़ी डाकके बाद" तीन दिन तक कोई पत्र न मिलनेकी शिकायत करते हैं। गांधीजी ने यह पत्र "बड़ी डाकके" मिलनेके दूसरे दिन, अर्थात् १९ अप्रैलके अगले दिन २० अप्रैलको लिखा होगा।

२. वर्धाकी स्त्री-शिक्षण-संस्था 'महिला आश्रम' में गृह-व्यवस्थापिकाका पद सँभालनेके लिए।

५२६. पत्र : रामेश्वरलाल बजाजको

२० अप्रैल, १९३३

भाई रामेश्वरलाल,

काफी महीनोके बाद तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा व्यापार कैसा चल रहा है। यह तुमने नही लिखा। तुम कैसे रह रहो हो, लिखो। आशा है, तुम्हारा मन शान्त होगा। लन्दनके घरका क्या हुआ? धीरज रखनेसे सब-कुछ हो सकता है।

रुक्मिणि[1] अब देवलालीमे है। वह ठीक है। हम सब मजेमे है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०६४) से।

५२७. पत्र : फूलचन्द बापूजी शाहको

२० अप्रैल, १९३३

भाईश्री फूलचन्द,

बहुत दिनोतक वाट देखनेके बाद आखिर तुम्हारा पत्र मिला तो सही। हम सभी लोग सोच रहे थे कि तुम्हारा पत्र क्यो नही आया। अतः तुम्हारा पत्र मिलने पर हम सब लोग बहुत प्रसन्न हुए।

मेरे पत्रका क्या हुआ, यह बात कुछ समझमे नही आती। मै तो यह मानता हूँ कि हमे जो लिखना हो सो लिख डाले, फिर पत्र पहुँचे या न पहुँचे उसके लिए हम क्या करे?

हम सबका चक्र चलता रहता है।

तुम्हारे बढे हुए परिवारके बारेमें हम लोगोने बार-बार विचार किया, किन्तु वहाँ बहुत-से महारथी हैं इसलिए आशा है कि बिना किसी बखेडेके गाडी चल रही होगी। यदि रेलगाडी दुर्घटनाग्रस्त हो जाये तो बहुत-से लोग मरते है। किन्तु यदि देहाती गाडी हो और कुछ हो जाये तो हलका-सा झटका ही लगता है। उसकी थोडी-सी मरम्मत करके वे फिर चढ जाते है। रेलगाडीके युगके पहले दुनियाकी गति धीमी थी। किन्तु इसकी चर्चा इतिहासमे नही मिलती। दुर्घटनाओ और पागलखानोकी बढोतरीकी बात ही सुननेमे आती है। किन्तु सनातनी भाई कहते है कि मुझे यह सब

१. रामेश्वरलाल बजाजकी पुत्रवधू और मगनलाल गांधीकी पुत्री।

कहनेका अधिकार ही नहीं है, क्योंकि मैं रेलगाडी, डाक्टरों आदिके विरुद्ध लिखता तो हूँ लेकिन रेलगाडी मिलते ही मैं उसमें बैठा नजर आता हूँ। अगर इसी नहीं कि कानुगाके दवाखानेकी ओर साइकिल दौड़ती दिखती हैं। यह सच है, सनातनी बेचारे क्या जानें कि कोई पन्द्रह महीने हुए होंगे न तो मैंने रेलगाडीमें पैर रखा और न साइकिलपर किसीको डॉ० कानुगाके यहाँ भेजा।

सुरेन्द्रसे कहना कि खाँसी और मन्द ज्वर होना, यह आश्रमके नियमोंका उल्लघन माना जायेगा। इसका कारण क्या है? वह मुझे विस्तृत पत्र लिखे अथवा जिसकी लिखनेकी बारी हो वह लिखे। दरबारीकी तो कई पारी खाली होनी चाहिए। उनमें से भले एकका उपयोग मुझे लिखनेमें करे। आशा है सुरेन्द्रको बीमारकी खुराक मिलती होगी। शायद विट्ठल जानता होगा कि उसके पिता और बहनें आश्रममें लौट आये हैं।

स्वास्थ्य-रक्षाके बारेमें मेरे पास एक सुनहरी सुझाव है। जिसे जो चीजें अनुकूल न आयें उसे वे छोड देनी चाहिए। भूखे रहनेसे किसीको रोग नहीं होता, जबकि यह सिद्ध किया जा सकता है कि हजारमें ९९९ लोग अति भोजन या न खाने योग्य चीजें खानेसे बीमार पडते हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ कहा जा सकता है किन्तु वह निरर्थक है।

यदि अन्त्यजोंकी समस्याके बारेमें बात करनी हो तो तुम या अन्य कोई भाई मुझसे मिल सकते हो। किन्तु यदि उस सम्बन्धमें बात करनेको कुछ न हो तो न मिलना।

अब बाबलावाले अध्यापक, मोहनलालके प्रश्नोंके उत्तर :

१ यदि विचारपूर्ण अध्ययनमें मन न लगे तो भी उसके पीछे लगे रहना चाहिए। 'गीता' के शब्दोंमें इसका नाम अभ्यास है और अभ्याससे सही विचारधारा साध्य है। भगवान्‌ने उसमें वैराग्यको भी सम्मिलित कर लिया है। किन्तु दोनों वस्तुएँ एक ही हैं। यों कहा जा सकता है कि अभ्यासमें मन लगाना और अन्य वस्तुओंकी ओरसे उसे खींच लेनेका तात्पर्य है वैराग्य।

२ प्रसादको प्रसन्नताके नामसे पहचानें। जब हमें मनभाते ऐहिक पदार्थ मिलते हैं तब हम प्रसन्न रहते हैं किन्तु वह प्रसन्नता निरर्थक है क्योंकि वह इन्द्रियोंकी है। ऐहिक पदार्थ क्षणिक हैं अत यह प्रसन्नता भी क्षणिक है। पारलौकिक पदार्थ शाश्वत होते हैं अत उनसे उत्पन्न होनेवाली प्रसन्नता भी शाश्वत है। वह इन्द्रियग्राह्य नहीं बल्कि हृदयकी है। इसलिए जब इन्द्रियोंके प्रति उदासीनता उत्पन्न हो जाती है, तभी सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है। इस 'प्रसाद' की चर्चा 'गीता' में की गई है।

हम सबकी सबको राम-राम। रावजीभाईका पत्र मिल गया है। उसका उत्तर बादमें दूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६५१) से, सौजन्य : चन्द्रकान्त फू० शाह

५२८. तार: विट्ठलभाई झवेरभाई पटेलको

[२० अप्रैल, १९३३ या उसके पश्चात्][1]

पटेल
मार्फत ट्रेवेनेक्स
वियना

ईश्वर आपको जीवन-दान दे। सुधारका तार दीजिए।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २१०००) से।

५२९. भक्तिधारा कैसे बहे?

[२१ अप्रैल, १९३३][2]

एक भागवत धर्म-प्रेमी लिखते हैं:[3]

भक्ति-धारा लेखनीसे नहीं बह सकती। वह बुद्धिका विषय ही नही है। यह झरना तो हृदयकी गुफामें से ही फूट सकता है; और जब वहाँसे फूट निकलेगा, तब उसके प्रवाहको कोई भी शक्ति नही रोक सकेगी। गगाके प्रबल प्रवाहको कौन रोक सकता है?

ऐसी भक्तिके लिए मैं प्रयत्नशील अवश्य हूँ। लेकिन यह प्रयत्न शब्दाडम्बरसे सिद्ध होनेका नही। इसके लिए तो कर्मयोग ही एकमात्र मार्ग है। इस योगमे पूरी तरह निष्काम होना आवश्यक है। निष्काम कर्मका ही तो दूसरा नाम कर्मयोग है।

इसलिए भक्ति-धारा बहानेके लिए मुझे किसी खास लेखकी आवश्यकता प्रतीत नही होती। अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी 'हरिजन' का प्रत्येक शब्द यदि भीतरी भक्तिका द्योतक होगा, तो अपने-आप उसका प्रभाव पडेगा।

१. इस तारका मसविदा २० अप्रैल, १९३३ को प्राप्त डॉ० पुरुषोत्तम पटेलके तारपर ही लिखा गया था। डॉ० पटेलने यह तार गांधीजीके १९ अप्रैल, १९३३ के तारके उत्तरमें भेजा था; देखिए "तार डॉ० पुरुषोत्तम पटेलको", १९-४-१९३३।

२. देखिए "पत्र: वियोगी हरिको", २१-४-१९३३।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। संवाददाताने गांधीजी से प्रार्थना की थी कि हरिजनके प्रत्येक अंकमें वे 'भक्ति' पर एक लेख दें जिससे कि जनसाधारण व्यर्थकी चर्चामें न पड़कर विशुद्ध भक्ति-मार्गका अनुगमन कर सके। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि इस नास्तिक युगमें केवल गांधीजी ही यह कार्य कर सकते हैं।

भागवत धर्म-प्रेमीके आशयको मैं समझ गया हूँ। अगर मेरे अन्दर यह भक्ति होगी और जितनी होगी, तो उसी मात्रामें विना प्रयत्न किये उसका स्पर्श दूसरोंको अवश्य होगा, क्योकि मैं मानता हूँ कि हृदय-परिवर्तन एकमात्र भागवत धर्मसे ही हो सकता है। यह धर्म सक्रामक है। प्रकट होनेके वाद किसीको यह अछूता नही छोडता। जव हममे से किसीमे सचमुच यह प्रकट हो जायेगा, तव हरिजन और सनातनी अपने-आप ही इसे पहचान लेगे। कमसे-कम अपने लिये मैं कह सकता हूँ कि मेरे सव कार्य — क्या लिखना, क्या वोलना — मुझमे यही भक्ति पैदा करनेके लिए है। मेरा दृढ विश्वास है कि हिन्दू धर्मको विनाशसे वचाना है, तो इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग है ही नही।

गुडेवाजीसे अथवा पाखण्डसे, वाक्चातुर्यसे अथवा ललित लेखोंसे धर्मकी रक्षा न तो कभी हुई है, न होगी। धर्म-रक्षा तो धार्मिक व्यक्तियोकी आत्म-शुद्धि और तपश्चर्यासे ही हो सकती है। भागवतकारने स्पष्ट कह दिया है कि इस युगमे भगवद्-भक्तिका मार्ग ही सुलभ है और शायद वह एक ही मार्ग है।

तव मैं क्यो लिखता हूँ, क्यो वोलता हूँ, ऐसा प्रश्न उठ सकता है। उत्तर मेरे उक्त कार्योंमे ही निहित है। यही प्रवृत्तियाँ वताती है कि भागवत धर्मका पूर्ण विकास मुझमे नही हुआ है, मेरी ये प्रवृत्तियाँ भी उसीके विकासके लिए है, और सचमुच कुछ विकास हुआ होगा तो उनमे कही-न-कही भक्तिका कुछ दर्शन तो औरोंको होना ही चाहिए।

[गुजरातीसे]
हरिजनवन्धु, ३०-४-१९३३

५३०. वर्ण-धर्मपर पाँच प्रश्न

एक सज्जनने ये प्रश्न लिख भेजे है :

१. आजीविकाके लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्या-क्या कार्य करें?

२. सेवाके लिए चारों वर्ण क्या-क्या कार्य करे?

३. सेवाका कार्य और आजीविकाका कार्य एक ही हो सकता है, अथवा आजीविकाका कुछ और हो और सेवाका कुछ और?

४. आपने लिखा है कि "इस वर्ण-धर्मका पालन फिरसे सम्भव वनानेके लिए सवको स्वेच्छासे शूद्र-धर्म स्वीकार करनेकी आवश्यकता है।" यदि शूद्रेतर वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) शूद्र-धर्मको स्वीकार करेंगे, तो क्या उन्हे स्वधर्म छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार करनेका दोष न लगेगा?

५. आपने लिखा है कि "ब्रह्मज्ञानका प्रयत्न करनेवाला सद्भाग्यसे आज एक छोटा-सा वर्ण मौजूद है जिससे कि शुद्ध सनातन धर्म फिर अपना तेज प्रकट करेगा और जगत्को कल्याणका मार्ग वतायेगा।" वह वर्ण कौन-सा है?

किसीको प्रश्न करनेसे मै रोकना नही चाहता। किन्तु इतना कहना मै आवश्यक समझता हूँ कि बहुत-से प्रश्न तो असली लेख मननपूर्वक पढनेसे ही हल हो जाते है। ऐसा लेख, जिसमे उसके अन्तर्गत प्रश्न हल न हो सके. निकम्मा माना जा है। नैतिक लेख एक ही बार पढ़कर छोड़ने नही चाहिए। ऐसे लेख यदि बार-बार मनोयोगपूर्वक पढ़े जाये, तो उनके अन्तर्गत प्रश्न आप ही स्पष्ट हो जाते है। अत. मै प्रश्नकर्तासे विनय करूँगा कि वे मेरे वर्णाश्रम-सम्बन्धी लेख फिरसे पढ़े तो उन्हे मालूम हो जायेगा कि जो-कुछ मै यहाँ लिखूंगा वह सब उन लेखोमे मौजूद है। मेरी यह सूचना सर्वसाधारणके लिए है। खासकर प्रश्नकर्ताके लिए यह सूचना है, ऐसा वह न समझे। वाचन-व्यसन तो हम लोगोमे बढ़ रहा है, पर मनन करनेकी आदत छूटती जा रही है, इसलिए हम पराधीन-से बन गये है। हर बातमे दूसरोका अभिप्राय हम जानना चाहते है। अपनी विचार-मौलिकता तो, जो निरन्तर मननसे पैदा होती है, हमने खो दी है। ऐसी स्थितिका पैदा होना सचमुच दयनीय बात है। सिद्धान्त मिल जानेपर उपसिद्धान्त समझ लेनेकी शक्ति हममे होनी चाहिए। थोड़े ही अभ्याससे यह शक्ति पैदा की जा सकती है।

अब प्रश्नोके उत्तर देखे·

१ ब्राह्मण समाजको ब्रह्मज्ञान देगा। क्षत्रिय राष्ट्रकी रक्षा करेगा। वैश्य व्यापारादिसे धनोपार्जन करेगा। शूद्र परिचर्या करेगा। अपने-अपने कर्तव्य कर्मसे ही सभी अपनी-अपनी आजीविकाका उपार्जन करेगे, बस यह काफी है।

२. वर्ण असलमे धर्म है, अधिकार नही। इसलिए वर्णका अस्तित्व केवल सेवाके लिए ही हो सकता है, स्वार्थके लिए नही। इसी कारण न तो कोई उच्च है, न कोई नीच। ज्ञानी होते हुए भी जो अपनेको दूसरोसे उच्च मानेगा, वह मूर्खसे भी बदतर है। उच्चताके अभिमानसे वह वर्णच्युत हो जाता है। यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि वर्ण-धर्ममे ऐसी कोई बात नही है, कि शूद्र ज्ञानका सचय अथवा राष्ट्रकी रक्षा न करे। हाँ, शूद्र अपने ज्ञानके विनिमयको अथवा राष्ट्र-रक्षाको अपनी आजीविकाका साधन न बना ले। ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय परिचर्या न करे, यह भी बात नही है। परन्तु परिचर्याके द्वारा आजीविका न चलाये। इस सहज स्वाभाविक धर्मका यदि सर्वथा पालन किया जाये, तो समाजमे जो उपद्रव आज हो रहे है, एक-दूसरेके प्रति जो द्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्धा बढ रही है, धन इकट्ठा करनेके लिए जो कष्ट उठाये जा रहे है, असत्यका जो प्रचार हो रहा है और जो युद्धके साधन तैयार किये जा रहे है वह सब शान्त हो जाये। इस नीतिका पालन सारा ससार करे अथवा न करे, सभी हिन्दू करे या न करे, पर जितने लोग इस व्यवस्थापर चलेगे उतना लाभ तो ससारको होगा ही। मेरा यह विश्वास बढ़ता ही जाता है कि वर्ण-धर्मसे ही जगत्का उद्धार होगा। वर्ण-धर्मका सच्चा अर्थ सेवा-धर्म है। जो-कुछ किया जाये वह सेवाभावसे ही किया जाये। सेवामे सौदा कहाँ?

अब शारीरिक श्रमकी बात आती है। जहाँतक मै 'गीता' समझता हूँ उसमे यज्ञके कई प्रकार है। उन यज्ञोमे एक शरीर-श्रम भी है। 'लोक-सग्रह' के लिए शरीर-श्रम यज्ञ-रूपमे करना सभी वर्णोका धर्म है। इस यज्ञसे कोई नही बच सकता। बिना

शरीर-श्रमके तो शरीर-यात्रा ही असम्भव है। जो यह श्रम-रूपी यज्ञ नहीं करता, वह निश्चय ही चोरी करता है। यह कथन कि शरीर-श्रम केवल शूद्रका ही कर्म है, धर्म-विषयक अज्ञान ही प्रकट करता है। परिचर्याका अर्थ शारीरिक श्रम नहीं है। जो मनुष्य अपना जूठा बर्तन धो लेता है, वह शरीर-श्रम करता है, परिचर्या नहीं। जो मनुष्य आजीविकाके लिए दरवाजेपर बैठकर चौकी-पहरा देता है, वह शरीर-श्रम नहीं करता, किन्तु परिचर्या अवश्य करता है।

३. इस प्रश्नका उत्तर देनेकी अब आवश्यकता नहीं रह जाती।

४. यह प्रश्न करते समय प्रश्नकर्ता कदाचित् भूल गये कि मेरा अभिप्राय यह है कि आज वर्ण-धर्मका प्राय नाश हो गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कबसे अपना-अपना वर्ण-धर्म छोड़कर अधिकार ले बैठे है। दोष तो हो ही चुका है। अब स्वेच्छासे शूद्र-धर्म स्वीकार करके वर्ण-च्युत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य दोष-मुक्त होनेका आरम्भ कर सकते हैं। शूद्रको तुच्छ या नीच समझनेका उनका धर्म कदापि नहीं था।

५ जो लोग भागवत धर्मका हार्दिक पालन करते हैं, 'प्रभु-प्रीत्यर्थ' केवल आजीविका प्राप्त करके जो सतत लोक-सेवा करते हैं, वे अपने आचरणसे ससारको ब्रह्मज्ञान देते हैं, इसमे सन्देह नही। उनमे विद्वान् भी है और अविद्वान् भी वे अपना कार्य किसीको दिखानेके लिए नही करते। उन सबका नाम मैं नही जानता। लेकिन मेरा विश्वास है कि ऐसे लोग मौजूद है, यद्यपि उनकी सख्या बहुत कम है।

हरिजनसेवक, २१-४-१९३३

५३१. अजन्माका जन्म कैसे ?

मन्दिर सम्बन्धी जिनकी कई उलझनोपर मैंने एक लेख[1] लिखा था वही शिक्षक फिर लिखते है :

> **जो अज है, अमर है, सृष्टिकर्ता है उसका जन्म कैसा? हिन्दू धर्मके मूल ग्रन्थ चारो वेदोंमें तो 'अवतार' शब्द तक नहीं आया है। अवतारवादको स्पष्ट करनेवाला यदि कोई ग्रन्थ आपकी दृष्टिमें हो तो मुझे लिखें। एक सत्य-शोधककी दृष्टिसे अवतारवादका अध्ययन कर लेनेकी मेरी इच्छा अवश्य है।**

हिन्दू धर्ममे बहुत-से धार्मिक सिद्धान्त बुद्धि-ग्राह्य है और कई बुद्धिसे अतीत हैं। अवतारवाद बुद्धिका विषय है और श्रद्धाका भी। और क्योकि वह श्रद्धाका भी विषय है, इसलिए जैसे भौतिक विषयोको समझानेवाले ग्रन्थ मिलते है, वैसे अवतारवादपर कोई ग्रन्थ है, यह मै नही जानता। अग्रेजीमे कुछ ग्रन्थ इस विषयपर लिखे गये है सही, लेकिन वे भी बुद्धिको पूर्ण सन्तोष नही देते। सम्भव है, सस्कृतमे इस विषयके कुछ ग्रन्थ हो, पर मुझे उनका पता नहीं। अवतारपर जो मेरी श्रद्धा जम गई है उसका कारण भक्तवर तुलसीदासजी हैं, ऐसा मै मानता हूँ। मै तो प्रश्नकर्ता शिक्षक-जैसे सत्य-शोधकको तुलसीदासजी के ग्रन्थोका अनुशीलन करनेकी सलाह दूँगा। कोई

१. देखिए "कुछ उलझन-भरे प्रश्न", १८-३-१९३३

सज्जन इस विषयकी कोई पुस्तक जानते हो, तो कृपाकर उसका नाम लिख भेजे, मै उसकी सूचना उक्त शिक्षकको दे दूँगा। पर अवतार-जैसे विषयपर ग्रन्थकी आवश्यकता कम है, मननकी अधिक है।

अब थोडा बुद्धिवादपर विचार कर लेना चाहिए। जो गुण परमात्माके माने जाते है, वही आत्माके भी माने जाते है। जिस प्रकार परमात्मा अज, अजर, अमर है उसी तरह आत्मा भी है। आत्मा परमात्माका सनातन अश है, तभी तो उसमे परमात्माके गुण है। आत्मा अज है, तो भी शरीररूपमे जन्म लेती है, इस कारण उसे परमात्माका अशावतार मानना पडेगा। यदि ऐसा हम मानते है, तो जिसमें परमात्माके बहुत-से गुणोका आविर्भाव देखनेमे आता है, उसे ईश्वरावतार मान लेनेमें कोई बाधा नही आ सकती। पूर्णावतार-जैसी कोई बात बुद्धिसे सिद्ध नही हो सकती। यह विषय काल्पनिक है और श्रद्धामूलक भी। हिन्दू पूर्वजन्म और इस जन्मके सस्कारो के कारण राम, कृष्ण इत्यादिको ईश्वरावतार मानेगे। विश्व-मात्रको जो ईश्वर रूप मानता है उसे ईश्वरका अवतार मानना पडेगा। जैसे, जलके समुदायको हम समुद्र रूपमे देखते है, इसी तरह जीव-समुदाय रूपी संसारको हम ईश्वरावतार-रूपमे क्यो न देखे? इसे 'अवतार' का नाम दे अथवा न दें, यह और बात है। किसी भी नामसे हमे काम नही। यह जगत् ईश्वरसे अभिव्याप्त है। जहाँ भी देखते है, वहाँ वही-वही है। जिसका नाम और रूप है वह ईश्वरका अवतार है, इतना हमारे श्रद्धा-चक्षुके सामने स्पष्ट होना चाहिए। इतनी श्रद्धा यदि कही हमारे हृदयमें जम जाये, तो बहुत सम्भव है कि हम पापोसे सदा दूर रहे। ईश्वरको घट-घटका साक्षी जानते हुए हम क्यो असत्यपर चले और क्यो कोई पाप करे?

हरिजनसेवक, २१-४-१९३३

५३२. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा वह लम्बा-चौडा पत्र मिला, जिसमे तुमने ब्रिटिश गायना, दक्षिण आफ्रिका, इत्यादिकी प्रस्तावित यात्राके बारेमे अपने विचारोका खुलासा किया है। मै सोचता हूँ कि ये बाहरी चौकियाँ तुम्हारे साथ सदाके लिए जुड गई है। मुझे अपने-आपको इसका विश्वास दिलानेके लिए किसी बडी दलीलकी जरूरत नही। ये चौकियाँ जब-तब तुमको पुकारती ही रहेगी। और इन पुकारोंपर ध्यान देना ही सबसे अच्छा रहेगा। इसलिए तुमको निश्चय ही ब्रिटिश गायना और बादमें दक्षिण आफ्रिका जाना ही चाहिए, फिर वहाँसे पूर्वी आफ्रिका जाकर भारत होते हुए लौटना चाहिए। इससे तुमको मानसिक सन्तोष मिलेगा और जिन समस्याओके बारेमे तुमने विशेष योग्यता प्राप्त की है उनके बारेमे ताजी-से-ताजी जानकारी भी मिल जायेगी, तथा सम्बन्धित जनताको भी इससे सन्तोष मिलेगा। फिर, इन कई प्रदेशोमे जो काम तुम कर सकते

हो वह सिर्फ तुम्हारे किये ही हो सकता है। आज यह काम देखनेमें ठोस लगता है या नहीं, इसका बिलकुल कोई महत्त्व नहीं है। और विश्वास करो — मुझे तो पूरा विश्वास है — कि इंग्लैंडसे तुम्हारी अनुपस्थितिमें इस कारण कामका कोई हर्ज नहीं होगा कि तुम मौज-मजेके लिए नहीं, बल्कि अपना कर्तव्य निभानेके लिए ही वहाँसे अनुपस्थित हो।

आशा है कि भाईकी सेवा-शुश्रूषाके भारसे तुम्हारी सेहतपर कोई बुरा असर नहीं पड़ा होगा और उन्हें अस्पतालमें दाखिल कराना उनके लिए लाभदायक रहा होगा।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

मोहन

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग-४, पृष्ठ ३१३ से। जी० एन० १३०३ से भी

५३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला। आपके बताये छहों सज्जनोको[1] 'हरिजन'की प्रतियाँ जाती रहेंगी। पहली प्रतिके साथ शास्त्रीका एक पत्र भी रहेगा। लॉर्ड रीडिंग और लोथियनको अगाथा हैरिसनके निर्देशानुसार 'हरिजन'की एक-एक प्रति भेजी ही जा रही है।

आपके पिताजी बिना किसी पूर्व-सूचनाके मुझसे मिलने आ गये थे।[2] शास्त्री भी उनके साथ थे। दोनोंसे मिलकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। हम लोगोंने अस्पृश्यताके बारेमें काफी विस्तारसे बड़ी दिलचस्प चर्चा की। उन्होंने बतलाया था कि वे आपसे ग्वालियरमें मिलेंगे। आशा करता हूँ कि आपकी पुत्र-वधू सिंहगढ़ चली गई होगी। आपके पुत्रके यहाँ आनेपर मैं उससे अवश्य मिलूँगा। मुझे पता नहीं था कि उसकी सेहत भी ठीक नहीं रहती।

दोनोंके दानका[3] उल्लेख मैं 'हरिजन'में करूँगा। वियोगी हरिने भी लिखा है कि उनको आशा है कि थोड़े ही समयमें 'हरिजनसेवक' आत्म-निर्भर बन जायेगा।

१. ये थे : बंगालके गवर्नरके निजी सचिव, सर एडवर्ड बेंथल, कलकत्ता, सर वाल्टर लेटन, सर हेनरी स्ट्रैकॉश लॉर्ड रीडिंग और लॉर्ड लोथियन, लन्दन।

२. राजा बलदेवदास बिड़ला १८ अप्रैल, १९३३ को गांधीजी से जेलमें मिले थे।

३. कानपुरके कमलापत सिंहानिया और रामेश्वरप्रसाद बागलाकी ओरसे; देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", १४-४-१९३३।

देखता हूँ कि आपने उसमे लिखना एकदम वन्द कर दिया है। गलत वात है। आपको हर सप्ताह उसके लिए कुछ-न-कुछ भेजना ही चाहिए।

आशा है, आप कलकत्तामे आवश्यक शल्य-चिकित्सा[1] करायेगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २१०११) से।

५३४. पत्र : के० ईश्वर दत्तको[2]

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप जो लेख मुझसे चाहते है उसे लिखनेके लिए मेरे पास थोडा-सा भी समय नही है और इसके अतिरिक्त दूसरा तथ्य यह भी है कि मेरे जेल-जीवनपर लगाये गये प्रतिबन्धोके अन्तर्गत मै ऐसा लेख शायद लिखकर भेज भी नही सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० ईश्वर दत्त
"स्वदेश भक्त"
इलाहाबाद

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२७) से।

५३५. पत्र : गरामुरके गोस्वामी सत्राधिकारको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा निश्चित मत है कि हरिजन-सेवा कार्यके लिए समाजसे बहिष्कृत व्यक्तियोको विनम्रतापूर्वक कष्ट-सहन करना चाहिए। फिर आप देखेगे कि

१. नाकको।

२. के० ईश्वर दत्त लीडरके सहायक सम्पादक थे। उनको अंग्रेजी और हिन्दीकी एक सचित्र मासिक पत्रिका स्वदेशी भक्तके वार्षिक अंकका सम्पादन करना था। उसीके लिए वे स्वदेशीके कामको आगे बढानेमें हरिजनोंके योगदान और हरिजन-कार्यको आगे बढानेमें स्वदेशीके योगदानके तरीकोंके बारेमें एक लेख लिखवाना चाहते थे।

विरोध अपने-आप ठण्डा पड जायेगा।[1] मैं इसके विषयमें 'हरिजन' के पृष्ठोंमें काफी विस्तारसे लिख चुका हूँ। आपको वह पढना चाहिए।

हृदयसे आपका,

गरामुरके परमपूज्य श्री श्रीगोस्वामी
गरामुरके सत्राधिकार
कैम्प, उत्तर गौहाटी, असम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२१) से।

५३६. पत्र : ई० हिलियर्डको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

इसी महीनेकी १८ तारीखके आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपका भेजा दिलचस्प लेख[2] मैं सरसरी तौरपर पढ गया हूँ। उसमें दिये गये उद्धरण बहुत ही जँचते हुए हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ई० हिलियर्ड
४, हैरिस रोड
बेन्सन टाउन
बंगलोर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२६) से।

१. गोस्वामी सत्राधिकार असम हरिजन सेवक संघके अध्यक्ष थे और उन्होंने गांधीजीसे सलाह माँगी थी कि सामाजिक बहिष्कारके मुकाबलेमें वे कैसा रवैया अपनायें।

२. "एक्जामिनिंग द यूनीवर्स" (विश्वका विश्लेषण)। खगोल-विज्ञानमें गांधीजी की दिलचस्पीकी बात मालूम होनेपर, ई० हिलियर्डने यह लेख उनके पास भेजा था।

५३७. पत्र : डी० सी० पर्वतेको[1]

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके[2] लिए धन्यवाद। कृपया देशदास पैसा फण्ड रानडेको बतला दीजिए कि मेरे विचार तो सर्वविदित है। मन्दिर-प्रवेश तो दूर, मै किसी भी लक्ष्यके लिए बल-प्रयोगात्मक सत्याग्रहके इस्तेमालके एकदम विरुद्ध हूँ। इसलिए जहाँतक मेरी बात है, मै निश्चय ही बलप्रयोगके सभी तरीकोसे असहमति ही दिखाऊँगा और हमारे मित्रको मालूम होना चाहिए कि मैने मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमे बल प्रयोगात्मक सत्याग्रह करनेसे लोगोको रोकनेमे सफलता भी पाई है। आशा है, देशदासकी सेहत ठीक होगी। मेरा खयाल है कि एक पवित्र सकल्पसे प्रेरित उपवासको त्यागनेका सुझाव देनेका भी कोई फायदा नही। आशा है कि उपवास पूरा करनेपर वे बहुत अधिक कमजोर नही होगे।

हृदयसे आपका,

डी० सी० पर्वते
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०१९) से।

५३८. पत्र : झमटमल रामचन्दको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। बुद्ध और गुरुनानकके दिनोमे मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमे किसी भी तरहके झगडे-फसाद या नही, इसका पता लगाना कठिन है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत झमटमल रामचन्द
मार्फत — आर० हासाराम एण्ड सन्स
१४५, मेन स्ट्रीट, कोलम्बो

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०१८) से।

१. गोवर्धक संघके एक कार्यकर्ता।

२. पर्वतेने लिखा था कि सितम्बर १९३२ में गांधीजी के साथ उपवास करनेवाले देशदास रान्डेने हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेश दिलानेके लिए सत्याग्रहका इस्तेमाल करनेके विरोधमें फिरसे उपवास शुरू कर दिया है, क्योंकि उसे वह एक तरहका बल-प्रयोग ही मानते है।

५३९. पत्र : रामचन्द्रको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,[1]

आपका १८ तारीखका पत्र मिला। यह मालूम होनेपर कि रु० ने नी० की किस तरह विलकुल ही उपेक्षा कर रखी है और पूरी तरह सोच-विचार करनेके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि उसे पूना आ जाना चाहिए। उसके करनेके लिए देशके इस भागमे काफी हरिजन-कार्य पड़ा है। इसलिए मैंने उसको आ जानेके लिए तार दे दिया है। उसका उत्तर अभी मुझे नही मिला है। चीतलदुर्गके एक स्थानीय वकीलने मेरे साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया था। मैंने उनको लिखा है कि यदि रु० उसे मार्गव्यय न दे तो वे जुटा दे।[2] मैंने लिखा है कि मैं उतनी राशि लौटा दूंगा। अब मैं इस बातकी प्रतीक्षामे हूँ कि नी० इसपर क्या करती है। हिन्दू मन्दिर-सम्बन्धी आपके प्रश्नके बारेमे मैं लिखूँगा। आपका पिछला पत्र मुझे नही मिला।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि युवराज आपसे मिलने आये थे और उन्होने दान[3] दिया है और श्री पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासने भी दान दिया है।

स्वय ब्रदर नारायणने मुझे एक पत्र भेजा था। मैंने उनको उत्तर दे दिया है।

आपके द्वारा प्रस्तुत ब्योरेवार प्रतिवेदनकी एक प्रति दिल्लीसे यथासमय मेरे पास पहुँच जायेगी। मैं उसे पूरे ध्यानसे पढ़ूँगा और मैं गुरुकुल सेवा सघके प्रतिवेदनको भी सरसरी नजरसे देख जाऊँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०१५) से।

१. मैसूर राज्यीय अस्पृश्यता-विरोधी संघ, बंगलोरके संयुक्त मन्त्री।

२. देखिए "पत्र. वी० के० रामचन्द्र रावको", १८-४-१९३३।

३. मैसूरके युवराज दीन संघके स्कूलोंको देखने गये थे और उन्होंने पाँच सौ रुपये दानमें दिये थे। रामचन्द्र द्वारा प्रस्तुत पूरा विवरण १३-५-१९३३ के हरिजनमें प्रकाशित हुआ था।

५४०. पत्र : डॉ० आर्थर सॉण्डर्सको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० सॉण्डर्स,

मीराबाईके सम्बन्धमें लिखे गये मेरे पत्रका[1] तुरन्त उत्तर देनेके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। इससे मुझे बड़ी शान्ति मिली है।

हृदयसे आपका

डॉ० आर्थर सॉण्डर्स
३७, हार्ले स्ट्रीट
लन्दन वेस्ट – १

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२५) से।

५४१. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

मुझे आपके कई पत्र मिल चुके हैं। समझौतेके बारेमें चिन्तामणिकी चेतावनी मैंने देख ली है।

मैं बंगालका जन-गणना प्रतिवेदन तुरन्त मँगाकर देखूंगा और आपने जिस अंशका हवाला दिया है उसे पढ़नेपर मेरे मनपर जो छाप पड़ेगी, आपको लिखूंगा।

नाटार-हरिजन झगड़ेके बारेमें आपको इसी सप्ताहके 'हरिजन' में मेरा लेख[2] मिल जायेगा। अब आपका अतिरिक्त विवरण[3] भी मुझे मिल गया है। उसे मैं अपनी फाइलमें रखूंगा, लेकिन उसके बारेमें अगले सप्ताह भी कुछ लिखूंगा नहीं। मैं घटना-क्रमपर नजर रखूंगा और अवसर देखकर परिस्थितिके बारेमें अपने विचार लिखूंगा।

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११९) से; एस० एन० २१०२२ से भी।

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५१८-९।
२. देखिए "हरिजन होना क्या मतलब रखता है", २२-४-१९३३।
३. रामनाड जिलेमें हुए झगड़ेके सम्बन्धमें।

५४२. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

इसी महीनेकी १७ तारीखका आपका पत्र मिला, और साथमे कोदण्डरावका बिल भी। बिलकी जाँच मेरी अपेक्षा आप ज्यादा अच्छी तरहसे कर सकते है। मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि जिन दिनो मै वक्तव्य जारी किया करता था उन दिनो मैने उनको जब-जब बुलाया वे तुरन्त आ जाते थे। मेरा खयाल है कि आप भी मुझसे इतना ही प्रमाणित करना चाहते है। उन्होंने जो तिथियाँ दी है, मुझे पूरा यकीन है, उनका क्रम बिलकुल सही है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२३) से।

५४३. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२१ अप्रैल, १९३३

चि० काका,

तीन दिन बाट देखनेके बाद तुम्हारा पत्र मिला। लगता है तुम्हे दूध अच्छी तरह हजम हो जाता है। अत. मेरे लिए कुछ कहनेको नही रहता, हालाँकि उस दुग्धोपचारकी पुस्तकमे आराम और गरम पानीमे कटि-स्नान करनेपर बहुत जोर दिया गया है। तुम घोडेके समान तगडे हो जाओ और 'आत्मकथा' के अवशिष्ट अशको पूरा कर डालो। मुझसे उसे पूरा करनेकी आशा करना बालूसे तेल निकालना है।

आनन्दीको एक दिन ज्वर आनेका तो मुझे पता है। किन्तु एक्सरे फोटो लेनेकी मुझे कोई खबर नही है। ये फोटो चाहे जितने सस्ते क्यो न हो जाये फिर भी करोडो लोगोके तो कभी नही लिये जा सकते, इसलिए मुझे लगता है कि ये फोटो हमे कभी नही खिचवाने चाहिए। किन्तु मै यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी इन बातोपर कोई अमल नही करेगा। मै तो फूटा हुआ घडा हूँ उसमे कितना भरा जा सकता है? और जब उसमे कुछ है ही नही तो किसे क्या दिया जा सकता है?

गगाबहनके बारेमे मुझे कुछ पता नही। खम्भाताका पता लिख भेजना। ध्रुव-ग्रहको देखनेकी चेष्टा करूँगा। गोलीकेरेकी पुस्तक जहाँ-तहाँसे ही देख पाया था कि

इतनेमें दुग्धोपचारकी पुस्तक आ पहुँची। बाल तुमसे आकर मिल गया यह अच्छा हुआ। क्या घनश्यामदासकी पुत्रवधू आ गई?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९९) से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

५४४. पत्र: द० बा० कालेलकरको

२१ अप्रैल, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला।

तुम चाहो तो पुस्तक रख लो। जो पुस्तक अच्छी हो वही पढ़ना उचित है। आलाबहनसे आँखोंका व्यायाम सीखकर शुरू कर ही दो। चश्मा छोड़ा जा सके तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है?

दुग्धोपचारके नियमोंका पूरी तरहसे पालन करना। यदि शरीर सदाके लिए स्वस्थ हो जाये तो उससे अधिक और क्या चाहिए। दिनशाके उपचारके बारेमें भी हम अधिक जान सकेंगे।

. . .के[1] बारेमें अब मुझसे और ज्यादा मत पूछो। फिलहाल तो तुम्हें जैसा ठीक लगे वैसा करो।

'हरिजनों' के बारेमें तुम्हारे प्रश्न मिल गये हैं। मैं उनके उत्तर दूँगा।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९८) से, सौजन्य: द० बा० कालेलकर

५४५. पत्र: नारायण मोरेश्वर खरेको

२१ अप्रैल, १९३३

चि० पण्डितजी,

तुम्हारा पत्र मिला।

छाराओंसे हम डरनेवाले नहीं हैं। उन्होंने भले बबूलके पेड़ काट दिये हों। इस बारेमें हम उन्हें समझायें और उन्हें शरमिन्दा करें। यदि हमारी सेवा सच्ची होगी तो कभी-न-कभी उसका अच्छा परिणाम निकलेगा। अतः किसी-न-किसीको उनके पास नियमपूर्वक जाना ही चाहिए।

१. जेलके अधिकारियोंने नाम मिटा दिया है।

दत्तात्रेयके बारेमे तुमने जो लिखा है मैं समझता हूँ। मुझे जब तुम लिखना आवश्यक समझो तब लिख सकते हो।

यदि तुम मथुरीकी[1] ठीक देखभाल कर सको और वह तुम्हीमे रहना चाहे तभी उसे रखना। सगीतके लोभमे उसके अन्य बन्धनोको ढीला कर देना। कुछ थोड़ा तो वह बालकृष्णसे भी सीख सकती है। किन्तु लक्ष्मीबहन जो फैसला करे उसपर हमे अमल करना चाहिए। वह जब कल मुझसे मिलेगी तो मैं उससे बात कर लूंगा। तुम्हारे पत्रसे जान पडता है कि वह कल नही आ सकेगी। यदि ऐसा है तो मैं समझता हूँ कि अगले सप्ताह हम मिल सकेगे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २४६) से, सौजन्य लक्ष्मीबहन ना० खरे

५४६. पत्र : वियोगी हरिको

२१ अप्रैल, १९३३

भाई वियोगी हरि,

तुमारा पत्र मिला है। साथमे पुराने लेख भी मीले। वापिस किये जायेंगे। साथमे पुराने प्रचार कार्यकी दोड़धूप बध होनेसे अ० निवारण कार्य शिथिल हुआ लगता है। यह मुझे प्रिय है। यह कार्य दोडधूपका नहि है धर्मकार्यमे दोड़धूप क्या? शांतिसे जितना होगा वही सच्चा और पक्का होगा। मतगणनाका कार्य होना आवश्यक समझता हू। परतु यह कार्य सच्चाईसे होनेमे मुझको कुछ सदेह है। ठक्कर बापा और घनश्यामदाससे इसकी चर्चा करो और तत्पश्चात् मुझे लिखो। इस कार्यकी जिम्मेवारी भी लेनावाली कोई धार्मिक व्यक्ति होनी चाहिये। ऐसी व्यक्ति कोई तुमारी नजरमे है?

जिन मदिरमे हरिजन न जा सके उसमे सेवक भी न जायं यह बात मुझे प्रिय है। उपरोक्त कार्यसे यह ज्यादा कठिन है इसमें शातिभंग होनेका भी डर है और चौकी कार्य शुरू करे उसके पहले हमारे लोगोमे कुछ प्रचार भी करना चाहिये। इस बारेमे भी चर्चा करके मुझे दुबारा लिखो और इसका प्रबंध करनेवाला कौन हो सकता है? पत्रोमे लिखना शुरू कर दू उसके पहले हमारे सामने कुछ चित्र खड़ा होना चाहिये।

भक्तिके बारेमे तो इसीके साथ एक लेख[2] आ रहा है। दूसरे एक हरिजन भाईके प्रश्नो[3] पर है।

१. नारायण मोरेश्वर खरेकी पुत्री।

२. देखिए "भक्तिधारा कैसे बहे?" २१-४-१९३३।

३. देखिए खण्ड ५५, "एक हरिजनके प्रश्न", ५-५-१९३३ और "पत्र : पी० एन० राजभोजको", १९-४-१९३३ भी।

काका साहेब सिंहगढ़मे है वहाँ नैसर्गिक, उपचार अपने हाजमाके लिये कर रहे है। सिंहगढ़से उतरनेके बाद कुछ हो सकेगा तो अवश्य लिखवाऊगा।

'हरिजनसेवक' के ग्राहक बढ़ रहे है यह सतोषजनक बात है।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७४) से।

५४७. तार: बी० आर० अम्बेडकरको

[२२ अप्रैल, १९३३ या इसके पूर्व][1]

आपका पत्र मिला। रविवारको नौ-दसके बीच आ जाइए।[2]

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९९३)से।

५४८. ३० अप्रैल याद रहे[3]

जो लोग अगली ३० अप्रैल, अर्थात् हरिजन-दिवसके लिए निर्धारित तिथिको उपयुक्त और ठोस कार्यक्रमका सयोजन करना चाहते हो वे एक-एक क्षणका उपयोग करके सारी तैयारी सुविन्यस्त ढंगसे कर ले तो अच्छा हो। इस सम्बन्धमे मैने जो काम सुझाये है उनमे प्रत्येक समिति अपनी इच्छानुसार कमी या वृद्धि कर सकती है।

आशा है, लोगोने यह तो साफ-साफ समझ लिया होगा कि जहाँ और कोई काम करना सम्भव न हो वहाँ कमसे-कम प्रचुर धनसग्रह अवश्य किया जायेगा। मै जानता हूँ कि चन्दा इकट्ठा करनेवाले लोग अकसर पैसे-दो पैसेके दानको हिकारतकी नजरसे देखते है। उन्हे मै अग्रेजीकी यह कहावत याद दिला दूं कि "पेनी-पेनी जोड़नेसे पौंड तो अपने-आप बन जाते है।" यहाँ मै एक कुशल चन्दा उगाहने-वालेकी हैसियतसे अपने अनुभवकी कुछ बाते बता दूं। मुझे याद है कि उड़ीसामें जनसाधारणसे मैंने पैसा-पैसा, अर्थात् इकन्नीका चौथाई हिस्सा भी नही, बल्कि पाई-पाई उगाही थी और जब सबको जोड़ा गया तो पता चला कि एक अच्छी-खासी रकम इकट्ठी हो गई है। हमारे देशकी आबादी करोड़ोमे है। इसलिए मेरे विचारसे

१. यह तार अम्बेडकरके १९-४-१९३३ के पत्रके उत्तरमें दिया गया था और दोनोंकी भेंट रविवार, २३ अप्रैलको हुई थी। इसलिए गांधीजी ने यह तार २२ अप्रैलको या इसके पूर्व ही भेजा होगा।

२. अम्बेडकरने गांधीजी से पूना-समझौते और विशेषकर नाम-सूची (पैनल) की पद्धतिके बारेमें पुनर्विचारकी सम्भावनाओंपर चर्चा की थी।

३. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

इन करोडो लोगोसे इकट्ठी की गई पाइयोके योगका मूल्य कुछ-एक हजार मध्यवित्त लोगो द्वारा दिये गये रुपयोके या आधे दर्जन धन्नासेठोके द्वारा दिये कुछ लाखकी राशियोके मूल्यसे कई गुना अधिक है। यदि चन्दा करनेवालो का विश्वास स्वय अपनेमे, अपने कार्यमे और जन-साधारणमे होगा तो वे घर-घर जाकर पैसा-दो-पैसा जो मिले उसे इकट्ठा करेगे। पूरे मनसे दी गई एक पाईको भी मै इस बातका प्रतीक मानूँगा कि दाता अस्पृश्यताको मिटाना चाहता है और उसने इस आन्दोलनमें अपना अंश-दान किया है। यदि समितियाँ चन्दा एकत्र करनेके अपने-अपने प्रयत्नोके परिणामोके सच्चे विवरण दे और न केवल यह बताये कि उन्होने कितना धन एकत्र किया है, बल्कि यह भी बताये कि वह धन कितने लोगोसे एकत्र किया है तो उससे हमे इस आन्दोलनकी शक्तिका काफी अन्दाजा मिल सकता है। कहनेकी जरूरत नही कि चन्दा शान्तिपूर्वक और यथासम्भव विनम्रतासे इकट्ठा किया जाये और जब यह काम बिना शोर-गुल किये घर-घर जाकर किया जायेगा तो किसी हलकेसे कोई विरोध किये जानेका सवाल ही नही उठेगा। जो गृहस्थ कुछ देनेके इच्छुक न हो उनके साथ दलील न की जाये, उनके प्रति कोई दुर्भावना न प्रकट की जाये। ये दान तो स्वेच्छासे ही दिये हुए होने चाहिए।

एक सुझाव मै चिकित्सक-समाजके लिए भी दूँगा। इन स्तम्भोमे मै जब-तब एक स्कूलके शिक्षकके कार्योका विवरण देता रहता हूँ। अभी उसकी एक रिपोर्ट आई है, जिसमे हरिजनोकी डाक्टरी सहायताकी आवश्यकता बताई गई है। अभी जो प्रसग मेरे मनमे है उसमे हुआ यह कि एक चिकित्सकको निमोनियाके एक रोगीके बारेमे बताया गया। वह तुरन्त बिना कोई फीस लिये हरिजन बस्तीमे पहुँचा और वहाँ उसने न केवल उस रोगीका उपचार किया, बल्कि दूसरे मरीजोकी भी जाँच करके कहा कि जब भी उन्हे उसकी सहायताकी आवश्यकता होगी, वह बिना कुछ लिये उनकी सेवाको तैयार रहेगा। इससे हरिजन लोग बडे प्रसन्न हुए। यदि भारतके हर हिस्सेके डाक्टर-वैद्य मिलकर अपने बीचसे ही कुछ ऐसे चिकित्सक नियुक्त कर दे जो हरिजनोके घरोमे जाकर उन्हे आरोग्य तथा सफाईके नियमोका पालन करनेकी आवश्यकता बताये और जहाँ जरूरी हो, डाक्टरी सहायता दें तो इसका कैसा अद्भुत प्रभाव होगा? यदि इस कामको बडे पैमानेपर करना है तो स्वभावत इसे किसी प्रकारके पारिश्रमिककी अपेक्षा किये बिना करना होगा। डाक्टर-वैद्य हरिजनोकी जो सेवा कर सकते है उसका प्रतिदान देनेका भार कोई भी सस्था अपने ऊपर नही ले सकती। इसके बजाय अगर डाक्टर-वैद्य इसका भार अपने सिर ले लेगे तो आज भारतमे उनकी सख्या इतनी अधिक है कि यदि समझदारीसे कामका बँटवारा किया जाये तो किसीको ज्यादा बोझ महसूस न होगा।

तीसरी बात मुझे देश-भरकी महिला कार्यकर्ताओसे कहनी है। उन सबको एक-जुट होकर हरिजनोको जूठन देनेकी अमानवीय प्रथाको मिटा देना चाहिए। कराचीके एक हरिजनने मुझे पत्र[1] लिखा है। उसने बडे करुण शब्दोमें कहा है कि स्त्रियाँ

१. देखिए खण्ड ५५, "महिलाओंके विरुद्ध शिकायत", २३-४-१९३३।

कमसे-कम इस सुधारको तो तत्काल सम्पन्न करानेका भार अपने सिर ले सकती हैं। उसका कहना है कि हरिजनोको सड़ा-गला, आदमीके न खाने योग्य खाना, जिससे दुर्गन्ध आती है और जो इतना गन्दा होता है कि बयान नही किया जा सकता, देते हुए वे तनिक भी सकोच नही करती, और यह खाना भी वे इस भयसे कि हरिजनोके सम्पर्कसे कही अपवित्र न हो जाये, अपने छज्जे या बरामदे परसे ही हरिजनोके हाथोमे फेंक देती हैं। और आगे वह बडी व्यथाके साथ लिखता है, "दयनीय बात तो यह है कि अगर हरिजनोको यह उच्छिष्ट न दिया जाये तो वे मानेंगे कि उनसे उनका एक हक छीन लिया गया है।" यदि सभी जगहोपर महिला कार्यकर्ता सगठित होकर अपनी बहनोसे मिले और उन्हे इस प्रथासे विमुख करे तो निश्चय ही यह बहुत अच्छी बात होगी। मुझे पूरी आशा है कि दया और मानवीयताके इस कार्यमे सनातनी लोग भी सहयोग करेंगे। लेकिन वे चाहे सहयोग करे या न करे, जो महिलाएँ इस प्रथाकी जघन्यताका अनुभव करती हैं उनका यह कर्त्तव्य है कि वे सक्रिय हो जाये और अपनी उन बहनोके विवेकको जगाये जो शायद यह भी नही जानती कि इन लोगोको, जो आखिरकार उनके भाई-बन्धु ही है, अधम अवस्थामें डालनेकी दोषी बनकर वे मानवताके विरुद्ध एक अपराध कर रही हैं। इस सन्दर्भमे मै कार्यकर्ताओका ध्यान उन ठोस सुझावोकी ओर दिलाना चाहूँगा जो मैंने अभी पिछले ही दिनो देहरादूनके एक विद्यार्थीकी शका-समाधान करते हुए दिये थे।[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २२-४-१९३३

५४९. हरिजन होना क्या मतलब रखता है

करोड़ो हिन्दुओमें तीर्थराज प्रयागके नामसे विख्यात, गंगा-यमुनाके संगमपर बसे, उत्तर भारतके नगर इलाहाबादमे हरिजनोकी दशाके बारेमें पाठक अन्यत्र[2] पढ़ेंगे।

वे सुदूर दक्षिणपर भी एक नजर डाल ले। वहाँ उनको ऐसे गाँवोका एक झुण्ड मिलेगा जिसमे नाटार नामसे जाने जानेवाले भूमिधर रैयत और उनके भूमिहीन 'अर्द्ध-दास' हरिजन रहते हैं। पिछले वर्ष मई, जून और जुलाई महीनोके दौरान इन दोनोमे झगडा हो गया था। मद्रास विधान परिषद्मे एक प्रस्ताव भी २२ के विरुद्ध ४४ मतोसे पारित हुआ था, जिसमे सरकारसे सिफारिश की गई थी कि नाटारो द्वारा हरिजनोपर किये गये कथित अत्याचारोकी जाँच करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करनेके लिए एक समिति नियुक्त की जाये। कहा जाता है कि सरकारने इस सिफारिशपर अबतक कोई अमल नही किया है।

१. देखिए "विद्यार्थी और अवकाश" १-४-१९३३।

२. देखिए अगला शीर्षक।

परन्तु श्रीयुत अमृतलाल ठक्करने मेरे पास एक विस्तृत विवरण भेजा है। यह विषय अब भी प्रासंगिक बना हुआ है, क्योंकि झगड़ेकी सम्भावना अभी पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है, वह किसी भी क्षण फिर भड़क सकता है। दोनों समुदाय जैसे एक सशस्त्र निष्क्रियताकी स्थितिमें रह रहे हैं। यह जाँच वकील तथा जिला हरिजन समितिके अध्यक्ष, श्रीयुत ए० रंगस्वामी अय्यंगार, वकील तथा जिला समितिके मन्त्री श्रीयुत लक्ष्मीरतन भारती, वकील श्रीयुत वी० ई० एपन और हरिजन सेवक संघके तमिलनाड बोर्डके मन्त्री श्रीयुत रामचन्द्रन्ने सम्मिलित रूपसे की। ये महानुभाव देवकोट्टा, पवनकोट्टा, परमक्कुडि, एलुवनकोट्टा और चित्तनूर गये। यह झगड़ा एलुवनकोट्टामें मन्दिरोत्सवके दौरान शुरू हुआ। हरिजनोंको "अभी हालतक नाटारों द्वारा निर्धारित शर्तोंपर उनकी मजदूरी करनी पड़ती थी।"

> झगड़ेके दौरान, नाटारोंने गाँव (पवनकोट्टा) पर हमला बोला और हरिजन घरोंको लूट लिया। उन्होंने प्रतिरोध पर आमादा कुछ हरिजनोंको एक पेड़से बाँध दिया। . . . हरिजन बस्तीके एक घरमें स्थित हरिजन स्कूलमें आग लगा दी। अधिकांश हरिजन घरोंके आगे गोबर और भूसेके बने छोटे-छोटे अन्न-भण्डारोंको बिलकुल मटियामेट करके अन्न लूट लिया। ये भण्डार कमरोंके बजाय बड़ी बाल्टीनुमा दिखते हैं। स्कूली इमारत और अनाजके उन बर्तनोंके अवशेष हमने स्वयं देखे।

विवरणमें आगे कहा गया है:

> स्वयं हरिजनोंमें दो समुदाय शामिल हैं — पल्ला और परिया। गड़बड़ीके आसार दिखते ही पल्ला लोग तो अपनी स्त्रियों तथा बच्चोंको गाँवमें ही छोड़कर देवकोट्टा भाग गये। हमलावरोंने उनकी स्त्रियों तथा बच्चोंको भी काफी तंग किया। इन पल्ला लोगोंमें से अनेक पहलेसे ही ईसाई थे। परिया लोगोंको अधिक कष्ट भोगने पड़े। धर्म-परिवर्तन करानेवाला ईसाई पादरी अब प्रार्थना-सभाओं और सामान्य प्रचारके लिए हर सप्ताह वहाँ आता है। वह उनका अपना एक नया स्कूल बनवानेके लिए भी तैयार हो गया है। पल्ला लोग कुछ पहले और परिया लोग बादमें अपने-अपने घरोंमें लौटे।
>
> तीन महीने पहले चार परिवारोंके १४ सदस्य ईसाई बन गये। लगता है कि कुछ अन्य परिवार भी यही करेंगे। हम जहाँतक पता लगा पाये हैं, उसके अनुसार धर्मान्तरित् लोगों और हरिजनोंके बीच कोई झगड़ा नहीं है। धर्मान्तरित लोगोंमें से एकने हमारे प्रश्नोंके उत्तरमें बताया कि वे ईसाई इसलिए बन गये कि मिशनरियोंने उनको सुरक्षा और सहायता देनेका वचन दिया है।

हरिजनोंने समितिको बतलाया:

> नाटार लोग चाहते हैं कि हम पुरानी प्रथाओं और रीति-रिवाजोंका बिलकुल पहलेकी तरह पालन करते रहें। वे नहीं चाहते कि हम लोग शरीरके

ऊपरी भागमें अपनी पसन्दके मुताबिक कमीजें या अन्य वस्त्र धारण करें, या हमारे यहाँकी स्त्रियाँ फ्राक या साड़ी पहनें। पुरानी प्रथाके मुताबिक हमारे वस्त्र घुटनोंसे नीचेतक नहीं रहने चाहिए और ऊपरी भागमें पहने हुए सभी वस्त्र कूल्होंपर ही कसे जाने चाहिए। स्त्रियोंको कमरसे ऊपरके हिस्सेको अपने हाथोंके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकारसे ढँकनेकी इजाजत नहीं थी। पुराने जमानेमें हमें एक नृत्य-विशेष करते हुए धार्मिक जुलूसोंमें चलना पड़ता था। आज भी किसी नाटारसे सामना होनेपर हरिजनको 'सेवकम्' अर्थात् 'आपकी सेवामें', कहना पड़ता है। वे हमको अपनी पसन्दके स्थानपर या पसन्दके मालिकके यहाँ काम नहीं करने देते। हमको उनके हुक्मपर जहाँ वे कहें वहाँ और जितनी भी मजदूरी वे दें, उसीपर उनके लिए काम करना पड़ता है। वे यह पसन्द नहीं करते कि हम पीतलके बर्तन इस्तेमाल करें और यदि हमारी स्त्रियाँ आभूषण पहनती हैं तो वे नाराज हो जाते हैं। पासके एक गाँव परमक्कुडिमें अभी दो सप्ताह पहले ही एक नाटारने फ्राक पहनकर निकलनेवाली हमारी एक महिलापर थूक दिया था और कहा था कि नाटारोंकी गलीमें ऐसा धृष्ट व्यवहार मत करो।

एक नाटार मुखियाने यह बयान दिया :

हरिजनोंके साथ हमारा कोई झगड़ा नहीं। हम सिर्फ इतना चाहते हैं कि वे पुरानी प्रथाओं और रीति-रिवाजोंको न तोड़ें। वे अब हमारे लिए काम करनेसे इनकार करते हैं; ऊँची मजदूरी माँगते हैं। वे अपने गाँवमें कमीजें पहनें या उनकी महिलाएँ आभूषण या फ्राक पहनें — इसपर हमें कोई आपत्ति नहीं। आपत्ति तो हमें तब होती है जब वे हमारे गाँवमें और खासकर मन्दिरोत्सवके दिनोंमें सभी तरहके लोगोंके भारी जमावके अवसरपर आकर इनका प्रदर्शन करते हैं। यदि हरिजन स्त्री-पुरुष भी हम लोगोंकी तरहके ही वस्त्र धारण करने लगेंगे, तो फिर उस भारी जमावमें हम उनमें और अन्य लोगोंमें फर्क कैसे करेंगे? इससे होता यह है कि सब लोग साथ मिल जाते हैं और हमें छूत लगती है। वे जैसा चाहें पहनें, इसपर हमें कोई आपत्ति नहीं, लेकिन हमारी मुश्किल तो यह है कि फिर हम भीड़में उनको पहचानेंगे कैसे? स्कूलोंमें भी वे जायें, इसपर हमें कोई एतराज नहीं, लेकिन यदि वे सबके लिए खुले किसी स्कूलमें जायें तो उनको अलग बैठना चाहिए। हम भली-भाँति समझते हैं कि वे जैसे पुराने जमानेमें थे, ठीक वैसे ही नहीं बने रह सकते। पर हमें धृष्टता और विद्रोहका विरोध तो करना ही पड़ेगा।

यह पीडाजनक विवरण और अधिक विस्तारसे देनेको जरूरत नही। अच्छे वस्त्र पहननेपर या विवाहके अवसरपर हरिजन वर-वधूको पालकियोमे ले जानेपर हरिजनोपर हमले करने और तरह-तरहसे नाराजी प्रकट करनेके कई उदाहरण हमारे

पास अन्य स्थानोसे भी आये है।[1] अब यह तो सनातनियोका ही कर्तव्य है कि वे सुधारकोके साथ मिलकर काम करें और धर्मके नामपर एक जाति द्वारा दूसरी जातियोपर अपनी श्रेष्ठता थोपनेके इस दम्भपूर्ण व्यवहारको समाप्त करे।

पाठकोको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि समिति सिर्फ जाँच-पडतालके काम तक ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री नही मानती, यद्यपि जाँच-पडतालका यह काम अपने आपमे काफी महत्त्वपूर्ण है। समितिने इससे आगे जाकर सब-कलेक्टरसे भी मुलाकात की है और उसने आश्वासन दिया है कि यदि फिर झगडा फैला तो हरिजनोंकी सुरक्षाका प्रबन्ध किया जायेगा। आगामी उत्सवके दौरान उरुवट्टि गाँवमे इसकी बड़ी आशका है। समितिके सदस्यगण प्रभावशाली नाटारो और पास-पडोसके काफी जाने-माने अन्य व्यक्तियोकी सहायता लेकर नाटारो और हरिजनोके बीच जो दोनोके लिए सम्मानजनक हो, ऐसी शान्ति स्थापित करनेकी कोशिशमे लगे हुए है।

समिति यह भी महसूस करती है कि "शिक्षाके अतिरिक्त अन्य कोई साधन इस समस्याको अन्तिम रूपसे हल नही कर सकता।" इसीलिए उनका प्रस्ताव है कि जिले-भरमे पाठशालाओका — दिवा और रात्रि दोनो तरहकी पाठशालाओका — एक सिलसिला जमाया जाये। आइए, हम इन दोनो दिशाओमे समितिके सराहनीय प्रयत्नोकी सफलताकी कामना करे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-४-१९३३

५५०. तात्कालिक कर्तव्य

हरिजन सेवक मण्डल (सं० प्रा० बोर्ड)की इलाहाबाद शाखाने एक समिति नियुक्त की थी। इसके सदस्य थे श्रीयुत प्रकाशनारायण सप्रू, श्रीयुत विश्वेश्वर प्रसाद और श्रीयुत रामनाथ दर। समितिको उस नगरके हरिजनोकी अवस्थाकी रिपोर्ट देने और उसमें सुधारके लिए सिफारिशे पेश करनेका काम सौंपा गया था। समितिने टाइप किये हुए अट्ठावन पृष्ठोकी विस्तृत रिपोर्ट पेश की है। इसके अलावा इसमे कुछ परिशिष्ट भी है। इस रिपोर्टके लिए समिति बधाईकी पात्र है। रिपोर्टमें हरिजनोकी संख्या नही दी गई है, यह बात खटकती है। छावनीको छोड़कर नगरकी आबादी केवल १,७३,८९५ है।

इस महत्त्वपूर्ण रिपोर्टके सभी हिस्सोकी चर्चा मैं नही कर रहा हूँ। जो लोग इसका अध्ययन करना चाहे, इलाहाबाद कार्यालयसे इसकी प्रति मँगवा ले।

सबसे अधिक अशिक्षित और उपेक्षित मेहतर और डोम हैं। उनकी उपेक्षा न केवल सवर्ण हिन्दू बल्कि इस महानगरमे रहनेवाले सभी नागरिक करते हैं। उनकी अवस्थाके बारेमे समिति अपनी रिपोर्टमे कहती है :[2]

१. देखिए "हरिजन क्या सोचते हैं", १८-३-१९३३।
२. यहाँ इसके कुछ अंश ही दिये जा रहे है।

दलित वर्गोके लोगोंकी बस्तीके निकट जाते ही मन घोर ग्लानिसे भर जाता है। वे जिन घरोंमें रहते हैं, उनमें से कुछ, और खासकर जो नगरके केन्द्रीय हिस्सेमें बने हुए हैं वे तो वास्तवमें मनुष्यके रहने लायक नहीं हैं। ये घर बिलकुल अंधेरे और सीलन-भरे हैं। . . . उनमें आम तौरपर एक ही कमरा होता है, वह भी केवल पाँच वर्ग गजका और उसीमें चार-छः लोगोंके एक पूरे परिवारको रहना पड़ता है। इन घरोंमें कहींसे हवा या रोशनी नहीं आती। इनमें सामने न कोई बरामदा होता है, न खुली जगह; न पाखाने, गुसलखानेकी व्यवस्था होती है और न रसोईघरकी। इनके सामनेकी गलियाँ बहुत तंग होती हैं — कच्ची, कीचड़-भरी, न कोई नालियाँ और न कोई रोशनी। इन हलकोंका सारा वातावरण ही दुर्गन्धमय होता है। सफाई आदिकी तो कोई व्यवस्था ही नहीं है, और वहाँ जो दृश्य देखनेको मिलते हैं वे मनमें घृणा और वितृष्णा पैदा करते हैं। भयंकर रूपसे गन्दे सार्वजनिक पाखानोंसे केवल सात फुटकी दूरीपर रहनेको मजबूर लोगोंसे कोई अधिक आशा नहीं की जा सकती। हमने देखा है कि इन्हीं पाखानोंमें लगे नलोंका पानी आस-पास रहनेवाले मेहतर नहाने-धोने और पीने-पकानेके काममें लाते हैं। . . . मनुष्यके चरित्रपर उसके भौतिक परिवेशका प्रभाव पड़ता है, इससे कौन इनकार कर सकता है? फिर आश्चर्य नहीं यदि 'अस्पृश्यों' के मनमें स्वच्छ और सुन्दर जीवनका कोई खयाल ही नहीं रह गया है। . . . जिन परि-स्थितियोंमें मेहतरोंको रहना पड़ता है, उनका वर्णन करते हुए कलमको काबूमें रखना कठिन है। समाज-कल्याणके कार्योंमें रुचि रखनेवाले सभी लोगोंसे हम उत्कटतासे अनुरोध करते हैं कि इलाहाबादके फूल तालाब, भैंसा गोदाम या काली माईका थान जैसी जगहोंपर जाकर वे स्वयं देख लें कि हमने जो कहा है वह सही है या गलत।

काली माईके थानके बारेमें रिपोर्टमें इस प्रकार लिखा है:

नगरपालिकाकी गणनाके अनुसार इन पाखानोंका उपयोग प्रतिदिन ११९२ पुरुष और १२२० स्त्रियाँ करती हैं। इनमें रोशनी नहीं है, जिससे मर्दोंको शामको बाहर ही शौच जाना पड़ता है। इन पाखानोंके सामने बने घरोंमें रहनेवाले लोग घरों और पाखानोंके बीचकी जगहका उपयोग आँगनकी तरह करते हैं और उनके बच्चे इसीमें खेलते हैं। पाखानेके चारों ओर कोई दीवार नहीं है, जिससे मेहतरोंके घरोंसे इन पाखानोंका उपयोग करने वालोंके अधोभाग नजर आते हैं। औरतों और मर्दोंके लिए अलग-अलग खण्ड हैं, लेकिन बीचकी दीवार इतनी कम ऊँची है कि खुड्डीपर खड़े हुए मर्दको उस पारकी औरतें दिखाई दे सकती हैं। नल सिर्फ एक है — सो भी पाखानेके निकट और नाबदानसे बिलकुल सटा हुआ। पानी जब-तब आता है, और सो भी बिलकुल

अपर्याप्त। नलका प्रयोग पाखाने साफ करने, नहाने तथा घरेलू जरूरतोंके पानीके लिए भी किया जाता है। पाखानेमें लगे नाबदान अकसर पेशावसे भर जाते हैं और वे बहुत ही गन्दी हालतमें होते हैं। उन्हे ठीकसे साफ करनेके लिए मेहतरोंको उनमें नंगे पैर उतरना पड़ता है। उस हलकेके आसपासकी और गलीकी जमीन कच्ची है और बरसातमें वह कीचड़से भर जाती है। सार्वजनिक और निजी पाखानोंसे विष्टाको पाखानेकी गाड़ियोंमें डालनेके लिए कोई चबूतरा नहीं बना हुआ है। मेहतरोंको इस गन्दगीका भारी बोझ लेकर गाड़ीपर चढ़ना पड़ता है और तभी वे उसे गाड़ीमें डाल पाते हैं। पाखानोंमें रखे ज्यादातर डोल टूटे-फूटे होते हैं। वे छोटे होते हैं, इसलिए जल्दी ही भर जाते हैं। इससे विष्टा उनसे बाहर निकल आती है और पानी तथा पेशावके साथ मिलकर नाबदानोंमें बहने लगती है।

पाखाना उठानेकी गाड़ियाँ केवल चार हैं। गाड़ियोंके बिलकुल भरी होनेके कारण हमने मेहतरोंको अपने टोकरोंमें पड़े मल-मूत्रको जमीनपर फेंकते देखा है। हमारा दावा है कि ऊपर हमने जो तथ्य दिये हैं, उन्हे कोई गलत साबित नहीं कर सकता।

मेरे विचारसे तो इसके सामने रिपोर्टकी और सभी बातें गौण हो जाती हैं। रिपोर्टमे वर्णित अवस्थाको महज इसीलीए कायम नही रहने दिया जा सकता कि इस तरहकी जाँच की जानेपर शायद दूसरे नगरोंकी अवस्था भी दुखद ही पाई जायेगी, या इलाहाबादकी तो वर्षोंसे यही हालत है। जब किसी घरमें कोई साँप दिख जाता है तो इस कारणसे कि वह तो वहाँ वर्षोंसे रहता आया है, उसको भगानेमे देर नही की जाती। इस कल्पित घर और कल्पित साँपकी अपेक्षा इलाहाबाद का यह घिनौना स्थल कही ज्यादा बुरा है। मुझे आशा है कि समितिके सदस्य और मण्डलकी इलाहाबाद शाखाके सदस्य तबतक न खुद चैन लेगे और न इलाहाबाद नगरपालिकाको लेने देंगे जबतक कि यह शर्मनाक अवस्था बिलकुल बदल नहीं जाती और समाजके इन अत्यन्त उपयोगी सदस्योके किसी अच्छी जगह अच्छी तरह रहनेकी व्यवस्था नही कर दी जाती। मेरी जानकारीमे एक ऐसा प्रसंग है। एक जगह प्लेग फैल जानेपर वहाँ रहनेवाले पन्द्रह सौ लोगोको चौबीस घंटेके अन्दर वहाँसे हटाकर तम्बुओंमे बसा दिया गया था और जबतक उनके लिए अन्यत्र आवासकी व्यवस्था नही हो गई तबतक उन्हें वही रखा गया था।[1] मौजूदा प्रसगमें भी इसी तरहकी तात्कालिक कार्यवाही की आवश्यकता है और अगर इलाहाबादने आगे बढ़कर रास्ता दिखाया तो मुझे कोई सन्देह नही है कि दूसरे नगर भी उसका अनुसरण करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-४-१९३३

१. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ २२६।

५५१. एक हरिजन-सेवककी दुविधा

एक हरिजन-सेवक लिखते हैं :

> आप तो जानते हैं कि अस्पृश्यता-विरोधी कार्यकर्ताओंको सनातनी पुरोहितोंके दुर्व्यवहारका शिकार होना पड़ता है। वे ऐसे कार्यकर्ताओंके घरोंके धार्मिक समारोहोंमें पौरोहित्य करनेसे इनकार करते हैं। आपने 'हरिजन', सं० ४ में कहा है[1] कि सुधारकोंको बाहरी आडम्बरोंका त्याग करना सीखना चाहिए। क्या आप नहीं चाहेंगे कि पुरोहितोंसे भी बिलकुल छुट्टी ही पा ली जाये ? पुरोहित लोग तो सिर्फ पैसेके लिए काम करते हैं, मेरी जानकारीमें ऐसे बहुत-से पुरोहित हैं जो शुद्ध मन्त्रोच्चार भी नहीं कर पाते। उनके अर्थ तो और भी कम पुरोहित जानते हैं। वे जनताके भोलेपनका लाभ उठाते हैं। ऐसे पौरोहित्यसे किसीको क्या पुण्य मिल सकता है? अन्य स्थानोंकी अपेक्षा तीर्थस्थलोंमें ऐसे पाखण्डका और अधिक बोलबाला है। मैं खुद ब्राह्मण हूँ। मैं १३ वर्षका था तभी मेरा उपनयन संस्कार हुआ था। संस्कारके अन्तमें पुरोहितने कहा कि जबतक तुमने जनेऊ नहीं धारण किया था, तुम शूद्र थे, लेकिन अब जनेऊ धारण करके ब्राह्मण बन गये हो। जब मैं माता-पिताको नमस्कार करने गया तो मुझे इस सूत्रको वहाँ दोहराना पड़ा। यहाँ मुझे जो बात बताई गई वह यह थी कि जनेऊ धारण करनेके बाद मेरा दर्जा ऊँचा हो गया है। आप अपने कथनका कि हिन्दू धर्ममें ऊँच नीचका कोई भेद ही नहीं, मेल इस बातसे कैसे बैठाते हैं?
>
> आपसे एक और बात कहना चाहता हूँ। जब मैं स्कूलमें था, हमारी कक्षामें एक वाद-विवाद प्रतियोगिता हुई थी। उसकी अध्यक्षता एक सनातनी शिक्षकने की थी। मुझे याद है, उसने कुछ इस तरहकी बातें कही थीं: हमारी स्त्रियाँ हर महीने अस्पृश्य हो जाती हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा किसी भी अन्य अस्पृश्यके साथ। तो फिर जिन्हें अस्पृश्य कहा जाता है, उनके प्रति हम ऐसी अस्पृश्यता क्यों नहीं बरतें?

पत्र काफी लम्बा था, लेकिन मैंने उसे बहुत सक्षिप्त करके दिया है। बहुत-से पुरोहितोके अज्ञानके बारेमे और वे पाण्डित्यका जो स्वाग रचाते हैं उसके सम्बन्धमे पत्र-लेखकने जो-कुछ कहा है, वह दुर्भाग्यवश सर्वथा सच है। इसका उपाय यह है कि सामान्य रूपसे सभी लोगोके चरित्रका स्तर ऊपर उठाया जाये और ठीक ढगकी

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०४-५।

शिक्षाका, जिसमे संस्कृतका कामचलाऊ ज्ञान भी शामिल है, प्रचार किया जाये। विवेकानन्द संस्कृतको जिस महान् शक्तिका श्रेय देते थे, उसमे मेरा विश्वास है। हम लोग संस्कृत सीखनेकी कठिनाईसे अनावश्यक रूपसे घबराते हैं। लगनशील विद्यार्थी के लिए यह उससे कुछ अधिक कठिन नही है जितना कि कोई और भाषा सीखना। मेरा मतलब यह नही है कि हम संस्कृतका ऐसा ज्ञान आसानीसे प्राप्त कर सकते हैं जिससे हम प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोकी निगूढताको समझ जायें। मेरा कहना तो यह है कि संस्कृतका कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करना, उसका सही उच्चारण सीख लेना, ताकि हम यह जान सके कि पुरोहित अपना काम ठीक-ठीक कर रहा है या नही या वह हमे धोखा तो नही दे रहा, बहुत कठिन नही है। अंग्रेजीका उतना ही ज्ञान प्राप्त करना जितना कठिन है, उसकी तुलनामे तो यह दशांश भी कठिन नही है। और फिर यह भी नही भूलना चाहिए कि संस्कृतका ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लेनेका मतलब वह कुंजी हाथ लग जाना है जिसके बलपर दक्षिणकी भाषाओ-सहित अधिकांश भारतीय भाषाओका ज्ञान प्राप्त करना बहुत आसान हो जायेगा।

किन्तु मै प्रस्तुत विषयसे दूर जा रहा हूँ। जबतक वह शुभ दिन नही आता तबतक तो हमे अपने उपलब्ध साधनोसे काम लेना होगा और उनके द्वारा अपनी पूरी शक्ति लगाकर जितना जो-कुछ कर सकते हो, करना होगा। और यदि हमें अपनी धार्मिक विधि करानेके लिए कोई विश्वसनीय ब्राह्मण पुरोहित न मिले तो 'भागवत' और परवर्ती सन्तोने इसका हमें एक अत्यन्त सरल हल बताया है। विवाहकी, जन्मकी, मृत्युकी, या अन्य कोई भी धार्मिक विधि हो यदि हृदयसे भगवान् के नामका उच्चारण-मात्र करे तो हम निःशंक यह मान सकते हैं कि उतने से ही हमें उनकी उपस्थिति और उनके आशीर्वादका लाभ मिल जायेगा। भगवान् तो सदा और सर्वत्र है ही; हमे इस सत्यकी प्रतीति नही है, इतनी ही बात है। सन्तोकी अटूट परम्परा द्वारा अनुष्ठित और इस दीर्घकालीन अनुष्ठान द्वारा पावनीकृत यह नाम-जप हमे अज्ञानकी मूर्च्छासे जगा देता है और उसका प्रभाव बिजलीकी चिनगी-की तरह अमोघ होता है। वह हमे तुरन्त ही अपने बीच भगवान्की उपस्थितिका भान करा देता है। यह मै उनके लिए कह रहा हूँ जिनमे श्रद्धा है। जिनमें ऐसी श्रद्धा नही है वे इस बातको अपने मनसे निकाल दे। उनके लिए तो उस रूढिवादी पुरोहितका वहाँ होना भी महज एक यान्त्रिक घटना है, रिवाजका मूढ पालन-मात्र है। उससे उन्हे कोई पुण्य लाभ नही होता। हिन्दू परिवारोमे प्रामाणिक, सदाशय पुरोहितके लिए, वह रूढिग्रस्त हो तब भी, स्थान है। इस स्थानको अपनी मूर्खताके कारण वह तेजीसे खो रहा है। यदि वह अपना आलस्य, अज्ञान और जो इससे भी ज्यादा बुरी वस्तु है, अपनी बेईमानी दूर कर दे तो उसका स्थान अब भी सुरक्षित है। वर्तमान आन्दोलनसे हमारी यह अपेक्षा है कि वह अप्रत्यक्ष रूपसे यह सुधार भी करेगा। आन्दोलन आन्तरिक शुद्धिका आन्दोलन है। आन्तरिक शुद्धि तबतक सम्भव नही है जबतक हम हर बुरी चीजको झाड-बुहारकर फेंक नही देते। और इसका आरम्भ यदि अपने को ब्राह्मण कहनेवाले नही करेगे तो और कौन करेगा?

जहाँतक उपनयनकी विधिका सवाल है, मै स्वयं तो यज्ञोपवीतका त्याग कर चुका हूँ किन्तु मै यह जरूर मानता हूँ और मुझे इसमे कोई शका नही है कि उसमें एक गहरा अर्थ है। यज्ञोपवीत नवजन्मका प्रतीक है। यज्ञोपवीत धारण करनेके पहले हमारा पहला जन्म, शारीरिक जन्म हुआ होता है। यज्ञोपवीत दूसरे जन्मका, आध्यात्मिक जन्मका चिह्न है। वह दीक्षित होनेका, भगवान्के प्रति समर्पित नये जीवनका चिह्न है। इसलिए उच्चतर जीवनके इस अर्थमे कि इस नये जीवनमे अपने प्रति हम ज्यादा जिम्मेदारी महसूस करते है, वह उच्चतर जीवन अवश्य है। लेकिन वह हमें अपने पडोसीसे ऊँचा दर्जा नही देता। सच तो यह है कि उपनयनके समय उपनीत को इस बातकी स्पष्ट प्रतीति होनी चाहिए कि वह उस दिनसे समाजके सबसे ज्यादा गरीब और दलित लोगोका सेवक बन रहा है। और यह कल्पना कि जब तक दीक्षा और समर्पणका यह सस्कार सम्पन्न नही होता तबतक हम सब शूद्र है मुझे तो बहुत ही सुन्दर मालूम होती है। इन सारी विधियोका मूल उद्देश्य मानवीय कर्तव्योपर जोर देना था किन्तु दुर्भाग्यवश उनका उपयोग कमजोरोका शोषण करने और उन्हे उनके अधिकारोसे वचित करनेके लिए किया गया है।

जहाँतक स्त्रियोकी अस्पृश्यताकी बात है उनकी उस अस्पृश्यताकी तुलना, आजकल हम अपने ही चार करोड़ मानव-बन्धुओके साथ जैसी अस्पृश्यता पालते है, उसके साथ करना सत्यकी हत्या करने-जैसा है। स्त्रियोकी वह स्वल्पकालिक अस्पृश्यता शरीरकी एक स्वल्पकालिक अवस्थासे सम्बद्ध है। लेकिन करोड़ो अस्पृश्योकी यह अस्पृश्यता तो उसकी दलितावस्थाकी निशानी है; वह उनके जन्मसे जुडी हुई है, शरीरकी शुचिता-अशुचितासे उनका कोई सम्बन्ध नही है। पहली अस्पृश्यताके लिए, यदि वह विवेककी सीमाके भीतर पाली जाये, तो विचारका आधार है। यह दूसरी अस्पृश्यता तो एकदम विचारहीन है और शास्त्रोकी अज्ञानपूर्ण तथा स्वार्थमूलक व्याख्यापर आधारित है।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, २२-४-१९३३

५५२. एक मित्रकी चेतावनी[1]

आपने जब हरिजन-सेवाका कार्य हाथमें लिया, तब कुछ दिन तो मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता रही। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद चिन्ता होने लगी। इतने दिन विचारोंमें बिताये। पर अब तो इस चिन्ताने मेरा खाना और सोना भी हराम कर दिया है। इसलिए यह लिखे बिना अब रहा नहीं जाता।

१. अंग्रेजीमें यह लेख २२-४-१९३३ के *हरिजन*में प्रकाशित हुआ था। उसमें " सूचना भी दी गई है कि इस लेखमें आया पत्र गुजरातीमें था। इसलिए यद्यपि गुजरातीमें यह लेख अंग्रेजीसे एक दिन बादमें छपा, फिर भी गुजरातीका ही अनुवाद देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है

आज कई वर्ष हुए, मेरी सदा यह आकांक्षा रही है कि इन अन्त्यज भाइयोंको इतना अधिक अपना लूँ, कि वे भूल जायें, कि वे अन्त्यज हैं। उनकी पृथक् पाठशालाएँ तोड़ दी जायें, उनके लिए अलग कुएँ न बनवाये जायें, शिक्षामें, मिलने-जुलनेमें, जलाशयके उपयोगमें अलगाव एकदम नष्ट कर दिया जाये, इसी भावना और आशासे मैंने काम किया। आपने जब यह काम शुरू किया, तब आशा थी कि उसके फलस्वरूप अब 'अन्त्यज' शब्द सदाके लिए विदा हो जायेगा और तमाम अन्त्यज हिन्दू समाजमें समा जायेंगे। पर आजकल जो हो रहा है, वह सब देखकर तो मुझे बड़ी पीड़ा होती है। इसका फल तो यह दिखाई देता है कि वे और भी अलग हो रहे हैं। अलग पाठशाला, अलग छात्रवृत्तियाँ — सारी योजनाएँ हरिजनोंके लिए अलग हो रही हैं। और आप इस प्रगतिपर खुश हो रहे हैं। मुझे तो बड़ा दुःख होता है। मैं तो साफ देखता हूँ कि इन सब बातोंका नतीजा यह होगा कि आज पाँच करोड़ हरिजन हैं, तो कल दस करोड़ हो जायेंगे। और फिर कोई ऐसे साधु-संन्यासी मिल जायेंगे जो उसके गद्दीधारी आचार्य बनकर हरिजनोंके लिए एक नया पंथ स्थापित कर देंगे। सौ-दो सौ वर्षके बाद आप हरिजन-धर्मके संस्थापक कहे जायेंगे। आपकी मूर्तियाँ पधराई जायेंगी, और आप ही के नामपर हिन्दुओंसे पृथक् 'हरिजन' नामका एक निराला वर्ग बन जायेगा।

आपके नामपर हरिजन-सेवाका यह कार्य सर्वत्र जिस तरह चलाया जा रहा है उस तरह तो आप इन हरिजन भाइयोंको अपना एक अलग वर्ग बनाने के लिए ही प्रेरित कर रहे हैं। इस अलगावमें ही वे अपना श्रेय देखते हैं। आपने डाक्टर अम्बेडकर तथा श्री श्रीनिवासन्‌के लिए रास्ता खोल दिया है। उनके हाथ आपने मजबूत कर दिये हैं। अब हिन्दू समाजमें वे घुलेंगे-मिलेंगे नहीं। 'अन्त्यजोंकी जय', 'हरिजनोंकी जय'के नारे सुनाई देंगे।

यह सब मैं बिना सोचे-समझे नहीं लिख रहा हूँ। जो अपनी आँखोंसे देखता हूँ उसका हृदयपर पड़ा हुआ प्रभाव ही इस पत्रमें दिया गया है और यह लिखते हुए मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।

आपकी लड़ाईका मूल उद्देश्य छूटा जा रहा है। आप एक जालमें फँस गये हैं। आप अगर हिम्मतसे उससे बाहर न निकले, तो बहुत बुरा होगा।

आप करने चले थे कुछ, पर हो गया कुछ और ही। उन्हें हिन्दुओंमें समाविष्ट करनेका कार्य तो एक ओर रह गया, उसके बजाए उनका उद्धार करनेके बहाने आपने उन्हें एक लुभावना नाम दे दिया है। उनका यह 'हरिजन' नाम उन्हे शेष हिन्दू समाजसे अलग कर रहा है। परिणाम यह होगा कि अब वे हिन्दुओंमें नहीं मिलेंगे। लालची और स्वार्थी धर्मगुरु उनका एक अलग वर्ग बना देंगे और इस कार्यमें आप उनका हथियार होंगे।

> **जैसे हिन्दू, मुसलमान, सिख आज आपसमें एक-दूसरेका सिर तोड़ रहे हैं, वैसे ही देशमें झगड़ा करनेवाला एक वर्ग पैदा हो जायेगा। उनके अलग मन्दिर पहलेसे ही थे और नये भी बनते जा रहे हैं। उनपर कब्जा करनेकी कोशिश अनेक पंथवाले अभीसे कर रहे हैं और वह सब हो रहा है आपके ही नाम पर — "महात्मा गांधीकी जय"के नारेके साथ। अधिक क्या लिखूं?**

इस पत्रके लेखकका नाम मै प्रकट नही करना चाहता। पर उन्हे सभी जानते है। वे भारतके सच्चे सेवकोमे से एक है। उन्होने हरिजनोकी खास सेवा की है। इसलिए मै चाहता हूँ कि इस पत्रको सब लोग ध्यानसे पढे। मैंने इसे दो बार पढा और इसपर विचार किया। उनकी चेतावनी माकूल है और सामयिक है। सम्भव है, उनकी यह आशंका सच निकले।

मान लिया जाये कि लेखकका डर सत्य ही साबित हुआ तब भी मै पछतानेवाला नही। इन्सान सोचता कुछ है, ईश्वर करता कुछ और ही है। अगर होनहार एसी ही हुई तो वह कोई नई बात नहीं। ईश्वर सब-कुछ करता हुआ भी किसी चीजके कर्तृत्वका जिम्मा अपने सिर नही लेता, नही तो मै ईश्वरपर ही सारी जिम्मेवारी डाल देता। अपनी जिम्मेवारी मै लेशमात्र भी नही मानता। हाँ, एक बातकी जिम्मेवारी मै अवश्य सहर्ष ले लूँगा। वह इस बातकी कि 'अन्त्यज' नाम छोडकर एक अन्त्यज भाईका ही सुझाया हुआ अत्यन्त मधुर और समुचित नाम 'हरिजन' मैंने ही पसन्द किया। सो 'अन्त्यजोंकी जय'के बजाय 'हरिजनोकी जय'के नारे भले लगाये जाये।

सनातनी कहते है, अन्त्यज तो अनादिकालसे अलग माने गये है, और उन्हे अलग रखनेके लिए हम अपने प्राणो तककी बाजी लगा देंगे। दूसरी ओर मै उन्हे हिन्दू समाजमे ओतप्रोत करके उनका अलगावको नष्ट करनेके लिए अपने प्राण दे देनेकी शक्ति ईश्वरसे माँग रहा हूँ और वैसी ही शक्ति पानेकी प्रार्थना करनेको दूसरोको भी ललचा रहा हूँ। सनातनी भाई जब हरिजनोको अलग रखनेकी कोशिश कर रहे है, और उसका जो परिणाम होगा उसकी जिम्मेवारी वे खुद लेनेके लिए तैयार है, तब फिर वह जिम्मेवारी किसकी है, यह निश्चित करनेका सवाल ही नही रहता।

हरिजन कगाल रहें, गुलाम रहे, सदाके लिए सवर्णोंके अधीन रहे, जूठन खानेवाले रहे, इससे तो यह बेहतर है कि वे जाग्रत होकर सवर्ण हिन्दुओका सामना करे और उनसे अच्छी तरह सुलझ ले। ऐसी लडाईके लिए उन्हे तैयार करनेमे मेरी मददकी जरूरत न तो डाक्टर अम्बेडकरको है, और न रावबहादुर श्रीनिवासन्को ही। काल अपना कार्य कर रहा था और अब भी कर रहा है। काल भगवान्ने ही इन दो सज्जनोको तैयार किया है और औरोको भी तैयार कर रहा है। अगर सवर्ण हिन्दू अपना कर्त्तव्य पूरा नही करेंगे, तो फिर सर्वसमर्थ काल तो ऐसे अनेक सेवक तैयार करेगा ही।

जो चीज आँखोके सामने है उसे नकारनेमे वह नष्ट नही हो जाती। घरमें घुसा हुआ साँप नही है यह कहनेसे वह निकल जानेवाला नही। रोगका खयाल न करनेसे रोग दूर नही होता। मै अपनेको इस विषयमे सच्चा वैद्य मानता हूँ। मैने रोगग्रस्त हिन्दू धर्मकी नाडी अच्छी तरहसे देख ली है और दवा भी मैने उपयुक्त बताई है। उसका यदि भली-भाँति उपयोग हो तो रोगका अवश्य नाश होगा, इसमें कोई सन्देह नही। लेकिन रोगी उसका उपयोग ही न करे तो वैद्य बेचारा क्या कर सकता है? अधिकसे-अधिक वह मरीजके सिराहने बैठकर अनशन कर सकता है। वैद्य वैसा करनेकी भी तैयारी कर रहा है। अनशनके लिए जो योग्यता चाहिए वह मिले तो फिर वह किसीके रोके रुकनेवाला भी नही है।

रोग हरिजनको नही है। अगर हरिजनको है तो उसका कारण सवर्ण हिन्दू ही है। रोग तो असलमे हुआ है सवर्ण हिन्दूको। पर वह स्वीकार नही करता कि उसे रोग है। वह मरीज तो निदान करनेवाले वैद्यको घुडकता है। पर वैद्यको इसकी परवाह नही। वह तो पुकारता ही रहता है—'अरे, तेरे घरमें आग लगी है, आग।'

लेकिन ललाटके अक कभी व्यर्थ नही होते। अगर हिन्दू धर्मका नाश होना ही है, तो कौन क्या कर सकेगा? बुद्धि 'कर्मानुसारिणी' कही गई है। कर्मका अर्थ है भविष्य। जैसी भवितव्यता होगी वैसी ही मति-गति सवर्ण हिन्दुओको सूझेगी। होनहार होकर रहेगी। यानी, अन्तमे उनका भी क्या दोष?

इसलिए पत्र लिखनेवाले हिन्द-सेवकको मेरी सलाह है कि वह व्यर्थ व्याकुल न बनें, अपना खाना व सोना खराब न करे। वह तो एकाग्र होकर बराबर अपना कर्तव्य करते रहें। वह कहेंगे—'मेरा तो धर्म था कि आपको चेतावनी दे दूं। वह मैने कर दिया। अब आप जानो, आपका काम जाने। मै शान्त हूँ।' तब तो ठीक ही है। तब उन्हें शान्त करनेको कुछ रहा ही नही। उन्होने चेतावनी दी तो अच्छा ही किया। मै अधिक सावधान बनूँगा। अपना मार्ग तो मेरे सामने साफ है। मै ध्यान रखूँगा कि किसी भी हालतमे उससे न डिगूं। पत्र लिखनेवाले हिन्द-सेवकका और मेरा आदर्श एक ही है। वे जैसे हरिजनोका अलग पथ नही देखना चाहते, वैसे ही मै भी उनके अलगावका विरोधी हूँ। मै नये पंथका आचार्य बननेका स्वप्न भी नही देख रहा हूँ। मै तो हिन्दुओका अतएव हरिजनोका और हिन्दका अतएव हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी सभीका सच्चा सेवक बनना चाहता हूँ और सेवा करते-करते ही मरना चाहता हूँ।

लेकिन उक्त हिन्द-सेवककी चेतावनी जैसे मेरे लिए है वैसे ही सनातनी भाइयोके लिए भी है। क्या वे चेतेगे?

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २३-४-१९३३

५५३. तार: प्रभाशंकर पट्टणीको

२२ अप्रैल, १९३३

सर प्रभाशंकर पट्टणी
अदन

ईश्वर आपको जीवन-दान दे। तार द्वारा हालत बतलाइए।

गांधी
वल्लभभाई

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९२९)से। सी० डब्ल्यू० ३२४५ से भी, सौजन्य: महेश पट्टणी

५५४. पत्र: नारणदास गांधीको

२२ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

पिछले तीन दिनोसे यानी उस बृहत्काय डाकके बादसे तुम्हारा कोई पत्र नही है। इसलिए थोडी चिन्ता हो रही है।

काकाके पास ऐसा समाचार आया है कि आनन्दीको बुखार आ रहा है। क्या बात है? कुसुम कैसी है? लक्ष्मीबहनके बारेमे मैंने तुम्हे तार किया है। नर्मदाका पत्र आया है। आज कोई आयेगा या नही, कह नही सकता। शायद आज पत्र आये। यह मै प्रार्थनाके पहले लिख रहा हूँ।

तुम्हारे विषयमे भी चिन्तित रहता हूँ। तुम्हारे पास तुम्हारे बारेमें दूसरोके विचार भेजता रहता हूँ। आशा करता हूँ कि तुम्हें उनका बुरा नही लगता होगा। जो व्यक्ति कोई बडी जिम्मेदारी उठाता है उसकी टीका तो होती ही है। उसे सुनकर जो अलिप्त रह सकता है वह उससे लाभान्वित ही होता है, और जो उद्विग्न होता है वह तो प्राणान्तक कष्ट पाता है। हमारे पास तो 'निन्दक बाबा'के बारेमे भजन भी है — भजन बहुत अच्छा है, ऐसा मै नही कहता। भजनके रचयिताने उसमें निन्दकके प्रति उदारता नही दिखाई है। किन्तु भजनका आशय ठीक है। जो भी हो, तुम स्वस्थ होओ या अस्वस्थ, मुझे तुम्हारा पत्र मिलता रहे तो मै निश्चिन्त रह सकता हूँ। इसलिए प्रतिदिन एक कार्ड तो लिख ही दिया करो।

नी० के विषयमे मैंने तुम्हारी राय पूछी थी। वह आज यहाँ आ जायेगी। उसका त्याग इस समय तो उसके पिछले भोग-विलास जितना ही प्रतीत होता है। साबुन और तेलका खर्च बचानेके लिए मैंने उसे केश कटा डालनेकी सलाह दी थी। उसने ऐसा ही किया। ऐसे और भी कई अनुभव है। किन्तु उन्हें लिखनेका समय नही है।

इसके साथ कनुमूर्ति राममूर्तिका पत्र भेज रहा हूँ। ऐसा लगता है कि उसने तुम्हे कुछ लिखा है। वह आश्रममे आना चाहता हे, मुझसे मिलना चाहता है। आजकल तो मैं उसे रोकता रहा हूँ। लेकिन अब मैं उसे आकर मिलनेकी अनुमति दे रहा हूँ। इस बीच तुम्हे उसके बारेमे कोई अनुभव हुआ तो मुझे लिखना।

सीतलासहायका एक नाराजी-भरा पत्र आया हे। एक पत्र प्रभुदासका भी आया है। उसकी सगाईका अभी कुछ पक्का नही हुआ है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५९ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

५५५. पत्र : के० केलप्पनको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय केलप्पन,

आपका पत्र मिला। आपको 'हरिजन' नियमित रूपसे भेजा जा रहा है, इसमें सन्देहकी कोई गुजाइश नही। समझमे नही आता कि फिर रास्तेमे कैसे गडबड़ हो जाती है। आपकी हिदायतके मुताबिक पता बदल दिया गया था। मैं फिर पूछताछ करूँगा। आपको 'हरिजन' नियमित रूपसे मिलना ही चाहिए। कालिकटमें ही दूसरे कई लोगोको नियमित रूपसे मिल रहा है। इसलिए आशा है कि आपने 'हरिजन' के सभी अक पढ़ तो लिये होगे।

समितिके सदस्योके नाम मैंने देख लिये है। आशा है, उसमे सदस्योकी सख्या आवश्यकतासे अधिक नही हो पायेगी,[1] और ऐसा नही होगा, यदि सदस्योंमें से प्रत्येक सचमुच कार्यकर्ता हो। आप मात्र शोभा बढानेके लिए तो सदस्य नही रखना चाहते। आप तो उपयोगी कार्यकर्ता चाहते है, जिनमे से प्रत्येकको उसका एक निश्चित कार्य सौप दिया जाये।

याद रखिए कि लक्ष्य अब भी गुरुवायूर ही है। उसे छोडा नही गया है, केवल उसका समय कुछ आगे बढा दिया गया है। आप अपने आन्दोलनके बारेमे मुझे जब-तब जानकारी देते रहियेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०३६)से।

१. के० केलप्पनने १६ सदस्योंकी एक सूची दी थी।

५५६. पत्र : ए० जी० मुलगाँवकरको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। आपने जिन कागजातका उल्लेख किया है, वे अब तक मेरे पास नही पहुँचे हैं।[1] उनके मिलते ही, मैं उनको देखनेके लिए थोडा समय निकालनेकी कोशिश करूँगा और यदि उनमे कोई ऐसी उपयोगी चीज मिली जिसके बारेमे मैं कुछ कह सकता हूँ तो मैं निश्चय ही आपको लिख दूंगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० जी० मुलगाँवकर
अवैतनिक सयुक्त मन्त्री
द आल इडिया हिन्दू लॉ रिसर्च एण्ड रिफॉर्म एसोसिएशन
पोपटवाड़ी, कालबादेवी रोड, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२९) से।

५५७. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय च० रा०,

११ अप्रैलका आपका पत्र मुझे कल ही मिल पाया। दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन क्या किया जाये।

विधेयकोके भाग्यके बारेमे कुछ भी लिखनेके सिलसिलेमें एक बारीकी आड़े आ रही है।[2] आप यदि कोई लाभ देखे, तो मैं वाइसरायको और भारत मन्त्रीको भी व्यक्तिगत रूपमे पत्र लिखनेको तैयार हूँ, पर उनको सार्वजनिक रूपसे कुछ लिखनेमे मुझे संकोच होगा। इसमे कोई शोभा नही कि कोई बन्दी स्वयको वन्दी बनानेवाली सरकारकी सार्वजनिक रूपसे आलोचना करे। आप देखेंगे कि सार्वजनिक रूपसे

१. ए० जी० मुलगाँवकर जिस एसोसिएशनके संयुक्त मन्त्री थे, उसका साहित्य।

२. च० राजगोपालाचारीने गांधीजी को सूचित किया था कि सरकारने एक प्रशासनिक आदेश जारी करके श्री हरविलास शारदाका यह अनुरोध ठुकरा दिया है कि विधेयकको राय बनानेके लिए प्रचारित किया जाये या फिर विधानसभाके चालू सत्रमें गैर-सरकारी कार्यके लिए एक अतिरिक्त दिन रखा जाये और उस दिन अस्पृश्यता-निवारण तथा मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंकी चर्चा की जाये।

सरकारकी आलोचना करनेसे मैं बड़ी सतर्कतापूर्वक बचता आ रहा हूँ और मैं समझता हूँ कि ऐसी निर्लिप्तता मुझे कायम रखनी चाहिए।

नरसिंहम्‌को दिनशा मेहताकी देखभालमें रखनेसे मुझे प्रसन्नता होगी, पर मैं जानता हूँ कि प्राकृतिक चिकित्सामें आप विश्वास नहीं करते और यदि करते भी हैं तो उतना नहीं जितना कि मैं करता हूँ। काका इन दिनों सिंहगढ़में यही चिकित्सा करा रहे हैं और सिंहगढ़ एक बहुत ही उत्तम, स्वास्थ्यकर, एकान्त स्थल है। यह पूनासे कुछ ही मीलकी दूरी पर है। यदि आप उसको सिंहगढ़ नहीं भेजते, तो मैसूर आरोग्यालय भेज दीजिए।

आपके वहाँ पहुँचनेपर पापाकी हालतमें सुधार होना निश्चित था। मैंने उसके बारेमें भी अपना सुझाव दिया है।

एक सुझाव और। बहुत सम्भव है कि वियरम-दम्पति[1] पहाड़पर चले गये हों। बहुत ही भले लोग हैं और वे बड़ी खुशीसे पापाको अपने साथ रख लेंगे। पापा इतनी अंग्रेजी जानती ही है कि वियरम-दम्पत्तिके साथ घुलमिल सके। और आपको मालूम ही है कि वे पुडुकोट्टामें हैं। आप कहें तो मैं भी उनको लिख दूं।

सबकी ओरसे सप्रेम,

हृदयसे आपका,
बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ ३७३, एस० एन० २१०३७ से भी

५५८. पत्र : नी० को

[२२][2] अप्रल, १९३३

प्रिय नी०,

शास्त्री बुधवारसे ही हर रोज सुबह स्टेशन जाता और निराश हो लौट आता था। मैं तुम्हारे बारेमें इतना ही चिन्तित था। मुझे खुशी है कि आखिर तुम आ गईं। आशा है, तुम्हारी सेहत पहलेसे अच्छी होगी। तुम सीधी सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटीकी अतिथिशालामें चली जाना, वहीं रहना और जल्दी न आ सको तो सम्पादक शास्त्री या कहो 'हरिजन शास्त्री'—उसका यही नाम पड़ गया है—के साथ चली जाना। यदि भूख न लगती हो तो तुम दूध भी मत लेना, बस फलोंका

१. ये पहले बंगलोरके थियोलॉजिकल कॉलेजमें थे।

२. साधन-सूत्रमें "२१" है जो सम्भवत: चूक है। नी० २२ अप्रैलको पूना पहुँची थीं, देखिए अगला शीर्षक।

रस ही लेना। यदि किसी भी चीजकी इच्छा न करती हो, तो सिर्फ पानी ही पीना और यहाँ आने पर फलोका रस लेना। मै इसका प्रबन्ध कर दूँगा। मेरे पास आनेसे पहले तुम बिलकुल अपनी मर्जीके मुताबिक चलना। सबसे अच्छा तो यही रहेगा कि फल और दूधके अलावा कोई चीज न लो। आशा है, मेरे पास आने लायक ठीक सेहत तुम्हारी रहेगी। यदि इससे पहले चिकित्सककी सहायताकी जरूरत पडी तो शास्त्री उसका प्रबन्ध कर देगा। सि० को खाने-पीनेके लिए तुम वही देना जो सोसाइटीकी अतिथिशाला मे सुलभ हो। यहाँ आते समय उसे साथ लेती आना। हॉ, अभी तुम नंगे सिर नही रह सकती। मेरा खयाल है, मैंने तुमसे कहा था कि तुमको मेरी तरह सिरपर एक गीली पट्टी बाँधनी पड़ेगी। फिर तुम देखोगी कि तुम्हे कोई कष्ट नही होगा।

इसी महीनेकी १८ तारीखका तुम्हारा पत्र मुझे आज मिला। १७ तारीखका पत्र अबतक मुझे नही मिला।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२४) से।

५५९. पत्र : पी० एस० रुद्रमणिको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय रुद्रमणि,

आज सुबह सि० के साथ नी० यहाँ सकुशल पहुँच गई। तारके लिए धन्यवाद। अबतक उनसे मेरी मुलाकात नही हुई है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एस० रुद्रमणि
चीतलदुर्ग

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२८)से।

५६०. पत्र : के० सी० सूर्यनारायणको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय सूर्यनारायण,

आपका पत्र मुझे मिल गया। पर मैं आपकी सहायता करनेमें एकदम असमर्थ हूँ। आपको अपनी सभी दलीलें अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्रीके सामने रखनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० सी० सूर्यनारायण
खद्दर-विक्रेता
पीठापुरम्

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०३०)से।

५६१. पत्र : पुरुषोत्तम डी० सरैयाको

२२ अप्रैल, १९३३

चि० काकु,

तू यह तो समझ ही गया होगा कि तेरा विवाह ऐसे अवसरपर क्यों हो रहा है। यदि तूने और लक्ष्मीने[1] यह समझ लिया है कि विवाह भोगके लिए नहीं बल्कि त्यागके लिए है तो सब कुशल ही है। अपने विवाहके बाद दूनी समाज-सेवा करना, तथा धर्मपालनमें और भी सजग रहना। हम लोग जो पंचयज्ञ करते रहे हैं, विवाहके दिन तुम दोनों वे यज्ञ करना।

दोनों दीर्घायु होओ और सच्चे सेवक बनो।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मुझे याद नहीं पड़ता कि तेरा कोई पत्र मुझे मिला था। मुझे जो पत्र मिलते हैं उनमें से शायद ही कोई अनुत्तरित रहता हो।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८१५) से। सौजन्य : पुरुषोत्तम डी० सरैया

१. बम्बईके एक खादी-कार्यकर्ता विट्ठलदास जेराजाणीकी भतीजी।

५६२. पत्र : लक्ष्मी जेराजाणीको

२२ अप्रैल, १९३३

चि० लक्ष्मी,

मैंने काकुको[१] जो पत्र लिखा है उसे तू अपने लिए भी समझना। देखना, कही मै तुझे गँवा न दूँ। तूने स्वेच्छासे पत्र-व्यवहार आरम्भ किया था उसे अब बन्द मत करना। अपनी त्याग-वृत्ति, सादगी आदिको बढाना। पति-पत्नी, दोनो एक-दूसरेके मित्र होते है। मित्रका धर्म एक-दूसरेको आगे बढ़ाना, एक-दूसरेकी कमजोरीको दूर करना है। तू काकुके आचरणपर निगाह रखना, काकु तेरे आचरणपर निगाह रखेगा। इस प्रकार परस्पर निरन्तर उन्नति करते रहना। तुम दोनो बहुत वर्ष जीओ और खूब सेवा करो। मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८१६) से। सौजन्य : पुरुषोत्तम डी० सरैया

५६३. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

२२ अप्रैल, १९३३

चि० गगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला।

काकु और लक्ष्मीके लिए तुमने आशीर्वाद तो माँगा है किन्तु क्या यह जानती हो कि तुमने उनके विवाहकी तारीख नहीं लिखी? लेकिन चन्द्रशंकरने[२] दी है। अत. इसके साथ उनके लिए पत्र भेज रहा हूँ।

काका लिखते हैं कि तुम तीनोंने उपवास किया था। किन्तु क्या कारण था? यदि ऐसा कुछ हुआ हो तो उस सम्बन्धमें तुम्हे मुझे लिखना चाहिए था।

. . .[३] पाँच रुपये गाण्डीव चरखेके लिए लिये, जिसमें से तीन . . .[४] को दिये, और . . .ने[५] तुम्हें दिये। यह सब क्या है? मुझे लिखना। ऐसी सामान्य जान पड़नेवाली बाते भी मेरी जानकारीमें लाना तुम्हारा कर्तव्य है।

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. चन्द्रशकर प्राणशकर शुक्ल, हरिजनबन्धु के तत्कालीन सम्पादक थे।
३, ४ और ५. नाम छोड दिये गये हैं।

तुम अपनी बहनके बारेमे कुछ नही लिखती।

काकुका कोई पत्र मुझे नही मिला।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो-६: गं० स्व० गंगाबहेनने, पृष्ठ ७१-२। सी० डब्ल्यू० ८८०१ से भी, सौजन्य: गंगाबहन वैद्य

५६४. पत्र : शारदा चि० शाहको

२२ अप्रैल, १९३३

चि० शारदा,

तू अपना दिन कैसे बिताती है? तू कौन-सी दवा लेती है? तू क्या खाती-पीती है? तेरी सहेलियाँ कौन है? घरसे समुद्र कितनी दूर है? क्या वहाँ घूमने जाया जा सकता है? क्या तू जाती है? तेरे साथ और कौन जाती है? क्या तू आश्रमको पत्र लिखती है? किसको लिखती है? इन सब प्रश्नोंके उत्तर देना।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९६३) से। सौजन्य: शारदा गो० चोखावाला

५६५. पत्र : विश्वम्भरसहायको

२२ अप्रैल, १९३३

भाई विश्वभर सहाय,

आपका खत मिला। अस्पृश्यता पर मैं 'हरिजन' मे जो लेख लिख रहा हूं उससे अधिक क्या लिखु? समय भी कहासे? कोई किसीके वहां खाय-पीये ऐसा कोई धर्म नहि है लेकिन अमुक मनुष्य अमुक जातिका है इसलिये उसके हाथका छुआ अन्न पाना त्याज्य है, ऐसा मानना अधर्म है। जो मनुष्य मैला होगा उसके हाथका पानी हम अवश्य न पीये।

आपका,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

जिममे लीखा था वह कागज वैसे भेजनेका नाम-ठाम दे दो।

सी० डब्ल्यू० ९६६७ से। सौजन्य . परशुराम मेहरोत्रा

परिशिष्ट

डॉ० जी० वी० देशमुख द्वारा गांधीजी को लिखे पत्रके अंश[1]

स्वस्थ जानवरके अपनी मौत मर जानेपर उसके मृत शरीरमे जो मास होता है उसमे और वध किये गये जानवरके मासमे कोई रासायनिक या शारीरिक शास्त्र-विषयक अन्तर नही होता। .

वध किये जानेपर पशुके शरीरसे खून निकलता है और इस तरह उसका लगभग सारा खून निकल जानेके कारण उसके मासमे अपेक्षाकृत कम खून रह जाता है। अपनी मौत मरनेवाले पशुके मृत शरीरमे सारा खून उसके ततुओमे ही रह जाता है और इसलिए उसके मासमे ज्यादा खून मिला हुआ होता है।

शरीरका विगलन तो अपनी मौत मरनेवाले और वध किये जानेवाले दोनो पशुओमे होता है। नम ततुओ और ज्यादा खून मिले ततुओंका विगलन जल्दी आरम्भ होनेकी सभावना होती है। इसलिए अपनी मौत मरनेवाले पशुके शरीरकी अपेक्षा वध किये गये पशु के शरीरके जल्दी विगलित होनेकी सम्भावना रहती है।

आप शायद सोचते हों कि मास जब विगलित होने लगता है तब दुनियाके सब लोग उसे खानेकी दृष्टिसे त्याज्य मानते है। केवल हमारे यहाँके दलित वर्गोंके ही लोग विगलित होते मासको खाते हो, ऐसी बात नही है। दुनियाके अन्य भागोंमें भी ऐसा होता है। देखा गया है कि यूरोपके जिप्सी ऐसे मासके बडे प्रेमी होते हैं। बल्कि वे तो जमीनके नीचे गाड़ दिये गये मृत जानवरोकी लाशे निकालकर उन्हे भी खाते हैं। अनुमान है कि दुनियाके तीस करोडसे अधिक लोग विगलित हो रही मछलियोको खानेवाले है। . .

रुग्ण जानवरका मांस : लेकिन यह सब स्वस्थ जानवरोकी हदतक होता है। रुग्ण जानवरोपर यह बात लागू नही हो सकती। विषाक्त मास खानेके कारण पश्चिमी दुनियामे अनेक बार महामारियाँ फैली है। इनका कारण रुग्ण पशुओंका मास खाना पाया गया है और पशुओके जिन रोगोके कारण उनका मास विषाक्त हुआ वे उनकी मृत्युकी वजह बननेवाले जाने-माने पशु-रोग नही थे, जैसे कि ऐंथ्रेक्स और ग्लैंडर्स। इसके बजाय वे मामूली ढगके मवाद पैदा करनेवाले रोग थे, जिनकी ओर पशुओके जीते-जी लोगोका ध्यान नही जाता। इसलिए सभी सभ्य देशोंमे मासकी

[1] देखिए पृष्ठ ३५५-५६।

'हरिजनसेवक' वियोगी हरि द्वारा संपादित हिन्दी साप्ताहिक, जिसका प्रकाशन दिल्लीमें आरम्भ हुआ था।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, १९३३ बम्बई सरकारके दस्तावेज।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी: स्वराज आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित।

स्पीगल पेपर्स नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालयमें सुरक्षित।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली गांधी-साहित्य तथा गांधीजी विषयक कागज-पत्रोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

साबरमती संग्रहालय तथा पुस्तकालय: गांधीजी से सम्बन्धित कागज-पत्रोंका संग्रहालय।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(६ मार्च, १९३३ से २२ अप्रैल, १९३३ तक)

६ मार्च च० राजगोपालाचारी, देवदास गाधी और शकरलाल बैंकर गाधीजी से यरवडा केन्द्रीय जेलमे मिले।

८ मार्च गाधीजी ने लक्ष्मी और मारुतीके विवाहके अवसरपर शुभकामना-सन्देश भेजा।

९ मार्च · हरिजन सेवक सघके सविधानका मसविदा तैयार किया।

१२ मार्च पूनासे गुजराती 'हरिजनबन्धु'का पहला अक प्रकाशित।

१७ मार्च भारतीय सवैधानिक सुधारपर श्वेत पत्र प्रकाशित।

१८ मार्च बम्बई सरकारके गृह-सचिवको पत्र लिखकर गाधीजी ने पूनमचन्द राँकाके नाम लिखे अपने उस तारके रोक रखनेके फैसलेपर पुर्नविचार करनेका अनुरोध किया जिसमे उन्होने राँकाको उपवास तोडनेकी सलाह दी थी।

२३ मार्च बम्बई सरकारके गृह-सचिवको पुन पत्र लिखा, जिसमे सरकारसे अपना निर्णय बदलनेका अनुरोध किया और निवेदन किया कि मानव-दयाकी दृष्टिसे तार उपवास करनेवाले कैदियोतक पहुँचा दिया जाये, क्योकि १९२२ से ही सरकार इस तरहकी सुविधा देती रही है।

२५ मार्च पोलक गाधीजी से मिले।

२७ मार्च. एसोसिएटेड प्रेसको दी गई मुलाकातमे हरिजनोके लिए मन्दिरोके द्वार खोले जानेके महत्त्वपर जोर दिया।

२८ मार्च पूनमचन्द राँकासे पत्र-व्यवहार करनेकी अनुमति की माँग करते हुए गृह-सचिवको पुन पत्र लिखा।

१ अप्रैल सरकारी आदेशका उल्लघन करके कलकत्तामे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका २७वाँ अधिवेशन आयोजित किया गया और ६०० प्रतिनिधि गिरफ्तार हुए।

गाधीजी ने बम्बई सरकारके गृह-सचिवको उन्हे पूनमचन्द राँकासे सम्पर्क करनेकी अनुमति देनेके लिए धन्यवाद दिया, लेकिन सरकारके इस निर्णयपर खेद प्रकट किया कि मानव-दयाकी परिधिमे आनेवाले प्रश्नोके सम्बन्धमे उन्हे अन्य कैदियोके साथ भी पत्र-व्यवहार करनेकी अनुमति देनेकी पुरानी नीति जारी नही रखी जायेगी।

एन मेरी पीटर्सनने गाधीजी से मुलाकात की।

२ अप्रैल: भी० रा० अम्बेडकरने पूना समझौतेमे संशोधन किये जानेके बारेमे जेलमे गांधीजी से सलाह-मशविरा किया।

१० अप्रैल: गांधीजी ने तार भेजकर पूनमचन्द रांकासे उपवास तोडनेको कहा, क्योकि अधिक सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए उपवासका सहारा लेना, गांधीजी की दृष्टिमें, सत्याग्रहियोके लिए उचित नही था।

१२ अप्रैल: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको पत्र लिखकर इस बातपर दु:ख प्रकट किया कि सरकारने मानव-दयाके कार्योंके निमित्त भी उन्हे कैदियोसे सीधा सम्पर्क स्थापित करनेकी अनुमति न देनेका निर्णय किया है।

१६ अप्रैल या उसके पूर्व. अहमदाबादके हरिजन-नेता जेलमे गाधीजी से मिले।

१८ अप्रैल· गांधीजी ने ३० अप्रैलको हरिजन-दिवस मनानेकी अपील जारी की।

२२ अप्रैल: गाधीजी यरवडा केन्द्रीय जेलमें।

शीर्षक-सांकेतिका

सांकेतिका

अ

आ

इ

ई

उ

ए

औ

क

ख

घ

च

ड

ढ

त

थ

द

ध

न

प

भ

म

य

र

ल

व

ह